Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

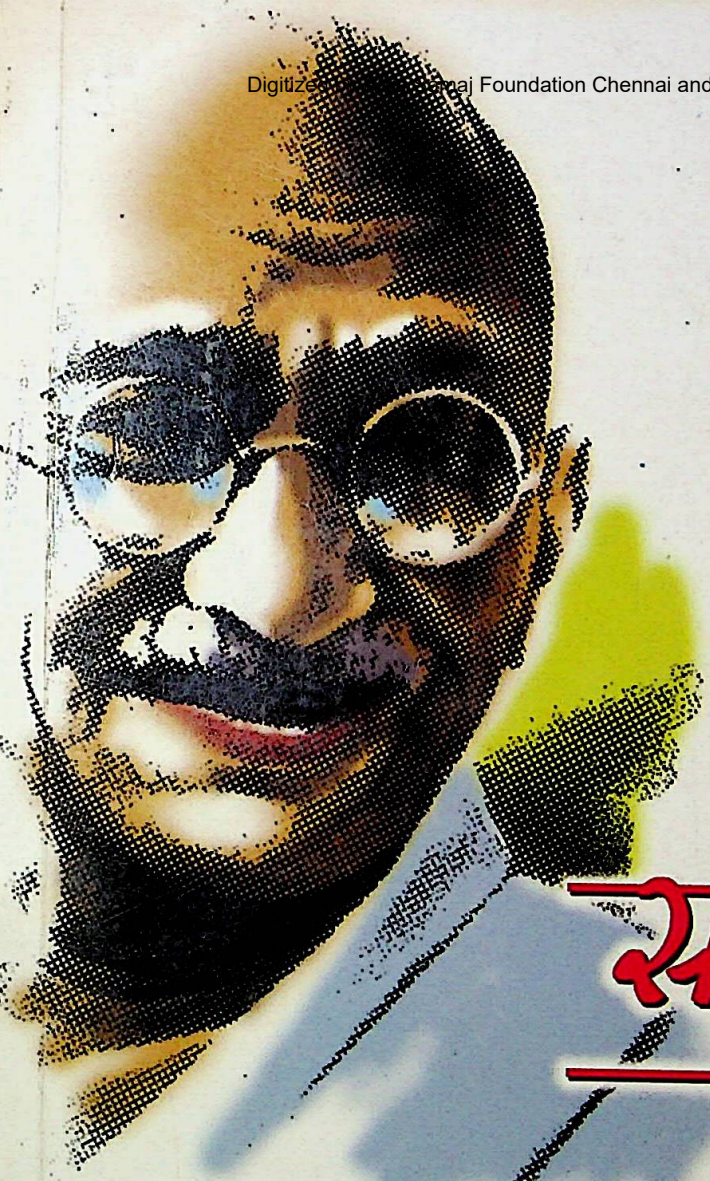

मो. क. गांधी

सत्य के प्रयोग

आत्मकथा

MY EXPERIMENT WITH TRUTH

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की धरती ने एक ऐसा महान मानव पैदा किया जिसने न केवल भारत की राजनीति का नक्शा बदल दिया अपितु विश्व को सत्य, अहिंसा, शांति और प्रेम की उस अजेय शक्ति के दर्शन कराए जिसके लिए ईसा या गौतम बुद्ध का स्मरण किया जाता है। गांधी जी का धर्म समूची मानव-जाति के लिए कल्याणकारी था। उन्होंने स्वयं को दरिद्र नारायण का प्रतिनिधि माना। गांधी जी का विश्वास था कि भारत का उत्थान गाँवों की उन्नति से ही होगा। उनके लिए सत्य से बढ़कर कोई धर्म और अहिंसा से बढ़कर कोई कर्त्तव्य नहीं था। गांधी जी संसार की अमर विभूति हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

9.4

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य के प्रयोग
अथवा
आत्मकथा

लेखक
मोहनदास करमचन्द गांधी

अनुवादक
महाबीरप्रसाद पोद्दार

डायमंड बुक्स

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISBN : 978-81-288-1245-3

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक : डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा॰) लि॰
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया,
फेज-2, नई दिल्ली 110020
फोन : 011-41611861, 40712100
फैक्स : 011-41611866
ई-मेल : sales@dpb.in
वैब साइट : www.dpb.in
संस्करण : 2011
मुद्रक : जी.एस. इंटरप्राइजिज

Satya Ke Prayog Athwa Atamkatha
by: Mohandas Karamchand Gandhi

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

चार या पांच साल पहले नजदीकी साथियों के आग्रह पर मैंने आत्मकथा लिखना स्वीकार किया था और आरम्भ भी किया था, लेकिन फुलस्केप का एक पन्ना पूरा न कर पाया कि बम्बई की आग सुलगी और मेरा आरम्भ अधूरा रह गया। फिर तो मैं एक के बाद दूसरे ऐसे कामों में फंसा कि अन्त में मुझे यरवड़ा में जगह मिली। भाई जयरामदास भी वहां थे। उन्होंने मुझसे मांग की कि और सब कामों को किनारे रखकर मुझे आत्म-कथा पहले लिख डालनी चाहिए। मैंने जवाब दिया कि मेरा अभ्यास-क्रम बन चुका है और उसके पूरा होने के पहले मैं आत्मकथा शुरू नहीं कर सकता। मुझे यदि पूरी मियाद यरवडा में बिताने का सौभाग्य मिला होता तो मैं अवश्य वहीं आत्मकथा लिख सकता। पर उसकी समाप्ति में अभी साल भर बाकी था। इसके पहले मैं आत्मकथा किसी तरह भी आरम्भ कर सकता था। इसलिए वह काम रह ही गया। अब फिर स्वामी आनन्द ने वही मांग की है और मैं दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास पूरा कर चुका हूं , इसलिए आत्म-कथा लिखने को ललचाया हूं। स्वामी की मांग तो यह थी कि मैं पूरी आत्मकथा लिख जाऊं और फिर वह पुस्तकाकार छपे। मेरे पास इकट्ठा इतना वक्त नहीं है। यदि लिखना हो तो 'नवजीवन' के लिए ही लिखा जा सकता है। मुझे 'नवजीवन' के लिए कुछ-न-कुछ लिखना पड़ता ही है और फिर आत्मकथा ही क्यों न लिखूं। स्वामी ने यह निर्णय मान लिया और आत्म-कथा लिखने का मुझे अब मौका मिला है।

पर यह निर्णय करते ही एक निर्मल साथी ने, मेरे मौन दिन सोमवार को आकर मुझसे धीरे-धीरे से कहा :

"आप आत्मकथा क्यों लिखना चाहते हैं? यह तो पश्चिम की प्रथा है। पूर्व में तो किसी को अपनी जीवनी लिखने का पता नहीं मिलता। और क्या लिखिएगा? आज आप जिस चीज़ को सिद्धान्त रूप मानते हैं, कल यदि वैसा मानना छोड़ दें तो? या सिद्धान्तरूप से जो - जो काम आज कर रहे हैं, उनमें आगे परिवर्तन करना पड़ा तो? आपके लिखे को बहुत से लोग प्रमाण समझकर अपना आचरण गढ़ते हैं, वे गलत रास्ते पर चल पड़े तो ? इसलिए क्या यह बेहतर न होगा कि अभी आत्मकथा जैसी कोई चीज न लिखें।"

इस दलील का मेरे मन पर थोड़ा-बहुत असर हुआ; पर मुझे आत्म-कथा कहां लिखनी है ? मुझे तो आत्मकथा के बहाने मैंने सत्य के जो अनेक प्रयोग

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किए हैं, उनकी कथा लिखनी है? यह जरूर है कि उसमें मेरा जीवन ओत-प्रोत होने के कारण वह एक जीवन-वृतान्त बन जाएगी। पर यदि उसके हर पन्ने में मेरे प्रयोग ही झलकें, तो इस कथा को मैं स्वयं निर्दोष मानूंगा। मैं मानता हूं कि मेरे सब प्रयोग इकट्ठे जनता को मिलना लाभदायक होगा। इसे मेरा मोह भी कहा जा सकता है। मेरे राजनैतिक क्षेत्र के प्रयोगों को आज तो हिन्दुस्तान ही नहीं, बल्कि कुछ अंशों में 'सभ्य' जगत भी जानता है। इसकी कीमत मेरी नजरों में कम-से-कम है और इन प्रयोगों की बदौलत मुझे जो 'महात्मा' की पदवी प्राप्त हुई है, उसकी कीमत भी बहुत थोड़ी ही है। कई बार तो इस विशेषण ने मुझे अत्यधिक दुःख भी दिया है। इस विशेषण से मैं फूल गया होऊं, ऐसा एक क्षण भी मुझे याद नहीं है। मुझे अपने आध्यात्मिक प्रयोगों को, जिन्हें मैं ही जान सकता हूं और जिनमें से मेरी राजनैतिक जीवन -सम्बन्धी शक्ति पैदा हुई है, वर्णन करना अवश्य भाएगा। यदि वे वास्तव में आध्यात्मिक हों तो इनसे गर्वित होने की कोई गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिए। बढ़े तो नम्रता बढ़ सकती है। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूं अपने अतीत पर दृष्टि डालता हूं, त्यों-त्यों अपनी अल्पता मुझे साफ दिखाई देती है। मेरा कर्त्तव्य तो, जिसके लिए मैं तीस वर्ष से झीख रहा हूं, आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है, मोक्ष है। मेरी सारी क्रियाएं इसी दृष्टि से होती हैं। मेरा सारा लेखन इसी दृष्टि से है। और मेरा राजनैतिक क्षेत्र में आना भी इसी वस्तु के अधीन है।

पर भले ही भूल से हो, मेरा यह अभिप्राय रहा है कि जो एक के लिए शक्य है, वह सबके लिए शक्य है। इसलिए मेरे प्रयोग निजी नहीं हुए, न निजी रहे। मुझे नहीं लगता कि उन प्रयोगों को सबके सामने प्रकट करने से उनकी आध्यात्मिकता कम होती है। ऐसी कुछ वस्तुएं अवश्य हैं, जिन्हें आत्मा ही जानती है और वे आत्मा में ही शान्त हो जाती हैं। पर ऐसी वस्तु का देना मेरे बूते के बाहर है। मेरे प्रयोगों में तो आध्यात्मिक अर्थात् नैतिक, धर्म अर्थात् नीति, आत्मा की दृष्टि से अवलम्बन की हुई नीति धर्म है। अतः जिन वस्तुओं का निर्णय बालक, युवा और वृद्ध करते हैं और कर सकते हैं, उन्ही वस्तुओं का समावेश इस कथा में होगा। ऐसी कथा यदि मैं तटस्थ रूप से निरभिमान रहकर लिख सकूं तो उससे दूसरे प्रयोग करने वालों को कुछ सामग्री मिल सकती है।

अपने प्रयोगों के सम्बन्ध में मैं किसी तरह की सम्पूर्णता का दावा नहीं करता। जैसे विज्ञान-शास्त्री अपने प्रयोग अत्यन्त नियम, विचार-सहित और सूक्ष्मतापूर्वक करता है, फिर भी उससे उत्पन्न हुए परिणामों को वह अन्तिम नहीं कहता, अथवा यह नहीं कहता कि यही सच्चे परिणाम हैं, इस सम्बन्ध में यह संशय नहीं, तटस्थ रहता है, वैसे ही अपने प्रयोगों के विषय में मेरा भी मानना है। मैंने खूब आत्म-निरीक्षण किया है, प्रत्येक भाव को जांचा है, उसका विश्लेषण किया है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर उससे पैदा हुए परिणाम सबके लिए अन्तिम ही हैं अथवा यही सही है, ऐसा दावा मैं कभी करना नहीं चाहता। हां, एक दावा जरूर करता हूं कि मेरी नजरों में ये सही हैं और इस समय तो आखिरी से लगते हैं। यदि ऐसा न लगे तो मुझे इनकी बुनियाद पर कोई इमारत खड़ी नहीं करनी चाहिए। मैं तो हर पग पर जिन वस्तुओं को देखता हूं, उनके त्याज्य और ग्राह्य, दो हिस्से कर लेता हूं और ग्राह्य के अनुसार अपना आचरण बनाता हूं और आत्मा को जब तक संतोष दे तब तक मुझे शुभ परिणामों के विषय में अटूट विश्वास रखना ही चाहिए।

यदि मुझे केवल सिद्धान्तों अर्थात् तत्त्वों का ही वर्णन करना हो तो इस आत्म-कथा को लिखने की जरूरत न रह जाए। पर मुझे तो उनके ऊपर रचे हुए कार्यों का इतिहास देना है और इसीलिए मैंने इस प्रयत्न को पहला नाम 'सत्य के प्रयोग' दिया। इसमें सत्य से अलग समझे जाने वाले अहिंसा, ब्रह्मचर्य इत्यादि के नियमों के प्रयोग भी आ जाएंगे। पर मेरे ख्याल से सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अनगिनत वस्तुओं का समावेश हो जाता है। यह सत्य वह स्थूल-वाणी का सत्य नहीं है। यह तो जैसे वाणी का है, वैसे विचार का भी है। यह सत्य हमारा कल्पित सत्य ही नहीं है, बल्कि स्वतन्त्र और चिरस्थाई सत्य है, अर्थात् परमेश्वर ही है।

परमेश्वर की व्याख्याएं अनगिनत हैं, क्योंकि उसकी विभूतियां भी अनगिनत हैं। ये विभूतियां मुझे आश्चर्य में डाल देती हैं। मुझें तनिक देर के लिए मोह भी लेती हैं। पर मैं पुजारी तो सत्यरूपी परमेश्वर का ही हूं। वही एक सत्य है और अन्य सब मिथ्या है। यह सत्य मुझे मिला नहीं; पर मैं इसका शोधक हूं। इसके शोध में मैं अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु भी त्यागने को तैयार हूं। इस शोध-रूपी यज्ञ में इस शरीर को भी होम करने की तैयारी है और शक्ति है, ऐसा मुझे विश्वास है। पर इस सत्य का साक्षात न कर लेने तक मेरी अन्तरात्मा जिसे सत्य समझती है, उस काल्पनिक सत्य का अपना आधार मानकर, अपना दीपक समझकर, उसके आश्रय में अपना जीवन बिताता हूं।

यह मार्ग यद्यपि खाण्डे की धार पर चलने के समान है, तथापि मुझे यह सरल-से सरल लगा। इस मार्ग पर चलकर अपनी भयंकर भूलें भी मुझे तुच्छ-सी लगती हैं; क्योंकि ये भूलें करते हुए भी मैं बच गया हूं और अपनी समझ के अनुसार आगे भी बढ़ा हूं। दूर-दूर से विशुद्ध सत्य की-ईश्वर की-झांकी भी हो रही है। सत्य ही है, इसके सिवा दूसरा कुछ भी इस जगत में नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यह किस प्रकार बढ़ता गया है, यह मेरे जगत अर्थात् 'नवजीवन' इत्यादि के पाठक जानकर, चाहें तो मेरे प्रयोग के हिस्सेदार बनें और उसकी झांकी भी मेरे साथ-साथ करें। उसके सिवा जितना मेरे लिए शक्य है, उतना एक बालक के लिए भी शक्य है, यह मैं अधिकाधिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानने लगा हूं और इसके लिए मेरे पास सबल कारण हैं। सत्य की शोध के साधन जितने कठिन हैं, उतने ही आसान हैं। ये अभिमानी को अशक्य लगते हैं और एक निर्दोष बालक को शक्य लगते हैं। सत्य के शोधक को रजकण से भी छोटा होकर रहना पड़ता है। सारा जगत रजकण को कुचलता है, पर सत्य के पुजारी के लिए तो स्वतंत्र सत्य की झांकी तब तक दुर्लभ है, जब तक कि वह इतना अल्प न बन जाए कि रजकण उसे कुचल सके। यह वस्तु वशिष्ठ-विश्वामित्र के आख्यान में स्पष्ट रूप से बतलाई गई है। क्रिस्तान धर्म और इस्लाम भी इसी वस्तु को सिद्ध करते हैं।

जो प्रकरण मैं लिखने वाला हूं उनमें यदि पाठक को अभिमान की गन्ध आए तो अवश्य समझ लेना चाहिए कि मेरी शोध में त्रुटि है और मेरी झांकी मृगतृष्णा के जल के समान है। भले ही मेरे जैसे अनेकानेक का क्षय हो; पर सत्य की जय हो। अल्पात्मा को नापने के लिए सत्य के गज को कभी छोटा होने का अवसर न आए। मैं चाहता हूं कि मेरे लेखों को कोई प्रमाणभूत न समझे; यह मेरी विनय है। मैं इतना ही चाहता हूं कि उनमें मैंने जिन प्रयोगों की चर्चा की है, उनको दृष्टान्त रूप मानकर अपने-अपने प्रयोग यथाशक्ति और यथामति करें। इस संकुचित क्षेत्र में मेरी आत्मकथा के लेखों में से बहुत-कुछ मिल सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है; क्योंकि जो कहने योग्य है, ऐसी एक भी बात मैं छिपाने वाला नहीं हूं। मैं पाठकों को अपने दोषों का भान पूरी तरह कराने की आशा करता हूं। मुझे सत्य के शास्त्रीय प्रयोगों का वर्णन करना है, अपने गुण बखानने की तिलमात्र भी इच्छा नहीं है। जिस गज से मैं अपने को नापना चाहता हूं और जिसे हम सबको अपने लिए काम में लाना चाहिए, उनके अनुसार तो मैं अवश्य कहूंगा कि:

मो सम कौन कुटिल खल कामी?
जिन तन दियो ताहि बिसरायो ऐसो निमकहरामी।

क्योंकि, जिसे मैं सम्पूर्ण विश्वास के साथ अपने श्वासोच्छ्वास का मालिक मानता हूं और जिसे मैं अपने नमक का देनेवाला मानता हूं उससे अब भी मैं दूर हूं, यह बात हर क्षण सालती है। इसके कारणरूप अपने विकारों को मैं देख सकता हूं, पर उन्हें अभी निकाल नहीं सकता।

पर अब बस करता हूं। प्रस्तावना में से प्रयोग की कथा में नहीं उतरूंगा। यह कथा तो प्रकरणों में ही मिलेगी।

आश्रम, साबरमती
मार्गशीर्ष शु. 11, 1982

-मोहनदास करमचन्द गांधी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

पहला भाग

1. जन्म 13
2. बचपन 15
3. बाल-विवाह 16
4. पतिरूप में 19
5. हाईस्कूल में 21
6. दुःखद प्रसंग-1 25
7. दुःखद प्रसंग-2 28
8. चोरी और प्रायश्चित 30
9. पिताजी की मृत्यु और मेरी नालायकी 33
10. धर्म की झांकी 35
11. विलायत की तैयारी 38
12. बिरादरी से बाहर 42
13. विलायत पहुंच ही गया 44
14. मेरी पसंद 47
15. 'सभ्य' वेश में 49
16. फेरफार 52
17. खुराक के प्रयोग 55
18. लज्जाशीलता-मेरी ढाल 58
19. असत्यरूपी विष 61
20. धार्मिक परिचय 64
21. 'निर्बल के बल राम' 67
22. नारायण हेमचंद्र 69
23. महाप्रदर्शनी 72
24. बैरिस्टर तो बने लेकिन आगे 73
25. मेरी परेशानी 76

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा भाग

1. रायचंद भाई 79
2. संसार-प्रवेश 81
3. पहला मुकदमा 84
4. पहला आघात 87
5. दक्षिण अफ्रीका की तैयारी 89
6. नेटाल पहुंचा 91
7. अनुभवों के नमूने 94
8. प्रिटोरिया जाते हुए 96
9. अधिक दुर्दशा 100
10. प्रिटोरिया में पहला दिन 103
11. ईसाइयों से संपर्क 106
12. हिंदुस्तानियों से परिचय 109
13. कुलीपने का अनुभव 111
14. मुकदमे की तैयारी 114
15. धार्मिक मंथन 116
16. को जाने कल की? 119
17. रह गया 121
18. वर्ण-बाधा 124
19. नेटाल-इंडियन-कांग्रेस 127
20. बालासुंदरम् 130
21. तीन पौंड का कर 132
22. धर्म-निरीक्षण 134
23. घर का काम-काज 137
24. देश की ओर 139
25. हिन्दुस्तान में 142
26. 'राजनिष्ठा और शुश्रूषा' 145
27. बंबई में सभा 147
28. पूना में 150
29. 'जल्दी लौटो' 152

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा भाग

1. तूफान की भनक 155
2. तूफान 157
3. कसौटी 159
4. शांति 163
5. बच्चों की शिक्षा 165
6. सेवावृत्ति 168
7. ब्रह्मचर्य-1 170
8. ब्रह्मचर्य-2 172
9. सादगी 176
10. बोअर-युद्ध 177
11. नगर-सुधार और अकाल-फंड 180
12. देश-गमन 181
13. देश में 184
14. क्लर्क और बैरा 186
15. महासभा में 188
16. लॉर्ड कर्जन का दरबार 189
17. गोखले के साथ एक मास-1 191
18. गोखले के साथ एक मास-2 193
19. गोखले के साथ एक मास-3 195
20. काशी में 197
21. बंबई में बसा 200
22. धर्म-संकट 202
23. फिर दक्षिण अफ्रीका 204

चौथा भाग

1. किया-धरा चौपट 207
2. एशियाई नवाबी 209
3. कड़वे घूंट पीने पड़े 210
4. बढ़ती हुई त्यागवृत्ति 212
5. निरीक्षण का परिणाम 213
6. निरामिषाहार पर बलिदान 216

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7. मिट्टी और पानी के प्रयोग 217
8. एक सावधानी 219
9. जबर्दस्त मुकाबला 221
10. एक पुण्यस्मरण और प्रायश्चित 223
11. अंग्रेजों से गाढ़ परिचय 225
12. अंग्रेजों से परिचय 227
13. 'इंडियन ओपीनियन' 230
14. 'कुली लोकेशन' या भंगी-बस्ती 232
15. महामारी-1 234
16. महामारी-2 236
17. लोकेशन की होली 238
18. एक पुस्तक का जादूभरा असर 240
19. फिनिक्स की स्थापना 242
20. पहली रात 244
21. पोलक कूद पड़े 246
22. 'जाको राखे साइयाँ' 248
23. घर में फेर-फार और बालशिक्षा 250
24. जूलू-बलवा 253
25. हृदय-मंथन 255
26. सत्याग्रह की उत्पत्ति 257
27. खुराक के अधिक प्रयोग 258
28. पत्नी की दृढ़ता 260
29. घर में सत्याग्रह 263
30. संयम की ओर 265
31. उपवास 267
32. गुरुजी 269
33. अक्षर-ज्ञान 271
34. आत्मिक शिक्षा 272
35. भले-बुरे का मिश्रण 274
36. प्रायश्चित रूप में उपवास 275
37. गोखले से मिलने 277
38. लड़ाई में हिस्सा 279

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

39. धर्म की समस्या 280
40. खिलौना-सत्याग्रह 282
41. गोखले की उदारता 285
42. दर्द के लिए क्या किया? 287
43. रवाना 288
44. वकालत के कुछ संस्मरण 290
45. चालाकी? 292
46. मुवक्किल साथी हो गये 293
47. मुवक्किल जेल से कैसे बचा? 294

पाँचवाँ भाग

1. पहला अनुभव 297
2. गोखले के साथ पूना में 298
3. धमकी? 300
4. शांतिनिकेतन 302
5. तीसरे दरजे की दुर्दशा 305
6. मेरा प्रयत्न 306
7. कुम्भ 307
8. लछमन झूला 311
9. आश्रम की स्थापना 313
10. कसौटी पर चढ़े 314
11. गिरमिट की प्रथा 317
12. नील का धब्बा 320
13. बिहारी सीधापन 322
14. अहिंसा देवी का साक्षात्कार 324
15. मुकदमा वापस लिया गया 327
16. कार्य-पद्धति 329
17. साथी 331
18. ग्राम-प्रवेश 333
19. उज्ज्वल पक्ष 335
20. मजदूरों से सम्बन्ध 336
21. आश्रम की झाँकी 338

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22. उपवास 339
23. खेड़ा में सत्याग्रह 342
24. 'प्याजचोर' 343
25. खेड़ा की लड़ाई का अंत 345
26. एकता की रट 346
27. रंगरूटों की भरती 349
28. मृत्यु-शय्या पर 353
29. रौलेट ऐक्ट और मेरा धर्म-संकट 356
30. वह अद्‌भुत दृश्य! 359
31. वह हफ्ता!-1 361
32. वह हफ्ता!-2 365
33. 'पहाड़-जैसी भूल' 367
34. 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' 369
35. पंजाब में 371
36. खिलाफत के बदले गोरक्षा? 373
37. अमृतसर की कांग्रेस 376
38. महासभा में प्रवेश 379
39. खादी का जन्म 381
40. मिला 382
41. एक सम्वाद 384
42. असहयोग का प्रवाह 386
43. नागपुर में 388
44. पूर्णाहुति 389

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला भाग

1 : जन्म

गांधी-कुटुंब, जान पड़ता है, पहले पन्सारी का धंधा करता था, पर मेरे दादा से लगाकर तीन पीढ़ियों से तो वह दीवानगिरी करता आया है। मेरे दादा उत्तमचंद गांधी उर्फ ओता गांधी टेकवाले आदमी रहे होंगे। दरबारी साजिशों के कारण उन्हें पोरबंदर छोड़ना पड़ा। वहां से जाकर उन्होंने जूनागढ़ राज्य में आश्रय लिया। उन्होंने नवाबसाहब को सलाम बायें हाथ से किया। किसी ने इस स्पष्ट अविनय का कारण पूछा तो जवाब मिला, "दाहिना हाथ तो पोरबंदर को दिया जा चुका है।"

ओता गांधी के दो ब्याह हुए। पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उनका दूसरा विवाह हुआ। पहली पत्नी से चार लड़के थे और दूसरी से दो। अपने बचपन को याद करते हुए यह बात मेरे ख्याल में भी नहीं आती कि ये भाई सौतेले थे। इनमें पांचवें कर्मचंद उर्फ कबा गांधी और अंतिम तुलसीदास गांधी थे। दोनों भाइयों ने बारी-बारी से पोरबंदर की दीवानगिरी की। कबा गांधी मेरे पितृदेव थे। पोरबंदर का प्रधान-मंत्रित्व छोड़ने के बाद वह राजस्थानिक कोर्ट के सभासद रहे। फिर राजकोट में और कुछ समय बीकानेर में दीवान रहे। मृत्यु के समय राजकोट दरबार के पेंशनर थे।

कबा गांधी की चार शादियां हुई थी। पहली पत्नी के मरने पर दूसरा विवाह हुआ, इसी तरह तीसरा और चौथा विवाह भी हुआ। पहली दो पत्नियों से दो लड़कियां हुई। अंतिम पुतलीबाई से एक लड़की और तीन लड़के। सबसे छोटा मैं हूँ।

पिताजी कुटुंब प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार किंतु क्रोधी थे। कुछ विषया-सक्त भी रहे होंगे। उनका अंतिम विवाह चालीस की उम्र के बाद हुआ था। वह रिश्वत से दूर भागते थे, इसलिए शुद्ध न्याय करते थे। उनकी यह प्रसिद्धि हमारे परिवार में और बाहर भी थी। वह राज्य के बड़े वफादार थे। एक बार नायब पोलिटिकल ऐजेंट ने राजकोट के ठाकुर साहब के विषय में अपमानजनक शब्द कहे। कबा गांधी ने उसका विरोध किया। साहब खफा हो गए। कबा गांधी को माफी मांगने का हुक्म हुआ। उन्होंने माफी मांगने से इनकार किया, जिससे उन्हें कुछ घंटे हवालात में भी रहना पड़ा, पर वह डिगे नहीं। इससे अंत में साहब ने उन्हें छोड़ देने का हुक्म दिया।

पिताजी को पैसे बटोरने की हवस कभी नहीं थी। इस कारण हम लोगों के लिए थोड़ी संपत्ति छोड़ गये।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताजी की शिक्षा केवल अनुभव की थी जिसे आज हम गुजरात की पांचवीं पोथी की पढ़ाई कहते हैं, उतनी शिक्षा उन्हें मिली होगी। इतिहास-भूगोल के ज्ञान से तो बिल्कुल कोरे थे। फिर भी उनका व्यावहारिक ज्ञान इतने ऊंचे दर्जे का था कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्नों को सुलझाने या हजार आदमियों से काम लेने में उन्हें कठिनाई न होती थी। धार्मिक शिक्षा नहीं के बराबर थी; पर मंदिरों में जाने और कथा आदि सुनने से जो धर्मज्ञान असंख्य हिंदुओं को सहज में मिल जाता है वह उन्हें मिला था। अंतिम वर्ष में हमारे कुटुंब के मित्र एक विद्वान ब्राह्मण की सलाह से उन्होंने गीतापाठ आरम्भ किया था और नित्य कुछ श्लोक अपनी पूजा के समय ऊंचे स्वर से पाठ कर लेते थे।

मेरे मन पर यह छाप है कि माताजी साध्वी स्त्री थीं। बड़ी भावुक, पूजा-पाठ के बिना कभी भोजन न करतीं। हवेली (वैष्णव मंदिर) पर रोज जातीं। मैंने जबसे होश संभाला, याद नहीं पड़ता कि उन्होंने चातुर्मास्य का व्रत कभी छोड़ा हो। कठिन-से-कठिन व्रत लेतीं और उन्हें दृढ़ता से पूरा करतीं। बीमार पड़ जाने पर भी लिये हुए व्रत को न छोड़तीं। एक बार की बात मुझे याद है कि उन्होंने चांद्रायण व्रत आरम्भ किया था। उसमें बीमार पड़ गईं; पर व्रत न छोड़ा। चातुर्मास्य में एक समय के भोजन का व्रत तो उनके लिए साधारण बात थी। इतने से संतोष न मानकर एक चौमासे में उन्होंने बीच में एक दिन छोड़कर भोजन करने का नियम लिया था। लगातार दो-तीन उपवास उनके लिए मामूली बात थी। एक चौमासे में उन्होंने सूर्यनारायण के दर्शन करने के बाद ही भोजन करने का व्रत लिया था। उस चौमासे में हम बच्चे बादलों की ओर देखते ही रहते कि कब सूर्य के दर्शन हों और कब मां भोजन करें। यह तो सभी जानते हैं कि चौमासे में अक्सर सूर्य-दर्शन दुर्लभ होते हैं। मुझे ऐसे दिन याद हैं कि जब सूर्य को हम देखते और चिल्लाते, "माँ-माँ, सूर्य निकला", माँ जल्दी-जल्दी आतीं, तब तक सूर्य भाग जाता। वह यह कहते हुए लौट जातीं, "कोई बात नहीं, आज खाना बदा नहीं है।" और जाकर अपने काम में लग जातीं।

माताजी व्यवहार-कुशल थीं। दरबार की सब बातें जानती थीं। रनिवास में वह बुद्धिमती समझी जाती थीं। बचपन में माँ मुझे कभी-कभी अपने साथ राजमहल में ले जाया करती थीं। मांजीसाहिबा से उनकी जो बातचीत होती उसमें से कुछ मुझे अब तक याद है।

इन माता-पिता के यहां संवत् 1925 की भादों बदी द्वादशी के दिन, अर्थात् सन् 1869 के अक्तूबर की दूसरी तारीख को, पोरबंदर अथवा सुदामापुरी में मेरा जन्म हुआ।

बचपन पोरबंदर में ही बीता। ऐसा याद है कि मैं किसी पाठशाला में बैठाया गया था। मुश्किल से कुछ पहाड़े सीखे होंगे। उस समय दूसरे लड़कों के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैंने गुरुजी को गालियां देना भर सीखा, इतने के सिवा और कुछ भी याद नहीं है। इससे मैं अनुमान करता हूं कि मेरी बुद्धि मंद रही होगी और स्मरणशक्ति नीचे की कड़ी के, जिसे कि हम लड़के वहां गाया करते, कच्चे पापड़ की तरह। वे कड़ियां मुझे यहां जरूर देनी चाहिए:

एकड़े एक, पापड़ सेक;
पापड़ कच्चो,-मारो-

पहली खाली जगह में मास्टर का नाम होता था। उसे मैं अमर करना नहीं चाहता। दूसरी खाली जगह में गाली होती, जिसे भरने की जरूरत नहीं।

2 : बचपन

पोरबंदर से पिताजी राजस्थानिक कोर्ट के सदस्य होकर राजकोट गए। तब मेरी उम्र कोई सात बरस की रही होगी। मैं राजकोट की ग्राम-पाठशाला में पढ़ने भेजा गया। उस मदरसे के दिन मुझे अच्छी तरह याद हैं। मास्टरों के नाम-धाम भी! पोरबंदर की भांति ही वहां की पढ़ाई के बारे में भी कुछ विशेष जानने योग्य नहीं है। मेरी गिनती शायद साधारण श्रेणी के विद्यार्थियों में रही होगी। गांव की पाठशाला से कस्बे की पाठशाला में और वहां से हाईस्कूल तक पहुंचने में मेरा बारहवां वर्ष बीत गया। तब तक मैंने कभी शिक्षकों को धोखा दिया हो, ऐसा याद नहीं आता। न तब तक कोई दोस्त बनाने का स्मरण है। मैं बहुत ही झेंपू लड़का था। पाठशाला में मुझे बस काम-से-काम रहता था। घंटा बजते पहुंच जाता और पाठशाला बंद होते ही घर भागना। 'भागना' शब्द मैं जानबूझकर इस्तेमाल कर रहा हूं। कारण यह है कि मुझे किसी से बातें करना नहीं रूचता था। कोई मेरा मजाक न उड़ाये, यह डर भी बना रहता था।

हाईस्कूल के पहले ही साल की, परीक्षा-काल की, एक घटना उल्लेखनीय है। शिक्षा-विभाग के इन्सपैक्टर जाइल्स स्कूल के मुआयने के लिए आए थे। उन्होंने पहले दरजे के लड़कों को पांच शब्द लिखवाये। उनमें एक शब्द 'केटल' (Kettle) था। उसके हिज्जे मैंने गलत लिखे। मास्टर ने मुझे अपने बूट की नोक से चेताया; पर मैं क्यों चेतने लगा। मैं यह सोच भी न सका कि मास्टर मुझे सामने के लड़के की स्लेट देखकर हिज्जे दुरुस्त कर लेने का इशारा कर रहे हैं। मैंने तो यह मान रखा था कि मास्टर वहां इसके लिए तैनात हैं कि हम एक-दूसरे की नकल न कर सकें। सब लड़कों के पांचों शब्द सही निकले, अकेला मैं बेवकूफ बना। मेरी 'मूर्खता' मास्टर ने मुझे बाद में बतलाई, पर मेरे मन पर उसका कोई असर न हुआ। मुझे दूसरे लड़कों की नकल करना कभी न आया।

इतने पर भी मास्टर के प्रति मेरा आदर कभी घटा नहीं। बड़ों के दोष न देखने का गुण मुझमें स्वाभाविक था। इस मास्टर के अन्य दोष भी मुझे बाद में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मालूम हुए। फिर भी उनके प्रति मेरा आदर ज्यों-का-त्यों बना रहा। मैंने समझ रखा था कि बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। जो वे कहें वह करना चाहिए। जो करें उसका काजी मुझे नहीं बनना चाहिए।

इसी समय के दो और प्रसंग सदा मुझे याद रहे हैं। मुझे साधारणतः स्कूली किताबों के सिवा और कुछ पढ़ने का शौक नहीं था। सबक पूरा करना चाहिए, क्योंकि डांट सही नहीं जाती थी; मास्टर को धोखा देना नहीं था, इसलिए पाठ पढ़ता था। पर मन अलसाता था। इससे सबक अक्सर कच्चा रह जाता। उस दशा में और कोई चीज पढ़ने की कहां सूझती! पर पिताजी की खरीदी हुई एक किताब पर मेरी नजर पड़ी। वह था 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाटक। उसे पढ़ने की इच्छा हुई और मैं उसे बड़े चाव से पढ़ गया। उन दिनों काठ के बक्स में शीशे से चित्र दिखाने वाले भी दरवाजे-दरवाजे फिरा करते थे। उनसे मैंने श्रवण के अपने माता-पिता को कांवर में बिठाकर यात्रा के लिए ले जाने का चित्र भी देखा। दोनों चीजों का मुझ पर गहरा असर पड़ा। मुझे भी श्रवण के समान होना चाहिए, यह भाव मन में उठने लगा। श्रवण की मृत्यु पर उसके माता-पिता का विलाप आज भी याद है। इस ललित छंद को मैंने बजाना भी सीख लिया। मुझे बाजा सीखने का शौक था और पिताजी ने एक बाजा दिला भी दिया था।

इस बीच कोई नाटक-कंपनी आई। मुझे उसका नाटक देखने की इजाजत मिली। उसमें हरिश्चंद्र की कंथा थी। यह नाटक देखने से मेरी तृप्ति ही नहीं होती थी। उसे बार-बार देखने को जी चाहता; पर बार-बार जाने कौन देता? किंतु मन में इस नाटक को सैकड़ों बार दोहराया होगा। हरिश्चंद्र के सपने आया करते। "हरिश्चंद्र-जैसे सत्यवादी सब क्यों नहीं हो जाते?" यह धुन रहती। हरिश्चंद्र जैसी विपत्तियां पड़ी थी वैसी विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। मैंने तो मान लिया था कि नाटक में लिखी विपदाएं हरिश्चंद्र पर अवश्य पड़ी होंगी। हरिश्चंद्र का दुःख देखकर, उसे याद कर, मैं खूब रोया हूं। आज मेरी बुद्धि समझती है कि हरिश्चंद्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। फिर भी मेरे मन में हरिश्चंद्र और श्रवण कुमार आज भी जीवित हैं। मेरा खयाल है कि मैं आज भी इन नाटकों को पढ़ूं तो आज भी आँखों में आंसू आ जाएंगे।

3 : बाल-विवाह

मैं चाहता हूं कि मुझे यह प्रकरण न लिखना पड़े, पर इस कथा में मुझे ऐसी कितनी ही कड़वी घूंटें पीनी पड़ेंगी। सत्य का पुजारी होने का दावा करने वाले के लिए दूसरा रास्ता हो भी नहीं सकता।

यह लिखते मन आकुल हो उठता है कि तेरह वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हो गया। आज मेरी नजरों के सामने बारह-तेरह बरस के बालक मौजूद हैं। उन्हें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
देखता हूं और अपने विवाह का स्मरण करता हूं तो मुझे अपने ऊपर दया आती है और उन बालकों को इसके लिए बधाई देने को जी चाहता है कि वे मेरी-सी हालत से बच गये। तेरह बरस की उम्र में हुए अपने ब्याह के समर्थन में एक भी नैतिक दलील मुझे नहीं सूझती।

पाठक यह न समझें कि मैं सगाई की बात कर रहा हूं। काठियावाड़ में विवाह के माने सगाई नहीं है। दो बच्चों को ब्याहने के लिए माँ-बाप के बीच हुए कौल-करार को सगाई कहते हैं। सगाई टूट सकती है। सगाई की हालत में वर के मर जाने पर कन्या विधवा नहीं होती। सगाई में वर-कन्या का कोई संबंध नहीं रहता। अक्सर दोनों को उसका पता तक नहीं रहता। सगाइयां तो मेरी एक-एक करके तीन हुई थीं। वे कब हुई, इसका मुझे पता नहीं। दो कन्याएं क्रमशः मर गई, यह मुझसे कहा गया था। इसी से मुझे मालूम हुआ कि मेरी तीन सगाइयां हुई थीं। तीसरी सगाई कोई सात बरस की उम्र में हुई होगी, ऐसा कुछ याद है। पर सगाई के समय मुझसे कुछ कहा गया, इसकी याद नहीं है। विवाह में वर-कन्या की आवश्यकता पड़ती है, उसमें कुछ रस्में होती हैं, और मैं वैसे विवाह के विषय में ही लिख रहा हूं। ब्याह की पूरी-पूरी याद मुझे है।

पाठक पीछे पढ़ आए हैं कि हम तीन भाई थे। उनमें सबसे जेठे ब्याहे जा चुके थे। मंझले मुझसे दो या तीन साल बड़े थे। उनका और मेरे चाचा के छोटे लड़के का, जिसकी उम्र मुझसे शायद एकाध साल अधिक रही होगी, और मेरा, यों तीन विवाह एक साथ करने का निश्चय बड़ों ने किया। इसमें हमारे भले का कोई खयाल नहीं था। हमारी इच्छा का तो हो ही नहीं सकता था। खयाल था तो महज बड़ों के सुभीते और खर्च की बचत का।

हिन्दू-संस्कार में विवाह कोई ऐसी-वैसी वस्तु नहीं है। वर-कन्या के माँ-बाप उसके पीछे मिट जाते हैं, पैसा और समय दोनों बरबाद करते हैं। महीनों पहले से तैयारियां होती हैं। कपड़े-गहने बनते हैं, बिरादरी-भोज के खर्च के हिसाब बनते हैं। पकवान के प्रकारों की प्रतिद्वंद्विता होती है। गला हो या न हो, गीत गा-गाकर स्त्रियां अपना गला बैठा लेती हैं और बीमार तक पड़ जाती हैं। पड़ोसियों की शांति में खलल डालती हैं। बेचारे पड़ोसियों को खुद भी तो मौका पड़ने पर यही सब करना पड़ता है। इसलिए शोर-गुल, जूठ-जाठ और दूसरी गंदगियां सब चुपचाप सह लेते हैं।

इतना झंझट-झमेला तीन बार के बजाय एक ही बार कर लिया जाए तो कितना सुभीता हो? पैसा कम खर्च होने पर भी ब्याह ठाट से होंगे। तीन विवाह एक साथ होने की वजह से पैसा खुले हाथों खर्च किया जा सकेगा। पिताजी और चाचाजी बूढ़े थे। हम उनके आखिरी लड़के थे। अतः हमारे विवाह का आनन्द लूटने की हवस उनके लिए स्वाभाविक थी। इसी तरह के विचारों के कारण ये तीनों ब्याह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक साथ ही करने का निश्चय हुआ और जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ इनकी तैयारी और सामान जुटाना तो कई महीने पहले से शुरू हो गया था।

हम तीनों भाइयों ने तो सिर्फ तैयारियों से ही जाना कि हमारा ब्याह होने वाला है। उस समय अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने, बाजे-गाजे घोड़े पर चढ़ने, बढ़िया भोजन मिलने और एक नई लड़की विनोद के लिए पाने इत्यादि हौसलों के सिवा मन में और कोई बात रही हो, इसकी मुझे याद नहीं है। विषय-भोग की वृत्ति तो बाद में आई। मैं बता सकता हूं कि वह कैसे आई, पर पाठक इस जिज्ञासा को जाने दें। अपनी शर्म मैं छिपा रखना चाहता हूं। बतलाने-योग्य जो कुछ है वह आगे आ जाएगा। पर इन बातों के ब्यौरों का उस मध्यबिंदु से थोड़ा ही सम्बन्ध है, जो यह कहानी लिखने में मैंने अपनी निगाह के सामने रखा है।

हम दो भाइयों को लोग राजकोट से पोरबंदर ले गये। वहां जो तेल, हल्दी इत्यादि की रस्में हुईं उनका विवरण मनोरंजक होने पर भी छोड़ देने लायक है।

पिताजी दीवान थे, पर थे तो नौकर ही न! फिर राजप्रिय थे। अतः अधिक पराधीन थे। ठाकुरसाहब आखिरी घड़ी तक जाने न देते थे। अंत में दो दिन बाद जाने दिया, और उनके जाने के लिए खास डाक बिठाई गई, पर विधान के मन कुछ और ही था। राजकोट से पोरबंदर का फासला साठ कोस है। बैलगाड़ी से पांच दिन का रास्ता था। पिताजी तीन दिन में पहुंचे। आखिरी मंजिल में तांगा उलट गया। पिताजी को सख्त चोट आई। हाथ पर पट्टी, पीठ पर पट्टी बांधे पहुंचे। विवाह का उनका और हमारा आधा आनंद चला गया। पर ब्याह तो हुए ही। लिखा मुहूर्त कहीं टल सकता है? मैं तो ब्याह के बाल-उल्लास में पिताजी का दुःख भूल गया!

पितृभक्त तो मैं अवश्य था, पर वैसा ही विषय-भक्त भी तो था! यहां विषय का तात्पर्य केवल एक इंद्रिय के विषय से नहीं है, बल्कि भोगमात्र से है। माता-पिता की भक्ति के लिए सब सुख छोड़ना चाहिए, यह ज्ञान तो आगे चलकर होने वाला था। फिर भी कौन जाने, मुझे इस भोगेच्छा का दंड भोगने के लिए ही इस तरह से मेरे जीवन में एक प्रतिकूल घटना हो गई, जो मुझे आज तक सालती है। जब-जब निष्कुलानंद का-

त्याग न टके रे वैराग बिना, करीए कोटि उपाय जी

गाता हूं या सुनता हूं तब-तब यह प्रतिकूल और कटु प्रसंग मुझे याद आता है और लज्जा में डुबो देता है।

पिताजी ने तमाचा मारकर मुंह लाल रखा। शरीर से पीड़ा भोगते हुए भी उन्होंने विवाह में पूरा योग दिया। पिताजी किस-किस अवसर पर कहां-कहां बैठे थे, मुझे आज भी यह सब ज्यों-का-त्यों याद है। बाल-विवाह पर विचार करते हुए पिता के काम की जो टीका मैंने आज की है कुछ मेरे मन ने उस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
थोड़े ही की थी? उस वक्त तो सब ठीक और मनभावन ही लगता था। ब्याहे जाने का शौक था और जान पड़ता था कि पिताजी जो कुछ कर रहे हैं सो सब ठीक ही कर रहे हैं। इसी से उस समय की याद ताजा है।

मंड़वे में बैठे, भांवर घूमे, कसार[1] खाया-खिलाया और वर-वधू तभी से साथ रहने लगे। वह पहली रात! दो मासूम बच्चे अनजाने संसार-सागर में कूद पड़े। भाभी ने सिखलाया कि मुझे पहली रात में कैसे बरतना चाहिए। धर्मपत्नी को किसने सिखलाया, इसे पूछने की बात याद नहीं है। अब भी पूछा जा सकता है, पर पूछने की इच्छा तक नहीं होती। पाठक इतना जान लें कि हम दोनों एक-दूसरे से डरते थे, ऐसा खयाल आता है। एक-दूसरे से शरमाते तो थे ही। मैं क्या जानूं कि बातें कैसे और क्या करनी चाहिए? दी गई सिखावन भी क्या मदद देती? ये बातें क्या सीखनी पड़ती हैं? जहां संस्कार बलवान हैं वहां सिखावन फ़ालतू चीज होती है। धीरे-धीरे हम एक-दूसरे को पहचानने लगे, बोलने लगे। हम दोनों समवयस्क हैं, पर मैंने पति का अधिकार जताना आरंभ कर दिया।

4 : पतिरूप में

जब मेरा विवाह हुआ उन दिनों, निबंधों के छोटे-छोटे परचे-पैसे-पैसे या पाई-पाई के, यह याद नहीं है- निकला करते थे। उनमें दंपती-प्रेम, किफायतशारी, बालविवाह आदि विषयों की चर्चा रहती थी। उनमें से कोई-कोई निबंध मेरे हाथ पड़ जाता और मैं उसे पढ़ जाता था। जो पढ़ा वह न रुचा तो उसे भूल जाना और रुचा तो उस पर अमल करना, यह तो मेरा अभ्यास ही था। मैंने पढ़ा कि एक पत्नीव्रत का पालन करना पति का धर्म है, और बात दिल में बैठ गई। सत्य-का प्रेम तो था ही। अतः पत्नी से छल-कपट तो कर सकता ही न था। इसी से दूसरी स्त्री से लगाव न होना चाहिए, यह भी समझ में आ गया था। छोटी उम्र में एक पत्नीव्रत के भंग की संभावना बहुत कम ही रहती है।

पर इन सद्विचारों का एक अनिष्ट परिणाम हुआ। अगर मेरे लिए एक पत्नीव्रत का पालन कर्त्तव्य है तो पत्नी को भी एक पतिव्रत का पालन करना चाहिए, इस विचार ने मुझे ईर्ष्यालु पति बना दिया। मैं 'पालन करना चाहिए' से 'पालन करवाना चाहिए' पर जा पहुंचा। और पालन करवाना है तो मुझे खबरदारी रखनी चाहिए। मेरे लिए पत्नी की पवित्रता में शंका करने का कोई कारण नहीं था। पर जलन कारण ढूंढ़ने कब बैठती है? मेरी स्त्री कहां जाती है, यह मुझे सदा जानना ही चाहिए। इसलिए मेरी अनुमति के बिना वह कहीं जा नहीं सकती। यह बात हमारे बीच दुःखद झगड़े की जड़ हो गई। अनुमति के बिना कहीं न जा सकना

1. गेहूं के आटे का घी, चीनी, मेवा डालकर बनाया हुआ मलीदा।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तो एक तरह की कैद ही हुई; पर कस्तूरबाई ऐसी कैद सहन करने वाली स्त्री न थी। जहां जी चाहता, वहां जरूर बिना मुझसे पूछे, जाती। मैं ज्यों-ज्यों दबाव डालता त्यों-त्यों वह अधिक स्वतंत्रता दिखाती, और त्यों-त्यों मैं अधिक चिढ़ता। इससे हम बालकों में बोलचाल बंद हो जाना मामूली बात हो गई। कस्तूरबाई की इस स्वतंत्रता को मैं निर्दोष मानता हूं। एक लड़की जिसके मन में पाप नहीं है, वह देवदर्शन के लिए या किसी से मिलने जाने पर दाब कैसे सह सकती है? यदि मैं उस पर दाब रखता हूं तो वह मुझ पर क्यों न रखे? पर यह तो अब समझ में आ रहा है। उस समय तो पति का अधिकार स्थापित करना था।

पर पाठक यह न मान बैठें कि हमारे इस गृहजीवन में कहीं भी मिठास नहीं थी। मेरी वक्रता के मूल में प्रेम था। मैं अपनी पत्नी को आदर्श स्त्री बनाना चाहता था। मेरी यह भावना थी कि वह स्वच्छ हो जाये, स्वच्छ रहे, मैं जो सीखता हूं वह सीखे, मैं जो पढ़ता हूं, वह पढ़े, और हम दोनों एक-दूसरे में ओतप्रोत रहें।

कस्तूरबाई की भी यह भावना थी या नहीं, इसका मुझे पता नहीं। वह निरक्षर थी। स्वभाव से सीधी, स्वतंत्र, मेहनती और मेरे साथ तो मितभाषिणी थी। उसे अपने अज्ञान से असंतोष नहीं था। मैंने अपने बचपन में कभी उसकी यह इच्छा नहीं पाई कि मैं पढ़ता हूं तो उसे भी पढ़ना चाहिए। इससे मानता हूं कि मेरी भावना एकपक्षीय थी। मेरा विषय-सुख एक स्त्री पर ही आश्रित था और मैं उस सुख की प्रतिध्वनि चाहता था। प्रेम जहां एक पक्ष की ओर से भी होता है वहां सर्वांश में तो दुःख हो ही नहीं सकता। मुझे कहना चाहिए कि अपनी स्त्री के प्रति मैं विषयासक्त था। स्कूल में भी उसका खयाल आता रहता। कब रात हो और कब हम मिलें, यह विचार बना ही रहता। वियोग असह्य था। अपनी निकम्मी बकवासों से मैं कस्तूरबाई को जगाये ही रखता। मैं समझता हूं कि इस आसक्ति के साथ यदि मुझमें कर्त्तव्यपारायणता न होती तो मैं रोग का शिकार बनकर मृत्यु के पंजे में पड़ गया होता या इस जगत में भारभूत बनकर रहता। सवेरा होते ही रोज के काम तो करने ही चाहिए, किसी को छल -ठग सकता ही नहीं, अपने ऐसे विचारों की ही बदौलत अनेक संकटों से मेरी रक्षा हुई।

कस्तूरबाई निरक्षर थी, यह बात लिख चुका हूं। उसे पढ़ाने की मुझे बड़ी हवस थी, पर मेरी विषय-वासना पढ़ाने के मार्ग में बाधक थी। एक तो जबर्दस्ती पढ़ाना था, वह भी रात को एकांत में ही संभव था। गुरुजनों के सामने तो स्त्री की ओर निहारना भी नामुमकिन था, बात करने की तो बात ही दरकिनार! काठियावाड़ में घूंघट का निकम्मा और जंगली रिवाज उस समय था। आज भी बहुत कुछ बना हुआ है। इससे पढ़ाने के संयोग भी मेरे लिए प्रतिकूल थे। अतः मुझे कबूल करना होगा कि युवावस्था में पढ़ाने के मेरे सारे यत्न करीब-करीब व्यर्थ हुए और जब विषय निद्रा से जागा तो मैं सार्वजनिक जीवन में पड़ चुका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
था। इसलिए अधिक समय दे सकूं, यह स्थिति ही न रहने गई थी। शिक्षक के द्वारा पढ़वाने की कोशिश भी बेकार रही। नतीजा यह हुआ कि आज कस्तूरबाई मुश्किल से चिट्ठी भर लिख और साधारण गुजराती समझ सकती है। मैं समझता हूं कि मेरा प्रेम विषय दूषित न होता तो आज वह विदुषी स्त्री होती। उसके पढ़ने के आलस्य को मैं जीत सकता था। मैं जानता हूं कि शुद्ध प्रेम के लिए कुछ भी अशक्य नहीं है।

स्वपत्नी के प्रति विषयासक्त होते हुए भी उसका पूरा फल भोगने से मैं अपेक्षकृत कैसे बच सका, इसका एक कारण बता चुका हूं। दूसरा भी बताने लायक है। सैकड़ों अनुभवों के आधार पर मैं यह सार निकाल पाया हूं कि सच्ची निष्ठावाले को भगवान बचा लेते हैं। हिंदू संस्कार में बाल-विवाह का घातक रिवाज है तो उसके साथ-साथ उबारने वाला रिवाज भी है। बालक वर-वधू को माँ-बाप अधिक दिन साथ नहीं रहने देते। बाल-पत्नी का आधे से अधिक समय उसके मैके में बीतता है। यही हमारे विषय में भी हुआ। यानी 13 से 18 साल की उम्र तक हम कुल मिलाकर तीन वर्ष से अधिक साथ न रहे होंगे। पांच-सात महीने साथ रहते कि कस्तूरबाई के माँ-बाप का बुलावा आ जाता। उस समय तो यह बुलावा ही बुरा लगता था पर उसी ने हम दोनों को बचा लिया। 18 वर्ष की उम्र में मैं विलायत चला गया, जिससे हममें सुंदर और लंबा वियोग हो गया। विलायत से लौटने पर भी साथ तो कोई छः महीने ही रहे होंगे। कारण यह कि राजकोट और बंबई के बीच मेरी आवा-जाही लगी रहती थी। तब तक दक्षिण अफ्रीका का न्यौता आ गया। इस बीच मैं भली-भांति जाग चुका था।

5 : हाईस्कूल में

पहले लिख चुका हूं कि ब्याह के समय मैं हाईस्कूल में पढ़ता था। उस समय हम तीनों भाई एक ही स्कूल में पढ़ते थे। बड़े भाई कई दर्जा ऊपर थे और जिस भाई का ब्याह मेरे साथ हुआ वह मुझसे एक दर्जा आगे थे। विवाह के परिणामस्वरूप हम दोनों भाइयों का एक साल बेकार गया। मेरे भाई के लिए तो नतीजा इससे भी बुरा रहा। ब्याह के बाद उन्हें स्कूल छोड़ ही देना पड़ा। भगवान जानें, ऐसा अनिष्ट परिणाम कितने युवकों को भोगना पड़ता होगा। विद्याभ्यास और विवाह, दोनों साथ-साथ हिंदू संसार में ही चलते हैं।

मेरी पढ़ाई जारी रही। हाईस्कूल में मैं मन्दबुद्धि विद्यार्थी नहीं माना जाता था। शिक्षकों का प्रेम तो मैंने सदा प्राप्त किया। हर साल माता-पिता के पास विद्यार्थी की पढ़ाई के साथ-साथ चाल-चलन के बारे में भी प्रमाण पत्र भेजा जाता था। उसमें कभी मेरे चाल-चलन या पढ़ाई के खराब होने की शिकायत नहीं गई। दूसरे दर्जे के बाद मैंने इनाम भी पाये और पांचवे, छठे

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दर्जे में क्रमशः चार तथा दस रुपये मासिक की छात्रवृत्ति भी मिली थी। इस सफलता में मेरी होशियारी की अपेक्षा भाग्य का हिस्सा ज्यादा था। वे वृत्तियां सब विद्यार्थियों के लिए नहीं; बल्कि सौराष्ट्र प्रांत विद्यार्थियों में प्रथम आने वाले के लिए थीं चालीस-पचास विद्यार्थियों के दर्जे में उस समय सौराष्ट्र प्रांत के विद्यार्थी हो ही कितने सकते थे?

मेरी निजी स्मृति यह है कि मुझे अपनी होशियारी का कोई गर्व नहीं था; इनाम या छात्रवृत्ति पाने पर मुझे आश्चर्य होता था; लेकिन अपने चाल-चलन की मुझे बड़ी चिन्ता रहती थी। आचरण में दोष आने से तो मुझे रुलाई ही आ जाती थी। मेरे हाथों कोई ऐसी बात हो या शिक्षकों को ऐसा मालूम हो कि उन्हें मेरी भर्त्सना करनी पड़े, यह मेरे लिए असह्य था। मुझे याद है कि एक बार मुझे मार खानी पड़ी थी। मार का दुःख नहीं था; पर मैं दंड का पात्र माना गया, इस बात का बड़ा दुःख था। मैं खूब रोया। यह बात पहले या दूसरे दर्जे की है। दूसरा प्रसंग सातवें दर्जे का है। उस समय दोराबजी एदलजी गीमी हेडमास्टर थे। वह विद्यार्थी-प्रिय थे, क्योंकि वह नियमों की पाबंदी कराते थे, बाकायदा काम करते और लेते थे, और पढ़ाते अच्छा थे। ऊपर के दर्जों के विद्यार्थियों के लिए उन्होंने कसरत, क्रिकेट अनिवार्य कर दिया था। मुझे इन चीजों से अरुचि थी। अनिवार्य होने के पहले तो मैं कभी कसरत, क्रिकेट या फुटबाल में गया ही न था। न जाने में मेरा झेंपू स्वभाव भी एक कारण था। आज इस अरुचि में मैं अपनी गलती देखता हूं। उस समय मेरी यह गलत धारणा थी कि कसरत का शिक्षण के साथ कोई संबंध नहीं है। बाद में समझ आया कि विद्याभ्यास में व्यायाम अर्थात शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा के बराबर ही स्थान होना चाहिए।

फिर भी मैं कहना चाहता हूं कि कसरत में शामिल न होने से मेरी हानि नहीं हुई। कारण यह था कि पुस्तकों में मैंने खुली हवा में घूमने की सलाह पढ़ी थी और वह मुझे रुचती थी और इससे हाईस्कूल के ऊंचे दर्जों से ही मुझे घूमने जाने की आदत पड़ गई थी। वह अंत तक बनी रही। घूमना भी व्यायाम तो है ही, इससे मेरे शरीर में थोड़ा कसाव आ गया।

व्यायाम की अरुचि का दूसरा कारण था पिताजी की सेवा करने की तीव्र इच्छा। स्कूल बंद होते ही तुरंत घर जाकर उनकी सेवा में लग जाता। कसरत अनिवार्य हो जाने से इस सेवा मे विघ्न पड़ने लगा। पिताजी की सेवा के लिए कसरत से माफी पाने को दरख्वास्त दी। पर गीमीसाहब कब माफी देने वाले थे? एक शनिवार को स्कूल सवेरे का था। शाम को चार बजे कसरत में जाना था। मेरे पास घड़ी न थी। आकाश में बादल थे, इससे समय का कुछ पता न चला। बादलों से धोखा खा गया। कसरत के लिए जब पहुंचा तो सब जा चुके थे। दूसरे दिन जब गीमीसाहब ने हाजिरी देखी तो मैं गैरहाजिर निकला। मुझसे वजह पूछी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गई। मैंने जो बात थी बता दी। उन्होंने उसे सही नहीं माना और मुझ पर एक या दो आना (ठीक याद नहीं कितना) जुर्माना हुआ। मैं झूठा बना। मुझे भारी दुःख हुआ। मैं झूठा नहीं हूं, यह कैसे साबित करूं? कोई उपाय नहीं था। मन मसोसकर रह गया। रोया। पीछे ध्यान में आया कि सही बोलने और सही करने वाले को गाफिल भी नहीं रहना चाहिए। इस तरह की गफलत मेरे अध्ययन-काल में यही पहली और आखिरी भी थी। मुझे कुछ-कुछ खयाल है कि अंत में मैंने यह जुर्माना माफ करा लिया था।

अंत में कसरत से मैंने मुक्ति पा ली; पर तब जबकि पिताजी ने हेडमास्टर को पत्र लिखा कि स्कूल के समय के बाद वह मेरी उपस्थिति अपनी सेवा के लिए चाहते हैं। कसरत के बदले घूमना जारी रखने की वजह से शरीर का व्यायाम न करने की गलती के लिए तो मुझे सजा नहीं भोगनी पड़ी; पर दूसरी एक भूल की सजा मैं आज तक भोग रहा हूं। पता नहीं, कहां से यह गलत खयाल मेरे दिमाग में घुस गया था कि पढ़ाई में सुंदर लिखावट की जरूरत नहीं है, जो विलायत जाने तक बना रहा। बाद को, और खासकर दक्षिण अफ्रीका में, जब वकीलों के, और दक्षिण अफ्रीका में जन्मे और पढ़े हुए नवयुवकों के, मोती के दानों के-से अक्षर देखे तब मैं लजाया और पछताया। मैंने समझा कि खराब अक्षर अधूरी शिक्षा की निशानी माने जाने चाहिए। पीछे मैंने अपने अक्षर सुधारने की कोशिश की; पर पके घड़े पर कहीं गला जुड़ता है? युवावस्था में जिसकी अवहेलना की, उसे आज तक न कर पाया। प्रत्येक युवक और युवती को मेरे उदाहरण से यह सबक लेना चाहिए कि अच्छे अक्षर लिखना विद्या का आवश्यक अंग है। सुंदर लिखावट सीखने के लिए चित्रकला का ज्ञान आवश्यक है। मैं तो इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि बालकों को चित्रकला पहले सिखलानी चाहिए। जैसे पक्षी, वस्तु आदि को देखकर बालक उन्हें याद रखता और सहज में पहचान सकता है वैसे ही अक्षर पहचानना भी सीखे और चित्रकला सीखकर चित्र आदि बनाना सीख लेने के बाद अक्षर लिखना सीखेगा तो उसके अक्षर छापे-जैसे होंगे।

इस समय की पढ़ाई के दूसरे दो संस्मरण उल्लेखनीय हैं। विवाह के कारण जो एक साल खराब गया था, दूसरे दर्जे में मास्टर ने उसे बचा लेने का मुझ से उद्योग कराया। परिश्रमी विद्यार्थी को इसकी इजाजत उन दिनों मिल जाती थी। इससे तीसरे दर्जे में छः महीने रहा और गर्मी की छुट्टियों के पहले के इम्तहान के बाद मैं चौथे दर्जे में ले लिया गया। यहां से कई विषयों की पढ़ाई अंग्रेजी के द्वारा शुरू होती थी। मैं कुछ समझ ही नहीं सकता था। रेखागणित के अध्यापक समझाने वाले अच्छे थे; पर मेरे दिमाग में कुछ घुसता ही न था। अक्सर मैं निराश हो जाता। कभी-कभी सोचता कि दो दर्जे सालभर में पास करने का इरादा छोड़ दूं और तीसरे दर्जे में लौट जाऊं; पर इसमें मेरी लाज जाने के

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
साथ ही जिस शिक्षक ने मेरी क्षमशीलता पर विश्वास करके दर्जा चढ़ाने की सिफारिश की थी, उसकी भी लाज जाती। इस डर से नीचे उतरने का विचार त्याग दिया। कोशिश करते-करते जब मैं रेखागणित की तेरहवीं शक्ल तक पहुंचा तो यकायक मुझे जान पड़ा कि यह तो आसान-से-आसान विषय है। जिसमें केवल बुद्धि का सीधा और सरल प्रयोग ही करना है, उसमें कठिनाई की क्या बात है? इसके बाद तो हमेशा रेखागणित मेरे लिए आसन और रोचक विषय रहा।

संस्कृत मेरे लिए रेखागणित की अपेक्षा अधिक कठिन सिद्ध हुई। रेखागणित में कुछ रटना नहीं रहता, पर संस्कृत में तो मेरी दृष्टि से अधिक काम रटने का ही था। यह भी चौथी कक्षा से चली थी। छठे दर्जे में मैं हिम्मत हार गया। संस्कृत के अध्यापक बहुत सख्त थे। उन्हें विद्यार्थियों को बहुत-सा पढ़ा देने का लोभ था। संस्कृत और फारसी के दर्जों में एक प्रकार की प्रतिद्वंद्विता सी थी। फारसी के मौलवीसाहब नरम थे। विद्यार्थी आपस में बातें किया करते कि फारसी तो बहुत सहज है और उसके अध्यापक बड़े सज्जन हैं। विद्यार्थी जितना काम कर लाते हैं उतने से ही निबाह लेते हैं। आसान सुनकर मैं भी ललचाया और एक दिन फारसी के दर्जे में जा बैठा। संस्कृत-शिक्षक को यह अखरा। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, "तुम सोचो तो कि तुम किसके लड़के हो। अपने धर्म की भाषा नहीं सीखोगे? अपनी कठिनाई मुझसे कहो। मैं तो चाहता हूं कि सभी विद्यार्थी अच्छी संस्कृत सीख लें। आगे चलने पर तो उसमे रस-ही-रस है। तुम्हें इस तरह हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। तुम फिर मेरे दर्जे में आ जाओ!" मैं शर्माया। शिक्षक के प्रेम की अवहेलना न कर सका। आज मेरी आत्मा कृष्णशंकर मास्टर की कृतज्ञ है; क्योंकि जितनी संस्कृत उस समय मैंने पढ़ी यदि उतनी भी न पढ़ी होती तो आज मैं संस्कृत शास्त्रों में जो रस ले सकता हूँ वह न ले पाता। मुझे तो संस्कृत अधिक न पढ़ सकने का पछतावा होता है, क्योंकि आगे चलकर मेरे ध्यान में यह बात आई कि किसी भी हिंदू बालक को संस्कृत के अच्छे अभ्यास से वंचित नहीं रहना चाहिए।

आज तो मैं यह मानता हूं कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षण क्रम में अपनी भाषा के सिवा राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेजी को स्थान मिलना चाहिए। इतनी भाषाओं की संख्या से डरने का कारण नहीं है। यदि भाषाएं ढंग से सिखाई जाएं और सब विषय अंग्रेजी द्वारा ही पढ़ने-समझने का बोझ हम पर न हो तो उपर्युक्त भाषाओं की शिक्षा भार रूप न होगी, बल्कि उनमें बहुत रस मिलेगा। इसके सिवा एक भाषा शास्त्रीय पद्धति से सीख लेने वाले के लिए दूसरी भाषा का ज्ञान सुलभ हो जाता है। सच पूछिए तो हिंदी, गुजराती और संस्कृत की एक भाषा में गणना की जा सकती है। उसी प्रकार फारसी और अरबी को एक माना जा सकता है। फारसी यद्यपि संस्कृत के निकट है और अरबी हिब्रू के, फिर भी दोनों इस्लाम के उदय के बाद विकसित हुई हैं। इससे दोनों में निकट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का संबंध है, उर्दू को मैंने अलग भाषा नहीं माना है, क्योंकि उसके व्याकरण का समावेश हिंदी में हो जाता है। उसके शब्द तो फारसी और अरबी के ही हैं। अच्छी उर्दू जानने वाले के लिए अरबी और फारसी जानना जरूरी है, वैसे ही जैसे अच्छी गुजराती, हिंदी, बंगला, मराठी जानने वाले के लिए संस्कृत जानना।

6 : दुःखद प्रसंग-1

मैं कह चुका हूं कि हाईस्कूल में मेरे थोड़े ही खास मित्र थे। मित्र कहे जा सकने वाले ऐसे मेरे दो मित्र भिन्न-भिन्न समयों में थे। एक मित्रता तो दूर तक नहीं निभी, यद्यपि मेरी ओर से उस मित्र का त्याग नहीं हुआ। मेरे दूसरे का साथ करने के कारण पहले ने मुझे छोड़ दिया। दूसरा साथ मेरे जीवन का दुःखद अध्याय है। यह संग बहुत वर्षों तक चला। उस मित्रता में मेरी सुधारक दृष्टि थी। पहले उस साथी की मित्रता मेरे मंझले भाई से थी। वह मेरे भाई का सहपाठी था। उसमें कई दोष थे, जिन्हें मैं देख पा रहा था; पर मैंने उसे सच्चा वफादार माना था। माताजी, बड़े भाई और मेरी धर्मपत्नी तीनों को यह संगत बुरी लगती थी। पत्नी की चेतावनी की तो मुझ-जैसा घमंडी पति कब परवा करता था। हां, माताजी की आज्ञा का उल्लंघन कर सकना मेरे लिए कठिन था। बड़े भाई की सीख भी सुननी ही थी; पर यह कहकर मैंने उन लोगों को तसल्ली करा दी, "आप लोग उसके जो दोष बताते हैं उन्हें मैं जानता हूं। आप लोगों को उसके गुणों का पता नहीं है। मुझे वह गलत रास्ते पर नहीं ले जा सकता, क्योंकि मैंने उसका साथ सिर्फ उसे सुधारने की नीयत से किया है। मेरा विश्वास है कि वह सुधर जाए तो बड़ा अच्छा आदमी निकलेगा। मेरी प्रार्थना है कि आप लोग मेरे बारे में बेफिक्र रहें।" मैं यह तो नहीं मानता कि इन बातों से उनका समाधान हो गया, पर उन्होंने मेरा विश्वास किया और मुझे अपनी राह जाने दिया।

मुझे आगे चलकर मालूम हुआ कि मेरा अनुमान सही नहीं था। सुधार करने के लिए भी आदमी को गहरे पानी में नहीं उतरना चाहिए। हम जिसका सुधार करना चाहते हों उसके साथ मित्रता नहीं चल सकती। मित्रता में अद्वैत भावना होती है। ऐसी मित्रता दुनिया में बहुत कम देखने में आती है। मित्रता समान गुणों वालों की ही शोभती और निभती है। मित्रों का एक-दूसरे पर असर पड़े बिना नहीं रह सकता। इसलिए मित्रता में सुधार की गुंजाइश बहुत थोड़ी होती है। मेरा मत है कि अंतरंग मित्रता अनिष्टकारक है, क्योंकि मनुष्य दोष को बड़ी जल्दी अपनाता है। गुण ग्रहण करने में प्रयास की आवश्यकता है। आत्मा और ईश्वर की मित्रता की चाह रखनेवाले को एकाकी रहना चाहिए, या फिर अखिल विश्व के साथ मैत्री करनी चाहिए। ये विचार ठीक हों या बेठीक, इतना सही है कि मेरा व्यक्तिगत मित्रता-संपादन का प्रयास निष्फल रहा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन दिनों इस मित्र से मेरा संबंध था उन दिनों राजकोट में 'सुधारपंथ' का बोलबाला था। अनेक हिंदू शिक्षक गुप्त रूप से मांस और मद्य का सेवन करते थे, उसी मित्र से यह बात मालूम हुई। राजकोट के अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम भी उसने बतलाये। हाईस्कूल के कुछ विद्यार्थियों के नाम भी मुझे बताये गये। मुझे आश्चर्य हुआ और दुःख भी। कारण पूछने पर यह दलील सामने आई, "मांसाहार न करने के कारण ही हम लोग निर्बल राष्ट्र हैं। अंग्रेज जो हम पर राज्य कर रहे हैं उसका कारण उनका मांसाहार ही है। मेरी देह कैसी दृढ़ है। और मैं कितना दौड़ सकता हूं यह तो तुम्हें मालूम ही है। इसका कारण भी मेरा मांसाहार ही है। मांसाहारी को फोड़े नहीं होते और हुए तो झटपट भर जाते हैं। हमारे अध्यापक मांस खाते हैं, इतने नामी-गिरामी लोग खाते हैं, ये सब क्या बिना समझे-बूझे खाते हैं। तुम्हें भी जरूर खाना चाहिए। खाकर देखो तो पता चलेगा कि तुममें कितना बल आ जाता है।"

ये सारी दलीलें कुछ एक दिन में ही सामने नहीं आ गई थीं। ऐसी दलीलें भांति-भांति के उदाहरणों से सजाकर अनेक बार सामने रखी गईं। मेरे मंझले भाई तो फिसल चुके थे। उन्होंने इन दलीलों का समर्थन किया। अपने भाई और इस मित्र की तुलना में मैं कहीं कमजोर था। उनका बदन अधिक गठीला और शारीरिक बल मुझसे बहुत अधिक था। वह साहसी थे। इस मित्र के पराक्रम के कार्य मुझे मोह लेते थे। वह चाहे जितना दौड़ सकता था और बड़ी तेजी के साथ? लंबी और ऊंची कुदान में उसे कमाल हासिल था। मार सहने की शक्ति भी उसमें वैसी ही थी। इस शक्ति का प्रदर्शन भी जब-तब मेरे सामने करता था। अपने में जिस शक्ति का अभाव होता है उसे दूसरे में देखकर मनुष्य का चकित होना स्वाभाविक है। मैं भी हुआ। आश्चर्य से मोह उत्पन्न हुआ। मुझमें दौड़ने की शक्ति नहीं के बराबर थी। मैं भी इस मित्र की भांति बलवान हो जाऊं तो कैसा अच्छा हो!

इसके सिवा मैं बड़ा डरपोक था। चोर, भूत, सांप आदि के भय मुझे घेरे ही रहते। ये डर मुझे बहुत सताते थे। रात को अकेले कहीं जाने की हिम्मत न होती थी। अंधेरे में तो कहीं नहीं जा सकता था। दीपक के बिना सोना भी नामुमकिन-सा था। इधर से भूत आ जाए, उधर से चोर आ जाए और तीसरी दिशा से सांप निकल आए तो! इसलिए रोशनी तो रहनी ही चाहिए। पास सोई हुई और किंचित् युवावस्था-प्राप्त स्त्री पर भी अपने इस भय की बात कैसे प्रकट करता? मैं जान गया था कि मुझसे वह अधिक हिम्मतवाली है, और इससे मैं लज्जित था। मेरी इन कमजोरियों का उक्त मित्र को पता था। वह मुझसे कहता- मैं तो जीते सांप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को भी हाथ से पकड़ लेता हूँ। चोर से नहीं डरता। भूत-प्रेत तो मानता ही नहीं। यह सब मांसाहार का प्रताप है, यह बात उसने मेरे मन में जमा दी।

इन्हीं दिनों नर्मद कसि का निम्मलिखित पद पाठशालाओं में गाया जाता था:

अंग्रेजी राज्य करे, देशी रहे दवाई।
देशी रहे दवाई जोने बेनां शरीर भाई।
पेलो पांच हाथ पूरो, पूरो पांचसें ने।[1]

इन सबका मेरे मन पर पूरा असर हुआ। मैं पिघला। मैं मानने लगा कि मांसाहार अच्छी चीज है, इससे मुझमें बल और साहस आएगा। यदि सारा देश मांसाहार करने लगे तो अंग्रेजों को हराया जा सकता है।

मांसाहार आरंभ करने का दिन नियत हुआ।

इस निश्चय का-इस आरंभ का-अर्थ शायद बहुतेरे पाठक न समझ पाएं। गांधी-कुटुंब वैष्णव-संप्रदायी था। माता-पिता बड़े पक्के वैष्णव थे। 'हवेली' नित्य जाते थे। अनेक मंदिर तो हमारे कुटुंब के ही कहे जा सकते हैं। इसके सिवा गुजरात में जैन संप्रदाय का बड़ा जोर था। उसका प्रभाव हर जगह, हर प्रवृत्ति में, पाया जाता है। इसलिए मांसाहार का जो विरोध, जैसा तिरस्कार गुजरात में और जैनों तथा वैष्णवों में दिखाई देता है वैसा हिंदुस्तान या सारी दुनिया में और कहीं न दिखाई देगा। मैं इन्हीं संस्कारों में पला था।

माता-पिता का मैं परम भक्त था। मैं समझता था कि उन्हें मांसाहार की बात का पता चल जाए तो वे तुरंत बेमौत मर जाएंगे। जाने या बिना जाने सत्य का सेवक तो मैं था ही। यह नहीं कह सकता कि मांसाहर करने पर माता-पिता को धोखा देना होगा, यह ज्ञान मुझे उस समय नहीं था।

ऐसी स्थिति में मांसाहार करने का निश्चय मेरे लिए बड़ा गंभीर और भयानक काम था।

पर मुझे तो सुधार करना था। मांसाहार का शौक नहीं था। स्वाद के ख्याल से मुझे मांसाहार आरंभ नहीं करना था। मुझे तो बलवान और साहसी बनना था, दूसरों से वैसा बनने को कहना था और फिर अंग्रेजों को हटाकर हिंदुस्तान को स्वतंत्र करना था। 'स्वराज्य' शब्द तो तब तक मेरे कान में नहीं पड़ा था। इस सुधार के जोश में मैं होश खो बैठा।

---

1. हिंदुस्तानी तो दबकर रहते हैं अंग्रेज राज्य करते हैं। दोनों के शरीर का मुकाबला करो। वह पांचहत्था जवान अकेला पांच सौ के लिए काफी है।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7. दुःखद प्रसंग-2

नियत दिन आया। अपनी स्थिति का पूरा-पूरा वर्णन करना कठिन है। एक ओर था सुधार का उत्साह, जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने की नवीनता और दूसरी ओर थी चोर की भांति छिपकर काम करने की शर्म। दोनों में कौन प्रधान था, यह मुझे याद नहीं है। हम लोग नदी की ओर एकांत की खोज में चले। दूर जाकर ऐसा कोना ढूंढ़ निकाला जहां कोई हमें देख न सके। वहां मैंने कभी न देखी हुई चीज-मांस-देखी! साथ में भटियारे के यहां की डबलरोटी थी। दोनों में से एक भी चीज रुच नहीं रही थी। मांस चमड़े-सा लग रहा था। निगलना अशक्य हो गया। उल्टी आने लगी। खाना छोड़ देना पड़ा।

मेरी वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। किसी तरह नींद न आती थी। सपने में ऐसा लग रहा था मानो शरीर के भीतर बकरा जिंदा हो और रो रहा हो। मैं चौंक उठता, पछताता और फिर सोचता कि मेरा तो मांसाहार किए ही छुटकारा है इसलिए हिम्मत नहीं हारनी है! मित्र भी हार माननेवाला न था। अब उसने मांस को भांति-भांति से पकाना, सजाना और उसकी बू को छिपा देना शुरू किया। नदी-किनारे के बजाय किसी बावरची से सांठ-गांठ करके गुप्त रूप से राज्य की एक अतिथिशाला में ले जाने का प्रबंध किया और वहां कुर्सी, मेज आदि सामान के प्रलोभन में मुझे फंसाया। इसका असर हुआ। रोटी से जो नफरत थी, वह हल्की पड़ गई, बकरे पर की दया दूर हो गई, और मांस का तो नहीं कह सकता; लेकिन मांसमिश्रित पदार्थों का जीभ को चस्का लग गया। यों एक साल बीता होगा और इस बीच पांच-छः बार मांसाहार का मौका मिला होगा; क्योंकि अतिथिशाला सदा नहीं मिल सकती थी और न सदा मांस की स्वादिष्ट मानी जाने वाली चीजें ही बन सकती थीं। इसके सिवा ऐसे खानों पर पैसा भी लगता था। मेरे पास झंझी कौड़ी भी न थी, इसलिए मेरी गांठ से तो कुछ निकलने वाला ही न था। इस खर्च का प्रबंध तो उक्त मित्र को ही करना पड़ता था। पैसे कहां से लाता, इसका पता मुझे आज तक नहीं लगा। वह मुझे मांस की चाट लगा देना, मुझे फंसा देना चाहता था। इसलिए खुद पैसे खर्च करता था। पर उसके पास भी कोई कारूं का खजाना थोड़े ही था। इसलिए ऐसा खाना तो कभी-कभी ही मिल सकता था।

ऐसे भोजनों के बाद घर पर खाना कठिन होता। माँ खाने को बुलाती तो 'आज भूख नहीं है, पहले का खाया पचा नहीं है', ऐसे बहाने बनाने पड़ते। ऐसा कहते हुए हर बार मेरे दिल को चोट लगती। यह झूठ, और सो भी माँ के सामने! और इसके सिवा यदि माता-पिता जान पाएं कि लड़का मांसाहारी हो गया है तब तो उन पर वज्र ही गिर जाएगा। ये विचार मेरे हृदय को कुतर रहे थे। अतः मैंने निश्चय किया कि यद्यपि मांस खाना आवश्यक है, उसका प्रचार करके हिंदुस्तान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का सुधार करना है; पर माँ-बाप से झूठ बोलना और उन्हें धोखा देना मांसाहार से भी बुरा है। इसलिए उनके जीते-जी मैं मांस नहीं खा सकता। उनके मरने के बाद स्वतंत्र होने पर खुले-खजाने खाऊंगा। तब तक मांसाहार मुल्तवी रहे। अपना यह निश्चय मैंने मित्र को सुना दिया और तबसे मांसाहार छूटा तो छूटा। माँ-बाप को कभी पता न चला कि उनके दो पुत्र मांस खा चुके हैं।

माता-पिता को धोखा न देने के शुभ विचार से मैंने मांसाहार तो छोड़ा, पर उक्त मित्र से मित्रता न छोड़ी। मैं चला था दूसरे को सुधारने और खुद गड्ढे में गिर गया और इस पतन का मुझे भान तक न रहा।

उसी संग के कारण मैं व्यभिचार में गिरने से बाल-बाल बचा। एक बार यह मित्र मुझे चकले में ले गया। वहां एक औरत के कमरे में मुझे सिखा-पढ़ाकर भेजा। मुझे उसे पैसा आदि नहीं देना था, उसका हिसाब पहले चुका दिया गया था। मेरे लिए तो गड्ढे में गिरना भर बाकी था।

मैं घर में घुस तो गया, पर जिसे भगवान उबारना चाहता है वह गिरना चाहते हुए भी पवित्र बना रह सकता है उस कमरे में जाकर मैं तो अंधा ही हो गया। मुझे बोलने का होश न रहा। लज्जा से स्तब्ध होकर मैं उस स्त्री के पास चारपाई पर बैठ गया; पर बोली न निकली। स्त्री रुष्ट हुई और मुझे दो-चार गालियां देकर दरवाजे की राह दिखाई।

मुझे उस समय तो जान पड़ा कि मेरी मर्दानगी को बट्टा लगा और जी चाहा कि धरती फट जाए तो मैं उसमें समा जाऊँ; पर इस तरह बच जाने के लिए ईश्वर का मैं सदा कृतज्ञ रहा हूं। ऐसे ही चार अवसर मेरे जीवन में और आए हैं। उनमें से अधिकतर में-अपने प्रयत्न के बिना, ही संयोगों के कारण ही मैं बच गया, यह माना जा सकता है। विशुद्ध दृष्टि से तो इन प्रसंगों में मेरा पतन हुआ ही समझना चाहिए, क्योंकि विषय-भोग की जब मैंने इच्छा की, तो उसे कर चुका; फिर भी लौकिक दृष्टि से इच्छा करके भी प्रत्यक्ष कर्म से बच जाने वाले को हम बचा हुआ मानते हैं। इन प्रसंगों में इसी रीति से और इतने ही अंशों में मैं बचा माना जा सकता हूं। इसके सिवा कुछ काम ऐसे हैं जिन्हें करने से बचना उस व्यक्ति के और उसके संपर्क में आने वालों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होता है और विचारशुद्धि होने पर उस कार्य से बच जाना वह ईश्वर का अनुग्रह मानता है। जैसे हम यह देखते हैं कि न गिरने का यत्न करते हुए भी मनुष्य गिर जाता है, वैसे ही अनेक संयोगों के कारण वह गिरना चाहते हुए बच जाता है, यह भी अनुभवसिद्ध बात है। इसमें पुरुषार्थ का कितना भाग है, कितना दैव का और किन नियमों के अधीन होकर मनुष्य अंत में गिरता या बचता है, ये प्रश्न गूढ़ हैं। इनका निर्णय अभी तक नहीं हुआ है और अंतिम निर्णय कभी हो सकेगा या नहीं, यह कहना कठिन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त मित्र की मित्रता की अनिष्टता का ज्ञान मुझे अब भी नहीं हुआ था। उसके पहले तो अभी मुझे और भी कटु अनुभव होने बाकी थे। मेरी आंखें तो तब खुलीं जब मैंने उसमें वे दोष प्रत्यक्ष देखे जिनसे मैं उसे अलिप्त मानता था। पर मैं यथासंभव कालक्रम से अपने अनुभव लिख रहा हूं इसलिए दूसरे अनुभव आगे आएंगे।

इसी समय की एक बात को कह देना आवश्यक जान पड़ता है। हम दंपती के बीच होने वाले मतभेद और कलह का कारण यह मित्रता भी थी। मैं पहले कह आया हूं कि मैं जितना प्रेमी पति था उतना ही वहमी। मेरा शक बढ़ानेवाली यह मित्रता ही थी, क्योंकि मित्र की सच्चाई में मुझे तनिक भी संदेह न था। इस मित्र की बात मानकर मैंने अपनी धर्मपत्नी को कितने ही कष्ट दिए। उस हिंसा के लिए मैंने अपने-आपको कभी क्षमा नहीं किया। ऐसे दुःख हिंदू-स्त्री ही सह सकती है और इसलिए मैंने सदा स्त्री को सहनशीलता की मूर्ति माना है। नौकर पर झूठा शक किया जाए तो वह नौकरी छोड़ देता है, पुत्र पर किया जाए तो वह पितृगृह त्याग देता है, मित्रों में परस्पर संदेह उत्पन्न हो तो मित्रता टूट जाती है, स्त्री को पति पर संदेह हो तो उसे मन-ही मन कुढ़ते रहना होगा; पर यदि पति को पत्नी पर संदेह हो जाए तो उस बेचारी का तो मानो दैव ही रूठ गया। वह कहां जाए? उच्च माने जाने वाले वर्ण की हिंदू-स्त्री अदालत में जाकर तलाक भी नहीं दे सकती। उसके बारे में ऐसा एकतरफा न्याय रखा गया है। मैंने भी वही न्याय किया, इसका दुःख मेरे मन से कभी जाने का नहीं। इस संशय-वृत्ति का सर्वथा नाश तो मुझे अहिंसा का सूक्ष्म ज्ञान होने पर ही हुआ, अर्थात जब मैंने ब्रह्मचर्य की महिमा समझी और यह जाना कि पत्नी पति की दासी नहीं, बल्कि उसकी सहचारिणी, सहधर्मिणी है, दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख में बराबर के हिस्सेदार हैं, और जितनी स्वतंत्रता भला-बुरा करने की पति को है उतनी ही स्त्री को है। इस संशयकाल की याद आने पर तो मुझे अपनी मूर्खता और विषयांध निर्दयता पर क्रोध आता है और मित्रता-विषयक अपने मोह पर दया।

8 : चोरी और प्रायश्चित्त

मांसाहार-काल के और उसके पहले के भी कुछ दोषों का वर्णन करना अभी बाकी है। वे विवाह के पूर्व के या उसके कुछ ही बाद के हैं।

अपने एक रिश्तेदार की सोहबत में मुझे सिगरेट पीने का शौक हुआ। हमारे पास पैसे नहीं थे। सिगरेट पीने में कोई फायदा या उसकी गंध में कोई मजा तो हम दोनों में से किसी को भी मालूम न होता था; पर हमें धुंआ उड़ाने में ही कुछ मजा आता था। मेरे चाचा को इसकी आदत थी। उन्हें तथा औरों को धुंआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उड़ाते देखकर हम भी कश खींचने का शौक लगा। पैसा पास न होने के कारण हमने चाचा के पीकर फेंके हुए सिगरेट के टुकड़े चुराना शुरू किया।

पर टुकड़े हर वक्त तो नहीं मिल सकते थे और उनसे धुंआं भी ज्यादा न निकलता था। अतः नौकर की जेब में पड़े दो-चार पैसों में से हम बीच-बीच में एक-आध पैसा चुराने और उससे सिगरेट खरीदने लगे। पर उन्हें रखें कहां, यह समस्या सामने आई। यह भी समझता था कि बड़ों के सामने सिगरेट नहीं पीनी चाहिए। ज्यों-ज्यों दो-चार धेले-पैसे चुराकर कुछ हफ्ते काम चलाया। इस बीच सुना कि एक पौधा (उसका नाम भूल गया हूं) होता है, जिसका डंठल सिगरेट की भांति जलता है और पीया जा सकता है। हमने उसे लाकर धुंआं उड़ाना शुरू किया।

पर हमें संतोष न हुआ। अपनी पराधीनता हमें खलने लगी। बड़ों की आज्ञा बिना कुछ भी न हो सके, यह विशेष कष्टदायक हो गया। हम ऊब गए और आत्महत्या करने की ठान ली।

पर आत्महत्या करें कैसे? जहर कहां से लाएं? हमने सुना कि धतूरे के बीज खाने से मृत्यु होती है। हम जंगल में जाकर बीज ले आए। खाने के लिए शाम का समय निकाला। केदारजी के मंदिर की दीपमाला में घी चढ़ाया, दर्शन किये और फिर एकांत ढूंढ़ा। पर जहर खाने की हिम्मत न हुई। तत्काल मृत्यु न हो तो? मरने से क्या लाभ होगा? पराधीनता भोग ही क्यों न लें? फिर भी दो-चार बीज खाये। अधिक खाने की हिम्मत ही न पड़ी। हम दोनों मृत्यु से डरे। निश्चय किया कि चलकर रामजी के मंदिर में दर्शन करें और चुपचाप बैठें, आत्महत्या की बात मन से निकाल दें। मैंने समझ लिया कि आत्घात का विचार करना सहज है, आत्घात करना सहज नहीं। इससे जब कोई आत्महत्या करने की धमकी देता है तो उसका मुझ पर बहुत कम असर होता है, या कह सकता हूं कि बिल्कुल नहीं होता।

इस आत्महत्या के निश्चय का एक परिणाम यह हुआ कि हम दोनों की जूठी सिगरेट चुराकर पीने और साथ नौकर के पैसे चुराने तथा उससे सिगरेट खरीदकर पीने की आदत ही जाती रही। बड़े होने पर मुझे कभी सिगरेट पीने की इच्छा ही नहीं हुई और सदैव मेरी यह धारणा रही कि यह आदत जंगली, गंदी और हानिकारक है। सिगरेट-बीड़ी का इतना जबरदस्त शौक दुनिया में क्यों है, इसे मैं कभी समझ ही न सका। जिस रेल के डिब्बे में बीड़ी-सिगरेट का अधिक धुंआं उड़ता है वहां बैठना मेरे लिए कठिन हो जाता है, उस धुंएं से मेरा दम घुटने लगता है।

सिगरेट के टुकड़े और उसके लिए नौकर के पैसे चुराने के अपराध की अपेक्षा एक दूसरी चोरी का अपराध जो मेरे हाथों हुआ उसे मैं ज्यादा बड़ा समझता हूं। सिगरेट के दोष के समय तो उम्र बारह-तेरह बरस की रही होगी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
शायद इससे भी कम। पर दूसरी चोरी के समय पंद्रह साल का रहा हूंगा। यह चोरी मेरे मांसाहारी भाई ने सोने के कड़े के टुकड़े की की थी। उन्होंने छोटा-सा कोई पच्चीस रूपये का कर्ज कर लिया था। हम दोनों भाई इसे चुकाने के चक्कर में थे। भाई के हाथ में सोने का ठोस कड़ा था। उसमें से तोलाभर सोना काट लेना कठिन न था।

कड़ा कटा। कर्ज पट गया; पर मेरे लिए बात असह्य हो गई। इसके बाद मैंने कभी चोरी न करने का निश्चय किया। यह भी सोचा कि पिताजी के सामने इसे कबूल लेना चाहिए; पर जबान न खुलती थी। पिताजी मुझे पीटेंगे, इसका डर तो नहीं था। उन्होंने किसी दिन हममें से किसी भी भाई को मारा हो यह याद नहीं। पर स्वयं क्लेश करेंगे, कहीं अपना सिर पीट लें तो? पर मन ने कहा यह खतरा लेकर भी दोष स्वीकार करना ही उचित है, इसके बिना शुद्धि नहीं होने की।

अंत में मैंने पत्र लिखकर दोष स्वीकार कर लेने और माफी मांगने का निश्चय किया। मैंने पत्र लिखकर अपने हाथ से उन्हें दिया। पत्र में सब दोष स्वीकार किया और उसका दंड मांगा। यह विनती की कि मेरे अपराध के लिए वह अपने को कष्ट में न डालें और प्रतिज्ञा की कि भविष्य में फिर ऐसा अपराध नहीं करूंगा।

मैंने कांपते हाथों यह पत्र पिताजी के हाथ में दिया। मैं उनके तख्त के सामने बैठ गया। इन दिनों वह भगंदर रोग से पीड़ित थे। इससे बिस्तर पर ही पड़े रहते थे। खाट के बदले तख्त काम में लाते थे।

उन्होंने पत्र पढ़ा। आंखों से मोती की बूंदें टपकीं। पत्र भीग गया। उन्होंने क्षणभर आंखें मूंद लीं, पत्र फाड़ डाला, और खुद पढ़ने को बैठे हुए थे सो पुनः लेट गए।

मैं भी रोया। पिताजी की पीड़ा का मैं अनुभव कर सका। मैं चित्रकार होता तो आज भी उस दृश्य की पूरी तस्वीर खींच सकता था। आज भी इस तरह वह मेरी आंखों के सामने नाच रहा है।

इन मुक्ताबिंदुओं के प्रेमबाण ने मुझे वेध दिया। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेम को तो अनुभवी ही जान सकता है:

रामबाण वाग्यां रे होय ते जाणे[1]

मेरे लिए यह अहिंसा का पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मैं उसमें सिवा पितृप्रेम के और कुछ न देख सका था, पर आज मैं उसे शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूं। ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण कर लेने पर उसके स्पर्श से कौन अछूता रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति की नाप-तोल करना अशक्य है।

---

1. राम का बाण जिसे लगा हो वही जान सकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ऐसी शांति देना पिताजी के स्वभाव के प्रतिकूल था। मैंने सोचा था कि वह क्रुद्ध होंगे, खरी-खोटी सुनाएंगे, शायद अपना सिर पीट लेंगे। मैं समझता हूं कि उनके ऐसी अपार शांति रख सकने का कारण मेरा दोष को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लेना था। अधिकारी के सामने जो आदमी स्वेच्छापूर्वक खुले दिल से और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा के साथ अपना दोष स्वीकार कर लेता है वह शुद्धतम प्रायश्चित करता है। मैं जानता हूं कि मेरे कबूल कर लेने से पिताजी मेरे विषय में निर्भय हो गए और उनका महान प्रेम और बढ़ गया।

9 : पिताजी की मृत्यु और मेरी नालायकी

उस समय मेरा सोलहवां वर्ष था। भगंदर की बीमारी से पिताजी के एकदम खाट पकड़ लेने की बात कह चुका हूं। उनकी सेवा में माताजी, घर का एक पुराना नौकर और मैं-ये तीन जने अधिकतर रहते थे। मेरा काम नर्स का -शुश्रूषा करने का था। उनका घाव धोना, उस पर मलहम लगाना, दवा पिलाना और दवा को घर पर तैयार करना, मेरा खास काम था। रोज रात को उनके पैर दबाना और अनुज्ञा मिलने या उन्हें नींद आ जाने पर मेरा सोने जाना-यह मेरा नियम था। मुझे यह सेवा बहुत ही प्रिय थी। याद नहीं कि किसी दिन मैंने उसमें चूक की हो। ये दिन हाईस्कूल के तो थे ही, अतः खाने-पीने के बाद बचा हुआ मेरा समय स्कूल में अथवा पिताजी की सेवा में ही लगता था। उनकी आज्ञा मिलती और उनकी तबीयत ठीक दिखाई देती तो शाम को टहलने जाता था।

इसी साल पत्नी गर्भवती हुई। यह मेरे लिए दोहरी लज्जा की बात थी। इसे मैं आज समझ सकता हूं। एक तो यह कि विद्याभ्यास का काल होते हुए भी मैंने संयम न रखा; दूसरी यह कि मैं विद्याभ्यास के धर्म को समझता था और उससे भी अधिक माता-पिता की भक्ति के धर्म को समझता था-वह यहां तक कि इस विषय में बचपन से ही श्रवण मेरा आदर्श हो रहा था-फिर भी मुझ पर विषय-वासना सवार हो सकती थी! यहां तक कि रोज रात को इधर तो पिताजी के पांव दबाता रहता, उधर मन सोने के कमरे की ओर दौड़ा करता और सो भी ऐसे समय जब स्त्री का संग धर्मशास्त्र, वैद्यकशास्त्र और व्यवहार-शास्त्र तीनों के अनुसार त्याज्य था। सेवा से छुट्टी पाने पर मुझे प्रसन्नता होती और पिताजी के पांव छूकर सीधा शयनगृह में पहुंच जाता।

पिताजी की बीमारी बढ़ती जा रही थी। वैद्यों ने अपने लेप आजमाये, हकीमों ने मरहम-पट्टी, मामूली हज्जाम वगैरह ने घरेलू दवाइयां। अंग्रेज डॉक्टर ने भी अपनी अक्ल लड़ाई। उसने बतलाया कि नश्तर के सिवा दूसरा इलाज नहीं है। कुटुंब के मित्रवैद्य ने रोका। इस ढलती उम्र में पिताजी के नश्तर लगाना उन्होंने नापसंद किया। अनेक प्रकार की दवाइयों की बोतलें जो मंगाई गई थीं व्यर्थ गई

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और नश्तर न लगा। वैद्यराज होशियार थे, विख्यात थे। मेरा ख्याल है कि उन्होंने नश्तर लगाने दिया होता तो घाव भरने में अड़चन न होती। नश्तर बंबई के उस समय के एक विख्यात सर्जन लगाने वाले थे। पर अंत निकट आ गया था इसलिए ठीक कदम कैसे उठता? पिताजी बंबई से बिना नश्तर लगवाए तथा तदर्थ खरीदा हुआ सामान साथ लिए वापस लौटे। उन्होंने अधिक जीने की आशा छोड़ दी थी। कमजोरी बढ़ती गई और सब काम बिस्तर पर ही होने की नौबत आ गई। पर उन्होंने अंत तक इसका विरोध ही किया और उठने-बैठने का कष्ट सहने का आग्रह करते रहे। वैष्णव धर्म का यह कठोर शासन है। बाह्य शुद्धि अति आवश्यक है, पर पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र ने हमें सिखाया है कि मल-त्याग और स्नानादि की सारी क्रियाएं बिछौने में पड़े-पड़े ही पूरी सफाई से हो सकती हैं और रोगी को तनिक भी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। बिस्तर जब देखो तब साफ ही मिलेगा। इस तरह की सफाई को मैं तो वैष्णव धर्म का नाम ही दूंगा; पर इस समय भी पिताजी का स्नानादि के लिए बिछौने से उतरने का आग्रह देखकर मैं तो आश्चर्यचकित ही रह जाता और मन-ही-मन उनकी स्तुति किया करता।

अवसान की काल-रात्रि निकट आ गई। उस समय मेरे चाचाजी राजकोट में थे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि पिताजी की बीमारी बढ़ती जाने के समाचार पाकर वह आए थे। दोनों भाइयों में गाढ़ा प्रेमभाव था। चाचाजी सारे दिन पिताजी की खाट के पास ही बैठे रहते और हम सबको सोने की इजाजत देकर खुद वहीं पड़ जाते। किसी को यह आशंका तो थी ही नहीं कि यही उनकी आखिरी रात होगी, यों तो डर हमेशा ही बना रहता था। रात के साढ़े दस या ग्यारह बजे होंगे। मैं पैर दबा रहा था। चाचाजी ने मुझसे कहा, "तू जा, अब मैं बैठूंगा।" मैं खुश हुआ और सीधा शयनगृह में पहुंचा। स्त्री बेचारी तो गहरी नींद में थी; पर मैं कब सोने देता। जगाया। पांच-सात मिनट गुजरे होंगे कि ऊपर मैं जिस नौकर का जिक्र कर चुका हूं उसने किवाड़ खटखटाये। मैं धक-से रह गया। चौंक उठा। नौकर बोला, "उठो बाबूजी ज़्यादा बीमार हैं।" ज्यादा बीमार तो थे ही, यह मैं जानता था। इसलिए इस 'ज्यादा बीमार का' खास मतलब मैं समझ गया। बिछौने से एकदम कूद पड़ा।

"ठीक बताओ, क्या हुआ?"

जवाब मिला,"पिताजी गुजर गये।"

अब मेरे पछताने से क्या होता था? मैं बहुत शर्माया, बहुत दुःखी हुआ। पिताजी के क़मरे में दौड़ा गया। सोचा कि मैं विषयांध न होता तो इस आखिरी घड़ी में वियोग मेरे नसीब में न आता और मैं पिताजी की अंतिम घड़ी में उनके पैर दबाता होता। अब तो मुझे चाचा जी के मुंह से ही सुनना था कि "बापू तो हमें छोड़कर चल दिए।" अपने बड़े भाई के परम भक्त चाचा ने अंतिम सेवा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का सम्मान प्राप्त किया। पिताजी ने अपने अवसान का संकेत मिल चुका था। उन्होंने इशारे से लिखने का सामान मांगा। कागज पर उन्होंने लिखा, "तैयारी की जाए।" यह लिखने के बाद अपनी बांह पर बंधा ताबीज तोड़कर फेंक दिया और सोने की कंठी को भी तोड़कर अलग कर दिया। क्षणभर में आत्मा उड़ गई।

अपनी जिस शर्म का संकेत मैंने पिछले प्रकरण में किया है वह यही है-सेवा के समय भी विषय की इच्छा। इस काले धब्बे को मैं आज तक न धो सका, भूल न सका और सदा यह मानता रहा हूं कि यद्यपि माता-पिता के प्रति मेरी भक्ति असीम थी, उसके लिए मैं सब-कुछ छोड़ सकता था, पर उस सेवा के समय भी मेरा मन विषय को नहीं छोड़ सकता था, यह उस सेवा में अक्षम्य त्रुटि थी। इसी से मैंने अपने को एक पत्नीव्रत का पालक मानते हुए भी विषयांध माना है। इससे छूटने में बहुत समय लगा और छूटने के पहले बहुत धर्मसंकट भी सहने पड़े।

अपनी इस दोहरी शर्म के प्रकरण को पूरा करने के पहले यह भी कह देना चाहता हूं कि पत्नी को जो बच्चा पैदा हुआ वह दुनिया में दो-चार दिन ही रहकर चल बसा। दूसरा परिणाम हो भी क्या सकता था? जो माता-पिता या बाल -दंपती चेतना चाहें वे इस दृष्टांत से सबक लें।

10 : धर्म की झांकी

छठे-सातवें से शुरू करके सोलह साल का होने तक पढ़ा, पर पाठशाला में कही भी धर्मशिक्षा न मिली। कहना चाहिए कि जो वस्तु शिक्षकों से अनायास ही मिलनी चाहिए थी वह न मिली, पर वातावरण से कुछ-न-कुछ तो मिलती ही रही। यहां धर्म का उदार अर्थ लेना चाहिए। धर्म अर्थात आत्मबोध, आत्मज्ञान।

वैष्णव-संप्रदाय में जन्म होने के कारण मुझे हवेली जाने का मौका अक्सर मिला करता था; पर उसके लिए मेरे मन में श्रद्धा न उपजी। मंदिर का वैभव मुझे न रुचा। वहां चलने वाली अनीति की कथाएं सुनकर उनसे मन हट गया। वहां से मुझे कुछ न मिला।

पर मंदिर से न मिलने वाली चीज दाई से मिली। वह कुटुंब की पुरानी नौकरानी थी। उसका प्रेम मुझे आज भी याद है। पहले कह आया हूं कि मैं भूतप्रेत आदि से डरता था। रंभा ने मुझे बताया कि इसकी दवा रामनाम है। मुझे तो रामनाम की अपेक्षा रंभा पर अधिक श्रद्धा थी, इसलिए मैंने बचपन में भूत-प्रेत के भय से बचने को रामनाम का जप आरंभ किया। वह अधिक दिन न चला। पर बचपन में बोया हुआ बीज व्यर्थ नहीं गया। आज मेरे लिए रामनाम अमोघ शक्ति है, उसका कारण मैं रंभाबाई के बोये बीज को मानता हूं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बीच मेरे एक चचेरे भाई ने, जो रामायण के भक्त थे, हम दोनों भाइयों के लिए रामरक्षास्तोत्र का पाठ सीखने का प्रबंध कर दिया। हमने उसे कंठ कर लिया और प्रातःकाल स्नान के बाद नित्य पाठ का नियम बनाया। पोरबंदर में रहने तक तो यह निभा, राजकोट के वातारण में जाता रहा। इस क्रिया में भी विशेष श्रद्धा नहीं थी। उक्त बड़े भाई के प्रति आदर और कुछ रामरक्षास्तोत्र को शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ने के अभिमान के कारण उसका पाठ चलता रहा था।

पर जिस चीज का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा वह था रामायण का पारायण। पिताजी की बीमारी का कुछ काल पोरबंदर में बीता था। यहां वह रामजी के मंदिर में नित्य रात को रामायण सुना करते थे। सुनाने वाले थे रामचंद्रजी के एक परम भक्त-बीलेश्वर के लाधा महाराज। उनके विषय में कहा जाता था कि उन्हें कोढ़ हो गया था। उसकी दवा करने के बदले उन्होंने बीलेश्वर के बिल्वपत्र, जो महादेवजी पर से उतरते थे, कोढ़वाले अंग पर बांधे और केवल रामनाम का जप चलाया। इससे उनका कोढ़ जड़ से जाता रहा। यह बात सच हो या न हो, हम सुननेवालों ने उसे सच माना। यह भी सही है कि लाधा महाराज ने जब कथा आरंभ की थी तब उनका शरीर बिलकुल निरोग था। लाधा महाराज का कंठ मधुर था। वह दोहे-चौपाई गाकर उनका मतलब समझाते थे। स्वयं उसके रस में लीन हो जाते थे और श्रोताओं को भी लीन कर देते थे मेरी अवस्था इस समय कोई तेरह साल की रही होगी, पर यह याद है कि मुझे उनकी कथा में खूब रस मिलता था। यह रामायण-श्रवण रामायण पर मेरे आत्यंतिक प्रेम की बुनियाद है। मैं आज तुलसीदास की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूं।

कुछ महीने बाद हम राजकोट आए। वहां ऐसी कथा का प्रबंध नहीं था। अलबत्ता एकादशी को भागवत की कथा हुआ करती थी। मैं उसमें कभी-कभी बैठता था, पर कथावाचक उसमें रस न उपजा सके। आज मैं देखता हूं कि भागवत ऐसा ग्रंथ है कि जिसे पढ़कर धर्मरस उत्पन्न किया जा सकता है। मैंने तो उसे गुजराती मे बड़े रस के साथ पढ़ा है। पर मेरे इक्कीस दिनों के उपवास में जब भारतभूषण पंडित मदनमोहन मालवीयजी के श्रीमुख से मूल संस्कृत के कितने ही अंश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तब मुझे मालूम हुआ कि बचपन में उन जैसे भगवद्भक्त के मुंह से भागवत सुना होता तो उस पर भी मेरी गाढ़ी प्रीति बचपन में ही जम जाती। उस वय में पड़े शुभाशुभ संस्कारों की जड़ बड़ी गहराई तक पहुंच जाती है; इसे मैं खूब अनुभव करता हूं और इस कारण कितने ही उत्तम ग्रंथों के सुनने का सौभाग्य मुझे उस उम्र में प्राप्त न होना आज खलता है।

राजकोट में मुझे अनायास सब संप्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा मिली। हिंदूधर्म के प्रत्येक संप्रदाय के प्रति आदरभाव रखना सीखा, क्योंकि माता-पिता हवेली जाते, शिवालय जाते और हम भाइयों को भी ले जाते या भेजा करते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके सिवा पिताजी के पास जैन धर्माचार्यों में से कोई-न-कोई सदा आते रहते। पिताजी उन्हें भिक्षा देकर सत्कार करते थे। वह पिताजी से धर्म-संबंधी तथा व्यावहारिक चर्चा किया करते थे। इसके सिवा पिताजी के मुसलमान और पारसी मित्र भी थे जो अपने-अपने धर्म के बारे में चर्चा किया करते और पिताजी उनकी बातें आदर और अक्सर रस लेकर सुनते थे। इन चर्चाओं के समय 'नर्स' होने के कारण मैं प्रायः उपस्थित रहता था। इस सारे वातावरण का असर मेरे ऊपर यह हुआ कि सब धर्मों के प्रति मेरे मन में समभाव उत्पन्न हो गया।

इसमें केवल ईसाई-धर्म अपवाद था। उसके प्रति कुछ अरुचि उत्पन्न हुई। उन दिनों हाईस्कूल के कोने पर कोई ईसाई सज्जन व्याख्यान दिया करते थे। वह हिंदू देवताओं की और हिंदू धर्मियों की निन्दा किया करते थे। यह मुझे असह्य लगा। मैं एकाध बार ही उनका व्याख्यान सुनने को खड़ा हुआ होऊंगा।, पर दुबारा वहां खड़े होने को जी ही न चाहा। इन्हीं दिनों एक नामी हिंदू के ईसाई होने की बात सुनी। गांव में यह चर्चा थी कि उसे ईसाई धर्म में प्रवेश कराते समय गोमांस खिलाया गया और शराब पिलाई गई। उसकी पोशाक भी बदलवा दी गई और वह भाई क्रिस्तान होने के बाद, कोट, पतलून और टोप पहनने लगा। ये बातें मुझे चुभीं। मन ने कहा कि जिसके लिए गोमांस खाना पड़े, शराब पीनी पड़े और अपना पहनावा बदलना पड़े, वह धर्म कैसे माना जा सकता है? इसके सिवा यह भी सुना कि जो भाई ईसाई हो गये हैं वह अपने पूर्वजों के धर्म की, रीति-रिवाज और देश की निन्दा करने लगे हैं। इन सब बातों से मेरे मन में ईसाई धर्म के प्रति अरुचि पैदा हो गई।

इस प्रकार मेरे मन में अन्य धर्मों के प्रति समभाव तो आया, पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि मुझमें ईश्वर के प्रति कुछ आस्था थी। इसी समय पिताजी की पुस्तकों में मुझे मनु स्मृति का उलथा मिला। उसमें जगत की उत्पत्ति आदि की बातें पढ़ी। उन पर श्रद्धा नहीं जमी, उलटे कुछ नास्तिकता आई। मेरे दूसरे चाचा के लड़के की, जो अभी जीवित हैं, बुद्धि पर मुझे विश्वास था। उनसे मैंने अपनी शंकाएं कहीं; पर वह मेरा समाधान न कर सके। उन्होंने उत्तर दिया-"बड़े होने पर तुम स्वयं इन प्रश्नों को हल कर लोगे। बालकों को ऐसे प्रश्न न करने चाहिए।" मैं चुप रहा। मन को शांति न हुई मनु स्मृति के खाद्याखाद्य तथा अन्य प्रकरणों में भी मैंने प्रचलित प्रथा का विरोध पाया। इस शंका का उत्तर भी लगभग वैसा ही मिला। मैंने यह कहकर मन को समझा लिया कि किसी दिन बुद्धि खुलेगी तब अधिक पढ़ूंगा और समझूंगा।

मनु स्मृति के पढ़ने से मुझे उस समय अहिंसा की शिक्षा तो नहीं ही मिली। मांसाहार की बात कह चुका हूं। उसे तो मनुस्मृति का समर्थन मिला। सर्पादि और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
खटमल आदि का वध नीतियुक्त भी लगा। समय धर्म समझकर खटमल आदि के मारने का मुझे स्मरण है।

पर एक बात ने मन में जड़ जमा ली- यह संसार नीति पर टिका हुआ है। नीतिमात्र का समावेश सत्य में है। सत्य की खोज तो करनी ही है। दिन-दिन सत्य की महिमा मेरी निगाह में बढ़ती गई। सत्य की व्याख्या विस्तार पाती गई और अब भी पाती जा रही है।

नीति-विषयक एक छप्पय ने भी दिल में घर कर लिया। अपकार का बदला अपकार नहीं; बल्कि उपकार ही हो सकता है, यह बात जीवन सूत्र बन गई। उसने मेरे मन पर राज करना आरंभ कर दिया। अपकारी का भला चाहना और करना, इसका अनुरागी बन गया। उसके अगणित प्रयोग किए। वह चमत्कारी छप्पय यह है:

पाणी आपने पाय, भलुं भोजन तो दीजे;
आवी नमावे शीश, दंडवत कोडे कीजे।
आपण घासे दाम, काम महोरे नुं करीए;
आप उगारे प्राण, ते तणा दुःखमां मरीए।
गुण केडे तो गुण दश गणो, मन, वाचा, कर्मे करी;
अवगुण केडे जे गुण करे, ते जगमां जी-त्यो सही।'

11 : विलायत की तैयारी

सन् 1887 में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की। देश की और वैसे ही गांधी कुटुंब की भी गरीबी का यह हाल था कि अहमदाबाद और बम्बई ये दो परीक्षा केन्द्र होने पर उस स्थिति का काठियावाड़ी नजदीक और सस्ते अहमदाबाद को पसंद करता। मैंने भी यही किया। राजकोट से अहमदाबाद का अकेले किया हुआ यह मेरा पहला सफर था।

बड़ों की इच्छा थी कि पास होने पर कॉलेज में जाकर आगे पढ़ूं। कॉलेज बंबई में भी था और भावनगर में भी। भावनगर का खर्च कम था। इसलिए वहां के शामलदास कॉलेज में भर्ती होना निश्चित हुआ। वहां मैं कुछ समझ न पाता

---

1. जल प्यावत जो, भला उसे भोजन तो दीजै।
आय नवावे शीश, दंडवत वाको कीजै।
पाई का उपकार किये, मोहर का करिये,
प्रान उबारै जो, वाके दुःख पहले मरिये।
गुन के बदले दस गुनो, कीजै मन-वच कर्म से;
अवगुन करते गुण करे, सोई जीतै जग धर्म से।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
था, सब कुछ कठिन लगता था। अध्यापक के व्याख्यानों में रस न आता था, न वे समझ में आते थे। इसमें दोष अध्यापकों का नहीं, मेरी कचाई का ही था। उस समय के शामलदास कॉलेज के अध्यापक तो प्रथम श्रेणी के समझे जाते थे। पहला सत्र (टर्म) पूरा करके घर आया।

कुटुंब के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान् व्यवहार-कुशल ब्राह्मण मावजी दवे थे। उन्होंने पिताजी के स्वर्गवास के बाद भी हमारे साथ अपना संबंध बनाये रखा। वह इस छुट्टी में हमारे यहां आए। माताजी और बड़े भाई से बातों के सिलसिले में मेरी पढ़ाई के बारे में पूछताछ की। मैं शामलदास कॉलेज में पढ़ रहा हूं यह सुनकर बोले, "जमाना बदल गया। तुम लोगों में से अगर कोई कबा गांधी की गद्दी लेना चाहे तो वह बिना पढ़ाई के नहीं मिलने की। यह लड़का अभी पढ़ता है। अतः गद्दी संभालने का भार इसी पर डालना चाहिए। इसे अभी तो चार-पांच साल बी.ए. करने में लगेंगे और इतना वक्त लगाकर भी पचास-साठ रुपये की नौकरी मिलेगी, दीवानगिरी नहीं मिलेगी। इसके बाद मेरे लड़के की तरह वकालत पास कराई जाए तो कुछ साल और लग जाएंगे और तब तक तो दीवान पद के लिए कितने ही वकील भी तैयार मिलेंगे। तुम लोगों को इसे विलायत भेजना चाहिए। केवलराम (मावजी दवे के लड़के का नाम) कहता है कि वहां पढ़ाई आसान है। तीन बरस में पढ़कर वापस आ जाएगा। खर्च भी चार-पांच हजार से अधिक न लगेगा। देखो न, वह जो नया बैरिस्टर आया है, कैसी शान से रहता है। वह दीवानगिरी चाहे तो आज पा सकता है। मेरी सलाह तो यह है कि मोहनदास को तुम लोग इसी साल विलायत भेज दो। केवलराम के विलायत में बहुत-से दोस्त हैं। उनके नाम वह सिफारिशी चिट्ठियां लिख देगा, फिर इसे वहां कोई कठिनाई न होगी।"

जोशीजी ने (हम लोग मावजी दवे को इसी नाम से पुकारते थे) इस भाव से मेरी ओर देखकर पूछा, मानो उनकी सलाह मान ली जाने के संबंध में उन्हें कोई शंका ही न हो।

"क्यों तुम्हें विलायत जाना पसंद है या यहीं पढ़ते रहना?"

मुझे तो जो भाता था सोई बैद ने बताया! मैं कॉलेज की कठिनाइयों से डरा हुआ तो था ही। मैंने कहा, "मुझे विलायत भेजा जाए तो बहुत अच्छा है। कॉलेज में झट-पट पास होता जाऊं ऐसा तो नहीं दिखाई देता; पर क्या मैं डॉक्टरी पढ़ने नहीं भेजा जा सकता?"

मेरे भाई बीच में ही बोल उठे:

"यह तो पिताजी को नहीं रुचता था। जब कभी तुम्हारी बातें करते तो कहा करते थे कि हम वैष्णवों को हाड़-मांस नोचने को काम नहीं करना चाहिए। पिताजी का विचार तो तुम्हें वकील बनाने का था।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जोशीजी ने इसका समर्थन किया:

"मुझे गांधीजी की तरह डॉक्टरी पेशे से नफरत नहीं है। हमारे शास्त्रों ने इस पेशे के बुरा नहीं बताया है; पर डॉक्टर बनकर तुम दीवान नहीं बन सकोगे। मुझे तो तुम्हारे लिए दीवानगिरी या इससे भी बड़ा पद चाहिए तभी तुम्हारे इतने बड़े कुटुंब का निर्वाह हो सकेगा। जमाना दिन-दिन बदलता और कठिन होता जा रहा है। अतः बुद्धिमानी बैरिस्टर होने में ही है।"

माताजी की ओर फिरकर बोले, "आज तो मैं जा रहा हूं। मेरी बातों पर विचार करके देखिएगा। दुबारा आने पर तैयारी का समाचार सुनने की आशा रखता हूं। कुछ अड़चन हो तब मुझसे कहिएगा।"

जोशीजी चले गए। मैं हवाई किला बनाने में लग गया।

बड़े भाई उलझन में पड़े। पैसे का क्या प्रबंध हो? फिर मुझ-जैसे नवयुवक को इतनी दूर कैसे भेजा जाए?

माताजी को कुछ न सूझा। उन्हें वियोग की बात ही न रुची; पर पहले तो उन्होंने यही कहा, "अपने कुटुंब में अब तो चाचाजी ही बड़े हैं। अतः सबसे पहले उनसे पूछना चाहिए। वह अनुमति दें तो फिर सोचा जाएगा।"

बड़े भाई को दूसरी बात सूझी, "पोरबंदर राज्य पर अपना हक है। लेलीसाहब वहां एडमिनिस्ट्रेटर हैं। हमारे कुटुंब के बारे में उनका खयाल अच्छा है। चाचाजी पर उनकी खास मेहरबानी है। वह शायद राज्य की ओर से तुम्हें थोड़ी-बहुत मदद भी दे दें।"

मुझे यह सारी बात पसंद आई। मैं पोरबंदर जाने को तैयार हो गया। उस समय रेल नहीं थी, बैलगाड़ी से जाना था। पांच दिन का रास्ता था। अपने डरपोक होने की बात तो कह ही चुका हूं; पर इस मौके पर मेरा डरपोकपन चला गया। विलायत जाने की इच्छा मेरे सिर पर सवार हो गई। मैंने धोराजी तक के लिए बैलगाड़ी की। धोराजी से एक दिन पहले पहुंचने के खयाल से ऊंट किया। ऊंट की सवारी का यह पहला अनुभव था।

पोरबंदर पहुंचा। चाचाजी को साष्टांग प्रणाम किया। सब बातें सुनाईं। उन्होंने सोचकर जवाब दिया,

"मुझे मालूम नहीं कि विलायत जाकर हम धर्म बचा सकते हैं या नहीं। जो सब बातें सुनता हूं उनसे तो मुझे शंका ही होती है। देखों न, बड़े बैरिस्टरों से जब मुझे मिलने का काम पड़ता है तब मैं उनके और साहबों के रहन-सहन में कोई फर्क नहीं पाता। उन्हें खाने-पीने का कोई बराव नहीं होता। सिगार तो मुंह से छूटता ही नहीं। पहनावा भी देखो तो नंगा। यह सब अपने कुटुंब को फबेगा नहीं; पर मैं तुम्हारे साहस में विघ्न डालना नहीं चाहता। मैं तो कुछ ही दिनों में यात्रार्थ जानेवाला हूं। दुनिया में मुझे अधिक दिन रहना भी नहीं है। किनारे पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पहुंचा हुआ आदमी तुम्हें विलायत जाने को, समुद्रपार करने को, इजाजत कैसे दे? पर मैं बाधक न बनूंगा असली इजाजत तो तुम्हारी मां की है। उनकी अनुमति मिल जाए तो तुम खुशी से जाओ। कह देना कि मैं तुम्हें रोकता नहीं। मेरा आशीर्वाद तो तुम्हें प्राप्त ही है।"

मैंने कहा, "इससे अधिक की आशा मैं आपसे नहीं रख सकता। मुझे अब अपनी मां को राजी करना है; पर लेलीसाहब के लिए सिफारिशी खत तो देंगे न?"

चाचा जी बोले, "यह मुझसे कैसे हो सकता है? पर साहब भले आदमी हैं। तुम पत्र लिखो। कुटुंब का परिचय देने पर वह अवश्य तुम्हें मिलने का समय देंगे और उन्हें बात जंच गई तो मदद भी करेंगे।" मुझे खयाल नहीं कि चाचा ने साहब को सिफारिशी पत्र क्यों नहीं दिया। कुछ अस्पष्ट-सा स्मरण है कि विलायत जाने के धर्म-विरुद्ध कार्य में ऐसी सीधी मदद देते उन्हें संकोच हुआ।

मैंने लेलीसाहब को पत्र लिखा। उन्होंने अपने बंगले पर मिलने को बुलाया। बंगले की सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते ही साहब मिले और 'तुम बी.ए. हो लो, फिर मुझसे मिलना। अभी कोई मदद नहीं दी जा सकती।'-इतना ही कहकर ऊपर चले गए। मैं खूब तैयारी करके, बहुतेरे वाक्य रटकर गया था। झुककर दोनों हाथों से सलाम किया था; पर मेरी सारी मेहनत अकारथ गई!

मेरी नजर स्त्री के गहनों पर गई। बड़े भाई पर मुझे अपार श्रद्धा थी। उनकी उदारता की सीमा न थी। उनका प्रेम पिता के तुल्य था।

मैं पोरबंदर से बिदा हुआ। राजकोट आकर सारी कथा सुना दी। जोशीजी से मशविरा किया। उन्होंने कर्ज करके भी मेरे भेजने की सलाह दी? मैंने अपनी स्त्री के हिस्से के जेवर बेच डालने की बात सामने रखी। उनके दो-तीन हजार रुपये से अधिक नहीं उठ सकते थे। भाई ने जैसे भी हो, रुपये जुटा देने का बीड़ा उठाया।

माता को तसल्ली कैसे हो? उसने सब तरह से जांच शुरू की। कोई कहता, युवक विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं। कोई कहता मांस खाते हैं। कोई कहता, वहां शराब के बिना काम ही नहीं चलता। माता ने यह सब मुझे सुनाया। मैंने कहा, "पर तू मेरा विश्वास नहीं करती? मैं तुझसे विश्वासघात नहीं करूंगा। कसम खाकर कहता हूं कि इन तीनों चीजों से बचूंगा। ऐसी जोखिम होती तो जोशीजी भला कैसे जाने को कहते?"

माँ बोली, मुझे तेरा विश्वास है। पर दूर देश में कैसे क्या होगा? मेरी तो अक्ल काम नहीं करती। मैं बेचरजी स्वामी से पूछूंगी।" बेचरजी स्वामी पहले मोढ़ बनिये थे, फिर जैन साधु हो गए थे। जोशीजी की भांति सलाहकार भी थे। उन्होंने मेरी मदद की। कहा, "मैं इस लड़के से इन तीनों चीजों के बारे में प्रतिज्ञा कराऊंगा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
फिर उसे जाने देने में हर्ज न होगा।" उन्होंने प्रतिज्ञा करवाई मैंने मांस, मंदिरा और स्त्री-संग से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। माता ने जाने की अनुमति दे दी।

हाई स्कूल में सभा हुई। राजकोट के एक युवक का विलायत जाना आश्चर्यजनक समझा गया। जवाब में मैं कुछ लिखकर ले गया था। वह जवाब भी मैं कठिनाई से पढ़ सका। इतना याद है कि सिर चकरा रहा था, बदन कांप रहा था। बड़ों का आशीर्वाद लेकर बंबई के लिए रवाना हुआ। बंबई की यह पहली यात्रा थी। बड़े भाई साथ आये।

पर अच्छे कामों मे सौ विघ्न पड़ते हैं। बंबई बंदर से झट छुटकारा मिलने वाला नहीं था।

12 : बिरादरी से बाहर

माता की अनुज्ञा और आशीर्वाद लेकर और कुछ महीनों का बच्चा स्त्री की गोद में छोड़कर मैं बड़ी उमंगों के साथ बंबई पहुंचा। पहुंचा तो जरूर, पर वहां मित्रों ने भाई से कहा कि जून-जुलाई में हिंदमहासागर में तूफान उठते रहते हैं और इसकी यह पहली ही समुद्र-यात्रा है। इसलिए दिवाली बाद अर्थात नवंबर में भेजना चाहिए। किसी ने तूफान में किसी जहाज के डूब जाने की बात भी कही। इससे बड़े भाई चिंतित हुए। उन्होंने इस प्रकार जोखिम लेकर मुझे तुरंत भेजने से इनकार किया और मुझे बंबई के मित्र के यहां छोड़कर खुद वापस अपनी नौकरी पर राजकोट लौट गये। एक बहनोई के यहां रुपये रखे गए और अनेक मित्रों से मेरी मदद करने की सिफारिश करते गये।

बंबई में मेरे दिन काटना कठिन हो गया। मुझे विलायत के ही सपने आया करते।

इसी बीच बिरादरी में खलबली मची। पंचायत बुलाई गई। कोई मोढ़ बनिया अब तक विलायत नहीं गया था और मैं जा रहा हूं तो मुझसे जवाब तलब होना ही चाहिए। मुझे पंचायत में हाजिर होने का हुक्म हुआ। मैं गया। मुझे पता नहीं कि मुझमें कहां से यकायक हिम्मत आ गई। मुझे हाजिर होने में न हिचक हुई, न डर लगा। बिरादरी के सरपंच से दूर की कोई रिश्तेदारी भी थी। पिताजी के साथ उनके संबंध अच्छे थे। उन्होंने मुझसे कहा,

"बिरादरी समझती है कि तुम्हारा विलायत जाने का विचार ठीक नहीं है। हमारे धर्म में समुद्र-यात्रा की मनाही है। फिर, हम यह भी सुनते हैं कि विलायत में धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। वहां साहबों के साथ खाना-पीना पड़ता है।"

मैंने उत्तर दिया, "मुझे तो ऐसा लगता है कि विलायत जाने में तनिक भी अधर्म नहीं है। मुझे तो वहां जाकर विद्याभ्यास ही करना है। फिर, जिन चीजों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का आपको डर है उनसे दूर रहने की मैं अपनी माता के सामने प्रतिज्ञा कर चुका हूं। अत: उनसे मैं दूर रह सकूंगा।"

मुखियाजी बोले,"पर हम तुमसे कहते हैं कि वहां धर्म नहीं बच सकता। तुम जानते हो कि तुम्हारे पिताजी के साथ मेरा कैसा संबंध था। तुम्हें हमारा कहना मानना चाहिए।"

मैंने उत्तर में कहा, "पिताजी के साथ आपके संबंध का मुझे पता है। आप मेरे लिए बड़े हैं, पर इस मामले में मैं लाचार हूं। विलायत जाने का निश्चय मैं नहीं पलट सकता। पिताजी के मित्र और सलाहकार, जो विद्वान ब्राह्मण हैं, मानते हैं कि मेरे विलायत जाने में कोई दोष नहीं है। माताजी और भाईसाहब की अनुमति भी मुझे मिल चुकी है।"

"पर बिरादरी का हुक्म तुम न मानोंगे?"

"मैं लाचार हूं। मेरा खयाल है कि इस मामले में बिरादरी को दखल नहीं देना चाहिए।"

इस जवाब से मुखिया को गुस्सा आ गया। मुझे दो-चार खरी-खोटी सुना दी। मैं शांत बैठा रहा। मुखिया ने हुक्म दिया,

"यह लड़का आज से बिरादरी से बाहर माना जाएगा। जो कोई इसे मदद देगा या बिदा करने जाएगा, बिरादरी उससे जवाब तलब करेगी और उस पर सवा रुपया जुर्माना होगा।"

मुझ पर इस निश्चय का कोई असर न हुआ। मैंने मुखिया महाशय से बिदा ली। अब देखना यह था कि भाईसाहब पर इस फैसले का क्या असर होता है। वह डर गये तो? सौभाग्यवश वह दृढ़ रहे और मुझे लिख भेजा कि बिरादरी के विचार के उपरांत भी मैं तुम्हें विलायत जाने से न रोकूंगा।

इस घटना के बाद मैं अधिक अधीर हो गया। भाईसाहब पर दबाव डाला गया तो? और कोई विघ्न आ पड़ा तो? इन चिंताओं में दिन गुजर रहे थे कि इतने में पता लगा कि चौथी सितंबर को रवाना होने वाले जहाज में जूनागढ़ के एक वकील बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत जाने वाले हैं। जिन मित्रों से भाईसाहब ने मेरे लिए सिफारिश की थी उनसे मिला। उनकी भी यह सलाह हुई कि यह साथ छोड़ना न चाहिए। समय बहुत थोड़ा था। भाईसाहब को तार दिया, जाने की इजाजत मांगी। उन्होंने दे दी। मैंने बहनोई से रुपये मांगे। उन्होंने बिरादरी के हुक्म की बात कही। वह जाति बहिष्कार की जोखिम उठाते डरते थे। मैं कुटुंब के एक मित्र के यहां पहुंचा और प्रार्थना की कि आप किराए आदि के लिए आवश्यक रुपये दे दें, पीछे भाईसाहब से ले लीजियेगा। इन मित्र ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। इतना ही नहीं, मुझे हिम्मत भी दिलाई। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया, रुपये लिए और टिकट कटाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलायत की यात्रा का सब सामान तैयार कराना था। एक दूसरे अनुभवी मित्र थे, उन्होंने सामान तैयार कराया। मुझे सब विचित्र लगा। कुछ रुचा, कुछ बिलकुल न रुचा। नेकटाई तो, जिसे बाद को मैं शौक से पहनने लगा था, तनिक भी न रुचती थी अधकटी जाकेट नंगी पोशाक लगी, पर विलायत जाने के शौक के सामने इस अरुचि का कोई महत्व न था। राह में खाने का यथेष्ट सामान भी साथ रख लिया था।

मेरे लिए जगह भी मित्रों ने त्र्यंबकराय मजूमदार (उपर्युक्त जूनागढ़ वाले वकील) के कमरे में ही ठीक की थी। उनसे मेरे बारे में सिफारिश भी की। वह प्रौढ़ अवस्था के अनुभवी गृहस्थ थे। मैं अठारह साल का, दुनिया के अनुभवों से शून्य युवक था। मजूमदार ने मेरे मित्रों से मेरे बारे में बेफिक्र रहने को कहा।

इस प्रकार मैंने 4 सितम्बर 1888 को बंबई बंदर छोड़ा।

13 : विलायत पहुंच ही गया

मुझे जहाज पर समुद-यात्रा में होने वाला कष्ट तो तनिक भी न हुआ; पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते थे मैं ज्यादा परेशान होता जा रहा था। 'स्टुअर्ट'[1] से बोलते झेंप लगती थी। अंग्रेजी में बात करने की मुझे आदत ही न थी। मजूमदार के सिवा अन्य सभी यात्री अंग्रेज थे। उनसे बातें करते न बनता। वे मुझसे बोलने की कोशिश करते तो मैं समझ ही न पाता था, और समझ भी लेता तो जवाब क्या दूं, यह न सूझता था। प्रत्येक वाक्य बोलने से पहले मन में जोड़ना पड़ता था। कांटे-चम्मच से खाना न आता था और कौन-सी वस्तु बिना मांस की होती है यह पूछने की हिम्मत न होती थी। इसलिए मैं खाने की मेज पर तो कभी गया ही नहीं। अपनी कोठरी में ही खाता था। मेरे साथ जो मिठाइयां आदि थीं, ज्यादातर उन्हीं पर गुजर किया। मजूमदार को तो कोई झिझक न थी। वह तो सबके साथ हिल-मिल गये थे। डेक पर भी आजादी से जाते थे। मैं तो सारा दिन कोठरी में ही पड़ा रहता। कभी डेक पर आदमी कम रहे तो थोड़ी देर वहां बैठ आता। मजूमदार मुझे सबसे हिलने-मिलने को, आजादी से बातें करने को समझाते। यह भी कहते कि वकील की जीभ 'चरपर' होनी चाहिए। अपनी वकालत के अनुभव सुनाते। कहते कि अंग्रेजी हमारी भाषा न होने के कारण उसमें भूल तो होगी ही, फिर भी डटकर बोलते जाना चाहिए। पर मेरी भीरूता जाती न थी।

मुझ पर दया करके एक भले अंग्रेज ने मुझसे बातें करना आरंभ किया। वह पक्की उम्र के थे। मैं क्या खाता हूं, कौन हूं, कहां जाता हूं, क्यों किसी से बातचीत नहीं करता, इत्यादि पूछा। मुझे खाने की मेज पर जाने की सलाह दी।

---

1. जहाज के मुसाफिरों का चाकर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मांस न खाने के मेरे आग्रह की बात सुनकर वह हंसे और मुझ पर तरस खाकर बोले, "यहां तक तो (सईद बंदर पहुंचने के पहले) ठीक ही है, पर बिस्के की खाड़ी में पहुंचने पर तुम अपने विचार बदल डालोगे। इंग्लैंड में तो ऐसी ठंड पड़ती है कि मांस खाए बिना चलता ही नहीं।"

मैंने कहा, "मैंने सुना है कि वहां लोग बिना मांसाहार के रह सकते हैं।"

वह बोले, "इसे गलत समझो। अपने परिचितों में मैं एक आदमी को भी नहीं जानता जो मांसाहार न करता हो। देखो, मैं शराब पीता हूं, पर तुमसे शराब पीने को नहीं कहता; किंतु मैं समझता हूं कि मांस तो तुम्हें खाना ही चाहिए।"

मैंने कहा, "आपकी सम्मति के लिए धन्यवाद देता हूं; पर मांस न खाने की मैं अपनी माता से प्रतिज्ञा कर चुका हूं। इसलिए नहीं खा सकता। यदि उसके बिना निर्वाह हो ही नहीं सकता तो मैं हिंदुस्तान लौट जाऊंगा; पर मांस तो नहीं ही खाऊंगा।"

बिस्के की खाड़ी आई। पर वहां भी मुझे तो न मांस की जरूरत जान पड़ी, न मदिरा की। मुझको मांस न खाने के प्रमाणपत्र इकट्ठे करने की सलाह दी गई थी। अतः इस अंग्रेज दोस्त से मैंने प्रमाण-पत्र मांगा। उसने प्रसन्नतापूर्वक दिया। उसे मैंने कुछ काल तक धन की भांति संभालकर रखा। पीछे यह मालूम होने पर कि प्रमाण-पत्र तो मांस खाते हुए भी लिए जा सकते हैं, उस पर मेरा मोह नष्ट हो गया। यदि मेरे शब्दों पर विश्वास न किया जाए तो ऐसे विषय में प्रमाण-पत्र पेश करने से मुझे क्या लाभ हो सकता है?

दुःख-सुख सहते यात्रा पूरी करके हम साउदेम्पटन बंदर पर आ पहुंचे। मुझे याद है कि वह शनिवार था। मैं स्टीम पर काले कपड़े पहनता था। मित्रों ने मेरे लिए एक सफेद फलालैन का सूट-कोट-पतलून-भी बनवा दिया था। मैंने विलायत में उतरने पर उसे पहनने का निश्चय कर रखा था, इस खयाल से कि सफेद कपड़े अच्छे लगेंगे! मैं यह फलालैन का सूट पहनकर उतरा। आखिर सितंबर के दिन थे। ऐसे कपड़ों में मैंने अकेले अपने को ही पाया। मेरे बक्स और उनकी कुंजियां तो ग्रिंडले कंपनी का एजेंट ले गया था। सब जैसा करें वैसा मुझे भी करना चाहिए, यह सोचकर मैंने तो अपनी कुंजियां भी उसे दे दी थीं।

मेरे पास चार सिफारिशी पत्र थे। डॉक्टर प्राणजीवन मेहता, दलपतराम शुक्ल, प्रिंस रणजीतसिंह और दादाभाई नौरोजी के नाम। मैंने डॉक्टर मेहता को साउदेम्पटन से तार दिया। जहाज में किसी ने विक्टोरिया होटल में उतरने की सलाह दी थी। तदनुसार मैं और मजूमदार उस होटल में गये। मैं तो अपने सफेद कपड़ों की शर्म से ही दबा जा रहा था। होटल पहुंचने पर जब यह मालूम हुआ कि कल रविवार होने की वजह से सोमवार तक ग्रिंडले के यहां से सामान न आएगा तो मैं परेशान हो उठा।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात-आठ बजे के लगभग डॉक्टर मेहता आये। उन्होंने प्रेमपूर्ण विनोद किया। मैंने अनजाने उनकी रेशमी रोंयेदार टोपी देखने को उठा ली और उस पर उलटा हाथं फेर दिया। इससे टोपी के रोंये सीधे हो गये। डॉक्टर मेहता ने देखा। तुरंत मुझे रोका, पर अपराध तो हो चुका था। उनके रोकने का इतना ही नतीजा हुआ कि फिर कभी वह न हो।

यहीं से यूरोपीय रीति-रिवाज की मेरी शिक्षा का श्रीगणेश समझना चाहिए। डॉक्टर मेहता हंसते-हंसते बहुत-सी बातें समझाते जाते थे- किसी की चीज नहीं छूनी चाहिए; किसी से जान पहचान होने पर हिंदुस्तान में यों ही जो सवाल किये जा सकते हैं वैसे यहां नहीं किये जा सकते; बातें करते हुए जोर से नहीं बोला जाता; हिंदुस्तान में अंग्रेजों से बातें करते हुए 'सर' कहने का जो रिवाज है वह अनावश्यक है; 'सर' तो नौकर अपने मालिक को या अपने से बड़े अधिकारी को कहता है। फिर उन्होंने होटल में रहने के खर्च पर भी बातें कीं और कहा कि किसी निजी कुटुंब में रहना ठीक होगा। इस विषय में अधिक विचार सोमवार तक स्थगितं रहा। कितनी ही सलाहें देकर डाक्टर मेहता विदा हुए।

होटल में तो हम दोनों को यही जान पड़ा कि हम बुरी जगह आ फंसे। वह महंगा भी था। माल्टा से एक सिंधी सज्जन भी जहाज पर सवार हुए थे, उनसे मजूमदार की अच्छी पट गई थी। यह सिंधी सज्जन लंदन के अच्छे जानकार थे। उन्होंने हमारे लिए दो कमरे किराए पर ले देने का भार उठाया। हमने स्वीकृति दी और सोमवार को सामान मिलते ही बिल चुकाकर उक्त सिंधी भाई के ठीक किए हुए कमरों में चले गए। मुझे याद है कि मेरे हिस्से का होटल का बिल तीन पौंड के लगभग हुआ था। मैं तो देखकर भौंचक रह गया। तीन पौंड चुकाकर भी भूखा रहा। होटल का कोई खाना न रुचा। एक चीज ली, नहीं रुची, दूसरी ली। पर पैसे तो दोनों के ही चुकाने चाहिए। कह सकता हूं कि अभी बंबई से लाए हुए खाने के सामान पर ही मेरे दिन कट रहे थे।

इस कमरे में भी मैं तो बहुत परेशान-हाल रहा। देश बहुत याद आता था। माता का प्रेम आंखों के सामने नाचा करता। रात हुई कि रोना शुरू हुआ। घर की अनेक प्रकार की स्मृतियों की चढ़ाई के कारण नींद कहां से आ पाती? यह दु:खगाथा किसी से कह भी न सकता था। कहने से फायदा भी क्या था? मैं स्वयं नहीं जानता था कि क्या करने से मेरा चित्त शांत होगा। मनुष्य विचित्र, रहन-सहन विचित्र, घर भी विचित्र। घरों में रहने की रीति-निति भी वैसी ही विचित्र। क्या बोलने और क्या करने में यहां के शिष्टाचार का भंग होता है, इसका भी बहुत कम पता था। तिस पर से खाने-पीने का बराव-बचाव। जो चीजें खा सकता वे रूखी ओर नीरस लगती थीं। इससे मेरी दशा सरौते में सुपारी की-सी हो गई। विलायत रुच नहीं रहा था और देश को लौटा नहीं जा सकता! विलायत आया था तो तीन साल पूरे करने ही थे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14. मेरी पसंद

डॉक्टर मेहता सोमवार को मुझसे मिलने विक्टोरिया होटल गए। वहां से हम लोगों का पता लेकर नये ठिकाने पर पहुंचे।

जहाज पर मूर्खतावश मैंने दाद का रोग लगा लिया। वहां खारे पानी में नहाना पड़ता। उसमें साबुन घुलता नहीं और इधर मैंने साबुन लगाने में सभ्यता मान रखी थी। नतीजा यह हुआ कि शरीर साफ होने के बदले और चीकट होता गया। इससे दाद की शिकायत हो गई। डॉक्टर मेहता को दिखाया। उन्होंने मुझे जला देने वाली दवा 'एसेटिक एसिड' दी। इस दवा ने मुझे खूब रुलाया।

डॉक्टर मेहता ने हमारा कमरा वगैरह देखा और गर्दन हिलाई "यहां नहीं चल सकता। इस देश में आकर पढ़ने के बजाय यहां के जीवन का अनुभव प्राप्त करना ही अधिक आवश्यक है। इसके लिए किसी कुटुंब में रहने की जरूरत है। पर फिलहाल तो तुम कुछ गढ़े-बनाए जाओ, इसके लिए. . . . . के यहां तुम्हारे रहने की बात सोची है। वहां तुम्हें ले चलूंगा।"

मैंने उनकी सूचना धन्यवादपूर्वक स्वीकार की। उन मित्र के यहां गया। उनकी ओर से मेरी खातिर में कोई कसर नहीं थी। उन्होंने मुझे अपने छोटे भाई की तरह रखा, अंग्रेजी रीति-रिवाज सिखलाये। यह कह सकता हूं कि अंग्रेजी थोड़ी बोल लेने की आदत उन्होंने ही डलवाई।

मेरे भोजन का प्रश्न बहुत टेढ़ा हो गया। बिना नमक-मसालों की तरकारियां नहीं रुचती थीं। घर की मालकिन बेचारी मेरे लिए और क्या बनाती? सवेरे तो जई के आटे की लपसी बनाती, इसलिए थोड़ा पेट भर जाता, पर दोपहर और शाम को सदा भूखा रहता। मित्र मांसाहार करने को नित्य समझाते थे। मैं प्रतिज्ञा की बाधा बताकर चुप हो रहता था। उनकी दलीलों का जवाब देना कठिन था। दोपहर को केवल रोटी, साग और मुरब्बे पर गुजर करता। शाम को भी वही खुराक थी। रोटी के तो दो-तीन टुकड़े ही लेता था, अधिक मांगते शर्म लगती थी। मुझे डटकर खाने की आदत थी। भूख तेज लगती थी और ज्यादा मांगती थी। दोपहर या शाम को दूध का तो काम ही क्या? मेरी यह दशा देखकर मित्र एक दिन चिढ़कर बोले," अगर तुम मेरे मां-जाए भाई होते मैं अवश्य तुम्हें वापस भेज देता। निरक्षर माता से, यहां की परिस्थिति जाने बिना, की हुई प्रतिज्ञा की भी कोई कीमत है! इसे प्रतिज्ञा कह ही नहीं सकते। मैं तुमसे कहता हूं कि कानून इसे प्रतिज्ञा नहीं मान सकता। ऐसी प्रतिज्ञा का आग्रह तो केवल एक वहम है। और ऐसे वहम से चिपटे रहकर तुम इस मुल्क से अपने देश को कुछ भी न ले जा सकोगे। तुम तो कहते हो कि तुमने मांस खाया है। तुम्हें वह रुचा भी था। जहां खाने की कोई आवश्यकता न थी वहां तो खाया और जहां खाने की खास तौर से जरूरत है वहां त्याग! कैसी विचित्र बात है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी दलीलें रोज होतीं। सौ रोगों की एक दवा 'ना ही' मेरे पास थी। मित्र मुझे जितना समझाते, मेरी दृढ़ता उतनी ही बढ़ती जाती थी। नित्य ईश्वर से रक्षा की प्रार्थना करता और वह पूरी होती। ईश्वर कौन है, यह मैं नहीं जानता था; पर उस रंभा की दी हुई श्रद्धा अपना काम कर रही थी।

एक दिन मित्र ने मेरे सामने बेंथम की पुस्तक पढ़ना आरम्भ किया। उपयोगिता का विषय पढ़ने लगे। मैं घबराया। भाषा ऊंची थी, मैं बड़ी कठिनाई से समझता था। उन्होंने उसका विवेचन किया। मैंने उत्तर दिया,

"मैं क्षमा चाहता हूं। ऐसी बारीक बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। मांस खाने की उपयोगिता मैं स्वीकार करता हूं पर अपनी प्रतिज्ञा का बंधन मैं नहीं तोड़ सकता। इसके बारे में बहस-दलील मैं नहीं कर सकता। मैं जानता हूं कि तर्क में मैं आपको नहीं जीत सकता। पर मुझे मूर्ख या हठी मानकर इस बारे में क्षमा कीजिए। मैं आपके प्रेम का कायल हूं। आपका उद्देश्य समझता हूं। आपको मैं अपना परम हितेच्छु मानता हूं। यह भी देखता हूं कि आपको दुःख होता है, इससे आप मुझसे इतना आग्रह करते हैं। पर मैं लाचार हूं। प्रतिज्ञा नहीं टूट सकती।"

मित्र देखते रह गये। उन्होंने किताब बंद कर दी। "बस, अब मैं दलील न करूंगा।" कहकर चुप हो गए। मैं खुश हुआ। इसके बाद उन्होंने तर्क करना त्याग दिया।

पर मेरे विषय में उनकी चिंता न गई। वह सिगरेट पीते थे, शराब पीते थे। इनमें एक के लिए भी मुझे कभी न कहा। उलटे उनसे बचने को ही कहते। उन्हें चिंता यही थी कि मांसाहार के बिना मैं कमजोर हो जाऊंगा और इंग्लैंड में आजादी से न रह सकूंगा।

यों एक महीना मैं नौसिखुआ बनकर रहा। उक्त मित्र का घर रिचमंड में था। अतः लंदन जाना हफ्ते में एक-दो बार ही होता था। अब मुझे डॉक्टर मेहता तथा भाई दलपतराम ने किसी कुटुंब के साथ रखने का विचार किया। भाई शुक्ल ने वेस्ट केसिंग्टन में एक ऐंग्लो इंडियन का घर तालाशकर मुझे वहां टिकाया। घर की मालकिन विधवा थी। उसे अपने मांस-त्याग की बात बताई। बुढ़िया ने मेरी देखरेख करना स्वीकार किया। मैं वहां रहा। यहां भी भूखा रहना पड़ता। घर से मंगाई हुई मिठाई आदि अभी आई नहीं थी। यहां का सब खाना बेमजा लगता था। बुढ़िया सदा पूछती, पर वह करती क्या? दूसरे मैं अब भी शर्मीला तो उतना ही था। इसलिए अधिक मांगते संकुचता था। बुढ़िया की दो लड़कियां थीं। वे आग्रह करके थोड़ी रोटी अधिक दे देती थीं। पर उन बेचारियों को क्या मालूम कि उनकी सारी रोटियां मैं खा जाऊं तब कहीं मेरा पेट भरे!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अब मेरे पैर जमने लगे थे। अभी पढ़ाई तो आरंभ हुई न थी। ज्यों-त्यों अखबार बांचने लगा था। यह भाई शुक्ल का प्रताप था। हिन्दुस्तान में मैंने कभी अखबार नहीं पढ़ा था; पर सदा पढ़ते रहने के अभ्यास के कारण उन्हें पढ़ने का शौक पैदा कर सका। 'डेली न्यूज', 'डेली टेलीग्राफ' और 'पेलमेल गजट' पत्रों पर नजर डाल देता। पर इसमें तो पहले से मुश्किल से घंटाभर लगता रहा होगा।

मैंने अब घुमाई शुरू की। मुझे निरामिष अर्थात अन्नाहारी होटल तलाश करना था। घर की मालकिन ने भी बतलाया था कि लंदन में ऐसे भोजनगृह हैं। मैं रोज दस-बारह मील का चक्कर लगाता। किसी साधारण भोजनालय में जाकर पेटभर रोटी खा लिया करता था; पर तृप्ति न होती थी। यों भटकते-भटकते मैं एक दिन फेरिंग्टन स्ट्रीट पहुंचा और 'वैजिटेरियन रेस्तरां' (अन्नाहारी होटल) का साइनबोर्ड पढ़ा। मनचाही वस्तु पा बच्चे को खुशी होती है वही मुझे हुई। खुशी से भरा मैं अंदर घुसने ही को था कि दरवाजे के पास लगी शीशे की अलमारी में बिकाऊ पुस्तकों पर निगाह पड़ी। उनमें मुझे साल्ट की 'अन्नाहार की हिमायत' (Plea for Vegetarianism) नामक पुस्तक दिखाई दी। एक शिलिंग देकर खरीदी। फिर खाने बैठा। विलायत आने के बाद आज पहली बार यहीं पेट भर भोजन मिला। ईश्वर ने मेरी भूख मिटाई।

साल्ट की किताब पढ़ी। मुझ पर उसका अच्छा असर पड़ा यह पुस्तक पढ़ने के बाद मैं स्वेच्छा से अर्थात विचारपूर्वक अन्नाहार का कायल हुआ। माता से की हुई प्रतिज्ञा अब मेरे लिए विशेष आनंददायक हो गई, और जैसे अब तक यह मानता था कि सब मांसाहारी हो जाएं तो अच्छा है, और पहले केवल सत्य की और पीछे प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए ही मांस त्याग कर रखा था, तथा 'आगे चलकर किसी दिन स्वयं स्वतंत्रता से खुल्लमखुल्ला मांस खाकर दूसरों को मांस-पार्टी में मिलाने का हौसला रखता था,' वैसे ही अब स्वयं अन्नाहारी रहकर दूसरों को भी वैसा बनाने का लोभ उत्पन्न हुआ।

15 : 'सभ्य' वेश में

अन्नाहार पर मेरी श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती गई। साल्ट की किताब से आहार के विषय में पढ़ने की भूख तेज हो गई। जितनी पुस्तकें मिलीं, खरीदकर पढ़ डालीं। उनमें हार्वर्ड विलियम्स की 'आहारनीति' (The Ethics of Diet) नाम की पुस्तक में विभिन्न युगों के ज्ञानियों, अवतारों और पैगम्बरों के आहार और आहार विषयक विचारों का वर्णन मिला। पाइथागोरस, ईसा इत्यादि को उसने केवल आन्नाहार करने वाला सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। डॉक्टर श्रीमती अना किंग्सफर्ड की 'उत्तम आहार की रीति' (The Perfect way in Diet) नामक पुस्तक भी आकर्षक थी। इसके सिवा डॉक्टर एलिन्सन के आरोग्य-विषयक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लेखों से भी अच्छी मदद मिली। वह दवा के बजाय केवल भोजन के फेरफार से ही रोगी को चंगा करने की पद्धति का समर्थन करते हैं। डॉक्टर एलिन्सन स्वयं अन्नाहारी थे और रोगियों के लिए केवल अन्नाहार की ही सलाह देते थे। इन सारी पुस्तकों के पढ़ने का परिणाम यह हुआ कि मेरे जीवन में भोजन के प्रयोगों ने महत्त्वपूर्ण स्थान ले लिया। उन प्रयोगों में पहले आरोग्य-दृष्टि की प्रधानता थी, बाद को धार्मिक दृष्टि सर्वोपरि हो गई।

मेरे बारे में उपर्युक्त मित्र की चिंता अब तक दूर नहीं हुई थी। उन्होंने प्रेम के वश यह मान लिया था कि मांसाहार न करने से मैं कमजोर हो जाऊंगा। इतना ही नहीं, बल्कि 'भोंदू' रह जाऊंगा; क्योंकि मांसाहार न करने से अंग्रेज समाज में हिल-मिल न सकूंगा। मेरे अन्नाहार-विषयक पुस्तकें पढ़ने का उनको पता था। उन्हें शंका हुई कि इस तरह की पुस्तकें पढ़कर मैं सनक जाऊंगा, प्रयोगों में ही मेरा जन्म जाएगा, जो कुछ करना है उसे भूल जाऊंगा और पढ़ा-लिखा मूर्ख बना रहूंगा। अतः उन्होंने मेरे सुधार का एक अंतिम प्रयत्न किया। मुझे अपने साथ थियेटर चलने का न्यौता दिया वहां जाने के पहले मुझे उनके साथ हाबर्न होटल में भोजन करना था। यह होटल मेरी नजरों में महल था। ऐसे होटल में जाने का, विक्टोरिया होटल छोड़ने के बाद, यह पहला ही मौका था। विक्टोरिया होटल का अनुभव बेकार था; क्योंकि यह मान लिया जा सकता है कि वहां मैं अचेत था। सैकड़ों के बीच में हम दो मित्र एक मेज पर बैठे। मित्र ने पहला परोसा मंगाया। वह 'सूप' (शोरबा) था। मैं उलझन में पड़ गया। मित्र से क्या पूछता? परोसने वाले को पास बुलाया।

मित्र समझ गए। चिढ़कर मुझसे पूछा, "क्या बात है?"

मैंने धीरे-से संकोच सहित कहा, "मैं जानना चाहता हूं कि इसमें मांस तो नहीं है?"

"यह जंगलीपन इस होटल में नहीं चल सकता। यदि अब भी तुम्हें यह किच-किच करनी है तो तुम बाहर जाकर किसी छोटे-मोटे होटल में खा लो और वहीं मेरी बाट जोहना।"

मुझे इस प्रस्ताव से प्रसन्नता हुई। उठकर दूसरे होटल की खोज में निकला। पास ही एक अन्नाहारी भोजनगृह था, पर उस समय वह बंद हो चुका था। समझ में न आया कि अब क्या करूं। मैं भूखा रहा। हम थियेटर गये। मित्र ने इस घटना के बारे में एक शब्द भी न कहा। मेरे लिए तो कहने को था ही क्या!

पर हम लोगों के बीच यह अंतिम प्रेम-युद्ध था। हमारा संबंध नहीं टूटा, न उसमें कटुता आई। उनके सारे प्रयत्नों की जड़ में जो प्रेम-भाव था उसे मैं समझ रहा था। इससे आचार और विचार में विभिन्नता होते हुए भी उनके लिए मेरे मन में आदर बढ़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मुझे उनका भय दूर कर देना जरूरी मालूम हुआ। मैंने निश्चय किया कि जंगली नहीं रहूंगा, सभ्यों के तौर-तरीके सीखूंगा और दूसरी तरह से समाज में सम्मिलित होने योग्य बनकर अपनी अन्नाहार की विचित्रता पर पर्दा डालूंगा।

मैंने 'सभ्यता' सीखने का अपने सामर्थ्य से बाहर का और छिछला रास्ता पकड़ा।

विलायती होते हुए भी बंबई काट के कपड़ों के उच्च अंग्रेज समाज में न फबने के खयाल से मैंने 'आर्मी' और 'नेवी' स्टोर में कपड़े बनवाये। उन्नीस शिलिंग की (यह कीमत उस जमाने में तो बड़ी ही समझी जाती थी) 'चिम्नी' हैट (टोपी) ली। इतने से संतोष न होने पर बांड स्ट्रीट में, जहां शौकिनों के कपड़े सिलते थे, दस पौंड को दियासलाई दिखलाकर शाम को पहनने का सूट बनवाया। सीधे और बादशाही दिलवाले बड़े भाई से दो जेबों में लटकाई जाने वाली असली सोने की चेन मंगवाई और वह आई भी। तैयार बंधी हुई टाई का लगाना शिष्टतासूचक नहीं था। अतः मैंने टाई बांधने की कला सीखी। देश में तो आइना हजामत के दिन ही देखने का काम पड़ता था। पर यहां तो बड़े शीशे के सामने खड़े होकर टाई ठीक बांधने, बालों को ठीक पटियां पारने और मांग काढ़ने में रोज कोई दस मिनट तो नष्ट हो ही जाते थे। मेरे बाल मुलायम नहीं थे इसलिए उन्हें ठीक घुमा रखने के लिए ब्रुश के साथ नित्य लड़ाई होती। टोपी पहनते और उतारते समय हाथ तो मानो मांग संवारने को सिर पर पहुंचा ही रहता। इसके सिवा जब समाज में बैठता तो हाथों से मांग संवारते हुए बालों को ठीक-ठिकाने रखने की सभ्य क्रिया चलती ही रहती थी।

पर इतनी टीम-टाम ही बस न थी। अकेली सभ्य पोशाक से थोड़े ही सभ्य बना जा सकता है? सभ्यता के अन्य कई बाह्य लक्षण भी जान और सीख लिये थे। सभ्य पुरुष को नाचना जानना चाहिए। उसे फ्रैंच अच्छी आनी चाहिए; क्योंकि फ्रैंच इंग्लैड के पड़ोसी फ्रांस की भाषा थी और सारे यूरोप की राष्ट्रभाषा भी थी, और मेरी यूरोप भ्रमण करने की इच्छा थी। इसके सिवा सभ्य पुरुष को लच्छेदार भाषण करना भी आना चाहिए। मैंने नाचना सीख लेने का निश्चय किया। एक क्लास में भर्ती हुआ। एक सत्र के तीन पौंड फीस के दिए। तीन हफ्ते में कोई छः सबक लिए होंगे। ठीक ताल पर पांव न पड़ते थे। पियानों बजता था, पर वह क्या कह रहा है, यह समझ में न आता था। 'एक, दो, तीन' चलता, पर उनके बीच के अन्तर का पता उस बाजे से ही चलता था जो मेरे लिए अगम्य था। तब कैसे बने? फिर तो 'बाबाजी की बिल्ली' वाली बात हो गई। चूहे को भगाने को बिल्ली, बिल्ली के लिए गाय, इस तरह बाबाजी का कुनबा बढ़ा। इसी प्रकार मेरे लोभ का परिवार भी बढ़ता गया। सोचा, वायलिन बजाना सीख लूं तो ताल-सुर का पता चलने लगे। तीन पौंड वायलिन खरीदने में खोए और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कुछ उसकी तालीम के लिये भी। भाषण-कला सीखने को तीसरे उस्ताद का घर ढूंढ़ा। उन्हें भी एक गिन्नी की भेंट तो चढ़ानी ही पड़ी। बेल का 'स्टैंडर्ड एलोक्यूशनिस्ट' लिया। पिट का भाषण शुरू किया।

इन बेलसाहब ने मेरे कान में घंटी (बेल) बजाई। मैं जागा।

मुझे इंग्लैंड में जिन्दगी कहां बितानी है? लच्छेदार भाषण करना सीखकर क्या होगा? नाच-गाकर मैं सभ्य कैसे बनूंगा? वायलिन तो अपने देश में भी सीखा जा सकता है। मैं तो विद्यार्थी हूं। मुझे तो विद्या-धन जोड़ना चाहिए। मुझे अपने धंधे के लिए जरूरी तैयारी करनी चाहिए। मैं अपने सदाचार से सभ्य समझा जा सकूं तो ठीक है, नहीं तो मुझे यह लोभ छोड़ना चाहिए।

इन्हीं विचारों की धुन में उपर्युक्त उद्‌गारों से पूर्ण एक पत्र मैंने भाषण-शिक्षक को लिख भेजा। उनसे मैंने दो या तीन पाठ ही लिये थे। नृत्य-शिक्षक को भी वैसा ही पत्र लिख दिया। वायलिन-शिक्षक के यहां वायलिन लेकर पहुंचा। उससे यह बाजा जितने में बिके बेच देने को कहा। उसके साथ कुछ मित्रता का-सा संबंध हो गया था। इससे उसके सामने मैंने अपने मोह की बात कही। मेरे नाच आदि के जंजाल में से निकाल जाने की बात उसने पसंद की।

सभ्य बनने की मेरी सनक कोई तीन महीने चली होगी। पोशाक की टीम-टाम बरसों चली। पर अब मैं विद्यार्थी बन गया।

16 : फेरफार

कोई यह न समझे कि नाच आदि के मेरे प्रयोगों के मानी यह है कि मैं उस समय स्वच्छंद बन गया था। ध्यान से देखने पर पाठकों को उनमें कुछ बुद्धि-विचार भी मिलेगा। इस मोह-काल में भी मैं कुछ अंश में सावधान था। पाई-पाई का हिसाब रखता था। खर्च नपा-तुला था। महीने में पंद्रह पौंड से अधिक खर्च नहीं करना है, यह निश्चय कर रखा था। बस (मोटर) की सवारी का और डाक का खर्च भी रोज लिखता था और सोने के पहले सदा अपनी रोकड़ मिला लेता था। यह आदत अंत तक कायम रही। मैं समझता हूं कि इसी कारण सार्वजनिक जीवन में मेरे हाथों से लाखों रुपयों का उलट-फेर होने पर भी मैं मुनासिब किफायतशारी रख सका। मेरी देख-रेख में जितने आंदोलन चले हैं उनमें कभी मैंने कर्ज नहीं किया, बल्कि हर एक में जमा की और कुछ-न-कुछ बचता ही रहा है। यदि प्रत्येक नवयुवक उसे मिलने वाले थोड़े रुपयों का भी हिसाब सावधानी से रखे तो उसका लाभ जैसे भविष्य में मुझे और जनता को मिला वैसे ही उसे भी मिलेगा।

अपने रहन-सहन पर मेरा अंकुश होने के कारण मैं तय कर पाया कि मुझे कितना खर्च करना चाहिए। अब मैंने खर्च आधा कर डालने का विचार किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हिसाब से मालूम हुआ कि गाड़ी भाड़े पर मेरा काफी खर्च होता जाता था। इसके सिवा कुटुम्ब में रहने के कारण एक बंधी रकम तो हर हफ्ते जाती ही थी। कुटुम्ब के व्यक्तियों के कभी-कभी खिलाने-पिलाने के लिए बाहर ले जाने की भलमनसी बरतना जरूरी था। फिर उनके साथ दावत में कभी जाना पड़ता तो गाड़ी-भाड़ा लग ही जाता। कोई लड़की साथ होती तो उसके पैसे चुकाना भी भलमनसी के नाते फर्ज होता था। जब बाहर जाता तो घर खाने के लिए न पहुंच पाता; पर पैसे तो देने ही होते और बाहर खाने में अलग से पैसे खर्चने पड़ते। मैंने देखा कि ऐसे खर्चों से बचा जा सकता है। शर्महजूरी में होने वाले कुछ खर्चों से भी बचने की बात समझ में आई।

अब तक कुटुम्ब में रहता था। उसके बदले अपना कमरा लेकर रहने और कार्य की सुविधा तथा अनुभव-प्राप्ति के लिए जुदा-जुदा मुहल्लों में घर बदलते रहने का भी निश्चय किया। घर ऐसी जगह पंसद किया जहां से काम के स्थान पर आधे घंटे में पैदल चलकर पहुंचा जा सके और गाड़ी-भाड़े के पैसे बच जाए। पहले सदा जहां जाना होता वहां का गाड़ी-भाड़ा खर्चना पड़ता और घूमने के लिए अलग समय निकालना पड़ता। अब काम से जाने में ही घुमाई हो जाती। इस योजना में रोज आठ-दस मील का चक्कर अनायास ही लग जाता। खासकर इस एक आदत की बदौलत मैं विलायत में शायद ही बीमार पड़ा हूंगा। शरीर काफी कस गया। कुटुम्ब में रहना छोड़ने पर दो कमरे किराये पर लिए; एक सोने के लिए, दूसरा बैठक के रूप में। यह फेरफार का दूसरा खण्ड माना जा सकता है। तीसरा परिवर्तन अभी आगे होने को था।

यों खर्च आधा बच गया। पर समय? मुझे मालूम था कि बैरिस्टरी के इम्तहारी के लिए अधिक पढ़ने की जरूरत नहीं होती, इससे मन में धीरज था। पर मेरी कच्ची अंग्रेजी मुझे कोंचती थी। लेलीसाहब के शब्द-'तुम बी.ए. हो जाओ फिर आना'- चुभ रहे थे। मुझे बैरिस्टर होने के सिवा कुछ और भी पढ़ना चाहिए। ऑक्सफोर्ड-कैम्ब्रिज के कोर्सों का पता लगाया। कितने ही मित्रों से मिला। देखा कि वहां ज़ाने में खर्च बहुत बढ़ जाएगा और वहां का शिक्षण-क्रम भी लम्बा है। तीन वर्ष से अधिक रहना मेरे लिए सम्भव न था। एक मित्र ने कहा, "तुम्हें कोई कठिन परीक्षा ही देनी हो तो तुम लंदन का मैट्रिकुलेशन पास कर लो। उसमें मेहनत अच्छी करनी पड़ेगी और साधारण ज्ञान बढ़ेगा। खर्च बिल्कुल न बढ़ेगा।" यह सलाह मुझे पसंद आई। परीक्षा की विषय-सूची देखकर डरा। लैटिन और एक अन्य भाषा अनिवार्य! लैटिन कैसे चलेगी? पर उस मित्र ने कहा, "वकील के लिए लैटिन बड़े काम की चीज है। जो लैटिन जानता है वह कानूनी किताबें आसानी से समझ लेता हैं। इसके सिवा 'रोमन ला' की परीक्षा में एक सवाल तो केवल लैटिन भाषा में ही होता है। लैटिन जानने से अंग्रेजी भाषा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर अधिकार भी बढ़ता है।' मुझ पर इन सब दलीलों का असर पड़ा। कठिन हो या सरल, पर लैटिन तो सीखनी है। फ्रैंच पहले से ले रखी थी, उसे पूरा करना था। इसलिए दूसरी भाषा फ्रैंच होगी, यह भी निश्चय किया। खानगी तौर पर चलने वाले मैट्रिकुलेशन क्लास में शामिल हो गया। परीक्षा हर छठे महीने होती थी, मेरे पास मुश्किल से पांच महीने का समय था। यह काम मेरे बूते से बाहर का था। नतीजा यह हुआ कि कहां तो मैं सभ्य बनने चला था और कहां अत्यंत उद्यमी विद्यार्थी बन गया। टाइम-टेबुल बनाया। एक-एक मिनट बचाने लगा; पर मेरी बुद्धि या स्मरणशक्ति ऐसी न थी कि मैं और विषयों के उपरांत लैटिन और फ्रैंच की पढ़ाई पूरी कर सकूं। इम्तहान में बैठने पर लैटिन में फेल हो गया। दुःखी हुआ, पर हिम्मत न हारी। लैटिन में रस आने लगा था। सोचा, फ्रैंच ज्यादा मजबूत हो जाएगी और विज्ञान में नया विषय लूंगा। रसायनशास्त्र, जिसमें आज मैं देखता हूं कि मुझे खूब रस आना चाहिए था, प्रयोगों के अभाव में मुझे रुचता ही न था। देश में तो यह विषय मेरी शिक्षा में था ही, अतः लंदन-मैट्रिक के लिए भी पहली बार मैंने इसी को पसंद किया था। इस बार प्रकाश और ऊष्णता (लाइट एण्ड हीट) लिए। ये विषय सरल समझे जाते थे। मुझे भी सरल लगे।

परीक्षा की तैयारी के साथ ही रहन-सहन में और अधिक सादगी लाने की कोशिश शुरू की। मैंने देखा कि अभी मेरी सादगी अपने कुटुंब की गरीबी से मेल नहीं खाती। भाई की तंगदस्ती और उनकी उदारता को सोचकर मन खिन्न हो उठा। आठ और पंद्रह पौंड मासिक खर्च करने वालों को तो छात्रवृत्तियां मिलती थीं। अपने से अधिक सादगी से रहने वाले भी मुझे दिखाई देते थे। ऐसे बहुत-से गरीब विद्यार्थियों से मेरा परिचय हो गया था। एक गरीब विद्यार्थी लंदन के 'कंगाल-महाल' में दो शिलिंग प्रति सप्ताह किराए पर एक कमरा लेकर रहता था और लोकार्ट की सस्ती कोको की दुकान में दो पेनी कोको और रोटी खाकर गुजर करता था। उसका मुकाबला करने की तो मुझमें हिम्मत न थी, पर यह देखा कि मैं अवश्य दो के बजाय एक कमरे में गुजर कर सकता हूं और आधा खाना अपने आप भी पका सकता हूं। इस तरह चार या पांच पौंड माहवार में रह सकता हूं। सादे रहन-सहन पर मैंने किताबें भी पढ़ी थीं। पुराना कमरा छोड़ा और आठ शिलिंग प्रति सप्ताह पर एक कमरा लिया। एक अंगीठी खरीदी और सवेरे का खाना हाथ से पकाना शुरू कर दिया। पकाने में मुश्किल से बीस मिनट लगते थे। जई का दलिया और कोको के लिए पानी उबालने में और लगते ही कितने? दोपहर को बाहर खा लेता और शाम को फिर कोको बनाकर रोटी के साथ लेता। यों एक-सवा शिलिंग रोज में पेट भर लेना सीख लिया। यह मेरा अधिक-से-अधिक पढ़ाई का समय था। जीवन सादा हो जाने से समय अधिक बचा। दूसरी बार इम्तहान में बैठने पर पास हो गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पाठक यह न समझें कि सादगी के कारण मेरे जीवन में कोई नीरसता आ गई। इसके विपरीत, फेरफार के कारण मेरी आंतरिक और बाहरी स्थिति में एकता हो गई; कौटुम्बिक स्थिति के साथ मेरे रहन-सहन का मेल हो गया; जीवन अधिक सत्यमय हो गया। आत्मिक आनंद की सीमा न रही।

17 : खुराक के प्रयोग

क्रमशः जीवन में ज्यों-ज्यों मैं गहरा उतरता गया त्यों-त्यों मुझे बाह्य और आंतरिक आचार में परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। जिस गति से रहन-सहन तथा खर्च में परिवर्तन किया उसी गति से अथवा और भी वेग से भोजन में फेरफार करना आरम्भ किया। अन्नाहार-विषयक अंग्रेजी पुस्तकों में मैंने देखा कि लेखकों ने बड़ा सूक्ष्म विचार किया है। अन्नाहार की उन्होंने धर्म, विज्ञान, व्यवहार तथा आरोग्य की दृष्टियों से जांच की है। नैतिक दृष्टि से उन्होंने देखा कि मनुष्य को पशु-पक्षियों पर जो साम्राज्य मिला है वह उन्हें मारकर खा जाने के लिए नहीं बल्कि उनकी रक्षा के लिए मिला है, अथवा जैसे मनुष्य एक-दूसरे का उपयोग करता है, पर खाता नहीं, उसी तरह पशु-पक्षी भी वैसे उपयोग के लिए है, खाने के लिए नहीं। उन्होंने यह भी देखा कि भोजन भोग के लिए नहीं, बल्कि जीने के लिए ही है। इस दृष्टि से कितनों ने खुराक में मांस ही नहीं, अंडे और दूध के भी त्याग की सलाह दी है, और किया है। विज्ञान की दृष्टि से तथा मनुष्य की शरीर-रचना को देखकर कुछ इस नतीजे पर पहुंचे कि मनुष्य को खाना पकाने की आवश्यकता ही नहीं। वह पेड़ के पके फल खाने के लिए बना है। दूध पिये तो माता का ही पी सकता है, दांत निकलने पर जो चबाया जा सके, वही भोजन करना चाहिए। आरोग्य की दृष्टि से उन्होंने मिर्च-मसाला छोड़ देने की सलाह दी है। व्यावहारिक अथवा आर्थिक दृष्टि से अन्नाहार को ही उन्होंने सस्ती से सस्ती खुराक बताया है। मुझ पर इन चारों दृष्टियों का असर पड़ा और अन्नाहारी होटल में चारों दृष्टियों के मनुष्यों से मेरा परिचय हुआ। विलायत में अन्नाहारियों का एक मंडल था और उसकी ओर से एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता था। मैं उस साप्ताहिक का ग्राहक बन गया और मंडल का सदस्य भी। कुछ ही दिनों में मैं उसकी कमेटी में ले लिया गया। यहां अन्नाहारियों में स्तम्भस्वरूप माने जाने वालों से मेरा परिचय हुआ। मैं प्रयोगों के प्रवाह में पड़ा।

घर से मंगाई हुई मिठाइयों, मसाले आदि का व्यवहार बंद कर दिया। मन का झुकाव दूसरी ओर हो गया, इससे मिर्च-मसालों का शौक जाता रहा। जो साग-सब्जी रिमांड में बिना मसाले के फीकी लगती, वह अब सिर्फ उबाली हुई स्वादिष्ट लगने लगी। ऐसे अनेक अनुभवों से मैंने सीखा कि स्वाद का वास्तविक स्थान जीभ नहीं, मन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक दृष्टि तो मेरे सामने थी ही। उस समय एक पंथ ऐसा भी था जो चाय-कहवे को हानिकारक मानता और कोको का समर्थन करता था। केवल शरीर-यात्रा के लिये आवश्यक वस्तु ही लेनी चाहिए, यह मैंने समझ लिया था। इससे चाय, कहवे का इस्तेमाल एक तरह से बंद करके उनकी जगह कोको लेना शुरू किया।

होटल के दो विभाग थे। एक विभाग में जितनी चीजें खाइए, उतनी के पैसे देने होते थे। इसमें एक वक्त के एक से दो शिलिंग तक पड़ जाते थे। इसमें अच्छी स्थिति वाले लोग आते थे। दूसरे विभाग में छः पेनी में तीन सालन और एक टुकड़ा रोटी मिलती थी। जब मैं खूब किफायतशारी बरतने लगा तो प्रायः छः पेनीवाले विभाग में ही जाता था।

इन प्रयोगों के साथ बहुतेरे उपप्रयोग भी चलते रहे। कभी स्टार्च वाली खुराक छोड़ देना, कभी सिर्फ रोटी और फल पर रहना, तो कभी पनीर, दूध और अंडे ही लेना।

अंतिम प्रयोग उल्लेखनीय है। यह पंद्रह दिन भी न चला। स्टार्च रहित खुराक के समर्थनकर्ता ने अंडे की बड़ी तारीफ की है और यह सिद्ध किया है कि अंडा मांस नहीं है। यह तो ठीक ही है कि उसे इस्तेमाल करके हम किसी जीवित प्राणी को पीड़ा नहीं पहुंचाते। इस दलील के भुलावे में पड़कर मैंने प्रतिज्ञा के रहते भी अंडे खाये। पर मेरा मोह क्षणिक था। प्रतिज्ञा का नया अर्थ करने का मुझे अधिकार नहीं था। अर्थ तो वही लेना चाहिए, जो प्रतिज्ञा लिवाने वाला करता हो। मैं जानता था कि मांस न खाने की प्रतिज्ञा करानेवाली मां को अंडों का तो खयाल भी न रहा होगा। अतः मैंने प्रतिज्ञा के रहस्य का ध्यान आते ही अंडे छोड़ दिये और वह प्रयोग भी।

यह रहस्य सूक्ष्म है और ध्यान में रखने योग्य है। विलायत में मैंने मांस की तीन व्याख्याएं पढ़ीं। एक में मांस का अर्थ पशु-पक्षी का मांस माना गया है। इसलिए ऐसी व्याख्या करने वाले पशु-पक्षियों के मांस का तो त्याग करते हैं, पर मछली खाते हैं, अंडे तो खाते ही हैं। दूसरी व्याख्या के अनुसार साधारण मनुष्य जिसे जीव मानते हैं। उनका मांस त्याज्य है। अर्थात मछली त्याज्य है; पर अंडा ग्राह्य है। तीसरी व्याख्या में सामान्यतः जीवधारी माने जाने वाले प्राणिमात्र और उनसे पैदा होने वाली वस्तुएं त्याज्य हैं। इस व्याख्या के अनुसार अंडों और दूध का भी त्याग आवश्यक है। इनमें से पहली व्याख्या को मानकर तो मैं मछली भी खा सकता था; पर मेरी समझ में आ गया कि मेरे लिए तो माताजी की व्याख्या ही मान्य है। अतः यदि उनके सामने की हुई प्रतिज्ञा का पालन करना हो तो मैं अंडे नहीं ले सकता। इससे अंडे छोड़ दिये। इसमें मुझे बड़ी कठिनाई हुई, क्योंकि बारीकी से जांच करने पर मालूम हुआ कि अन्नाहारी होटलों में भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अंडे वाली बहुत चीजें बनती हैं। फलतः वहां भी पूरा जानकार होने तक मुझे परोसने वाले से पूछताछ करते रहना पड़ा, क्योंकि अधिकांश 'पुडिंग' और बहुतेरी केकों में तो अंडे पड़े होते ही थे। उससे एक तरह से तो मैं जंजाल से छूट गया, क्योंकि थोड़ी और बिलकुल सादी चीजें ही ले सकता था। दूसरी ओर से यह थोड़ा कष्टकर भी हुआ, क्योंकि ऐसी अनेक चीजें छोड़नी पड़ीं जिनका चस्का जबान को लग गया था। पर यह कष्ट क्षणिक था। प्रतिज्ञा-पालन का स्वच्छ, सूक्ष्म और स्थायी स्वाद मुझे उस क्षणिक स्वाद से अधिक प्रिय लगा।

पर सच्ची परीक्षा तो अभी दूसरे व्रत के सिलसिले में होने को थी।

'जाकौ राखै साइयां मार न सक्कै कोय'

इस प्रकरण को समाप्त करने के पहले प्रतिज्ञा के अर्थ के सम्बन्ध में कुछ कहना जरूरी मालूम होता है। मेरी प्रतिज्ञा माता के सामने किया हुआ इकरार था। दुनिया के बहुतेरे झगड़े इकरार के अनर्थ से ही पैदा होते हैं। चाहे जितनी स्पष्ट भाषा में इकरारनामा लिखा जाए, शब्द-शास्त्री 'काग' का 'बाघ' बना ही देगा। इसमें सभ्यासभ्य का भेद नहीं रहता। स्वार्थ सबको अंधा कर देता है। राजा से लेकर रंक तक इकरारों का अपने को ठीक जंचनेवाला अर्थ निकालकर संसार को, अपने को और प्रभु को ठगते रहते हैं। इस प्रकार जिस शब्द अथवा वाक्य का पक्षकार अपने को अनुकूल पड़ने वाला अर्थ करते हैं उसे न्यायशास्त्र 'द्विअर्थी मध्यमपद' कहता है। उत्तम पक्ष तो यह है कि प्रतिपक्षी ने हमारे कथन का जो अर्थ लिया हो उसको ही सही मानें, जो अर्थ अपने मन में हो उसे झूठा या अधूरा समझें। ऐसा ही दूसरा 'सुनहरा न्याय' यह है कि जहां दो अर्थ निकलते हों वहां निर्बल पक्ष जो अर्थ करता है वह सही माना जाए। इन दो 'सुवर्ण मार्गों के' त्याग के कारण ही अधिकांश झगड़े होते हैं और अधर्म चलता है। और इस अन्याय की जड़ असत्य है। जिसे सत्य के रास्ते ही जाना है उसे सुवर्ण मार्ग सहज ही मिल जाता है। उसे शास्त्र नहीं खोजने पड़ते। माता ने 'मांस' शब्द का जो अर्थ लिया और जो मैंने उस समय समझा वह मेरे लिए सही था। जो मैंने अधिक अनुभव से या अपनी विद्वता के मद में सीखा और समझा, वह नहीं।

इस समय तक के मेरे प्रयोग आर्थिक तथा आरोग्य की दृष्टि से होते थे। विलायत में उन्होंने धार्मिक रूप नहीं पकड़ा था। धार्मिक दृष्टि से मेरे कठोर प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में हुए जिनकी छानबीन आगे करनी होगी। पर यह कह सकता हूं कि उनका बीजारोपण विलायत में ही हुआ था।

नया धर्म स्वीकार करने वाले में धर्म प्रचार का उत्साह उस धर्म में जन्म हुए जनों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। अन्नाहार विलायत वालों के लिए तो नया धर्म था ही, मेरे लिए भी वैसा ही माना जा सकता है, क्योंकि बुद्धि से तो मैं मांसाहार की हिमायती हो जाने के बाद ही विलायत गया था। अन्नाहार की

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नीति का ज्ञानपूर्वक स्वीकार तो मैंने विलायत में ही किया। अतः मेरे लिए यह बात नये धर्म में प्रवेश करने जैसी ही थी। नवधर्मी में जो जोश आ जाता है वह मुझमें आ गया था। इसलिए मैंने अपने मुहल्ले में, जहां मैं उस समय रहता था, अन्नाहारी मंडल स्थापित करने का प्रस्ताव किया। यह मुहल्ला बेज़वाटर था। उस मुहल्ले में सर एडविन आर्नल्ड रहते थे। उनसे उप-सभापति बनने की प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार किया। डॉक्टर ओल्डफील्ड सभापति बने। मैं मंत्री बना। कुछ ही महीने चलकर उस संस्था का अंत हो गया, क्योंकि अपने नियम के अनुसार मैंने एक निश्चित अवधि के बाद वह मुहल्ला छोड़ दिया। पर इस छोटे-से अल्पकालिक अनुभव से मुझे संस्थाओं के स्थापन और संचालन का कुछ अनुभव हो गया।

18 : लज्जाशीलता-मेरी ढाल

अन्नाहारी-मंडल की कार्यकारिणी समिति में मैं चुना गया और उसकी हर बैठक में जाता भी था, पर बोलने को जबान ही न खुलती थी। मुझसे डॉक्टर ओल्डफील्ड कहते, "तुम मुझसे तो मजे से बातें करते हो, पर समिति की बैठक में कभी जबान ही नहीं खोलते। तुम्हें 'नर-मक्खी' की उपमा मिलनी चाहिए।" मैंनें इस मजाक को समझा। मादा मक्खियां सदा उद्यम करती रहती हैं, पर नर खाता-पीता है और काम के नाम ठनठन गोपाल। समिति में सब अपनी-अपनी राय प्रकट करते और मैं गूंगा ही बना बैठा रहता। बोलने की इच्छा न होती हो सो बात नहीं थी। पर बोलूं तो क्या? मुझसे सब सदस्य अधिक जानकार लगते थे। कभी किसी विषय में बोलने की आवश्यकता मालूम होती और मैं बोलने का साहस संग्रह करता कि इतने में दूसरा विषय छिड़ जाता।

यह स्थिति अरसे तक रही। इसी बीच समिति में एक गम्भीर विषय उपस्थित हुआ उसमें 'भाग न लेना' मुझे अन्याय होने देने-जैसे लगा। चुपचाप मत देकर शांत रहना नामर्दी जान पड़ी। मंडल के सभापति 'टेम्स आयरन वर्क्स' के मालिक मि. हिल्स थे। वह पक्के नीति-पालक थे। कह सकते हैं कि मंडल उन्हीं के पैसे से चलता था। समिति के अनेक सदस्य तो उन्हीं की छत्रछाया में रहते थे। डॉक्टर एलिन्सन भी इस समिति में थे। इन दिनों कृत्रिम उपायों द्वारा संतति-निग्रह का आंदोलन जारी था। डॉक्टर एलिन्सन उन उपायों के पक्षापाती थे और मजदूरों में उनका प्रचार करते थे। श्री हिल्स को ये उपाय नीति-नाशक लगे। उनकी समझ में अन्नाहारी मंडल केवल खुराक के सुधारने के लिए ही न था, वह नीति-वर्धक मंडल भी था। इसलिए उनकी राय में डॉक्टर एलिन्सन-जैसे डॉक्टर समाज-घातक विचार रखनेवालों के लिए मंडल में स्थान न था। फलतः डॉक्टर एलिन्सन को समिति से अलग करने का प्रस्ताव किया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गया। चर्चा में मैं रस लिया करता था। डॉक्टर एलिन्सन के कृत्रिम उपायों वाले विचार मुझे भयंकर लगते थे। उनके मुकाबले में श्री हिल्स के विरोध को मैं शुद्ध नीति मानता था। उनके लिए मेरे मन में बड़ा सम्मान था, उनकी उदारता का भी आदर करता था। पर अन्नाहार सम्वर्द्धक मंडल से एक शुद्ध नीति के नियमों को न मानने वाले का, उसकी अश्रद्धा के कारण, बहिष्कार हो, यह मुझे स्पष्ट अन्याय जान पड़ा। मेरी समझ से अन्नाहार-मंडल के स्त्री-पुरुष-संबंध-विषयक विचार श्री हिल्स के निजी थे। मंडल के सिद्धांतों से उनका कोई संबंध न था कि मंडल का उद्देश्य केवल अन्नाहार का प्रचार करना था, दूसरी नीति का नहीं। अतः मेरा मत था कि अन्य अनेक नीतियों का अनादर करने वाले के लिए भी मंडल में स्थान हो सकता है।

समिति में और लोग भी मेरे विचार के थे। लेकिन मुझे अपने विचार प्रकट करनें की धुन सवार हो गई थी। पर उन्हें लोगों के सामने रखूं कैसे, यह मेरे लिए अति विकट प्रश्न हो रहा था। बोलने का साहस न होता था। अतः मैंने अपने विचार लिखकर सभापति को देने का निश्चय किया। मैं अपना लिखित वक्तव्य ले गया। पर जहां तक मुझे याद है यह वक्तव्य पढ़ जाने की भी मेरी हिम्मत न पड़ी। सभापति ने उसे दूसरे सदस्य से पढ़वाया। डॉक्टर एलिन्सन का पक्ष हार गया। अर्थात इस प्रकार के मेरे लिए इस पहले युद्ध में मैं हारने वाले पक्ष में था। पर वह पक्ष सच्चा था। इसका मुझे विश्वास था, इसलिए मुझे पूर्ण संतोष था। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि इसके बाद मैंने समिति से इस्तीफा दे दिया।

मेरी लज्जाशीलता विलायत में अंत तक बनी रही। किसी के यहां मिलने जाता तो भी जहां पांच-सात आदमियों की मंडली जुटी कि मैं गूंगा बन जाता।

एक बार मैं वेंटनर गया। वहां मजूमदार भी थे। वहां एक अन्नाहारी कुटुम्ब था। उसी में हम दोनों रहते थे। 'एथिक्स ऑव डायट' (आहार-नीति) के लेखक इसी बंदरगाह में रहते थे। हम उनसे मिले। यहां अन्नाहार के प्रचार के लिए एक सभा हुई थी, जिसमें हम दोनों को बोलने का निमंत्रण था। दोनों ने स्वीकृति दी। मैंने जान लिया था कि लिखित भाषण पढ़ने में कोई कठिनाई न होगी। अपने विचारों को सिलसिले से और संक्षेप में व्यक्त करने की दृष्टि से बहुतों को मैं लिखित-भाषण पढ़ते देखता था। मैंने अपना भाषण लिख डाला। बोलने की हिम्मत न थी। पढ़ने खड़ा हुआ तो पढ़ भी न सका। आंखों के सामने अंधेरा छा गया, हाथ-पैर कांपने लगे। मेरा भाषण मुश्किल से एक फुलस्केप का रहा होगा। उसे मजूमदार ने पढ़कर सुनाया। मजूमदार तो सुंदर बोले, श्रोताओं ने उनके वचनों को तालियां पीटकर सराहा। मैं शर्माया और अपने न बोल सकने पर खिन्न हुआ।

विलायत में सभा में बोलने का अंतिम प्रयत्न मैंने विलायत छोड़ते समय किया था। विलायत छोड़ने के पूर्व मैंने अन्नाहारी मित्रों को हाबर्न भोजनालय में न्यौता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

दिया था। मैंने सोचा कि अन्नाहारी होटल में तो अन्नाहार मिलता ही है, पर मांसाहारी होटल में अन्नाहार का प्रवेश कराया जाए तो अच्छा हो। इसी विचार से इस होटल के मैनेजर से विशेष प्रबंध करके वहां भोज दिया। अन्नाहारियों में इस नए प्रयोग की तारीफ हुई, पर मेरी तो फजीहत ही हुई। भोजमात्र भोग के लिए ही होते हैं, पर पश्चिम में तो उसे एक कला का रूप दे दिया गया है। भोजों के समय खास तरह की सजावट, खास तरह का ठाट-बाट होता है। बाजे बजते हैं, भाषण होते हैं। इस नन्हें-से भोज में भी सारा आडम्बर मौजूद था। मेरे भाषण करने का समय आया। मैं खड़ा हुआ। खूब सोचकर बोलने की तैयारी करके गया था। थोड़े ही वाक्य बनाए थे। पर पहले वाक्य से आगे बढ़ ही न सका। एडीसन के संकोची स्वभाव के बारे में मैं पढ़ चुका था। आम सभा (हाउस ऑव कामन्स) में उसके पहले भाषण के बारे में कहा जाता है कि वह 'मेरी धारणा है, मेरी धारणा है, मेरी धारणा है', बस तीन बार यही कहकर रह गया, इससे आगे न बढ़ सका। जिस अंग्रेजी शब्द के मानी धारणा' है, उसका अर्थ 'गर्भधारण' भी है। अतः जब एडीसन आगे न बढ़ सका तो सभा में से एक मसखरे सदस्य ने कहा, "इन महाशय ने तीन बार गर्भ-धारण किया, पर जना कुछ नहीं।" यह कहानी मैंने सोच रखी थी और संक्षिप्त विनोदमय भाषण करने की इच्छा थी। इससे मैंने अपने भाषण का आरम्भ इस कहानी से किया, पर गाड़ी वहीं रुक गई। सोचा-विचारा सब भूल गया और विनोदपूर्ण तथा गूढ़ार्थभरा भाषण करने के बजाय मैं ही विनोद का पात्र बन गया। "सज्जनों आपने मेरा निमंत्रण स्वीकार किया, इसके लिए आपका कृतज्ञ हूं।" इतना ही कहकर मुझे बैठ जाना पड़ा।

कह सकता हूं कि यह 'झेंपूपन' दक्षिण अफ्रीका पहुंचने पर ही गया। बिलकुल छूट गया तो आज भी नहीं कहा जा सकता। बोलते समय सोचना तो पड़ता ही है। नये समाज में बोलते सकुचाता हूं। बोलने से बचा जा सकता हो तो जरूर बचता हूं और यह तो आज भी नहीं ही है कि दस आदमियों के बीच बैठा होऊं तो कोई खास बात कर ही सकूं या करने की इच्छा होती हो।

इस शर्मीली प्रकृति के कारण मेरी फजीहत तो हुई, पर मेरा नुकसान कुछ न हुआ; बल्कि आज तो देखता हूं कि इससे कुछ फायदा हुआ। बोलने का जो संकोच मुझे पहले दुःखकर था वह अब सुखकर है। एक बड़ा लाभ तो यह हुआ कि मैंने शब्दों की मितव्ययता सीखी, अपने विचारों पर काबू रखने की आदत सहज ही पड़ गई। अपने को मैं यह प्रमाणपत्र निस्संकोच दे सकता हूं कि मेरी जीभ या कलम से बिना विचारे या तौले शायद ही कोई शब्द निकलता हो। मुझे याद नहीं पड़ता कि अपने भाषण या लेख के किसी अंश के लिए मुझे कभी शर्माना या पछताना पड़ा हो, उल्टा अनेक खतरों से बचा हूं, और जो बहुत-सा समय बचा वह लाभ घलुए में हुआ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अनुभव ने मुझे यह भी सिखाया कि सत्य के पुजारी के लिए मौन का सेवन उचित है। जाने-अनजाने भी मनुष्य अक्सर अतिश्योक्ति करता है अथवा जो कहने योग्य है उसे छिपाता है या भिन्न रूप कहता है। ऐसे संकटों से बचने के लिए भी अल्पभाषी होना आवश्यक है। थोड़ा बोलने वाला बिना विचारे न बोलेगा, अपने प्रत्येक शब्द को तौलेगा। अक्सर आदमी बोलने के लिए अधीर हो जाता है। 'मुझे भी कुछ कहना है' ऐसी चिटों से किस सभापति का पाला न पड़ा होगा? समय मिल गया तो वह उसके लिए नाकाफी होता है, अधिक बोलने देने की मांग करता है और अन्त में बिना इजाजत के भी बोलता रहता है। इस सारे बोलने से शायद ही दुनिया का कोई लाभ हुआ हो। उतने समय का नाश होना तो प्रत्यक्ष ही है। अतः आरम्भ में यद्यपि अपनी लज्जाशीलता मुझे चुभती थी; पर आज उसका स्मरण मेरे लिए आनन्ददायक है। यह लज्जाशीलता मेरी ढाल थी। उससे मुझे परिपक्व होने का लाभ मिला। अपनी सत्य की पूजा में मुझे उससे सहायता मिली।

19 : असत्यरूपी विष

चालीस साल पहले विलायत जाने वालों की संख्या आज की अपेक्षा कम थी। उनमें यह रिवाज-सा पड़ा हुआ था कि ब्याहे भी अपने को कुमार बताएं। विलायत में स्कूल या कॉलेज में पढ़ने वाला कोई विद्यार्थी ब्याहा नहीं रहता, विवाहित के लिए विद्यार्थी जीवन नहीं होता। हमारे यहां तो प्राचीन काल में विद्यार्थी ब्रह्मचारी ही कहलाता था। बाल विवाह इसी जमाने में प्रचलित हुआ है। कह सकते हैं कि विलायत में बाल-विवाह सरीखी वस्तु नहीं है। अतः हिंदी युवकों को वहां अपने को ब्याहा बताते लाज लगती है। विवाह छिपाने का दूसरा एक कारण है कि यदि मालूम हो जाए कि विवाहित है तो जहां रहते हैं उस कुटुम्ब की युवती लड़कियों के साथ घूमना-फिरना और हँसी-मजाक नहीं चल सकता। यह हँसी-मजाक अधिकतर निर्दोष होता है। माता-पिता इस तरह का दोस्ताना पसंद भी करते हैं। युवक और युवतियों में ऐसे सहवास की आवश्यकता भी मानी जाती है, क्योंकि वहां तो प्रत्येक युवक को अपनी सहधर्मिणी ढूंढ़ लेनी पड़ती है। अतः विलायत में स्वाभाविक समझा जाने वाला संबंध हिंदुस्तान का नवयुवक वहां पहुंचते ही जोड़ना आरम्भ कर दे तो परिणाम अवश्य भयंकर होगा। अनेक बार ऐसे परिणाम प्रकट भी हुए हैं। तथापि इस मोहिनी माया में हमारे चुवक फंसते रहे हैं। उस संग के निमित्त, जो अंग्रेजों के लिए चाहे जितना निर्दोष होते हुए हमारे लिए त्याज्य हैं, हमारे नवयुवक असत्याचरण पसंद करते रहे। इस जाल में मैं भी घिसटा। पांच-छः वर्ष पहले से विवाहित और एक लड़के का बाप होते हुए भी अपने जाल में कुंवारा बताते मैं नहीं हिचका। उसका स्वाद तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैंने थोड़ा ही सीखा। मेरे संकोची स्वभाव ने मेरे चुप्पेपन ने मुझे बहुत बचाया। मैं बोल नहीं पाता तो कौन लड़की फालतू बैठी थी जो मेरे साथ बातें करे! मेरे साथ घूमने भी शायद ही कोई लड़की निकलती थी।

मैं जितना झेंपू, उतना ही डरपोक भी था। वेंटनर में जिस कुनबे में मैं रहता था वैसा कुटंबों में, सभ्यता की खातिर भी, घर की लड़की हो तो मुझ-जैसे परदेशी को घुमाने ले जायेगी। इसी कर्त्तव्य के अनुरोध से इस घर की मालकिन की लड़की मुझे एक दिन वेंटनर के आस-पास की सुंदर पहाड़ियों पर ले गई। मेरी चाल कोई वैसी धीमी न थी, पर उसकी चाल मुझसे भी तेज थी। इसलिए मुझे तो उसके पीछे घिसटना पड़ रहा था। वह तो रास्ते भर बातों का फव्वारा छोड़ती चल रही थी और मेरे मुंह से कभी सिर्फ 'हां' या 'ना' निकल पाता। बहुत बढ़ गया तो 'कैसा सुंदर है!' इतना और कह पाता! वह तो हवा में उड़ी जा रही है और मैं सोचता था, कब घर लौटें। लेकिन 'चलो, लौटें' कहने की हिम्मत नहीं होती। इतने में हम एक पहाड़ी की चोटी पर जा खड़े होते हैं। पर उतरे कैसे? ऊंची एड़ी के बूट पहने होने पर भी बीस-पच्चीस बरस की युवती बिजली की तरह ऊपर से उतर गई। मैं तब तक लजाया हुआ ढाल कैसे उतरूं, यही सोच रहा हूं। वह नीचे खड़ी हँस रही है; मुझे हिम्मत बंधा रही है, कहती है-आऊं, हाथ पकड़कर उतार लाऊं? इतना बेशऊर साबित होना मैं कैसे मंजूर करता। बड़ी मुश्किलों से पैर धरते और कहीं-कहीं बैठकर सरकते हुए उतरा। उसने मजाक में "शा.....ब्बा...श" कहकर मुझे और गहरी लज्जा में डाला और पानी-पानी कर दिया। ऐसी फबती कसकर मुझे शर्मिन्दा करने का उसे पूरा हक था।

पर हर जगह मैं इस तरह कैसे बच पाता? असत्य का जहर भगवान को मुझ में से निकालना मंजूर था। वेंटनर की भांति ही ब्राइटन भी समुद्र तट पर हवाखोरी का मुकाम है। वहां एक बार मैं गया। जिस होटल में टिका वहां एक औसत दरजे की खुशहाल विधवा बुढ़िया भी हवाखोरी के लिए आकर ठहरी हुई थी। विलायत में यह मेरा पहला ही साल था-वेंटनर के पहले का। यहां सूची में खाने की सभी चीजों के नाम फ्रेंच भाषा में लिखे थे। मैं उन्हें समझ न पाता था। वह बुढ़िया जिस मेज पर बैठी थी उसी पर मैं भी था। वृद्धा ने देखा कि यह नया आदमी है और कुछ परेशान भी है। उसने बातें शुरू कीं,

"तुम अजनबी से जान पड़ते हो और किसी परेशानी में हो। तुमने अब तक कुछ खाने को नहीं मंगवाया।"

मैं भोज्य पदार्थों की सूची पढ़ और परोसने वाले से पूछने की तैयारी कर रहा था। मैंने उस भद्र महिला को धन्यवाद दिया और कहा, "इस सूची को मैं समझ नहीं पा रहा हूं। मैं निरामिष भोजी हूं। इसलिए इसमें कौन-कौन-सी वस्तुएं निर्दोष हैं, मुझे यह जानने की जरूरत है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उस महिला ने कहा, "ले लो, मैं तुम्हारी मदद करती हूं, और सूची समझाती हूं। मैं तुम्हे बता सकती हूं कि इसमें से तुम क्या खा सकते हो।"

मैंने उसकी सहायता सधन्यवाद स्वीकार की। यहां से हमारा जो संबंध जुड़ा, मैं जब तक विलायत में रहा तब तक, तथा उसके बाद भी, बरसों तक बना रहा। उसने मुझे लंदन का पता दिया और साथ ही हर रविवार को अपने यहां खाने का न्यौता भी। अन्य अवसरों पर भी अपने यहां मुझे बुलाती, कोशिश करके मेरा शर्मीलापन छुड़वाती, जवान लड़कियों से परिचय कराती और उनके साथ बातें करने को प्रोत्साहन देती। एक स्त्री जो उसी के यहां रहती थी, उससे बहुत बातें कराती। कभी-कभी हमें अकेले भी छोड़ देती।

पहले मुझे यह सब बहुत अखरा। क्या बातें करना, यह न सूझता। हँसी-मजाक भी क्या करूं? पर वृद्धा मुझे पक्का करती रही। मैं 'गढ़ा' जाने लगा। हर रविवार की राह देखने लगा। उक्त स्त्री से बातें करना भी रुचने लगा।

बुढ़िया भी मुझे लुभाती जाती। उसके इस सोहबत में रस पड़ गया। उसने तो हम दोनों का भला ही चाहा होगा।

अब मैं क्या करूं? मैंने सोचा, मैंने इस भद्र महिला को अपने ब्याह की बात बता दी होती तो कितना अच्छा था? तब वह मेरे किसी के साथ ब्याह करने की बात सोचती क्या? अब भी क्या बिगड़ा है। मैं सच कह दूं तो सारे संकटों से बच जाऊंगा। यह तय करके मैंने उसे पत्र लिखा। जैसा कि मुझे याद है, उसका सार दे रहा हूं:

"ब्राइटन में भेंट होने के बाद से आप मुझ पर प्रेम रखती आई हैं। माँ अपने लड़के का जैसे खयाल रखती है वैसे ही आप मेरा खयाल रखती हैं। आप तो यह भी मानती हैं कि मेरा ब्याह हो जाना चाहिए और इसीलिए युवतियों से मेरा परिचय कराती हैं। ऐसे सम्बन्ध के अधिक आगे बढ़ने के पहले मुझे आपको बता देना चाहिए कि मैं आपके प्रेम के योग्य नहीं हूं। मुझे, आपके यहां जब मेरा आना-जाना शुरू हुआ उसी समय बता देना चाहिए था कि मेरा विवाह हो चुका है। हिन्दुस्तान के विद्यार्थी जो विवाहित होते हैं वे इस देश में अपने विवाह की बात प्रकट नहीं करते, यह मुझे मालूम है। इसी से मैंने भी उस रीति का अनुसरण किया। अब देख रहा हूं कि मुझे अपने विवाह की बात बिलकुल छिपानी नहीं चाहिए थी। मुझे तो इतना और कह देना चाहिए कि मेरा ब्याह बचपन में हुआ था और मेरे एक लड़का भी है। आपसे यह बात छिपा रखने का मुझे अब बड़ा दुःख हो रहा है। पर सत्य कहने का अब मुझे ईश्वर ने साहस दिया, इससे मुझे आनन्द हो रहा है। आप मुझे माफ करेंगी। जिस बहन से आपने मेरा परिचय कराया है, उसके साथ मेरा कोई अनुचित सम्बन्ध नहीं रहा है, इसका मैं आपको इतमीनान दिलाता हूं। मुझे मर्यादा से आगे नहीं जाना चाहिए, इसका मुझे खयाल

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Trust Foundation. CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

है। पर आपकी इच्छा तो स्वभावतः यह होगी कि किसी के साथ मेरा गठबंधन हो जाए। आपके मन में यह बात और आगे न बढ़े, इसके लिए भी मुझे आपके सामने सत्य को प्रकट कर देना चाहिए।"

"यह पत्र मिलने के बाद आप मुझे अपने यहां आने के अयोग्य समझें तो मुझे तनिक भी बुरा न लगेगा। आपके स्नेह का ऋण मुझ पर सदा रहेगा। यह तो मुझे कहना चाहिए कि आप मेरा त्याग न करें तो मुझे खुशी होगी। अब भी मुझे अपने यहां आने देने लायक समझेंगी तो मेरे लिए यह आपके प्रेम की एक नई निशानी होगी और उस प्रेम का पात्र बनने के लिए सदा प्रयत्न करता रहूंगा।"

पाठक जान लें कि यह पत्र मैंने कोई क्षणभर में नहीं लिखा था। न मालूम कितने मसौदे बनाये-बिगाड़े होंगे। पर यह पत्र भेजकर मैंने अपने सिर का भारी बोझ उतार दिया।

लगभग लौटती डाक से ही उक्त विधवा बहने का उत्तर मिला। उसमें उसने लिखा:

"तुम्हारा साफ हृदय का पत्र मिला। हम दोनों को खुशी हुई और खूब हँसी। तुमने जैसे असत्य का आश्रय लिया था वह तो क्षमा के योग्य ही है। पर तुम्हारा अपनी असलियत बतला देना अच्छा हुआ। मेरा न्यौता कायम है। अगले रविवार को हम तुम्हारी बाट देखेंगी। तुम्हारे बाल-विवाह की बातें सुनूंगी और तुम्हारा मजाक उड़ाने का आनन्द भी लूंगी। हमारी मित्रता तो जैसी थी वैसी ही रहेगी, इसका विश्वास रखना।"

इस प्रकार अपने भीतर असत्य का जो विष भर गया था उसे मैंने निकाल बाहर किया, इसके बाद तो और कहीं भी अपने विवाह इत्यादि की बातें करने में मुझे घबराहट न होती थी।

20 : धार्मिक परिचय

विलायत में रहते करीब एक साल हुआ होगा कि दो थियोसोफिस्ट सज्जनों से परिचय हुआ। दोनों सगे भाई थे और अविवाहित थे। उन्होंने मुझसे गीता के विषय में बातें कीं। वे एडविन आर्नल्ड का गीता का अनुवाद पढ़ते थे, लेकिन मुझे उन्होंने गीता अपने साथ संस्कृत में पढ़ने को निमन्त्रित किया। मैं शरमाया, क्योंकि मैंने तो गीता न संस्कृत में पढ़ी थी, न भाषा में ही। मुझे उनसे कहना पड़ा, "मैंने गीता पढ़ी नहीं है, पर आप लोगों के साथ मैं गीता पढ़ने को तैयार हूं। मेरा संस्कृत का अभ्यास भी नहीं के बराबर ही है। मैं उसे इतना ही समझ सकूंगा कि अनुवाद में गलत अर्थ किया गया हो तो सुधार सकें।" इस प्रकार इन भाइयों के साथ मैंने गीता पढ़ना आरम्भ किया। दूसरे अध्याय के आखिरी श्लोकों में के–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यायतो विषयान्पंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[1]

इन श्लोकों का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। उनकी ध्वनि मेरे कानों में गूंजती ही रहती। भगवद्गीता अमूल्य ग्रंथ है, यह मुझे उस समय प्रतीत हुआ। वह मान्यता धीरे-धीरे बढ़ती गई और आज मैं तत्त्वज्ञान के लिए उसे सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूं। निराशा के समयों में उस ग्रंथ ने मेरी अमूल्य सहायता की है। उसके अंग्रेजी अनुवाद लगभग सब पढ़ गया हूं, पर एडविन आर्नल्ड का अनुवाद मुझे सबसे अच्छा लगता है। मूल ग्रंथ के भावों की रक्षा भी की गई है, फिर भी वह ग्रंथ उलथा-जैसा नहीं लगता। उस समय का यह वाचन मेरा गीता अभ्यास करना नहीं कहला सकता। मेरे नित्यवाचन का ग्रंथ तो वह कई बरस बाद हुआ।

इन्ही भाइयों ने मुझसे आर्नल्ड का बुद्ध-चरित (लाइट ऑव एशिया) पढ़ने की सिफारिश की। अब तक तो सर एडविन आर्नल्ड के गीता के अनुवाद का ही मुझे पता था। बुद्ध-चरित को मैंने गीता की अपेक्षा भी अधिक चाव से पढ़ा। पुस्तक हाथ में लेने के बाद पूरी करके ही रख सका।

ये भाई मुझे एक बार ब्लैवट्स्की लाज में भी ले गये। वहां मुझे मैडम ब्लैवट्स्की के और मिसेज वेसेंट के दर्शन कराये। मिसेज वेसेंट हाल में ही थियोसोफिकल सोसाइटी में दाखिल हुई थीं। अतः पत्रों में इस विषय की जो चर्चा जारी थी मैं उसे शौक से पढ़ता था। इन भाइयों ने मुझे सोसाइटी में दाखिल हो जाने को भी कहा। मैंने विनयपूर्वक 'ना' की और कहा, "मैं धर्मज्ञान से बिल्कुल कोरा हूं। इसलिए मैं किसी पंथ में सम्मिलित नहीं होना चाहता।" मुझे ऐसा स्मरण है कि उन्हीं भाइयों के कहने से मैंने मैडम ब्लैवट्स्की की पुस्तक 'की टू थियोसोफी' (थियोसोफी की कुंजी) पढ़ी। उससे हिन्दू धर्म की पुस्तकें पढ़ने की इच्छा हुई और यह मत, जो पादरियों के मुंह से सुना करता था, कि हिंदू धर्म वहमों से ही भरा है, वह मन से निकल गया।

इन्ही दिनों एक अन्नाहारी छात्रावास में मुझे मांचेस्टर के एक भद्र ईसाई मिले। उन्होंने मुझ से ईसाई धर्म की चर्चा की। मैंने उन्हें अपना राजकोट का स्मरण सुनाया। सुनकर वह दुःखी हुए। उन्होंने कहा, "मैं स्वयं अन्नाहारी हूं, शराब

---

1. विषयों का चिंतन करने वाले पुरूष को उनमें आसक्ति उपजती है, आसक्ति से कामना होती है और कामना से क्रोध उपजता है, क्रोध में से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रांत हो जाती है, स्मृति भ्रांत होने से ज्ञान का नाश हो जाता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया, वह मृतक तुल्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भी नहीं पीता। यह सही है कि बहुतेरे ईसाई मांस खाते और शराब पीते हैं, पर दोनों में से किसी चीज का इस्तेमाल इस मजहब में फर्ज नहीं है। मैं आपसे बाइबिल पढ़ने की सिफारिश करता हूं।" मैंने यह सलाह मान ली। बाइबिल उन्होंने ही खरीद दी। मुझे कुछ ऐसा खयाल है कि ये सज्जन स्वयं ही बाइबिल बेचते थे। उन्होंने नक्शे, अनुक्रमणिका आदि से युक्त बाइबिल मुझे दी। मैंने उसे आरम्भ किया। पर मैं 'पुराना इकरार' (ओल्ड टेस्टामेंट) ही न पढ़ सका। 'जेनेसिस'–सृष्टिरचना–के प्रकरण के बाद तो पढ़ने में ऊंघने ही लगता। मुझे याद है कि 'पढ़ा' कहने भर को, बिना रस के और बिना समझे, मैं अन्य प्रकरण बड़े कष्ट से पढ़ पाया। 'नम्बर्स' नामक प्रकरण पढ़ते हुए मुझे अरूचि हो गई।

जब 'नये इकरार' (न्यू टेस्टामेंट) पर आया तो दूसरा ही असर हुआ। ईसा के 'गिरी–प्रवचन' का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। वह हृदय में पैठ गया। बुद्धि ने गीता के साथ उसकी तुलना की।

"जो तेरा कुर्ता मांगे उसे अंगरखा भी दे दे, जो तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, बायां गाल भी उसके सामने कर दे", यह पढ़कर मुझे अपार आनन्द हुआ। श्यामलभट्ट का छप्पय याद आया। मेरे बालक मन ने गीता, आर्नल्ड कृत बुद्धचरित और ईसा के वचनों का एकीकरण किया। त्याग में धर्म है, यह बात मन को रुची।

इस वाचन से अन्य धर्माचार्यों के जीवन- चरित पढ़ने की इच्छा हुई। किसी मित्र ने कार्लाइल की 'विभूतियां और विभूतिपूजा' (हीरोज़ ऐंड हीरो वर्शिप) पुस्तक पढ़ने की सिफारिश की। उसमें मैंने पैगम्बर (हजरत मुहम्मद) साहब के बारे में पढ़ा, जिससे उनकी महत्ता, वीरता और तपश्चर्या की मुझे कल्पना हो सकी।

पर इस परिचय से आगे न बढ़ सका। अपनी परीक्षा की पुस्तकों के सिवा और कुछ पढ़ने की फुर्सत न निकाल सका। पर मेरे मन में गांठ बंधी कि मुझे धर्म–पुस्तकें पढ़नी हैं और सब मुख्य धर्मों का उचित परिचय प्राप्त कर लेना है।

नास्तिकता के बारे में भी कुछ जाने बिना कैसे काम चलता? ब्रेडला का नाम सब भारतीयों के कान पर था ही। वह नास्तिक समझे जाते थे। इसलिए नास्तिकवाद के बारे में एक किताब पढ़ी। नाम याद नहीं रहा। उसका मुझ पर कोई असर न पड़ा। नास्तिकतारूपी सहारा का रेगिस्तान मैं पार कर गया था। मिसेज बेसेंट की ख्याति तो उस समय भी खूब थी ही। उनके नास्तिक से आस्तिक होने की बात ने भी नास्तिकवाद की ओर से मुझे उदासीन बनाया। मिसेज बेसेंट की "मैं थियोसोफिस्ट कैसे बनी?" पुस्तिका मैंने पढ़ ली थी। ब्रेडल का देहान्त इसी समय के लगभग हुआ। बोकिंग में उनकी अन्त्येष्टि–क्रिया की गई। मैं भी वहां उपस्थित था। मेरा खयाल है कि (विलायत में मौजूद) हिंदुस्तानियों में तो एक भी बाकी न रहा होगा। उनके प्रति आदर प्रकट करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कितने ही पादरी भी आये थे। वापसी में एक जगह हम सब ट्रेन की राह देख रहे थे। उस मजमे में के किसी दंगली नास्तिक ने पादरियों में से एक से जिरह शुरू की–"क्यों साहब, आप फर्माते हैं न, कि ईश्वर है?"

उस भले आदमी ने धीरे-से जवाब दिया, "जी हां, कहता तो हूं।"

नास्तिक भाई हँसा और मानो पादरी को मात दे रहा हो, ऐसे ढंग से बोला,"अच्छा जी, पृथ्वी की परिधि अट्ठाईस हजार मील है, यह तो कबूल करते हैं न?"

"बेशक"

"तो बतलाइये कि ईश्वर कद में कितना होगा और वह कहां होगा?"

"हम समझ पायें तो हम दोनों के हृदय में वह बसता है।

"बच्चों को फुसलाइए बच्चों को!" कहकर उक्त योद्धा ने आस-पास खड़े हम लोगों की ओर विजय-सूचक दृष्टि से देखा। पादरी ने नम्रतापूर्वक मौन धारण कर लिया।

इस सम्वाद ने नास्तिकतावाद की ओर मेरी अरूचि और बढ़ा दी।

21 : "निर्बल के बल राम"

धर्मशास्त्र की तथा दुनिया के धर्मों की थोड़ी जानकारी तो हुई पर उतना ज्ञान मनुष्य के बचाव के लिए काफी नहीं साबित होता। आपत्ति-काल में मनुष्य को जो वस्तु बचाती है, उसका उस समय उसे न भान होता है, न ज्ञान। नास्तिक बच जाने पर कहता है कि मैं संयोगवश बच गया। आस्तिक ऐसे अवसर पर कहेगा कि मुझे ईश्वर ने बचाया। परिणाम के उपरांत वह यह अनुमान कर लेगा कि धर्मों के अभ्यास से, संयम से ईश्वर उसके हृदय में प्रकट होता है। ऐसा मानने का उसे अधिकार है, पर बचते समय वह नहीं जानता कि उसे उसका संयम बचाता है या कौन बचाता है। जिसे अपने संयम के बल का अभिमान रहता है उसके संयम को मिट्टी में मिलते किसने नहीं देखा है? शास्त्र-ज्ञान तो ऐसे अवसर पर खोखला सिद्ध होता है।

इस बौद्धिक धर्मज्ञान के मिथ्यात्व का अनुभव मुझे विलायत में हुआ। पहले जो ऐसे भय में से मैं बचा, उसका विश्लेषण करना संभव नहीं। मेरी उम्र उस समय बहुत कच्ची थी; पर अब तो मैं बीस साल का था। गृहस्थाश्रम का काफी अनुभव हो चुका था।

बहुत करके मेरे विलायतवास के आखिरी साल में, अर्थात सन् 1890 में, पोर्टस्मथ में अन्नाहारियों का सम्मेलन हुआ था। उसमें मुझे और मेरे एक हिन्दुस्तानी दोस्त को निमंत्रित किया गया था। हम दोनों गये। हम दोनों को एक स्त्री के यहां टिकाया गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पोर्टस्मथ खलासियों का बन्दरगाह कहलाता है। वहां बहुत से घर दुराचारिणी स्त्रियों के हैं। वे स्त्रिया वेश्या तो नहीं थीं, पर शुद्धाचारिणी भी न थीं। ऐसे ही एक घर में हम टिके थे। कहने का मतलब यह नहीं है कि स्वागत-समिति ने जानबूझ कर ऐसा घर ढूंढ़ा था। पर पोर्टस्मथ जैसे बन्दरगाह में यात्रियों को ठहराने के लिए घर तलाशना हो तो कौन घर अच्छा है, कौन बुरा, यह कहना कठिन ही होगा।

रात हुई। हम सम्मेलन से डेरे पर लौटे। खा-पीकर ताश खेलने बैठे। विलायत में अच्छे घरों में भी इस प्रकार मेहमानों के साथ गृहिणी ताश खेलने बैठती हैं। ताश खेलते समय सभी निर्दोष विनोद करते हैं, पर यहां वीभत्स विनोद आरम्भ हुआ। मुझे मालूम नहीं था कि मेरे साथी इसमें पक्के हैं। मुझे इस विनोद में रस मिला। मैं भी शामिल हुआ। वचन से कर्म में उतर पड़ने की तैयारी थी। ताश किनारे धर ही रहे थे, पर मेरे भले साथी के मन में राम पैठे। वह बोले, "अरे, तुझमें यह कलियुग क्यों? तेरा यह काम नहीं है। भाग यहां से।"

मैं शरमाया। होश में आया। हृदय में उस मित्र का उपकार माना। माता के सामने की हुई प्रतिज्ञा याद आई। मैं भागा। अपनी कोठरी में कांपता-कांपता पहुंचा। छाती धड़क रही थी। मेरी वही हालत थी जो कातिल के हाथ से बच जाने वाले शिकार की होती है।

मुझे ऐसा खयाल है कि पर-स्त्री को देखकर विकारवश होने और उसके साथ रंगरलियां करने की इच्छा होने का यह पहला मौका था। मेरी वह रात आंखों में कटी। तरह-तरह के विचारों ने मुझ पर हमला बोला। घर छोडूं? भागूं? मैं कहां हूं? सचेत न रहूं तो मेरा क्या हाल होगा? मैंने खूब सावधान रहकर चलने का निश्चय किया। यह तय किया कि घर तो नहीं, पर जैसे भी हो पोर्टस्मथ जल्दी-से-जल्दी छोड़ देना है। सम्मेलन दो दिन ही चलने वाला था। अतः मुझे जहां तक याद है मैंने दूसरे ही दिन पोर्टस्मथ छोड़ दिया। मेरे साथी वहां कुछ दिन ठहरे।

धर्म क्या है, ईश्वर क्या है, वह हममें किस तरह काम करता है, यह सब मैं उस समय नहीं जानता था। साधारण रूप में मैंने उस समय यही समझा कि ईश्वर ने मुझे बचा लिया; पर ऐसे अनुभव मुझे विविध क्षेत्रों में हुए हैं। मैं अनुभव करता हूं कि 'ईश्वर ने उबारा' इस वाक्य का अर्थ आज मैं बहुत ज्यादा समझने लग गया हूं। पर साथ ही यह भी जानता हूं कि इस वाक्य की पूरी कीमत आज भी नहीं आंक सका हूं। वह अनुभव से ही आंकी जा सकती है। पर अनेक आध्यात्मिक प्रसंगों में, वकालत करते हुए, संस्थाएं चलाने में, राजनीति में, 'मुझे ईश्वर ने बचाया है' यह कह सकता हूं। मैंने देखा है कि जब सारी आशा जवाब दे देती है, कुछ करते-धरते नही बनता, तब कहीं-न-कहीं से मदद आ पहुंचती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। स्तुति, उपासना, प्रार्थना ये वहम नहीं है, बल्कि हमारा खाना-पीना, चलना-बैठना आदि जितना सत्य है उससे भी ये चीजें अधिक सत्य हैं। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि यही सत्य है, और सब मिथ्या है।

ऐसी उपासना, ऐसी प्रार्थना कोई वाणी का विलास नहीं है। उसका मूल कंठ नहीं, हृदय है। अतः यदि हमारा हृदय निर्मल हो जाय, हृततंत्री के तारों को हम सुसंगठित रखें तो उससे निकलने वाला सुर गगनगामी होता है। उसके लिए जिह्वा की आवश्यकता नहीं है। वह स्वभावतः ही अद्‌भुत वस्तु है। विकाररूपी मलों की शुद्धि के लिए हार्दिक उपासना औषधरूप है, इस विषय में मुझे शंका ही नहीं है। पर उस प्रसाद की प्राप्ति के लिए हममें पूरी-पूरी नम्रता होनी चाहिए।

22 : नारायण हेमचंद्र

इन्हीं दिनों स्वर्गीय नारायण हेमचंद्र विलायत आये थे। लेखक-रूप में उनका नाम मैंने सुना था। उनसें मैं नेशनल-इंडियन ऐसोसिएशन वाली मिस मैनिंग के यहां मिला था। मिस मैनिंग को मालूम था कि मुझे सबसे मिलना-जुलना नहीं आता। मैं उनके यहां जाया करता तो मुंह बंद किये बैठा रहता। कोई बुलवाता तभी बोलता था।

उसने नारायण हेमचंद्र से मेरा परिचय कराया।

नारायण हेमचंद्र को अंग्रेजी नहीं आती थी। उनका पहनावा विचित्र था। बेढंगा पतलून पहने हुए थे। ऊपर सिकुड़ा हुआ, गले पर मैला,बादामी रंग का कोट था। न नेकटाई, न कालर। कोट पारसी तर्ज का था, पर बेढंगा। सिर पर झब्बेदार ऊनी गुंथी हुई टोपी थी। उन्होंने लम्बी दाढ़ी बढ़ा रखी थी।

इकहरा बदन, ठिगना कद। मुंह पर चेचक के दाग थे। चेहरा गोल। नाक न नुकीली, न चपटी। दाढ़ी पर हाथ फिरा करता।

सारे सूटेड-बूटेड लोगों के बीच नारायण हेमचंद्र विचित्र लगते और सबसे अलग से पड़ जाते थे।

मैंने कहा, "आपका नाम तो मैंने बहुत सुना है। आपके कुछ लेख भी पढ़े हैं। क्या आप मेरे यहां आयेंगे?"

नारायण हेमचंद्र की आवाज कुछ मोटी थी। उन्होंने मुस्कराते हुए पूछा,

"आप कहां रहते हैं?"

"स्टोर स्ट्रीट में।"

"तब तो हम पड़ोसी हैं। मुझे अंग्रेजी सीखनी है आप मुझे सिखायेंगें?"

मैंने उत्तर दिया, "मैं आपकी कोई सहायता कर सकूं तो मुझे प्रसन्नता होगी। मुझसे जो कुछ हो सकेगा अवश्य करूंगा। आप कहें तो आपके डेरे पर आ जाया करूं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं-नहीं, मैं ही आपके यहां आऊंगा। मेरे पास पढ़ने को जो है, उसे लेता आऊंगा।" हमने समय नियत कर लिया। हममें गहरा स्नेह हो गया।

नारायण हेमचंद्र व्याकरण बिलकुल न जानते थे। 'घोड़े' को क्रियापद बना देते और 'दौड़ना' को संज्ञा। ऐसी मजेदार मिसालें तो मुझे कई याद हैं। पर वह तो मुझ-जैसों को घोंटकर पी जाने वाले आदमी थे। मेरे साधारण व्याकरण ज्ञान से वह प्रभावित होने वाले न थे। व्याकरण न जानने की उन्हें कोई शर्म न थी।

"मैं कोई तुम्हारी तरह पाठशाला में नहीं पढ़ा हूं। मुझे अपने विचार प्रकट करने में व्याकरण की जरूरत नहीं जान पड़ती। बोलो, तुम्हें बंगला आती है? मुझे तो आती है। मैं बंगाल में घूमा हूं। महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर की पुस्तकों का अनुवाद तो गुजराती जनता को मैंने ही दिया है न? मुझे तो बहुतेरी भाषाओं में से गुजराती जनता को उलथा देना है। उलथा करने में मैं शब्दार्थ से नहीं चिपकता। भावार्थ दे दिया और मेरा काम बन गया। मेरे बाद दूसरे भले ही अधिक देते रहें। मैं तो बिना व्याकरण के मराठी जानता हूं, हिन्दी जानता हूं और अब अंग्रेजी भी समझने लगा हूं। मुझे तो शब्द-भंडार चाहिए। तुम नहीं जानते होगे कि सिर्फ अंग्रेजी से मेरा संतोष होने वाला नहीं है। मुझे तो फ्रांस जाना है और फ्रेंच भी सीखनी है। मुझे मालूम है कि फ्रेंच साहित्य-संपन्न है। हो सका तो जर्मनी भी जाऊंगा और जर्मन भी सीखूंगा।"

नारायण हेमचंद्र की वाग्धारा इस तरह चलती ही रही। भाषाएं जानने और यात्रा करने का उन्हें बेहद शौक था।

"तब तो आप अमेरिका भी जायेंगे ही?"

"अवश्य। इस नई दुनिया को देखे बिना मैं कैसे लौट सकता हूं?"

"पर आपके पास इतने पैसे कहां है?"

"मुझे पैसों का क्या काम है? मुझे कहां तुम्हारी-जैसी टीमटाम करनी है? मेरे खाने-पहनने में लगता ही कितना है? अपनी पुस्तकों से मुझे कुछ मिल जाता है, थोड़ा दोस्तों से मिल जाता है। इतना मेरे लिए बस हो जाता है। मैं तो सब जगह तीसरे दर्जे में जाता हूं। अमेरिका डेक में जाऊंगा।"

नारायण हेमचंद्र की सादगी तो उनकी अपनी ही चीज थी। वैसे ही वह निखालिस भी थे। अभिमान तो छू नहीं गया था। लेखक के रूप में अपनी शक्ति पर उन्हें आवश्यकता से भी अधिक विश्वास था।

हम रोज मिला करते। विचार की भांति आचार की समता भी हममें यथेष्ट थी। दोनों अन्नाहारी थे। अक्सर दोपहर को साथ खाते। यह मेरे साप्ताहिक सत्रह शिलिंग में गुजर करने और अपने हाथ से खाना पकाने के दिन थे। कभी मैं उनके डेरे पर जाता, कभी वह मेरे डेरे पर आते। मैं अंग्रेजी ढंग का खाना पकाता था। उन्हें देशी ढंग के भोजन के बिना तृप्ति न होती। दाल होनी ही चाहिए। मैं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गाजर आदि का शोरबा (सूप) बनाया करती, इस पर वह मुझ पर तरस खाते। वह कहीं से थोड़े मूंग ढूंढ़ लाये थे। एक दिन मेरे लिए मूंग पकाकर लाये और मैंने उन्हें बड़े चाव से खाया। फिर तो हमारा यह लेन-देन का व्यवहार बढ़ा। मैं अपनी बनाई चीजें उन्हें चखाता और वह अपनी पकाई चीजें मुझे।

इन दिनों कार्डिनल मैनिंग का नाम सबकी जबान पर था। डैक के मजदूरों की हड़ताल हुई थी, जो जानवर्न्स और कार्डिनल की कोशिश से जल्दी ही खत्म हो गई थी। कार्डिनल मैनिंग की सादगी के बारे में डिजरायेली ने लिखा था, जिसे मैंने नारायण हेमचंद्र को सुनाया।

"तब तो मुझे इस साधु पुरूष से मिलना चाहिए।"

"वह तो बहुत बड़े आदमी हैं। आपसे कैसे मिलेंगे?"

"मैं बतलाता हूं वैसे। तुम मेरे नाम से पत्र लिखो। उसमें लिखो कि मैं लेखक हूं और उनके परोपकार के कार्यों के लिए स्वयं उपस्थित होकर अभिनंदन करना चाहता हूं। और यह भी लिख देना कि मुझे अंग्रेजी बोलना नहीं आता, इसलिए दुभाषिये का काम करने के लिए तुम्हें साथ ले जाना होगा।"

मैंने ऐसा पत्र लिखा। दो-तीन दिनो में एक कार्ड में कार्डिनल मैनिंग का जवाब आ गया। उन्होंने मिलने का समय दिया।

हम दोनों गये। मैंने तो रिवाज के मुताबिक मुलाकाती कपड़े पहन लिये थे। पर नारायण हेमचंद्र तो जैसे रहते थे वैसे ही थे। वही कोट और वही पतलून। मैंने मजाक किया। उन्होंने मेरी बात हँसकर उड़ा दी और बोले:

"अरे, तुम सुधरे हुए लोग बड़े डरपोक हो। महापुरूष किसी का पहनावा नहीं देखा करते। वे तो उसका दिल परखते हैं।"

हम कार्डिनल के महल में दाखिल हुए। उनका मकान महल ही था। हम बैठे ही थे कि तुरंत एक सूखी लकड़ी-सरीखे ऊंचे कद के वृद्ध पुरूष ने कमरे में प्रवेश किया। हम दोनों से हाथ मिलाया, नारायण हेमचंद्र का स्वागत किया।

"मुझे आपका समय नहीं लेना है। मैंने आपके बारे में सुना था। हड़ताल में आपने जो काम किया उसके लिए आपका अभिनंदन करना चाहता था। दुनिया के साधु पुरूषों के दर्शन करना मेरा नियम है, इसलिए मैंने आपको इतना कष्ट दिया।"

नारायण हेमचंद्र ने मुझे इन वाक्यों का उलथा कर देने की आज्ञा की।

"आपके आगमन से मुझे प्रसन्नता हुई। आशा है, आप इस नगर में सुखी होंगे और यहां वालों का परिचय प्राप्त करेंगे। ईश्वर आपका कल्याण करे।" यह कहकर कार्डिनल खड़े हो गये।

नारायण हेमचंद्र एक बार मेरे यहां धोती-कुरता पहनकर आये। भली घरवाली दरवाजा खोलने गई तो देखकर घबराई। मेरे पास आकर (पाठकों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Chennai and eGangotri

याद होगा कि अपना डेरा मैं बदलता ही रहता था) बोली, "कोई पागल-सा आदमी तुमसे मिलना चाहता है।" मैं दरवाजे पर गया तो नारायण हेमचंद्र को खड़ा पाया। मैं तो भौंचक रह गया। पर उनके चेहरे पर तो हमेशा रहने वाली मुस्कराहट के सिवा और कुछ न था।

"अरे लड़कों ने आपको तंग नहीं किया?"

जवाब मिला, "मेरे पीछे दौड़ते रहे। मैंने कुछ खयाल न किया तो शांत हो गए।"

नारायण हेमचंद्र कुछ महीने विलायत में रहकर पेरिस चले गये। वहां फ्रेंच का अभ्यास करके फ्रेंच पुस्तकों का उलथा आरंभ कर दिया। उनका अनुवाद देख लेने भर को फ्रेंच मुझे आती थी, अतः उन्होंने उसे देख जाने को कहा। देखने पर मालूम हुआ कि वह उलथा नहीं, भावार्थ भर था।

अंत में उन्होंने अपना अमेरिका जाने का निश्चय पूरा किया। बड़ी कठिनाई से डेक या तीसरे दर्जे का टिकट पा सके थे। अमेरिका में धोती-कुर्ता पहनकर निकलने के कारण 'असभ्य पोशाक पहनने' के जुर्म में पकड़ लिये गए थे और, मुझे ऐसा खयाल है कि, बाद को छोड़ दिए गए थे।

23 : महाप्रदर्शनी

सन् 1890 में पेरिस में एक बड़ी नुमाइश हुई थी। उसकी तैयारियों की खबरें मैं पढ़ता रहता था। पेरिस देखने की तो तीव्र इच्छा थी ही। सोचा, चलो, प्रदर्शनी देखने जाने से एक पंथ दो काज होगा। प्रदर्शनी में एफिल टावर देखने का बड़ा आकर्षण था। यह टावर केवल लोहे का बना है और एक हजार फुट ऊँचा है। उसके पहले कल्पना थी कि एक हजार फुट ऊंचा मकान खड़ा रह ही नहीं सकता। प्रदर्शनी में और भी बहुत-कुछ देखने को था।

मैंने पेरिस में एक अन्नाहारी भोजनालय होने की बात पढ़ी थी। वहां एक कमरा लिया। गरीबी से यात्रा करके पेरिस पहुंचा। सात दिन रहा। देखने योग्य अधिकतर वस्तुएं पैदल घूमकर ही देखीं। पेरिस की, उस प्रदर्शनी की 'गाइड' और नक्शा साथ ले रखा था। उनके सहारे रास्ते खोजकर खास-खास चीजें देख लीं।

प्रदर्शनी की विशालता और विविधता के सिवा मुझे अब और कुछ याद नहीं है। एफिल टावर पर तो दो-तीन बार चढ़ा था, इसलिए उसकी अच्छी तरह याद है। पहली मंजिल पर खाने-पीने का इंतजाम भी था। इतने ऊंचे पर भोजन किया कह सकने के लिए वहां साढ़े सात शिलिंग फूंककर खाना खाया।

पेरिस के प्राचीन गिरजाघरों की याद बनी है। उनकी भव्यता और उनके अंदर मिलने वाली शांति भूलने वाली नहीं है। नोत्रदाम की कारीगरी और अंदर की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चित्रकारी की याद बाकी है। उन्हें देखकर ऐसा लगता था जिन्होंने लाखों रुपये लगाकर ऐसे स्वर्गीय मंदिर बनवाये उनके अंतस्तल में ईश्वर-प्रेम तो रहा ही होगा।

पेरिस के फैशन, पेरिस के स्वेच्छाचार और वहां के भोगविलास के बारे में काफी पढ़ा था। उसके सबूत तो गली-गली में मौजूद थे। पर ये गिरजे उन भोग-विलासों से बिलकुल अलग से लगते थे। मंदिर में प्रवेश करते ही बाहर की अशंति बिसर जाती। लोगों का व्यवहार बदल जाता था। लोग वहां अदब के साथ व्यवहार करते थे। शोरगुल का नाम नहीं। कुमारी मरियम की मूर्ति के सामने कोई-न-कोई प्रार्थना करता ही रहता था। यह सब अंधविश्वास नहीं, बल्कि हार्दिक भावना है, यह प्रभाव उस समय मेरे मन पर पड़ा और वह बढ़ता ही गया। कुमारी मरियम की मूर्ति के सामने घुटने टेककर प्रार्थना करने वाले उपासक संगमरमर को नहीं, उसमें विद्यमान अपनी कल्पना की शक्ति को पूजते थे, इससे वे ईश्वरीय महिमा को घटाते नहीं बढ़ाते हैं; यह असर मेरे मन पर पड़ने का धुंधला स्मरण मुझे आज भी है।

एफिल टावर के विषय में दो शब्द कहना आवश्यक है। मुझे पता नहीं कि एफिल टावर आज क्या काम देता है। प्रदर्शनी में जाने के बाद उसके बारे में वर्णन पढ़ते रहना तो स्वाभाविक ही है। उसमें उसकी स्तुति और निन्दा दोनों थीं। मुझे कुछ ऐसा याद है कि निंदा करने वालों के अगुआ टाल्सटाय थे। उन्होंने लिखा था कि एफिल टावर मनुष्य की मूर्खता का निदर्शन है, उसके ज्ञान का परिणाम नहीं। अपने लेख में उन्होंने दिखाया था कि दुनिया के आज के नशों में तंबाकू का व्यसन एक तरह से सबसे खराब है। कुकर्म करने की हिम्मत शराब पीने से नहीं होती, वह सिगरेट पीने से हो जाती है। शराबी में पागलपन आता है और तंबाकू के व्यसनी की अक्ल धुआं जाती है, इससे वह हवाई किले बनाने लगता है। टाल्सटाय का कहना था कि एफिल टावर ऐसे ही व्यसन का परिणाम है।

एफिल टावर में कोई सौंदर्य न था। प्रदर्शनी की उससे कोई शोभा बढ़ी हो यह नहीं कह सकते। एक नई चीज, एक बड़ी चीज होने के खयाल से हजारों आदमी उसे देखने को चढ़े। यह टावर प्रदर्शनी का एक खिलौना था। वह इस बात को भली-भांति सिद्ध करता था कि जब तक हम मोह के वश में हैं तब तक हम भी बच्चे हैं। यही उसकी उपयोगिता मानना चाहें तो मान सकते हैं।

24 : बैरिस्टर तो बने लेकिन आगे?

जिस काम के-बैरिस्टर बनने के-लिए मैं विलायत गया था उसका मैंने क्या किया, इसकी चर्चा मैंने अब तक छोड़ रखी थी। अब इस बारे में कुछ लिखने का अवसर आ गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बैरिस्टर होने के लिए दो बातों की जरूरत थी। एक तो थी 'टर्म पूरा करना', अर्थात सत्रों में उपस्थिति। वर्ष में चार सत्र होते हैं। ऐसे बारह सत्र पूरे करने होते हैं। दूसरी बात है, कानून की परीक्षा देना। सत्र पूरे करने के मानी हैं, 'दावतें खाना' अर्थात हर एक सत्र में लगभग चौबीस भोज होते हैं, उनमें से छः में खाना। 'दावत खाने' के मानी सचमुच खाना ही हो ऐसी बात नहीं है। जरूरी है नियत समय पर हाजिर हो जाना और भोज समाप्त होने तक बैठे रहना। साधारणतः तो सब खाते-पीते ही हैं। खाने में अच्छी-अच्छी चीजें होती हैं, पीने के लिए बढ़िया मानी जाने वाली शराब। उनके दाम अलबत्ता चुकाने होते हैं। वे ढाई से तीन शिलिंग तक होते हैं, यानी दो-तीन रुपए का खर्च होता है। वहां यह कीमत बहुत कम समझी जाती है; क्योंकि बाहर के होटल में ऐसे खाने लेने वाले को करीब-करीब इतने पैसे सिर्फ शराब के ही देने पड़ जाते हैं। खाने के खर्च से शराब पीने वालों का पीने का खर्च ज्यादा बैठता है। हिंदुस्तान में हम लोगों को-यदि 'सभ्य' न हुए तो-इस बात पर अचरज हो सकता है। विलायत जाने पर यह जानकर मेरे दिल को गहरा धक्का लगा था; शराब पीने के पीछे लोग कैसे इतने पैसे बर्बाद कर देते होंगे, यह समझ न पाता था। पीछे समझ में आया। दावतों में पहले मैं कुछ भी नहीं खाया करता था, क्योंकि मेरे लायक तो वहां सिर्फ रोटी, उबले आलू और गोभी ही होती थी। शुरू में तो न रूचने के कारण नहीं खाया; पर पीछे जब उनमें स्वाद देखा तब तो और भी चीजें मांग लेने की शक्ति मुझ में आ गई थी।

विद्यार्थियों के लिए एक तरह का भोजन होता था और 'बेंचरों' (विद्यामंदिर के 'महंतों') के लिए दूसरे अमीरी खाने। मेरे साथ एक पारसी विद्यार्थी था, वह भी अन्नाहारी हो गया था। हम दोनों ने अन्नाहार के प्रचार के लिए बेंचरों के भोजन में से अन्नाहारी के खाने लायक चीजों की मांग की। वह मंजूर हुई। अतः हमे बेंचरों के खाने में से फल तथा दूसरी शाकभाजियां मिलने लगीं।

शराब से मुझे कोई मतलब नहीं था। चार आदमियों के बीच शराब की दो बोतलें मिला करती थीं। इसलिए अनेक चौकड़ियां मुझे अपने साथ खाने को बुलातीं। मेरे न पीने से बाकी तीन को दो बोतलें उड़ाने को जो मिल जातीं! इसके सिवा इन सत्रों में एक 'महारात्रि' (ग्रैंड नाइट) होती है। उस दिन 'पोर्ट', 'शेरी' के अलावा 'शैंपेन' शराब भी मिलती है। 'शैंपेन' की लज्जत कुछ और ही मानी जाती है। इसलिए इस 'बड़ी' रात को मेरी कीमत बढ़ जाती थी और उस रात की उपस्थिति के लिए मुझे न्यौता भी मिलता था।

इस खान-पान से बैरिस्टरी की योग्यता में क्या वृद्धि हो सकती है, यह न उस समय मेरी समझ में आया, न पीछे ही। अवश्य ही एक ऐसा समय था जब इन भोजों में थोड़े ही विद्यार्थी शरीक होते थे और उनमें तथा 'बेंचरों' में बातचीत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

होती थी और भाषण भी होते थे। इससे उन्हें व्यवहार-ज्ञान मिल सकता था। अच्छी हो, बुरी हो, एक प्रकार की सभ्यता सीखने और भाषण करने की शक्ति कुछ बढ़ा लेते थे। पर मेरे समय में तो यह सब अशक्य ही था। बेंचर तो एक किनारे अछूत बने बैठे रहते हैं। इस पुराने रिवाज का आगे चलकर कोई मतलब न रह जाने पर भी प्राचीनता-प्रेमी-धीमी चाल वाले इंग्लैंड में वह बना रहा।

कानून की पढ़ाई आसान थी। बैरिस्टरों को मजाक में 'डिनर (दावत के) बैरिस्टर' ही कहा जाता था। सबको पता था कि परीक्षा का मूल्य नहीं के बराबर है। मेरे समय में दो परीक्षाएं थीं- रोमन ला और इंग्लैंड का कानून। दो भागों में दी जाने वाली इन परीक्षाओं की पुस्तकें नियत थीं; पद उन्हें तो शायद ही कोई पढ़ता हो। रोमन ला पर लिखे हुए संक्षिप्त नोटों को पंद्रह दिनों में पढ़कर पास होने वालों को मैंने देखा। यही बात इंग्लैंड के कानून के बारे में भी थी। उसके नोट दो-तीन महीने में पढ़ डालने वाले विद्यार्थी भी मैंने देखे। परीक्षा के प्रश्न आसान होते थे, परीक्षक उदार। रोमन ला में 95 से 99 प्रतिशत परीक्षार्थी पास होते थे और अंतिम परीक्षा में 75 या इससे अधिक। यानी 'ना पास' होने का डर बहुत कम रहता है। इसके सिवा परीक्षा साल में एक नहीं, बल्कि चार बार होती है। इतने सुभीते की परीक्षा किसी के लिए बोझ नहीं हो सकती।

पर मैंने उसे बोझ बना लिया। मैंने सोचा कि मुझे मूल पुस्तकें पढ़ ही जानी चाहिए। उन्हें न पढ़ना मुझे धोखा देना जान पड़ा। अतः मैंने मूल पुस्तकें खरीदीं, जिसमें मेरे काफी रुपए खर्च हुए। 'रोमन ला' को लैटिन में पढ़ जाने का निश्चय किया। विलायत की मैट्रिक्युलेशन परीक्षा में मैंने लैटिन पढ़ी थी। वह यहां काम आई।। यह पढ़ाई व्यर्थ न गई। दक्षिण अफ्रीका में रोमन-डच ला प्रमाणभूत माना जाता है। उसे समझने में मुझे जस्टिनियन का अध्ययन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

इंग्लैंड के कानून की पढ़ाई में नौ महीने काफी मेहनत करके पूरी कर सका। कारण यह कि ब्रूम की 'कामन ला' की मोटी लेकिन रोचक पुस्तक पढ़ने में ही काफी समय लग गया। स्नेल की 'इक्विटी' में रस मिला, पर समझने में दम निकल गया। ह्वाइट और ट्यूडर के 'नजीर मुकदमे' (लीडिंग केसेज) में से जो पढ़ने थे, उन्हें पढ़ने में मुझे रस मिला और ज्ञान भी बढ़ा। विलियम्स और एडवर्ड्स की अचल संपत्ति-विषयक और गुडीव की चलसंपत्ति-विषयक पुस्तक मैंने रुचिपूर्वक पढ़ी। विलियम्स की पुस्तक तो मुझे उपन्यास-सी लगी। उसे पढ़ना तनिक भी न अखरा। कानून की किताबों में इतनी ही रुचि से हिंदुस्तान आने पर मैंने मेइन का 'हिंदू ला' पढ़ा। पर हिंदुस्तान के कानून की चर्चा यहां करनी नहीं है।

परीक्षाएं पास करके 1891 की 10वीं जून को मैं बैरिस्टर बन गया, 11 को इंग्लैंड के हाईकोर्ट में ढाई शिलिंग देकर अपना नाम दर्ज कराया, 12 जून को हिन्दुस्तान की ओर वापस लौटा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर मेरी निराशा और भय का अंत न था। मैंने देखा कि कानून तो मैंने जरूर पढ़ लिया, पर ऐसी एक भी बात नहीं सीखी जिससे वकालत करनी आए।

इस व्यथा के वर्णन के लिए अलग प्रकरण की दरकार है।

25 : मेरी परेशानी

बैरिस्टर कहलाना आसान लगा, लेकिन बैरिस्टरी करना कठिन। कानून पढ़ा, लेकिन वकालत करना न सीखा। कानून में मैंने कई धर्म-सिद्धांत पढ़े; वे मुझे रुचे। लेकिन पेशे में उनका अमल कैसे किया जा सकेगा, यह समझ में न आया। 'अपना जो कुछ हो उसका इस प्रकार उपयोग करो जिससे दूसरे की मिलकियत को नुकसान न पहुंचे'-यह तो धर्म-वचन है; पर वकालत का पेशा करते हुए मुवक्किल के मामले में उसका किस तरह उपयोग हो सकता है, यह बात अक्ल में न आई। जिन मुकदमों में इस सिद्धांत का उपयोग हुआ था, उन्हें पढ़ गया था,पर उनमें इन सिद्धांतो को काम में लाने का उपाय मुझे न मिला।

इसके सिवा हिंदुस्तान के कानूनों का तो मेरे पढ़े कानूनों में नाम तक न था। हिंदूशास्त्र, इस्लामी कानून कैसे होते हैं, यह तक न जाना। अर्जी दावा बनाना न सीखा। मैं बहुत घबराया। मैंने फिरोजशाह मेहता का नाम सुना थां वह अदालतों में शेर की तरह गरजते हैं, विलायत में उन्होंने किस तरीके से पढ़ा होगा? उनके जितनी होशियारी तो इस जिंदगी में ही नहीं आ सकती। मुझे तो इसमें भी गहरी शंका होने लगी कि एक वकील की हैसियत से रोजी कमाने की शक्ति भी मुझमें आएगी या नहीं।

यह उलझन तो कानून की पढ़ाई के समय से ही मेरे मन को लग रही थी। अपनी कठिनाइयां मैंने एक-दो मित्रों के सामने रखीं। उन्होंने दादाभाई से सलाह लेने को कहा। यह तो लिख चुका हूं कि मेरे पास दादाभाई के नाम पत्र था। इस पत्र का उपयोग में मैंने देर से किया। ऐसे महान पुरूष से मिलने जाने का मुझे क्या हक है? उनका भाषण कहीं होता तो सुनने जाता और एक कोने में बैठकर आंखों और कांनों को तृप्त करके चला आता। विद्यार्थियों के संपर्क में आने के लिए उन्होंने एक मंडल भी स्थापित कर रखा था। उसमें मैं जाया करता। विद्यार्थियों के प्रति दादाभाई की चिंता और वैसे ही विद्यार्थियों का उनके प्रति आदर देखकर मुझे खुशी होती थी अंत में उक्त सिफारिशी पत्र उन्हें देने की हिम्मत तो मैंने की। उनसे मिला। उन्होंने मुझसे कहा, "तुम्हें मुझसे मिलना हो और किसी सलाह की जरूरत हो तो ज़रूर मिलना।" पर मैंने उन्हें कभी तकलीफ न दी। किसी भारी कठिनाई के सिवा उनका समय लेना मुझे अपराध जान पड़ा। अतः उक्त मित्र की सलाह मानकर दादाभाई के सामने अपनी कठिनाइयां रखने की मुझे हिम्मत न हुई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उन्हीं मित्र ने या किसी दूसरे ने मुझे मि. फ्रेडरिक पिंकट से मिलने की सलाह दी। मि. पिंकट कंजर्वेटिव दल के थे पर हिंदुस्तानियों के प्रति उनका प्रेम निर्मल और निःस्वार्थ था। कितने ही विद्यार्थी उनकी सलाह लिया करते थे। अतः पत्र लिखकर मैंने उनसे मिलने का समय मांगा। वह मिल गया और मैं उनसे मिला। यह मुलाकात मुझे कभी न भूली। वह मुझसे मित्र की भांति मिले। मेरी निराशा को तो उन्होंने हँसकर उड़ा दिया। "तुम समझते हो कि सबका फिरोजशाह मेहता होना जरूरी है? फिरोजशाह या बदरूद्दीन तो एक-दो ही हुआ करते हैं। तुम निश्चय समझो कि साधारण वकील होने के लिए ज्यादा होशियारी की जरूरत नहीं होती। साधारण ईमानदारी और लगन के बल पर आदमी वकालत का धंधा मजे में चला सकता है। सब मुकदमे पेचीदा नहीं होते।

"अच्छा बताओ, तुम्हारी साधारण (पाठ्य विषय में अतिरिक्त) पढ़ाई क्या है?"

मैंने देखा कि मेरी अपनी पढ़ाई की बात कहने पर वह कुछ निराश हुए। पर वह निराशा क्षणिक थी। तुरंत उनके चेहरे पर फिर मुस्कराहट आ गई और बोले:

"अब मैं तुम्हारी कठिनाई को समझ गया। तुम्हारी साधारण पढ़ाई बहुत थोड़ी है। तुम्हें सांसारिक ज्ञान नहीं है। वकील का काम उसके बिना नहीं चल सकता। तुमने तो हिंदुस्तान का इतिहास भी नहीं पढ़ा है। वकील को मनुष्य स्वभाव का ज्ञान होना आवश्यक है। उसे चेहरा देखकर मनुष्य की परख करना आना चाहिए। इसके सिवा, हर एक हिंदुस्तानी को हिंदुस्तान के इतिहास की भी जानकारी होनी चाहिए। वकालत से इसका लगाव न होने पर भी तुम्हें उसका ज्ञान होना जरूरी है। मैं देखता हूं कि तुमने तो 'के और मैलेसन' का लिखा 1857 के गदर का इतिहास भी नहीं पढ़ा है। उसे तो तुरंत पढ़ डालो। अन्य दो और पुस्तकों के नाम बतला रहा हूं उन्हें आदमी की पहचान के लिए पढ़ जाना।" यह कहकर उन्होंने लेवेटर और शेमल पेनिक की मुखसामुद्रिकविद्या (फिजियाग्नमी) की दो पुस्तकों के नाम लिख दिये।

मैंने इन वयोवृद्ध मित्र का बड़ा अहसान माना। उनके सामने तो मेरा भय क्षणभर के लिए भाग गया था; पर बाहर निकलते ही फिर वही घबराहट सवार हो गई। "चेहरा देखकर आदमी को पहचान लेना होगा।" इस वाक्य को घोखते और उक्त दोनों पुस्तकों के बारे में सोचते हुए डेरे पर पहुंचा। दूसरे दिन लेवेटर की पुस्तक खरीदी। शेमल पेनिक की पुस्तक दुकान पर न मिली। लेवेटर की पुस्तक पढ़ी; पर वह तो स्नेल की पुस्तक से भी कठिन लगी। रस भी न मिला। शैक्सपियर के चेहरे का अध्ययन किया; पर लंदन की सड़कों पर फिरते हुए शैक्सपियरों को पहचानने की शक्ति तो नहीं ही आई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

लेवेटर की पुस्तक से मैंने कुछ पाया नहीं। मि. पिंकट की सलाह का सीधा उपयोग तो मुझे थोड़ा ही हुआ, पर उनके स्नेह का बहुत उपयोग हुआ। उनका हँसमुख, उदार चेहरा स्मृति में अंकित हो गया। उनके वचन मैंने गांठ बांध लिये कि वकालत करने की फिरोजशाह मेहता की-सी चतुराई, स्मरण-शक्ति आदि की आवश्यकता नहीं होती; ईमानदारी और लगन से काम चल जाता है। इन दोनों की पूंजी तो मेरे पास यथेष्ट थी। इससे भीतर कुछ भरोसा हुआ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के और मैलेसन की किताब तो मैं विलायत में न पढ़ पाया; पर अवसर मिलते ही उसे पढ़ डालने का निश्चय कर लिया। यह मुराद दक्षिण अफ्रीका में बर आई।

यों निराशा में तनिक-सी आशा का आश्वासन लेकर कांपते पैरों 'आसाम' स्टीमर में बंबई बंदर में उतरा। बंदर में समुद्र उस समय क्षुब्ध था, इससे लांच पर किनारे आना पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा भाग

1 : रायचंद भाई

पिछले प्रकरण में मैं बंबई बंदर में समुद्र के क्षुब्ध होने की बात लिख चुका हूं। जून-जुलाई के महीनों में हिंद महासागर के लिए यह कोई नई बात नहीं समझी जा सकती। अदन से ही समुद्र वैसा हो रहा था। सब बीमार थे, अकेला मैं ही मौज ले रहा था। तूफान देखने को डेक पर खड़ा रहता, भीगा भी करता। सवेरे के नाश्ते में यात्रियों में से हम दो-एक ही होते थे। जई की लपसी हमें रंकाबी को गोद में रखकर खानी पड़ती थी, वर्ना हालत यह थी कि लपसी ही गोद में छितरा जाय।

यह बाहरी तूफान मेरे विचार से तो भीतरी तूफान का चिह्न रूप था। पर बाहरी तूफान के रहते हुए भी जैसे मैं शांत रह सका, जान पड़ता है भीतर के तूफान के लिए भी वही बात कही जा सकती है। बिरादरी का सवाल तो था ही। धंधे की चिंता के बारे में लिख ही चुका हूं। इसके सिवा सुधारक होने के कारण मन में जो कितने ही सुधार सोच रखे थे उनकी भी चिंता थी। कुछ और अनसोची चिंता भी पैदा हो गई।

माता के दर्शनों के लिए मैं अधीर हो रहा था। हम डेक पर पहुंचे तब मेरे बड़े भाई वहां मौजूद थे। उन्होंने डॉक्टर मेहता और उनके बड़े भाई से जान-पहचान कर ली थी। डॉक्टर मेहता का मुझे अपने यहां ही उतारने का आग्रह था। अतः मुझे वहीं ले गये। इस प्रकार विलायत में जो संबंध जुड़ा था वह स्वदेश में भी कायम रहा और अधिक दृढ़ हुआ तथा दोनों कुटुंबों में फैल गया।

माता के स्वर्गवास के विषय में मुझे कुछ पता न था। घर पहुंचने पर इसकी सूचना मुझे दी गई और स्नान कराया गया। मुझे यह खबर विलायत में ही मिल सकती थी; पर आघात हल्का हो, इस विचार से बंबई पहुंचने तक बड़े भाई ने मुझे यह सूचना न देने का निश्चय कर रखा था। अपनी इस पीड़ा पर मैं पर्दा ही डाले रखना चाहता हूं। पिता की मृत्यु से मुझे जो चोट पहुंची थी उससे बहुत अधिक इस मृत्यु-समाचार से पहुंची। मेरे बहुत-से मनोरथ धूल में मिल गये। पर मुझे याद है कि इस निधन-समाचार को सुनकर मैं फूटकर नहीं रोया। आंसुओं को पी-सा गया और इस तरह काम-काज करने लगा जैसे माता की मृत्यु हुई ही न हो।

डॉक्टर मेहता ने अपने घर जिन लोगों से मेरा परिचय कराया उनमें से एक की चर्चा किये बिना काम नहीं चल सकता। उनके भाई जगजीवन से तो जन्मभर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गठबंधन हो गया; पर मुझे जिस परिचय की बात कहनी है, वह तो हैं कवि रायचंद अथवा राजचंद्र की। डॉक्टर के बड़े भाई के वह दामाद थे और रेवाशंकर जगजीवन फर्म के हिस्सेदार और कर्ता-धर्ता थे। उनकी उम्र उस समय पच्चीस से अधिक न थी। फिर भी पहली ही भेंट में मैं यह देख सका कि वह चरित्रवान और ज्ञानी हैं। वह शतावधानी माने जाते थें डॉक्टर मेहता ने मुझसे उनके शतावधान के नमूने देखने को कहा। मैंने अपना भाषा-ज्ञान का खजाना खाली कर दिया और कवि ने मेरे कहे हुए शब्दों को उसी सिलसिले में कह सुनाया कि जिस तरतीब में मैंने यह उन्हें कहा था! इस शक्ति पर मुझे ईर्ष्या हुई; पर उस पर मैं मुग्ध नहीं हुआ। जिस पर मैं मुग्ध हुआ उस वस्तु का परिचय मुझे पीछे हुआ। वह था उनका गंभीर शास्त्र ज्ञान, उनका शुद्ध चारित्र्य और उनकी आत्मदर्शन की उत्कट लगन। बाद को मैंने पाया कि वह आत्मदर्शन के लिए ही जीते थे।

हसतां रमतां प्रगट हरि देखुं रे,
मारूं जीव्यूं सफळ तव लेखुरे;
मुक्तानंदनो नाथ विहारी रे,
ओधा जीवनदोरी अमारी रे।[1]

मुक्तानंद का यह वचन उनकी जबान पर तो था ही, उनके हृदय में भी अंकित था।

खुद हजारों को रोजगार करते; हीरे-मोतियों की परख करते, व्यापार की समस्याएं हल करते, पर उनका विषय यह नहीं था। उनका विषय, उनका पुरूषार्थ तो आत्मा की परख-हरि-दर्शन-था। उनकी गद्दी पर और कोई चीज हो या न हो, पर कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और रोजनामचा तो होता ही। रोजगार की बात खतम होते ही धर्मपुस्तक अथवा उक्त नोटबुक खुल जाती। उनके लेखों का जो संग्रह प्रकाशित हुआ है उसका अधिकांश तो उस नोटबुक से ही लिया हुआ है। जो आदमी लाखों के सौदे की बात करने के बाद तुरंत आत्माज्ञान की गूढ़ बातें लिखने बैठ जाय उसकी जाति व्यापारी की नहीं, बल्कि शुद्ध ज्ञानी की है। उनकी इस विशेषता का अनुभव मुझे एक बार नहीं, अनेक बार हुआ है। मैंने उन्हें कभी मूर्छित स्थिति में नहीं पाया। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ न था। मैंने उन्हें बहुत नजदीक से देखा है। मैं उस समय, भिखारी बारिस्टर था। पर जब मैं उनकी दुकान पर पहुंचता, मुझसे धर्म चर्चा के सिवा दूसरी बात न करते। यद्यपि मैं उस समय अपना रास्ता नहीं पहचान पाया था, यह नहीं कहा जा सकता कि मुझे साधारणतः धर्म चर्चा में रस था, फिर भी रायचंद भाई की धर्मचर्चा में मुझे

---

1. जब हँसते-खेलते प्रत्येक कृत्य में हरि के दर्शन मुझे हों तब अपना जीवन सफल मानूं। मुक्तानंद कहते हैं, मेरे मालिक तो भगवान हैं और वही मेरे जीवन की डोर हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रस आता था। उसके बाद अनेक धर्माचार्यों के संपर्क में आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। हर धर्म के आचार्यों से मिलने का प्रयत्न मैंने किया है, पर जो छाप मुझ पर रायचंद भाई ने डाली वह दूसरा कोई न डाल सका। उनके बहुतेरे वचन सीधे मेरे अन्तर में उतर जाते। उनकी बुद्धि के लिए मेरे मन में आदर था। उनकी सच्चाई के लिए भी उतना ही आदर था और इसलिए मैं जानता था कि वह जान-बूझकर कभी मुझे गलत रास्ते पर नहीं ले जाएंगे और जो उनके मन में होगा वही कहेंगे। इससे अपने आध्यात्मिक संकट में मैं उनका आश्रय लिया करता था।

रायचंद भाई के लिए मेरे मन में इतना आदर होते हुए भी मैं उन्हें धर्मगुरू के रूप में अपने हृदय में स्थान न दे सका। गुरू की खोज तो आज भी जारी है।

हिंदू धर्म में गुरु पद को जो महत्त्व दिया गया है, उसे मैं मानता हूं। 'गुरु बिन ज्ञान न होय' यह वचन बहुत अंशों में सही है। अक्षरज्ञान देने वाले अधकचरे शिक्षक से काम चलाया जा सकता है, पर आत्म-दर्शन कराने वाले अपूर्ण शिक्षक से नहीं चलाया जा सकता। गुरुपद तो सम्पूर्ण ज्ञानी को ही दिया जा सकता है। गुरु की खोज में ही सफलता समाई हुई है; क्योंकि शिष्य की योग्यता के अनुसार ही गुरु मिलता है। इसका अर्थ यह है कि योग्यता-प्राप्ति के लिए पूर्ण प्रयत्न का प्रत्येक साधक को अधिकार है। इस प्रयत्न का फल ईश्वर के अधीन है।

अतः यद्यपि मैं रायचंद भाई को अपने हृदय का स्वामी न बना सका, तथापि मुझे उनका सहारा समय-समय पर कैसे मिलता रहा, यह हम आगे चलकर देखेंगे। यहां तो इतना ही कहना काफी होगा कि मेरे जीवन पर गहरी छाप डालने वाले आधुनिक मनुष्य तीन हैं-रायचंद भाई ने अपने सजीव संपर्क से, टाल्सटाय ने अपनी 'बैकुंठ तेरे हृदय में है' नामक पुस्तक से और रस्किन ने 'अनटु दिस लास्ट' (सर्वोदय) नामक पुस्तक से मुझे मुग्ध कर दिया। पर इन प्रसंगों की चर्चा यथास्थान होगी।

तिथी.....
पु०सं०.....
भारती पुस्तकालय

2 : संसार-प्रवेश

बड़े भाई ने तो मुझ पर बड़ी-बड़ी आशाएं बांध रखी थीं। उनको पैसे का, कीर्ति का और पद का लोभ बहुत अधिक था। उनका दिल बादशाही था। उदारता उड़ाऊपन की हद तक पहुंच जाती थी। इससे और अपनी सरलता की वजह से उन्हें दोस्त बनाते देर न लगती थी। इस मित्र समुदाय के जरिये वह मेरे लिए मुकदमें जुटा लाने की आशा रखते थे। उन्होंने मान लिया था कि मैं खूब कमाऊंगा, इससे घर का खर्च बढ़ा लिया था। मेरे लिए वकालत का मैदान तैयार करने में भी अपनी ओर से कुछ उठा न रखा था।

जाति का झगड़ा खड़ा ही था। दो दल हो गये थे। एक पक्ष ने मुझे तुरंत बिरादरी में मिला लिया, दूसरा न लेने पर अड़ा रहा। बिरादरी में मिलाने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पक्ष के संतोष के लिए राजकोट ले जाने के पहले भाई मुझे नासिक ले गये। वहां गंगास्नान कराया और राजकोट पहुंचकर बिरादरी-भोज किया। मुझे इस काम में कोई रस न आया। बड़े भाई का मेरे प्रति अगाध प्रेम था और मेरा विश्वास है कि मेरी भक्ति भी उनके प्रति वैसी ही थी। इसलिए उनकी इच्छा को आज्ञा रूप मानकर मैं यंत्रवत बिना समझे उनका अनुसरण करता रहा। बिरादरी का मसला इतने से हल हो गया।

जाति-च्युत कर रखने वाले तड़ में प्रवेश करने का मैंने कभी यत्न न किया। न मन में बिरादरी के किसी भी मुखिया के प्रति रोष लाया। उनमें मुझे तिरस्कार दृष्टि से देखने वाले भी थे। उनके साथ नम्रता से बरतना था। जाति-बहिष्कार के नियमों को पूरा मान देता था। अपनी ससुराल या अपनी बहन के यहां पानी तक न पीता। वे छिपे-छिपे खिलाने-पिलाने को तैयार होते, पर जो बात खुले तौर पर न की जा सकती हो उसे छिपकर करना मेरा मन ही स्वीकार न करता था।

मेरे इस बर्ताव का फल यह हुआ कि बिरादरी की ओर से मुझे कभी कोई कष्ट मिला हो यह मुझे याद नहीं है। इतना ही नहीं, यद्यपि मैं आज भी बिरादरी के एक विभाग से बाकायदा बहिष्कृत माना जाता हूं, फिर भी उससे मुझे मान और उदार व्यवहार पाने का ही अनुभव है। उन लोगों ने मेरे काम में मदद भी की है और बिरादरी के लिए मैं कुछ करूं, इसकी मुझसे उम्मीद तक न की। मैं इस मधुर फल को केवल अप्रतिकार का प्रसाद मानता हूं। यदि मैंने बिरादरी में मिलने की खटपट की होती, अधिक तड़ बनाने का यत्न किया होता, उन्हें छेड़ा-चिढ़ाया होता, तो वह अवश्य मेरा विरोध करते और मैं विलायत से लौटते ही उदासीन और अलिप्त हो जाने के बजाय खटपट के जाल में फंसकर केवल मिथ्यात्व का पोषण करने वाला बन जाता।

स्त्री से मेरा संबंध अब भी जैसा मैं चाहता था वैसा न हुआ। अपना ईर्ष्यालु, संशयी स्वभाव विलायत जाकर भी मैं न छोड़ सका। हर बात में मेरी खोद-खाद और मेरा शक बना रहा। इससे मैं अपनी मनोकामनाएं पूरी न कर सका। पत्नी को अक्षर-ज्ञान अवश्य होना चाहिए और वह मुझे ही कराना है यह मैंने सोच रखा था, पर मेरी विषयासक्ति ने मुझे यह काम न करने दिया और मैंने अपनी कमजोरी का गुस्सा पत्नी पर उतारा। एक बार तो यहां तक नौबत पहुंच गई कि मैंने उसे उसके मायके भेज दिया और बड़े कष्ट देने के बाद फिर साथ देना मंजूर किया। पीछे समझ में आया कि इसमें सिर्फ मेरी नादानी के सिवा कुछ नहीं था।

बच्चों की शिक्षा के संबंध में भी मुझे सुधार करने थे। बड़े भाई के लड़के थे और मैं भी एक लड़का छोड़ गया था, जो अब चार साल का हो रहा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इन बच्चों को कसरत कराने, उन्हें बलवान बनाने और अपने साथ रखने का विचार था। इस काम में भाई की सहानुभूति थी। इस यत्न में थोड़ी-बहुत सफलता मैं प्राप्त कर सका। बच्चों का साथ मुझे बहुत प्रिय लगा। बच्चों के साथ मजाक की आदत तो आज तक बनी हुई है। तभी से मेरा खयाल है कि मैं बच्चों के शिक्षक का काम अच्छा कर सकता हूं।

खानपान में भी सुधार करने की आवश्यकता तो स्पष्ट ही थी। घर में चाय-कहवे को स्थान मिल ही चुका था। बड़े भाई ने सोचा कि भाई के विलायत से घर आने के पहले विलायत की कुछ हवा तो घर में पहुंच ही जानी चाहिए। अतः चीनी मिट्टी के बर्तन, चाय आदि चीजें जो पहले घर में दवा के तौर पर या 'सभ्य' मेहमानों के लिए रहती थीं, अब सबके लिए काम में आने लगीं। इस वातावरण में मैं अपने 'सुधार' लाया। जई की लपसी घर में दाखिल हुई, चाय-कहवे के साथ कोको और भी बढ़ गया। बूट और मोजे तो पहुंच ही चुके थे। मैंने कोट-पतलून से घर को पवित्र किया।

इस प्रकार खर्च बढ़ा। नवीनता में वृद्धि हुई। घर पर सफेद हाथी बंध गया। पर खर्च आये कहां से? राजकोट में तुरन्त वकालत शुरू करना तो हँसी ही कराना था। ज्ञान की पूंजी तो अपने पास इतनी भी न थी कि राजकोट में पास हुए वकील के मुकाबले में खड़ा हो सकूं और फीस उससे दस गुनी लेने का दावा! कौन मूर्ख मुवक्किल मुझे रखता? और कोई ऐसा मूर्ख मिल भी जाय तो मेरे लिए क्या यह मुनासिब होता कि मैं अपने अज्ञान में औद्धत्य तथा दगाबाजी को शामिल करके अपने ऊपर का दुनिया का कर्ज और बढ़ा लूं?

मित्रों की राय हुई कि मुझे कुछ समय के लिए बंबई जाकर हाईकोर्ट की वकालत का अनुभव प्राप्त करना तथा हिंदुस्तान के कानूनों का अध्ययन करना चाहिए और कोई मुकदमा मिल सके तो पाने की कोशिश करनी चाहिए। अतः मैं बंबई जाने को निकला।

वहां घर बसाया। रसोइया रखा। रसोइया भी ठीक मुझ-जैसा ही मिला। ब्राह्मण था। मैंने उसे नौकर की तरह तो रखा ही नहीं था। यह ब्राह्मण नहाता था, पर धोता न था। धोती मैली, जनेऊ मैला, शास्त्र के अध्ययन से कोसों दूर। पर अधिक अच्छा रसोइया कहां से लाऊं?

"क्यों रविशंकर (यही उसका नाम था), रसोई बनाना तो तुम्हें नहीं आता। पर संध्या-गायत्री का क्या हाल है?"

"साहब, हमरा संध्या-तर्पण तो हल है, और कुदाल है खटकरम, अपन तो ऐसे ही बाम्हन हैं। कोई आप जैसा निबाहे तो निभ जायं, नहीं तो अन्त में खेती तो अपनी कहीं गई नहीं है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

मैं समझ गया। मुझे रविशंकर का शिक्षक बनना है। वक्त तो बहुत था। पकाने का आधा काम रविशंकर करता, आधा मैं। विलायत के अन्नाहारी खुराक के प्रयोग यहां जारी किये गए। एक स्टोव खरीदा। मैं स्वयं तो पंक्तिभेद मानता ही न था, रविशंकर को भी उसका आग्रह न था। इससे हमारी पटरी ठीक बैठ गई। सिर्फ शर्त या मुसीबत कहिये इतनी थी कि रविशंकर ने मैल से नाता तोड़ने और रसोई साफ रखने की कसम खा ली थी!

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मेरा बंबई में चार-पांच महीने से अधिक रहना मुमकिन ही न था; क्योंकि खर्च बढ़ता ही जाता था और आमदनी कुछ भी न थी।

इस प्रकार मैंने संसार में प्रवेश किया। बैरिस्टरी मुझे खलने लगी। आडम्बर बहुत, आय थोड़ी। जिम्मेदारी का खयाल मुझे कोंचने लगा।

3 : पहला मुकदमा

बंबई में एक ओर कानून का अध्ययन आरम्भ हुआ, दूसरी ओर खुराक के प्रयोग, जिसमें वीरचंद गांधी मेरे साथी बने। तीसरी तरफ से भाई ने मेरे लिए मुकदमे जुटाने की कोशिश शुरू की।

कानून की पढ़ाई का काम धीमी चाल से चलता था। जाब्ता दीवानी (सिविल प्रोसीजर कोड) किसी तरह गले न उतरता था। कानून शहादत की पढ़ाई ठीक चली। वीरचंद गांधी सालिसिटर बनने की तैयारी कर रहे थे। इसलिए वकीलों के बारे में बहुत बातें किया करते थे। "फिरोजशाह की होशियारी की वजह उनका कानून का अगाध ज्ञान है। 'एविडेंस एक्ट' (कानून शहादत) तो उनकी जबान पर ही है। बत्तीसवीं धारा का एक-एक मुकदमा वह जानते हैं। बदरुद्दीन की होशियारी तो ऐसी है कि जज भी उसके तेज से चौंधिया जाते हैं। उनकी बहस करने की शक्ति अद्‌भुत है।"

ज्यों-ज्यों इन महारथियों के बारे में सुनता त्यों-त्यों मेरी हिम्मत छूटती जाती।

"पांच-सात साल तक बैरिस्टर का अदालत में ढेले फोड़ते रहना कोई असाधारण बात नहीं है। इसलिए मैंने सालिसिटर होना तै किया। तीन साल के बाद भी तुम अपना खर्च चलाने भर कमा लो तो कहना होगा कि बहुत किया।"

खर्च हर महीने बढ़ता ही जाता। बाहर बैरिस्टर का साइनबोर्ड लगा रखना और घर में बैरिस्टरी करने की तैयारी करना। मेरा मन किसी तरह इन दोनों का मेल न बैठा पाता था। इससे कानून की मेरी पढ़ाई उद्विग्न चित्त से होती थी। शहादत के कानून में कुछ रस मिलने की बात कह चुका हूं। मेनका 'हिंदू ला' बड़ी रूचि से पढ़ा। पर मुकदमें की पैरवी की जिम्मेदारी उठाने की हिम्मत न आई। अपनी पीड़ा किसे सुनाऊं? मेरी हालत ससुराल गई हुई नई बहू की-सी हो गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने में ममीबाई का मामला मुझे मिला। खफीफा अदालत में जाना था। दलाल को कमीशन देने की बात उठी। मैंनें साफ इनकार किया।

"पर फौजदारी अदालत के नामी-गिरामी वकील श्री...जो महीने में तीन-चार हजार कमाते हैं, वह भी दलाली देते ही हैं।"

"मैं कहां उनकी बराबरी करना चाहता हूं? मुझे तो हर महीने 300 रु. मिल जायं तो बहुत हैं। पिताजी को इससे अधिक कहां मिलते थे?"

"पर वे दिन लद गये। बंबई का खर्च बड़ा है। व्यवहार की बात भी सोचनी चाहिए।" मैं टस-से-मस न हुआ। दलाली नहीं ही दी। फिर भी ममीबाई का मामला तो मिला। मुकदमा आसान था। मुझे मेहनत में 30 रू. मिले। मामला एक दिन से अधिक चलने वाला न था।

खफीफा अदालत की देहली लांघने का यह पहला ही मौका था। मैं मुद्दालेह की ओर से था, अतः मुझे जिरह करनी थी। मैं खड़ा तो हुआ, लेकिन पांव कांप रहे थे, सिर चकरा रहा था। जान पड़ता था, कचहरी घूम रही है। सवाल सूझते ही न थे। जज हँसा होगा। वकीलों को तो मजा आया ही होगा। पर मेरी आंखें क्या कुछ देख पाती थीं!

मैं बैठ गया। दलाल से बोला,"मुझसे तो यह मुकदमा न चल सकेगा। पटेल को कर लीजिए। मुझे दिया हुआ मेहनताना वापस ले लीजिए।" पटेल को उसी दिन के 51 रू. देकर वकील किया। उनके लिए तो वह मामला खेल था।

मैं भागा। मुवक्किल जीता या हारा, इसकी मुझे याद नहीं है। मैं शरमाया। निश्चय किया कि जब तक पूरी हिम्मत नहीं आ जाती तब तक कोई मामला न लूंगा और दक्षिण अफ्रीका जाने तक कचहरी नहीं गया। इस निश्चय में कोई बल न था। ऐसा कौन बेवकूफ था जो हारने के लिए अपना मामला मुझे सौंपता? अतः मेरे बिना ऐसा निश्चय किये भी मुझे कचहरी जाने का कष्ट कोई न देता!

पर अभी एक और मामला बंबई में मिलने वाला था। इस मुकदमें में अर्जीदावा बनाना था। एक गरीब मुसलमान की जमीन पोरबंदर में जब्त हुई थी। पिताजी का नाम जानकर वह उनके बारिस्टर लड़के के पास आया था। मुझे उसके मामले में कुछ दम न जान पड़ा, फिर भी मैंने अर्जीदावा लिख देना स्वीकार कर लिया। छपाई का खर्च मुवक्किल को देना था। मैंने अर्जीदावा बना दिया। दोस्तों को दिखाया। वह अर्जीदावा पास हुआ। मन को कुछ विश्वास हुआ कि मैं अर्जीदावे लिखने लायक हो सकता हूं। वस्तुतः था भी।

मेरा काम बढ़ता गया। मुफ्त में अर्जियां लिखने का धंधा करने से अर्जियां लिखाने वालों की कमी तो न पड़ती, पर उससे रोटी-दाल का ठिकाना तो न होता था!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सोचा कि मैं शिक्षक का काम जरूर कर सकता हूं। अंग्रेजी का अभ्यास काफी कर लिया था। अतः किसी स्कूल में मैट्रिक क्लास को अंग्रेजी पढ़ाने काम मिल जाय तो कर लूं! गड्ढा कुछ तो भरे!

मैंने पत्र में विज्ञापन पढ़ा। एक प्रसिद्ध हाईस्कूल का विज्ञापन था: "आवश्यकता है अंग्रेजी शिक्षक की। रोज एक घंटे के लिए। वेतन 75 रू.।" मैंने दरख्वास्त दी। मुझे रूबरू मिलने का हुक्म हुआ। मैं बड़ी आशाएं लेकर गया। पर प्रिंसिपल को जब यह मालूम हुआ कि मैं बी.ए. नहीं हूं तो खेद के साथ मुझे लौटा दिया।

"पर मैंने लंदन की मैट्रिक्युलेशन परीक्षा पास की है। लैटिन मेरी दूसरी जबान थी।"

"यह सब ठीक है, पर हमें तो ग्रेजुएट ही चाहिए।"

मैं लाचार हो गया। हिम्मत छूट गई। बड़े भाई भी चिंतित हुए। हम दानों ने सोचा कि बंबई में अधिक समय बिताना बेकार है। मुझे राजकोट में ही जमना चाहिए। भाई खुद छोटे वकील थे। मुझे अर्जीदावे लिखने का कुछ-न-कुछ काम तो दे ही सकते हैं। फिर राजकोट में तो घर का खर्च ही है। बंबई का खर्च निकाल देने से बड़ी बचत हो जाती है। सलाह मुझे जंची। यों कुल 5-6 महीने रहकर बंबई की गृहस्थी उजड़ गई।

बंबई रहा तब तक हाईकोर्ट रोज जाता था; पर वहां कुछ सीखा हो, यह नहीं कह सकता। सीखने जितनी समझ ही न थी। कितनी ही बार तो मुर्कदमा समझ में न आता और कार्रवाई में रस न मिलता, तब बैठ झपकियां लेता रहता। झपकियां लेने वाले और साथी भी मिल जाते थे, इससे लज्जा का बोझ कुछ हल्का हो जाता था। अंत में समझने लगा कि हाईकोर्ट में बैठकर झपकियां लेना कोई फैशन के खिलाफ बात नहीं है। फिर तो लज्जा का कारण ही न रह गया।

इस युग में भी मुझ-जैसे कोई बेकार बारिस्टर यदि बंबई में न हों तो उनके लिए एक छोटा-सा अनुभव यहां लिख देना चाहता हूं।

डेरा गिरगांव में होते हुए भी हाईकोर्ट जाने-आने में गाड़ी के पैसे शायद ही कभी खर्चता था। ट्राम में भी यदा-कदा ही बैठता। गिरगांव से प्रायः रोज पैदल ही जाता था। इसमें खासे 45 मिनट लग जाते थे। घर वापस तो बिना नागा पैदल ही आता था। धूप सहने की आदत डाल ली थी। इससे मैंने काफी पैसे बचाए और बंबई में मेरे बहुत-से साथी बीमार पड़े; पर मैं एक दिन भी बीमार पड़ा हूं, यह मुझे याद नहीं है। कमाने लगने पर भी इस प्रकार दफ्तर पैदल जाने की आदत मैंने कायम रखी। इसका लाभ आज तक उठा रहा हूं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4 : पहला आघात

बंबई से निराश होकर राजकोट गया। अलग दफ्तर खोला। गाड़ी कुछ चली। अर्जीदावे लिखने का काम मिलने लगा और महीने में मोटे हिसाब से तीन सौ रूपये की आमदनी होने लगी। अर्जीदावे लिखने का काम मेरी होशियारी की वजह से नहीं मिलने लगा था, उसका कारण था वसीला। बड़े भाई के साथ काम करने वाले वकील की वकालत जमी हुई थी। उनके पास जो अधिक महत्त्व की दरख्वास्तें लिखने को आतीं या जिन्हें वह महत्त्व का समझते वे तो बड़े बैरिस्टर के पास ही जाती थीं। उनके गरीब मुवक्किलों की अर्जियों का मसौदा बनाने का काम मुझे मिलता था।

बंबई में दलाली न देने की जो मेरी टेक थी वह यहां टूट गई, यह मान लिया जा सकता है। दोनों स्थितियों का भेद मुझे समझाया गया। वह यह था कि बंबई में मेरे केवल दलाल को पैसे देने का सवाल था। यहां वकील को देना था। मुझे बतलाया गया कि बंबई की तरह यहां भी सब बैरिस्टर बिना अपवाद कुछ प्रतिशत कमीशन देते हैं। भाई की दलीलों का जवाब मेरे पास न था।

"तुम देखते हो कि मैं दूसरे वकील के साझे में काम करता हूं। मेरे पास जो मुकदमे आते हैं उनमें जो तुम्हें देने लायक होते हैं वह तुम्हें देने की ओर मेरा झुकाव रहना स्वाभाविक है; पर तुम अपने मेहनताने का हिस्सा मेरे साझी को नहीं दो तो मेरी स्थिति कितनी विषम हो जाती है? हम साथ रहते हैं, इसलिए तुम्हारे मेहनताने का लाभ मुझे तो मिल ही जाता है; पर मेरे साझी को? और वही मामला वह किसी दूसरे को दें तो उन्हें उसके मेहनताने में हिस्सा मिलेगा ही।"

इस दलील के भुलावे में मैं आ गया और मैंने देखा कि अगर मुझे बैरिस्टरी करनी है तो ऐसे मामलों में कमीशन न देने का आग्रह मुझे छोड़ देना होगा। मैं पिघला। अपने मन को मनाया या साफ शब्दों में कहूं तो धोखा दिया; पर इसको छोड़कर और किसी मामले में कमीशन या दलाली देने की बात मुझे याद नहीं।

मेरी आर्थिक गाड़ी तो चल निकली; पर इस बीच मुझे अपने जीवन की पहली ठेस लगी। अंग्रेज हाकिम क्या होते हैं यह कान से तो सुना करता था, पर आंखों देखने का मौका मुझे अब मिला।

पोरबंदर के भूतपूर्व राणासाहब को गद्दी मिलने के पहले मेरे भाई उनके मंत्री और सलाहकार थे। उस बीच राणासाहब को गलत सलाह देने की तोहमत उन पर लगाई गई थी। तात्कालिक पोलिटिकल एजेंट से इसकी शिकायत होने के कारण मेरे भाई के बारे में उनका खयाल खराब हो रहा था। इस अफसर से मैं विलायत में मिला था। बल्कि कह सकता हूं कि वहां उसने मुझसे मजे की दोस्ती जोड़ी थी। भाई ने सोचा कि इस परिचय का लाभ उठाकर मैं पोलिटिकल एजेंट से दो शब्द कहूं और उन पर जो खराब असर पड़ा है उसे मिटाने की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कोशिश करूं। मुझे यह बात तनिक भी न रुची। विलायत के तुच्छ परिचय का फायदा मुझे नहीं उठाना चाहिए। यदि मेरे भाई ने कोई खराब काम किया हो तो सिफारिश से फायदा? यदि न किया हो तो बाकायदा दरख्वास्त दें या अपनी निर्दोषिता पर भरोसा रखकर निश्शंक रहें। यह दलील भाई के गले न उतरी।

"तुम काठियावाड़ को जानते नहीं। अभी तुमने दुनिया को समझा नहीं है। यहां तो जोर-जरिये से काम चलता है। तुम्हारे-जैसा भाई अपने मुलाकाती हाकिम से जरा-सी सिफारिश करने का मौका आने पर सटक जाय तो यह उचित नहीं कहा जा सकता।"

भाई की बात मैं टाल न सका। अपनी इच्छा के विरूद्ध मैं गया। मुझे अफसर के पास जाने का कोई हक न था। जाने में मेरा स्वाभिमान भंग होता था। इसका मुझे खयाल था। फिर भी मैंने मिलने का समय मांगा। वह मिला और मैं मिलने गया। मैंने पुराने परिचय की याद दिलाई; पर मैंने तुरंत देखा कि विलायत और काठियावाड़ में अंतर है। अपनी कुरसी पर विराजते हुए अफसर और छुट्टी पर गए हुए अफसरों में भी भेद है। उक्त साहब ने परिचय स्वीकार किया, पर इस स्वीकृति के साथ ही वह अधिक तन गया। यह मैंने उसकी अकड़ से देखा और उसकी नजर में पढ़ा, मानो वह कह रही थी कि "इस परिचय का लाभ उठाने तो तुम नहीं आए हो न?" यह समझते हुए भी मैंने अपनी कहानी शुरू की। साहब धैर्यच्युत हो गया। "तुम्हारे भाई खटपटिये हैं। तुमसे मैं ज्यादा बातें नहीं सुनना चाहता। मुझे समय नहीं है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो तो बाकायदा दरख्वास्त दें।" यह जवाब काफी था, ठीक था; पर गरज तो बावली होती है। मैं तो अपनी कहानी कहे जा रहा था। साहब उठे। "अब तुम्हें जाना चाहिए।"

मैंने कहा, "पर मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।"

साहब बहुत खीझ गया। "चपरासी, इसको दरवाजा बताओ।"

"हुजूर" कहकर चपरासी दौड़ा आया। मैं तो अब भी कुछ बड़बड़ा ही रहा था। चपरासी ने मुझे हाथ लगाया और दरवाजे के बाहर कर दिया।

साहब चले गए, चपरासी गया। मैं चला, अकुलाया, खीझा। मैंने एक खत घसीटा-"आपने मेरा अपमान किया है, चपरासी के जरिए मुझ पर हमला किया है। आप माफी न मांगेंगे तो बाकायदा आप पर मानहानि की नालिश करूंगा।" यह चिट्ठी मैंने भेजी। थोड़ी ही देर में साहब का सवार जवाब दे गया, उसका आशय यह था:

"तुम मेरे साथ असभ्य रीति से पेश आए, जाने के लिए कहने पर भी तुम नहीं गए, इससे मैंने जरूर अपने चपरासी को तुम्हें दरवाजा दिखाने को कहा। चपरासी के कहने पर भी तुम दफ्तर से बाहर न गए। तब उसने तुम्हें दफ्तर से बाहर कर देने के लिए, जितना जरूरी था, बल प्रयोग किया। तुम्हें जो करना हो वह करने को तुम आजाद हो।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह जवाब जेब में डाले, मुंह लटकाये घर आया। भाई को सारा हाल सुनाया: वह दुःखी हुए। पर वह मुझे क्या सांत्वना देते? वकील मित्रों से चर्चा की। मुझे मामला दायर करना कहां आता था? उन दिनों सर फिरोजशाह मेहता किसी मुकदमे के सिलसिले में राजकोट आए थे। उनसे मुझ-जैसा नया बारिस्टर कैसे मिल सकता था! पर उन्हें जिस वकील ने बुलाया था उसकी मार्फत पत्र भेजकर सलाह पुछवाई।

"गांधी से कहो, ऐसे अनुभव तो सभी वकील-बारिस्टरों के हुए होंगे। तुम अभी नये-नये हो। अभी विलायत की हवा तुम्हारे दिमाग में भरी है। तुम अंग्रेजी अधिकारी को पहचानते नहीं। तुम्हें चैन से बैठना हो और दो पैसे कमाने हों तो उस जवाब को फाड़ फेंको और जो अपमान हुआ है उसे पी जाओ। मामला चलाने से फूटी कौड़ी भी न मिलेगी, उल्टे तुम हैरान-बर्बाद होगे। जीवन का अनुभव तुम्हें होना बाकी है।"

मुझे यह सीख कड़वी जहर लगी, पर उस कड़वी घूंट को गले उतारने के सिवा कोई चारा न था। मैं अपमान को भूल तो न सका, पर उसका सदुपयोग किया। "ऐसी स्थिति में फिर कभी न पड़ूंगा, किसी की सिफारिश इस तरह न करूंगा।" इस नियम को कभी भंग नहीं किया। इस ठेस ने मेरे जीवन की दिशा बदल दी।"

5 : दक्षिण अफ्रीका की तैयारी

मेरा उक्त अफसर के यहां जाना अवश्य अनुचित था, पर उसकी अधीरता, रोष और उजड्डपन के सामने मेरा दोष छोटा हो गया। उस कसूर की सजा धक्का दिलवाना नहीं था। मैं उसके पास पूरे पांच मिनट भी न बैठा होऊंगा। उसे तो मेरा बोलना ही नागवार गुजरा। वह विवेकपूर्वक मुझसे जाने को कह सकता था। पर उसके हुकूमत के नशे की कोई हद न थी। बाद को मुझे पता चला कि इस अफसर के पास धीरज नाम की चीज ही नहीं थी। उसके यहां जाने वाले का अपमान करना उसके लिए मामूली बात थी। उसे न रूचने वाली बात मुंह से निकली कि साहब का मिजाज बिगड़ा।

मेरा अधिक काम तो उसी की कचहरी में रहता था। खुशामद मुझसे होने वाली न थी। इस अधिकारी को आयोग्य रीति से रिझाना मुझे मंजूर न था। उसे नालिश की धमकी देकर नालिश न करूं और उसे कुछ लिखूं भी नहीं, यह भी मुझे ठीक न लगा।

इस बीच काठियावाड़ के दरबारी दांव-पेंचों का भी मुझे कुछ अनुभव हुआ। काठियावाड़ छोटे-छोटे राज्यों का प्रदेश है। यहां जोड़-तोड़ लगाने में कुशल राजनीतिज्ञों की बहुतायत होनी स्वाभाविक ही थी। राज्यों में परस्पर दांव-पेंच,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ओहदे हथियाने के लिए अधिकारियों की साजिशें चलती ही रहतीं। राजा कान के कच्चे और परवश थे। साहब के अर्दली तक की खुशामद होती; सरिश्तेदार की बात ही क्या, वह तो साहब से भी बड़ी चीज होता; क्योंकि वही तो साहब की आंख, कान और उसका दुभाषिया होता है। सरिश्तेदार की मर्जी ही कानून थी। उसकी आमदनी साहब की आमदनी से अधिक समझी जाती थी। इसमें अत्युक्ति की सम्भावना जरूर है, पर सरिश्तेदार की छोटी-सी तनख्वाह के मुकाबले में उसका खर्च निस्संदेह अधिक होता था।

यह वातावरण मुझे विष-सा लगा। अपनी स्वतंत्रता कैसे बचा सकूंगा, यह चिन्ता मन में बनी ही रहती।

मैं उदासीन हो गया। भाई ने मेरी उदासीनता देखी। सोचा कि कहीं नौकरी कर लूं तो इन कुचक्रों से मुक्ति मिले; पर जोड़-तोड़ के बिना दीवान और न्यायाधीश का पद कहां मिल सकता था? वकालत करने में साहब के साथ का झगड़ा बाधक होता था।

पोरबंदर में उस समय सरकारी प्रबंध चल रहा था। वहां राणासाहब को कुछ अधिकार मिलने का प्रयत्न करना था। मेरे लोगों से लगान उचित से अधिक लिया जाता था। उसके लिए भी मुझे वहां एडमिनिस्ट्रेटर से मिलना था। मैंने देखा कि एडमिनिस्ट्रेटर गो हिंदुस्तानी हैं, पर उनके रोब-दाब साहब से भी दो कदम आगे हैं। वह होशियार थे, पर उनकी होशियारी का अधिक लाभ प्रजा को मिलते न देखा। राणासाहब को थोड़े अख्तियार मिल गए। मेरे लोगों को तो, कहना चाहिए कि, कुछ भी न मिला। उनके मामले की पूरी जांच हुई, यह भी मुझे न दिखाई दिया।

अतः यहां भी मुझे थोड़ी निराशा ही हुई। मुझे जान पड़ा कि न्याय नहीं हुआ। न्याय पाने के लिए मेरे पास साधन न थे। बहुत करें तो बड़े साहब के सामने अपील करें। उनका रिमार्क होगा, "हम इस मामले में दखल नहीं दे सकते।" ऐसा फैसला किसी कायदे-कानून के आधार पर हो तो कुछ उम्मीद भी रखी जाय। यहां तो साहब की मर्जी ही कानून थी।

मैं अकुला उठा।

इस बीच भाई के पास पोरबंदर के एक मेमन फर्म का संदेश आया, "हमारा व्यापार दक्षिण अफ्रीका में हैं। हमारा फर्म बड़ा है। हमारा एक बड़ा मामला चल रहा है। दावा चालीस हजार पौंड का है। मामला बहुत दिनों से चलता है। हमारे पास अच्छे-से-अच्छे वकील-बारिस्टर हैं। अगर आप अपने भाई को भेज दें तो वह हमें मदद करेंगे और उन्हें भी कुछ मदद मिल जाएगी। वह हमारा मामला हमारे वकील को अच्छी तरह समझा सकेंगे। इसके सिवा, वह नया देश देखेंगे, और बहुत से नए आदमियों से परिचय का लाभ भी होगा।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भाई ने मुझसे जिक्र किया। मैं इस सारी बातों का मतलब न समझ सका। मुझे सिर्फ वकील को ही समझाने का काम करना होगा या कचहरी भी जाना पड़ेगा, यह न जान सका। पर मैं ललचाया।

दादा अब्दुल्ला के साझी स्व. सेठ अब्दुलकरीम जौहरी से भाई ने भेंट कराई। सेठ ने कहा, "आपको अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। हमारी बड़े-बड़े गोरों से दोस्ती है। इनसे आपका परिचय हो जाएगा। हमारी दुकानों में भी आप मदद कर सकोगे। हमारे यहां अंग्रेजी पत्र-व्यवहार बहुत रहता है। उसमें भी आप सहायता कर सकेंगे। आप हमारे बंगले में ही रहेंगे, इससे आपका कुछ खर्च न पड़ेगा।"

मैंने पूछा, "मेरी सेवा आप कितने दिनों के लिए चाहते हैं? मुझे तनख्वाह क्या मिलेगी?"

"आपका काम एक साल से अधिक न रहेगा। आपको फर्स्ट क्लास का आने-जाने का भाड़ा और रहने-सहने के खर्च के अलावा 105 पौंड दिये जायेंगे।"

यह तो वकालत नहीं कही जा सकती, यह तो नौकरी थी। पर मुझे तो जैसे भी हो हिंदुस्तान छोड़ना था। नया मुल्क देखने को मिलेगा, अनुभव मिलेगा। वह अलग। 105 पौंड भाई को भेज दूंगा, उससे घर के खर्च में कुछ मदद तो मिल ही जायेगी। यह सोचकर मैंने तो वेतन के बारे में कुछ झिकझिक किये बिना ही सेठ अब्दुलकरीम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दक्षिण अफ्रीका जाने को तैयार हो गया।

6 : नेटाल पहुंचा

विलायत जाते हुए जो वियोग-दुःख हुआ था वह दक्षिण अफ्रीका जाते समय नहीं हुआ। माता तो चल ही बसी थीं। मुझे दुनिया और मुसाफिरी का कुछ तजरूबा भी हो गया था। राजकोट और बंबई के बीच तो आवा-जाही लगी ही रहती थी। अतः इस समय दुःख केवल पत्नी से वियोग का था। विलायत से आने पर एक और बच्चे की प्राप्ति हुई थी। हमारे पारस्परिक प्रेम में अभी विषय-वासना तो थी ही। फिर भी उसमें निर्मलता आने लगी थी। विलायत से आने के बाद हम एक साथ बहुत कम रहे थे। मैं स्वयं चाहे जैसा होते हुए भी शिक्षक बन गया था, इसलिए तथा पत्नी में कई सुधार कराए थे, उन्हें कायम रखने के लिए भी साथ रहने की आवश्यकता हम दोनों को जान पड़ती थी। पर अफ्रीका मुझे खींच रहा था। उसने वियोग को सह्य बना दिया। "एक साल बाद तो हम मिलेंगे ही" कहकर मैंने पत्नी को दिलासा दिया, राजकोट से बिदा ली और बंबई पहुंचा।

दादा अब्दुल्ला के बंबई के गुमाश्ते की मार्फत मुझे टिकट कटाना था। पर स्टीमर में कोई केबिन खाली नहीं मिल रहा था। इस स्टीमर में न जाने से महीने भर बैठकर बंबई की हवा खानी पड़ती। गुमाश्ते ने कहा, "हमने तो बहुत मेहनत

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की, पर हमें टिकट नहीं मिल सकता। आप डेक में जाना पसन्द करें तो जा सकते हैं। खाने का इन्तजाम सैलून में हो जायेगा।" ये दिन मेरे फर्स्ट क्लास के यात्रा के थे। कोई बारिस्टर भला डेक का यात्री होकर जा सकता है? मैंने डेक में जाने से इनकार किया। मुझे गुमाश्ते पर शक हुआ। इस बात पर मुझे यकीन न आया कि पहले दर्जे का टिकट मिल ही नहीं सकता। गुमाश्ते की अनुमति से मैंने खुद टिकट के लिए कोशिश की। मैं स्टीमर पर पहुंचा और उसके बड़े अफसर से मिला। दरियाफ्त करने पर उसने सरल भाव से उत्तर दिया- "हमारे यहां शायद ही कभी इतनी भीड़ होती है। पर मोजांबिक के गवर्नर-जनरल इसी स्टीमर से जा रहे हैं। इसी से सारी जगह भर गई है।"

"तो क्या किसी तरह आप मेरे लिए जगह नहीं निकाल सकते?"

उस अफसर ने मेरी ओर देखा। फिर हँसा और बोला, "एक उपाय है। मेरी केबिन में एक बर्थ खाली रहती है। उसमें हम यात्री को नहीं लेते, पर आपको मैं वह जगह देने को तैयार हूं।" मुझे खुशी हुई। अफसर को धन्यवाद दिया। सेठ से बात की और टिकट कटाया। 1893 के अप्रैल महीने में मैं हौसलों से भरा हुआ दक्षिण अफ्रीका में किस्मत आजमाने के लिए रवाना हो गया।

पहला बंदरगाह लामू था। यहां पहुंचने में लगभग तेरह दिन लगे। रास्ते में कप्तान से खासी दोस्ती हो गई। कप्तान को शतरंज खेलने का शौक था। पर था वह अभी नौसिखुवा। उसे अपने से कच्चा खेलने वाला साथी चाहिए था। इसलिए उसने मुझे खेलने का न्यौता दिया। मैंने शतरंज का खेल कभी देखा न था। उसके बारे में सुना तो काफी था। उसके खिलाड़ियों से सुना था कि इस खेल में अक्ल खूब लगानी पड़ती है। कप्तान ने कहा कि मैं तुम्हें शतरंज खेलना सिखा दूंगा। मैं उसे अच्छा शागिर्द मिला, क्योंकि मुझमें धीरज था। मैं तो हारता ही रहता था। इससे कप्तान का सिखाने का हौंसला बढ़ता जाता था। मुझे शतरंज का खेल रुचा; पर यह शौक कभी जहाज के नीचे न उतरा। न सीखना ही बादशाह-वजीर की चाल जान लेने से आगे बढ़ सका।

लामू बंदर आया। स्टीमर वहां तीन-चार घंटे ठहरने वाला था। मैं बंदर देखने नीचे उतरा। कप्तान भी गया था। उसने मुझसे कहा, "यहां का बंदर (समुद्र) दगाबाज है। तुम जल्दी लौट आना।"

गांव तो बिलकुल छोटा-सा था। वहां के डाकखाने में गया तो हिन्दुस्तानी नौकर दिखाई दिये। इससे मुझे खुशी हुई। मैंने उनसे बातें कीं। हब्शियों से मिला। उनकी रहन-सहन समझने में रस मिला। इसमें कुछ वक्त चला गया। डेक के कुछ और यात्री थे। उनसे मैंने जान-पहचान कर ली थी। वे खाना पकाकर इतमीनान से भोजन करने के इरादे से नीचे उतरे थे। मैं भी उनकी नाव में बैठा। बंदर में ज्वार काफी था। हमारी नाव में बोझ भरपूर था। बहाव इतना तेज था कि हमारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

नाव की रस्सी स्टीमर की सीढ़ी के साथ बंध ही न पाती थी। नाव सीढ़ी के पास जाती और हट जाती। स्टीमर खुलने की पहली सीटी हुई। मैं घबराया। कप्तान ऊपर से देख रहा था। उसने पांच मिनट स्टीमर रोक देने का हुक्म दिया। स्टीमर के पास एक मछली मारने वाली नाव थी। उसे दस रूपये देकर एक मित्र ने मेरे लिए तय किया और उस मछुए ने मुझे पहली नाव में से लिया। स्टीमर की सीढ़ी उठ चुकी थी। रस्सी से मैं ऊपर खींच लिया गया और स्टीमर चल दिया। दूसरे यात्री छूट गये। कप्तान की चेतावनी का अर्थ अब मेरी समझ में आया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लामू से मुंबासा और वहां से जंजीरबार पहुंचा। जंजीरबार में तो बहुत ठहरना था–आठ या दस दिन। यहां स्टीमर बदलना था। कप्तान का मुझ पर असीम प्रेम था। इस प्रेम ने मेरे लिए उलटा रूप ग्रहण कर लिया। उसने मुझे अपने साथ सैर करने का निमन्त्रण दिया। एक अंग्रेज मित्र को भी निमन्त्रित किया था। हम तीनों कप्तान की नाव में चले। इस सैर का मतलब मैंने बिलकुल न समझा था। कप्तान क्या जाने कि मैं ऐसे मामलों में बिलकुल अनजान हूं? हम हब्शी औरतों के बाड़े में पहुंचे। एक दलाल हमें वहां ले गया। हममें से हर–एक एक कोठरी में घुसा। पर मैं तो मारे शरम के वहां गठरी बना बैठा रहा। उस स्त्री बेचारी ने क्या सोचा होगा, यह तो वही जाने। कप्तान ने आवाज दी। मैं तो जैसा अन्दर घुसा था। वैसा ही बाहर निकल आया। कप्तान मेरा भोलापन समझ गया। पहले तो मुझे बड़ी लज्जा मालूम हुई। पर यह काम मुझे किसी तरह भी पसन्द आने वाला न था, इससे तुरन्त ही वह जाती रही और मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उस बहन को देखकर मेरे मन का विकार–जैसी कोई चीज पैदा तक न हुई। हां, मुझे अपनी इस कमजोरी पर घृणा अवश्य हुई कि मैं कोठरी में घुसने से ही इनकार करने की हिम्मत न कर सका।

यह मेरे जीवन की इस तरह की तीसरी परीक्षा थी। कितने ही युवक पहले निर्दोष होते हुए भी झूठी शरम के कारण बुराई में पड़ जाते होंगे। मेरी रक्षा मेरे पुरूषार्थ ने नहीं की। यदि मैंने कोठरी में जाने से ही साफ नहीं कर दी होती तब वह पुरूषार्थ माना जाता। मुझे तो अपने बचाव के लिए भगवान का ही उपकार मानना चाहिए। इस घटना से ईश्वर पर मेरी आस्था बढ़ी और मन में झूठी शरम छोड़ने का कुछ बल भी आया।

जंजीरबार में एक सप्ताह बिताना था। इसलिए मैं एक मकान किराये पर लेकर शहर में रहा। शहर को खूब घूम–घूमकर देखा। जंजीरबार की हरियाली की कल्पना केवल मालाबार को ही देखकर हो सकती है। वहां के विशाल वृक्ष, वहां के बड़े–बड़े फल इत्यादि देखकर मैं तो चकित हो गया।

जंजीरबार से मोजांबिक और वहां से मई के लगभग अन्त में नेटाल पहुंचा।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

7 : अनुभवों के नमूने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेटाल का बंदरगाह, डरबन और नेटाल बंदर दोनों नामों से प्रसिद्ध हैं। वहां मुझे लेने के लिए अब्दुल्ला सेठ आए थे। स्टीमर डेक में पहुंचने पर नेटाल के लोग उस पर अपने मित्रों को लेने आए। उसी से मैं समझ गया कि यहां हिन्दुस्तानियों की ज्यादा इज्जत नहीं है। अब्दुल्ला सेठ के परिचित जिस रीति से उनके साथ व्यवहार करते थे उसमें भी एक तरह की तुच्छता मुझे नजर आती थी, जो मुझे चुभती थी। अब्दुला सेठ को यह तुच्छता बरदाश्त हो गई थी। मेरी ओर जो देखता वह कुछ कौतुक की दृष्टि से देखता था। अपनी पोशाक के कारण मैं दूसरे हिन्दुस्तानियों से कुछ अलग-सा हो जाता था। मैं उस समय फ्राककोट आदि पहने था और सिर पर बंगाली ढंग की पगड़ी।

अब्दुल्ला सेठ मुझे अपने घर पर ले गए। उनके कमरे की बगल में एक कमरा था, वह उन्होंने मुझे दिया। वह मुझे नहीं समझते थे, मैं उन्हें नहीं समझता था। अपने भाई के दिये हुए कागज-पत्र उन्होंने पढ़े और बहुत घबराए। उन्हें जान पड़ा कि भाई ने उनके यहां सफेद हाथी बांध दिया। मेरा साहबी रहन-सहन उन्हें खर्चीला लगा। मेरे लिए कोई खास काम उस समय था नहीं। उनका मुकदमा ट्रांसवाल में चल रहा था। तुरंत मुझे वहां भेजकर क्या करते? इसके सिवा मेरी होशियारी और ईमानदारी का भरोसा भी किस हद तक करें? प्रिटोरिया में खुद मेरे साथ न रह सकते थे। प्रतिवादी प्रिटोरिया में ही रहता था। उसका मुझ पर बेजा प्रभाव पड़ जाय तो? मुकदमे का काम मुझे न सौंपें तो दूसरे काम तो उनके मुनीम-गुमाश्ते मुझसे कहीं अच्छा कर सकते थे। गलती करने पर मुनीमों को तो डांटा जा सकता था। पर मैं गलती करूं तो? या तो मुकदमें का काम था या फिर मुनीम का। इनके सिवा तीसरा कोई काम न था। इसलिए मुकदमे का काम न दें तो मुझे घर बिठाकर खिलाते रहें।

अब्दुल्ला सेठ का अक्षर-ज्ञान बहुत कम था, पर अनुभव-ज्ञान भरपूर था। उनकी बुद्धि तीव्र थी और इसका अन्दाज खुद उन्हें भी था। अंग्रेजी सिर्फ बातचीत कर लेने भर का अभ्यास से सीख ली थी। पर इस तरह की अंग्रेजी से अपना कुल काम वे चला लेते थे। बैंक के मैनेजरों से बातचीत करते, यूरोपियन व्यापारियों से सौदे पटाते, और वकीलों को अपने मुकदमें समझा देते। हिन्दुस्तानियों में उनकी बड़ी इज्जत थी। उनका फर्म उस समय सब भारतीय फर्मों में बड़ा था, कम-से-कम बड़ों में से एक तो था ही। स्वभाव के वह शक्की थे।

उन्हें इस्लाम का अभिमान था। तत्त्वज्ञान की चर्चा प्रिय थी। अरबी नहीं आती थी, फिर भी कुरान शरीफ की और साधारणतः इस्लामी धर्म-साहित्य की अच्छी जानकारी थी। दृष्टांत तो जबान पर ही रहते थे। उनके सहवास से मुझे

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

इस्लाम का व्यावहारिक ज्ञान काफी मिला। हमारे एक दूसरे को पहचानने लगने के बाद से वह मुझसे खूब धर्म चर्चा किया करते थे।

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Chennai and eGangotri

दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबन की कचहरी दिखाने ले गये। वहां कुछ लोगों से परिचय कराया। कचहरी में अपने वकील के पास मुझे बिठाया। मजिस्ट्रेट बराबर मेरी ओर ताक रहा था। उसने मुझसे पगड़ी उतार देने को कहा। मैंने इनकार किया और कचहरी से निकल गया।

मेरे नसीब में तो यहां भी लड़ाई ही बदी थी!

पगड़ी उतार देने का भेद अब्दुल्ला सेठ ने समझाया। मुसलमानी पहनावे के साथ तो अपनी मुसलमानी पगड़ी पहनी जा सकती थी। अन्य हिन्दुस्तानियों को अदालत के कमरे में दाखिल होने पर अपनी पगड़ी उतारनी चाहिए।

इस सूक्ष्म भेद को समझाने के लिए कुछ ब्यौरे बताने होंगे।

मैंने इन दो-तीन दिनों में ही देख लिया था कि हिन्दुस्तानी अपने-अपने गिरोह बनाकर बैठ गये हैं। एक भाग मुसलमान व्यापारियों का था, जो अपने को, 'अरब' कहते थे। दूसरा भाग हिन्दू या पारसी किरानियों, मुनीम-गुमाश्तों का था। हिन्दू किरानी अधर में लटकते थे। कोई 'अरब' में मिल जाते। कोई पारसी 'पर्शियन' कहकर अपना परिचय देते। इन तीनों का व्यापार के सिवा भी आपस में थोड़ा-बहुत सम्बन्ध अवश्य था। एक चौथा और बड़ा वर्ग था तमिल-तेलगु और उत्तर की ओर के गिरमिटियों तथा गिरमिटमुक्त भारतीयों का। 'गिरमिट' के मानी है।, इकरारनामा लिखकर पांच बरस के लिए मजूरी करने जो गरीब हिन्दुस्तानी उस समय नेटाल जाते थे, वह इकरार अथवा 'एग्रिमेंट' बिगड़कर 'गिरमिट' हुआ और फिर उससे 'गिरमिटिया' बना। इस वर्ग से औरों का व्यवहार बस काम भर का ही था। इन गिरमिटियों को अंग्रेज लोग 'कुली' कहते थे, और उनकी तादाद बड़ी होने के कारण दूसरे हिंदुस्तानियों को भी कुली ही कहते थे। 'कुली' के बदले 'सामी' भी कहते थे। 'सामी' बहुत-से तमिल नामों के अन्त में आने वाला प्रत्यय है। 'सामी' के मानी है स्वामी। स्वामी का अर्थ मालिक होता है। इससे कोई-कोई हिन्दुस्तानी सामी शब्द से चिढ़ता, और जिसमे कुछ हिम्मत होती वह सामी कहने वाले अंग्रेज से कहता- " तुम मुझे 'सामी' कहते हो, पर जानते हो कि 'सामी' के मानी मालिक होते हैं। मैं कुछ तुम्हारा मालिक नहीं हूं।" यह सुनकर कोई-कोई अंग्रेज शरमा जाता, कोई खीझता और अधिक गालियां देता तथा मौके-बे-मौके पीट भी देता, क्योंकि उसकी दृष्टि में तो 'सामी' शब्द निंदा-सूचक ही था, उसका मालिक अर्थ करना तो उसकी बेइज्जती करने के बराबर था।

इसलिए मुझे 'कुली बारिस्टर' का खिताब मिला। व्यापारी 'कुली व्यापारी' कहलाते थे। कुली का मूल अर्थ मजदूर तो जाता रहा। व्यापारी इस शब्द से क्रुद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

होते और कहते, "मैं कुली नहीं हूं, मैं तो अरब हूं" या कहते, "मैं व्यापारी हूं।" ज़रा विनयी अंग्रेज होता तो यह सुनकर माफी भी मांगता था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस स्थिति में पगड़ी पहनने का प्रश्न मेरे लिए बड़ा मसला बन गया। पगड़ी उतारने के मानी थे मान भंग सहना। मैंने तो हिन्दुस्तानी पगड़ी को बिदा करके अंग्रेजी टोप लगाने की सोची, जिससे उतारने में बेइज्जती न जान पड़े और मुझे झगड़े से छुटकारा मिले।

पर अब्दुल्ला सेठ को यह राय पसन्द न आई। उन्होंने कहा, "यदि आप इस समय यह फेरफार करेंगे तो उसका गलत अर्थ लगाया जाएगा। दूसरे जो लोग देशी पगड़ी पहनना चाहते हैं उनकी स्थिति विषम हो जाएगी। इसके सिवा आपको तो अपने देश की पगड़ी ही फबती है। अंग्रेजी टोपी पहनने पर तो आप 'वेटर' जैसे लगेंगे।"

इन वाक्यों में दुनियावी समझदारी थी, देशाभिमान था, साथ ही कुछ संकीर्णता भी थी। दुनियावी समझदारी तो साफ ही है देशाभिमान के बिना पगड़ी का आग्रह नहीं हो सकता था। संकीर्णता के बिना 'वेटर' सम्बन्धी टीका सम्भव नहीं थी। गिरमिटिया हिंदियों में हिन्दू, मुसलमान और ईसाई ये तीन भाग थे। गिरमिटिया हिंदियों में जो ईसाई हो गये थे उनकी संतान ईसाई थी। यह तादाद 1893 में भी बड़ी थी। वे सब अंग्रेजी पोशाक ही पहनते थे। उनकी खासी तादाद होटलों की नौकरी पर गुजर करती थी। इस भाग को लक्ष्य करके अंग्रेजी टोपी की टीका अब्दुल्ला सेठ के वाक्यों में थी। होटल में 'वेटर' बनकर रहने में छोटाई है, यह खयाल उस टीका में मौजूद था। आज भी यह भेद तो बहुतों के दिल में मौजूद हैं।

मुझे अब्दुल्ला सेठ की दलील कुल मिलाकर ठीक लगी। मैंने पगड़ी की घटना पर अपने और पगड़ी के पक्ष में पत्रों में लिखा। पत्रों में मेरी पगड़ी की खूब चर्चा हुई। 'अनवेलकम विजिटर'-बिन-बुलाया मेहमान-शीर्षक से अखबारों में मेरी चर्चा हुई और तीन-चार दिन के अन्दर ही अनायास, मुझे दक्षिण अफ्रीका में शोहरत मिल गई। किसी ने मेरा पक्ष लिया और किसी ने मेरे औद्धत्य की खूब निंदा की।

मेरी पगड़ी तो लगभग अन्त तक रही। वह कब गई, यह हमें अन्त के भाग में माालूम होगा।

8 : प्रिटोरिया जाते हुए

डरबन में बसने वाले ईसाई भारतीयों से भी तुरंत सम्पर्क जुड़ गया। वहां की कचहरी के दुभाषिये मि. पाल रोमन कैथलिक थे। उनसे परिचय किया और प्रोटेस्टेंट मिशन के शिक्षक स्वर्गीय मि. सुभान गाडफ्रे से भी जान-पहचान पैदा की। इन्ही के पुत्र जेम्स गाडफ्रे यहां दक्षिण अफ्रीका के हिंदी-प्रतिनिधि-मण्डल में गत वर्ष आए थे। इन्हीं दिनों स्वर्गीय पारसी रुस्तमजी से और उसी समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्वर्गीय आदमजी मियां खां से परिचय हुआ। ये सब भाई अब तक बिना मतलब के एक-दूसरे से न मिलते थे, पर इसके बाद से मिलने लगे।

यों मैं लोगों से जान-पहचान कर रहा था कि फर्म के वकील का पत्र आया कि मामले की तैयारी होनी चाहिए और अब्दुल्ला सेठ को खुद प्रिटोरिया आना या किसी को वहां भेजना चाहिए।

यह पत्र अब्दुल्ला सेठ ने मुझे दिखाकर पूछा, "आप प्रिटोरिया जाएंगे?" मैंने कहा, "मुझे मामला समझाइए तो कह सकता हूं। अभी तो यह भी नहीं जानता कि वहां मुझे क्या करना होगा।" उन्होंने अपने मुनीमों को मुझे मामला समझा देने का आदेश किया।

मैंने देखा कि मुझे तो ककहरे से शुरू करना पड़ेगा। जंजीरबार में उतरा था तो मैं वहां की कचहरी का काम देखने गया था। एक पारसी वकील किसी गवाह से जिरह में नाम-जमा के सवाल पूछ रहा था। मैं तो न नाम का मतलब समझता था और न जमा का! बहीखाता न मैंने स्कूल में सीखा और न विलायत में।

मैंने देखा कि इस मामले की बुनियाद बहियों पर है। जिसे बहीखाते का ज्ञान हो वही इस मामले को समझ और समझा सकता है। मुनीम के नाम-जमा की बात करने पर मुझे परेशानी होती थी। 'पी. नोट' क्या चीज है, यह न जानता था और कोष में यह शब्द मिलता न था। अपना अज्ञान मुनीम के सामने प्रकट किया तो मालूम हुआ कि पी. नोट के मानी हैं 'प्रामिसरी नोट'। बहीखाते की पोथी खरीदकर पढ़ गया। कुछ आत्मविश्वास पैदा हुआ। मामला समझ में आया। मैंने देखा कि अब्दुल्ला सेठ बही लिखना नहीं जानते, लेकिन व्यावहारिक ज्ञान इतना अधिक प्राप्त कर लिया है कि बहीखाते की ग्रन्थियां झटपट सुलझा लेते थे। मैंने उन्हें बताया कि मैं प्रिटोरिया जाने को तैयार हूं।

सेठ ने पूछा, "आप कहां उतरेंगे?" मैंने जवाब दिया, "जहां आप कहें।"

"तो मैं अपने वकीलों को लिखूंगा। वह आपके ठहरने का इंतजाम करेंगे। प्रिटोरिया में मेरे मेमन दोस्त हैं। उन्हें मैं लिखूंगा जरूर, लेकिन आपका उनके यहां उतरना ठीक न होगा। वहां हमारे प्रतिपक्षी की बहुत पहुंच है। आपके पास मेरे निजी कागज-पत्र जाएं और उनमें से कोई उन्हें पढ़-पढ़ा ले तो हमारे मुकदमें को नुकसान पहुंचा सकता है। उनके साथ जितना कम सम्बन्ध रहे उतना ही अच्छा है।"

मैंने कहा, "आपका वकील जहां रखेगा वहां मैं रहूंगा। या मैं कोई अलग घर ढूंढ़ लूंगा। आप बेफिक्र रहें। आपकी एक भी व्यक्तिगत बात बाहर न जाने पाएगी। पर मैं मिलता-जुलता तो सभी से रहूंगा। मुझे तो प्रतिपक्षी से भी दोस्ती जोड़नी है। मेरे किये हो सके तो मैं तो इस मुकदमे को आपस में तै कराने की कोशिश भी करूं। आखिर तैयब सेठ आपके रिश्तेदार ही तो हैं!"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्रतिपक्षी स्वर्गीय तैयब हाजीखान मुहम्मद अब्दुल्ला सेठ के नजदीकी रिश्तेदार थे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने देखा कि इस बात पर अब्दुल्ला सेठ कुछ चौंके पर तब तक मुझे डरबन पहुंचे छह-सात दिन हो चुके थे। हम एक-दूसरे को जानने और समझने लगे थे। मेरा 'सफेद हाथीपन' लगभग मिट गया था। वह बोले, "हां... आ... आ। जो सुलह हो जाय तो इससे बढ़कर तो और क्या हो सकता है। पर हम तो रिश्तेदार हैं, इसलिए एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचानते हैं। तैयब सेठ जल्दी मानने वाले नहीं हैं। हम सिधाई से व्यवहार करें तो हमारे पेट की बात निकलवाकर पीछे गला दाबेंगे। इसलिए जो करना हो होशियार रहकर कीजिएगा।"

मैं बोला, "आप जरा भी फिक्र न करें। मुझे मुकदमे की बात तैयब सेठ या किसी के सामने करने की जरूरत ही नहीं है। मैं तो इतना ही कहूंगा कि आप दोनों आपस में तस्फिया कर लें तो वकीलों का घर न भरना पड़े।"

सातवें या आठवें दिन मैं डरबन से रवाना हुआ। मेरे लिए पहले दर्जे का टिकट कटाया गया। ट्रेन में सोने के लिए पांच शिलिंग का टिकट अलग लेना पड़ता था। अब्दुल्ला सेठ ने उसे मंगा लेने का आग्रह किया, पर मैंने जिद्द से, अभिमानवश और पांच शिलिंग की बचत के खयाल से सोने का टिकट कटाने से इनकार किया।

अब्दुल्ला सेठ ने मुझे चेताया, "देखिये, यह देश दूसरा है, हिन्दुस्तान नहीं है। खुदा की मेहरबानी है। आप पैसे की कंजूसी न करें। सब जरूरी सुभीता कर लें।"

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और बेफिक्र रहने को कहा।

नेटाल की राजधानी मेरित्सबर्ग में ट्रेन 9 बजे के करीब पहुंची। यहां बिस्तर दिये जाते थे। रेलवे के एक नौकर ने आकर पूछा, "आपको बिस्तर चाहिए?"

मैंने कहा, "मेरे पास अपना बिस्तर है।"

वह चला गया। इसी बीच एक यात्री आया। उसने मेरी ओर देखा। मेरे चमड़े को 'रंगदार' देखकर कुछ भड़का। बाहर निकला। एक-दो अफसरों को साथ लेकर आया। पर किसी ने मुझसे कुछ कहा नहीं। अंत में एक अफसर आया। उसने कहा, "इधर आओ। तुम्हें आखिरी डिब्बे में जाना है।"

मैंने कहा, मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है।"

उसने जवाब दिया, "इसकी परवा नहीं। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हें आखिरी डब्बे में जाना है।"

"मैं कहता हूं कि मुझे इस डब्बे में डरबन से बैठाया गया है और मैं इसी में जाना चाहता हूं।"

अफसर ने कहा, "यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना पड़ेगा। न उतरोगे तो सिपाही उतारेगा।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा, "तो सिपाही भले ही उतारे, मैं अपने आप तो नहीं उतरता।"

सिपाही आया। उसने हाथ पकड़ा और मुझे धक्का देकर नीचे उतारा। मेरा सामान उतार लिया। मैंने दूसरे डब्बे में जाने से इनकार किया। ट्रेन चल दी। मैं वेटिंगरूम में घुसा। अपना हाथबैग साथ रखा। बाकी सामान को नहीं छुआ। रेलवे वालों ने उसे उठाकर कहीं धर दिया।

जाड़े के दिन थे। दक्षिण अफ्रीका की सर्दी ऊंचे भागों में बहुत सख्त होती है। मेरित्सबर्ग ऐसे ही प्रदेश में था। इससे ठंड खूब लगी। मेरा ओवरकोट मेरे सामान में था। सामान मांगने की हिम्मत न हुई। फिर बेइज्जती हो तो? ठंड से कांपने लगा। कमरे में रोशनी न थी। आधी रात के लगभग एक यात्री आया। ऐसा लगा कि वह बात करना चाहता है, पर मेरा मन बात करने लायक न था।

मैंने अपना कर्त्तव्य सोचा- "या तो मुझे अपने हकों के लिए लड़ना चाहिए या वापस जाना चाहिए, अन्यथा जो अपमान होते हैं उन्हें सहन करूं और प्रिटोरिया पहुंचूं और मुकदमा खत्म करके देश को लौट जाऊं। मुकदमें को छोड़कर भाग जाना तो नामर्दी होगी। मुझे जो तकलीफ मिली है वह तो ऊपरी तक़लीफ है। वह गहराई में पैठे हुए एक महारोग का लक्षण है। यह महारोग है रंगद्वेष। इस गम्भीर रोग को मिटाने की शक्ति अपने में हो तो उसका उपयोग मुझे करना चाहिए। उसमें अपने ऊपर जो कष्ट आवें उन्हें सहना चाहिए और उसका विरोध बस उतना ही करना चाहिए जितना रंग-द्वेष दूर करने के लिए आवश्यक हो।"

यह तै करके दूसरी गाड़ी से, जिस तरह भी हो, आगे जाने का निश्चय किया।

सवेरे ही मैंने जनरल मैनेजर को शिकायत का लम्बा तार भेजा। दादा अब्दुल्ला को भी सूचना दी। अब्दुल्ला सेठ तुरंत जनरल मैनेजर से मिले। जनरल मैनेजर ने अपने आदमियों का बचाव किया, पर बतलाया कि मुझे बिना रोक-टोक के मेरे मुकाम पर पहुंचा देने की स्टेशनमास्टर को हिदायत कर दी है। अब्दुल्ला सेठ ने मेरित्सबर्ग के हिंदू व्यापारियों को भी मुझसे मिलने और मेरे आराम का खयाल रखने के लिए तार दिया। दूसरे स्टेशनों को भी वैसे तार भेजे। इससे व्यापारी भाई मुझसे मिलने आये। उन्होंने अपने पर गुजरने वाली मुसीबतों का जिक्र मुझसे किया और कहा कि आप पर जो बीती है वह कोई नई बात नहीं हैं पहले-दूसरे दर्जे में यात्रा करने वाले हिन्दुस्तानियों को अफसरों और मुसाफिरों की ओर से दिक्कतें उठानी ही पड़ती है। इन बातों के सुनने में दिन बीत गया। रात हुई। ट्रेन आई। मेरे लिए जगह तैयार ही थी। जिस बिछौने का टिकट लेने से मैंने डरबन में इनकार किया था, मेरित्सबर्ग में वह लिया। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन ले चली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. अधिक दुर्दशा

चार्ल्सटाउन ट्रेन सवेरे पहुंचती थी। वहां से जोहान्सबर्ग जाने को उस समय ट्रेन नहीं, घोड़े की सिकरम थी। बीच में स्टैंडरटन में एक रात ठहरना पड़ता था। मेरे पास सिकरम का टिकट था एक दिन देर से पहुंचने के कारण यह टिकट रद्द नहीं होता था। इसके सिवा अब्दुल्ला सेठ ने चार्ल्सटाउन के सिकरम वालों को तार भी दे दिया था; पर उसे कोई बहाना ढूंढ़ना था, अतः मुझे निरा अजनबी जानकर बोला, "तुम्हारा टिकट तो रद्द हो गया है।" मैंने उचित उत्तर दिया। टिकट रद्द हो जाने की बात मुझसे कहने का कारण तो और ही था। सब यात्री सिकरम के भीतर ही बैठते हैं। पर मैं तो 'कुली' समझा जाता था, अजनबी लगता था, इससे मुझे गोरे यात्रियों के पास न बिठाना पड़े तो अच्छा हो, यह थी सिकरमवाले की नीयत। सिकरम के बाहर अर्थात कोचवान के दाहिने-बायें दो जगहें थीं। उनमें से एक पर सिकरम की कम्पनी का एक गोरा 'नायक' (लीडर) बैठता था। वह अंदर बैठा और मुझे हांकने वाले की बगल में बिठाया। मैं समझ गया कि यह निरा अन्याय है, अपमान है। पर मैंने इस अपमान को पी जाना ही ठीक समझा। मैं जबरदस्ती तो अंदर बैठ ही न सकता था। तकरार करने लगूं तो सिकरम चल दे और मेरा एक दिन खराब हो और फिर अगले दिन भी क्या बीतेगी, यह तो भगवान ही जानता था। अतः मैं समझदारी से काम लेकर बैठ गया। मन तो बहुत दुःखी हुआ।

कोई तीन बजे सिकरम पारडीकोप पहुंचा। अब उस गोरे नायक की जहां मैं बैठा था वहां बैठने की इच्छा हुई। उसे सिगरेट पीना था, थोड़ी हवा भी खानी रही होगी। अतः उसने एक मैला-सा बोरा पड़ा था उसे कोचवान की बगल से लेकर पैर रखने की पटरी पर बिछा दिया और मुझसे कहा, "सामी, तुम यहां बैठो। मैं हांकने वाले के पास बैठूंगा।" यह अपमान सहने में मैं असमर्थ था। अतः मैंने डरते-डरते उससे कहा, "तुमने मुझे यहां बिठाया, यह अपमान मैंने बरदाश्त कर लिया। मेरी जगह तो अंदर बैठने की थी; पर तुम अंदर बैठ गये, मुझे यहां बिठा दिया; अब तुम्हें बाहर बैठने की इच्छा हो रही है और सिगरेट पीना है, इससे मुझे अपने पैरों के सामने बिठाना चाहते हो! मैं अंदर जाने को तैयार हूं, पर तुम्हारे पैरों के पास बैठने को तैयार नहीं हूं।"

मुश्किल से इतना मैं कह पाया था कि तब तक मुझ पर तमाचों की वर्षा होने लगी और वह गोरा मेरी बांह पकड़कर मुझे नीचे ढकेलने लगा। कोचबक्स के पास ही पीतल के सीखचे थे, उनसे मैं लिपट गया, और कलाई उखड़ जाय तो भी सीखचे न छोड़ने की ठान ली। मेरे ऊपर जो गुजर रही थी, यात्री उसे देख रहे थे। वह गोरा मुझे गालियां दे रहा था, खींच रहा था और मार भी रहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
था। और मैं चुपचाप सब सह रहा था। वह बलवान था, मैं बलहीन। यात्रियों में से कुछ को दया आई और उनमें से एक बोल उठा, "अरे भई, इस बेचारे को वहां बैठा रहने दो। क्यों बिना वजह मारते हो? उसकी बात तो ठीक है। वहां नहीं तो उसे हमारे पास अंदर बैठने दो।" गोरा बोला, "हरगिज नहीं।" पर कुछ सिटपिटाया जरूर। इससे उसने मुझे मारना बंद किया। मेरी बांह छोड़ दी। हां, दो-चार गालियां और दीं, एक होटेंटाट नौकर दूसरी तरफ बैठा था, उसे अपने पांवों के पास बैठाया और खुद बाहर बैठा। यात्री भीतर बैठे। सीटी बजी। सिकरम चला। मेरी छाती तो धड़क ही रही थी। मुकाम पर पहुंच सकूंगा या नहीं, इसमें शक हो रहा था। वह गोरा आंखें तरेरकर लगातार घूरता रहा। अंगुली दिखाकर बड़बड़ाता, "याद रख, स्टैंडरटन पहुंचने दे, फिर तेरी खबर लूंगा।" मैं तो होंठ सिए ही रहा और ईश्वर से रक्षा की प्रार्थना करता रहा।

रात हुई। स्टैंडरटन पहुंचे। कुछ हिंदुस्तानी चेहरे दिखाई दिये। कुछ ढांढस बंधा। नीचे उतरते ही भारतीय भाइयों ने कहा, "हम आपको ईसा सेठ की दुकान ले जाने को खड़े हैं। हमें दादा अब्दुल्ला का तार आया है।" मैं बहुत खुश हुआ। उनके साथ सेठ ईसा हाजी सुमार की दुकान पर गया। सेठ और उनके गुमाश्तों आदि ने मुझे चारों ओर से घेर लिया। अपने ऊपर जो बीती थी उन्हें सुनाई। वे बहुत दुःखी हुए और अपने कड़वे अनुभवों की कहानी सुनाकर मुझे आश्वासन दिया। मैं सिकरम-कम्पनी के एजेंट को अपने साथ हुए व्यवहार की खबर देना चाहता था। मैंने एजेंट को पत्र लिखा। उक्त गोरे की दी हुई धमकी भी लिख दी और सवेरे आगे की यात्रा में मुझे अंदर दूसरे मुसाफिरों के साथ जगह मिलेगी, इसका आश्वासन मांगा। पत्र एजेंट के पास भेज दिया। एजेंट ने जवाब दिया, "स्टैंडरटन से बड़ी सिकरम जाती है और कोचवान वगैरा बदल जाते हैं। जिस आदमी के खिलाफ आपने शिकायत की है वह कल न रहेगा। आपको दूसरे यात्रियों के पास ही जगह मिलेगी।" इस संदेश से मुझे कुछ राहत मिली। उस मारने वाले गोरे पर मुकदमा चलाने की बात तो मैंने सोची ही न थी, इसलिए यह मार का प्रकरण यहीं समाप्त हो गया। सवेरे मुझे ईसा सेठ के आदमी सिकरम पर लिवा गये। मुझे ठीक जगह मिल गई और बिना किसी हैरानी के उस रात को जोहान्सबर्ग पहुंच गया।

स्टैंडरटन छोटा-सा गांव है। जोहान्सबर्ग लम्बा-चौड़ा शहर है। वहां भी अब्दुल्ला सेठ ने तार तो दे ही दिया था। मुझे मुहम्मद कासिम कमरूद्दीन की दुकान का नाम-पता भी दिया था। उनका आदमी सिकरम के अड्डे पर आकर खड़ा था, पर न मैंने उसे देखा न वह मुझे पहचान सका। मैंने होटल में जाने का विचार किया। दो-चार होटल के नाम जान लिये थे। गाड़ी की। उसे ग्रैंड नेशनल होटल ले चलने को कहा। वहां पहुंचकर मैनेजर के पास गया। जगह मांगी। मैनेजर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ने क्षणभर मुझे निहारा। फिर शिष्टतापूर्वक बोला, "मुझे खेद है, सब कमरे भर गए हैं" कहकर मुझे बिदा किया। मैंने गाड़ीवाले से मुहम्मद कासिम कमरूद्दीन की दुकान पर चलने को कहा। वहां तो अब्दुलगनी सेठ मेरी राह ही देख रहे थे। उन्होंने मेरी आवभगत की। अपनी होटल की बीती उन्हें सुनाई। वह ठहाका मारकर हँसे-"भला होटल में वे हमें उतरने देंगे!

मैंने पूछा, "क्यों नहीं?"

"यह तो आप थोड़े दिन रहने पर जान जाएंगें। इस देश में तो हमीं रह सकते हैं। हमें पैसा कमाना है, इसलिए बहुत अपमान सहते हुए भी पड़े हैं।" फिर उन्होंने ट्रांसवाल में हिन्दुस्तानियों को मिलने वाले कष्टों का इतिहास कह सुनाया।

इन अब्दुलगनी सेठ के बारे में हमें आगे अधिक लिखना होगा। उन्होंने कहा,"यह मुल्क आप-सरीखों के लिए नहीं है। देखिए, आपको कल प्रिटोरिया जाना है। आपको तीसरे दर्जे में ही जगह मिलेगी। ट्रांसवाल में नेटाल से अधिक कष्ट है। यहां हम लोगों को पहले या दूसरे दर्जे का टिकट दिया ही नहीं जाता।"

मैंने कहा, "आपने इसकी पूरी कोशिश न की होगी।"

अब्दुलगनी सेठ बोले, "हमने लिखा-पढ़ी तो की, पर हमारे आदमी अधिकतर पहले-दूसरे दर्जे में बैठना भी कहां चाहते हैं?"

मैंने रेलवे की नियमावली मांगी। उसे देखा। उसमें गुंजाइश थी। ट्रांसवाल के असली कानून भी सावधानी से नही गढ़े जाते थे, रेलवे के कायदों का तो पूछना ही क्या था!

मैंने सेठ से कहा, "मैं तो फर्स्ट क्लास में ही जाऊंगा। और उसमें न जा पाऊं तो प्रिटोरिया यहां से 37 मील ही तो है, वहां मैं घोड़ा-गाड़ी करके चला जाऊंगा।"

अब्दुलगनी सेठ ने उसमें लगने वाले खर्च और समय की ओर मेरा ध्यान दिलाया; पर मेरी राय से सहमत होकर स्टेशनमास्टर को पत्र लिखा। उसमें उन्होंने बताया कि मैं बैरिस्टर हूं; सदा पहले दर्जे में ही यात्रा करता हूं यह भी जताया; प्रिटोरिया फौरन पहुंचना जरूरी है, इस ओर भी उसका ध्यान खींचा। अनंतर उन्होंने लिखा कि आपके उत्तर की राह देख सकूं, इतना समय मुझे न रहेगा। इसलिए इस चिट्ठी का जवाब लेने मैं खुद स्टेशन पर पहुंचूंगा और पहले दर्जे का टिकट पाने की आशा रखूंगा। इसमें मेरे मन में थोड़ी चालाकी थी। मैंने सोचा कि स्टेशन मास्टर का लिखित उत्तर तो 'ना' का ही देगा। फिर 'कुली-बारिस्टर' की वेषभूषा के बारे में भी न सोच सकेगा। इससे मैं सोलह आने साहबी लिबास में उसके सामने जाकर खड़ा हो जाऊंगा और उससे बात करूंगा तो समझ जायेगा और शायद मुझे टिकट दे देगा। अतः मैं फ्राक कोट, नेकटाई वगैरा डालकर स्टेशन पहुंचा। स्टेशन मास्टर के सामने गिन्नी निकालकर रखी और पहले दर्जे का टिकट मांगा। उसने कहा, "आपने ही मुझे चिट्ठी लिखी है?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा, "जी हां। मुझें आप टिकट दे देंगे तो आपका अहसान मानूंगा। मुझे प्रिटोरिया आज ही पहुचना चाहिए।"

स्टेशनमास्टर हँसा। उसे दया आई। वह बोला, "मैं ट्रांसवालर नहीं हूं। मैं हालैंडर हूं। आपकी भावना को समझता हूं। आपके साथ मेरी हमदर्दी है। मैं आपको टिकट देना चाहता हूं। पर एक शर्त है : आपको रास्ते में गार्ड उतारे और तीसरे दर्जे में बैठा दे तो आप मुझे हैरान न करें, यानी आप रेलवे कम्पनी पर दावा न करें। मैं चाहता हूं कि आपकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो। आप भले आदमी हैं, यह तो देख ही रहा हूं।" यह कहकर उसने टिकट काट दिया। मैंने उसका उपकार माना और उसे निर्भय रहने को कहा। अब्दुलगनी सेठ मुझे पहुंचाने आए थे। यह कौतुक देखकर प्रसन्न और विस्मित हुए; पर मुझे चेताया, "आप प्रिटोरिया राजी-खुशी पहुंच जायं तब समझूंगा कि काम पूरा हुआ। मुझे डर है कि गार्ड आपको पहले दर्जे में चैन से न बैठने देगा। और उसने बैठने भी दिया तो मुसाफिर न बैठने देंगे।"

मैं पहले दर्जे के डब्बे में बैठा। ट्रेन चली। जर्मिस्टन पहुंचने पर गार्ड टिकट जांचने आया। मुझे देखते ही झल्ला गया। उंगली से इशारा करके बोला, "तीसरे दर्जे में जाओ।" मैंने अपना पहले दर्जे का टिकट दिखाया। उसने कहा, "वह कोई चीज नहीं। जाओ तीसरे दर्जे में।"

इस डब्बे में एक ही अंग्रेज मुसाफिर था। उसने उस गार्ड को फटकारा, "तुम इस भले आदमी को क्यों तंग करते हो? देखते नहीं हो, इसके पास पहले दर्जे का टिकट है? मुझे उनके बैठने से कोई कष्ट नहीं है।" यह कहकर उसने मेरी ओर देखा और कहा, "आप इतमीनान से बैठे रहें।"

गार्ड बड़बड़ाया, "आपको कुली के साथ बैठना है तो मेरा क्या बिगड़ता है!" कहकर चलता बना।

रात को आठ बजे के करीब ट्रेन प्रिटोरिया पहुंची।

10 : प्रिटोरिया में पहला दिन

प्रिटोरिया स्टेशन पर दादा अब्दुल्ला के वकील की ओर से किसी आदमी के मिलने की आशा मैं रखता था। मैं जानता था कि कोई हिंदी तो मुझे लेने आया ही न होगा, और किसी भी हिंदी के यहां न टिकने का वचन भी दे चुका था। वकील ने किसी आदमी को स्टेशन न भेजा था। पीछे मालूम हुआ कि उस दिन रविवार था, इसलिए वकील महाशय बिना कुछ असुविधा उठाए किसी आदमी को न भेज सकते थे। मैं उलझन में पड़ा। सोचने लगा, कहां जाऊं। डर था कि कोई होटल मुझे जगह न देगा। सन् 1893 का प्रिटोरिया स्टेशन, 1914 के प्रिटोरिया स्टेशन से भिन्न था। धीमी-धीमी बत्तियां जला करती थीं। मुसाफिर भी अधिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
न होते थे। मैंने सब मुसाफ़िरों को निकल जाने दिया। सोचा कि ज़रा फ़ुर्सत होने पर टिकट कलेक्टर को टिकट दूंगा और उसने कोई छोटा-मोटा होटल या मकान बता दिया तो वहां जाकर ठहरूंगा, नहीं तो रात में स्टेशन पर ही पड़ा रहूंगा। पर इतना पूछने को भी मन न बढ़ता था, क्योंकि अपमान होने का डर था।

स्टेशन खाली हुआ। मैंने टिकट कलेक्टर को टिकट देकर पूछना शुरू किया। उसने विनयपूर्वक उत्तर दिये; पर मैंने देखा कि वह ज्यादा मदद नहीं कर सकता था। उसकी बगल में एक अमेरिकन हब्शी सज्जन खड़े थे। वह मेरे साथ बातें करने लगे:

"मैं देखता हूं, आप बिलकुल अजनबी हैं और यहां आपका कोई परिचित नहीं हैं। मेरे साथ चलिये तो मैं आपको एक छोटे होटल में ले चलता हूं। उसका मालिक अमेरिकन है, उससे मेरा अच्छा परिचय है। मेरी समझ में वह आपको टिका लेगा।"

मुझे कुछ शक तो हुआ, पर मैंने उस भद्र पुरूष को धन्यवाद दिया और उसके साथ जाना स्वीकार कर लिया। वह मुझे जांस्टन के फेमिली होटल में ले गया। पहले उसने मि. जांस्टन को एक किनारे ले जाकर कुछ बातें कीं। मि. जांस्टन ने मुझे रातभर के लिए जगह देना स्वीकार किया। वह भी इस शर्त पर कि मेरा खाना मेरी कोठरी में पहुंचा दिया जायेगा।

मि. जांस्टन बोले, "मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरी निगाह में तो काले-सफेद का कतई फर्क नहीं है। पर मेरे ग्राहक सिर्फ़ गोरे ही हैं और आपको भोजनशाला में खाना दूं तो ग्राहकों को बुरा लगेगा, और शायद हमारा होटल छोड़ भी दें।"

मैंने ज़वाब दिया, "आप मुझे रातभर रहने देते हैं, इसे भी आपका अहसान मानता हूं। इस मुल्क की हालत से मैं कुछ-कुछ वाकिफ हो चला हूं। आपकी कठिनाई मैं समझ सकता हूं। मुझे आप खुशी से मेरे कमरे में खाना दें। कल मैं दूसरा प्रबंध कर लेने की आशा रखता हूं।"

मुझे कमरा मिला। मैं उसमें दाखिल हुआ। अकेला बैठा खाने की राह देखते हुए विचारमग्न हो रहा था। इस होटल में अधिक यात्री नहीं रहते थे। थोड़ी देर में खाना लेकर आने वाले वेटर के बदले मैंने मि. जांस्टन को देखा। उन्होंने कहा, "मैंने आपको यहां कमरे में खिलाने की बात तो कह दी; लेकिन मुझे इसमें शरम लगी। इससे मैंने अपने ग्राहकों से आपके बारे में बात करके पूछा। उन्हें आपके भोजनशाला में भोजन करने में कोई आपत्ति नहीं है। आप जितने दिन चाहें यहां रहें उन्हें उसमें भी एतराज नहीं हैं। अतः अब आपकी इच्छा हो तो आप भोजनशाला में आइए और जितने दिन जी चाहे यहां ठहरिए।"

मैंने फिर कृतज्ञता प्रकट और भोजनशाला में जाकर इतमीनान से भोजन किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दूसरे दिन सवेरे वकील के यहां गया। उसका नाम था प्र.डब्ल्यु. बेकर। उनसे मिला। अब्दुल्ला सेठ ने उनका कुछ वर्णन मुझसे किया था, इसलिए हमारी पहली मुलाकात से मुझे कोई अचरज न हुआ। वह मुझसे प्रेम से मिले और मेरे बारे में कुछ बातें पूछीं, जो मैंने उन्हें बतला दीं। उन्होंने कहा, बैरिस्टर की हैसियत से तो यहां आपका कोई उपयोग होने वाला नहीं है। हमने अच्छे-से-अच्छे बैरिस्टर इस मुकदमे में रखे हैं। केस लम्बा है और गुत्थियों से भरा हुआ है! इसलिए आपसे तो मैं आवश्यक तथ्य आदि प्राप्त करने का ही काम ले सकूंगा। हां, यह फायदा होगा कि अपने मुवक्किल से पत्र-व्यवहार करने में अब मुझे आसानी होगी और मुझे उनसे जो तथ्यादि मंगाने की बातें जाननी होंगी उन्हें आपकी मार्फत मंगा सकूंगा। आपके लिए मकान तो अभी तक मैंने तलाश नहीं किया है। आपको देखने के बाद खोजने का खयाल कर रखा था। यहां रंग-भेद बहुत है, इसलिए घर पाना आसान नहीं है; पर एक बहन को मैं जानता हूं। वह गरीब है, नानबाई की औरत है। मेरा खयाल है कि वह आपको टिका लेगी। उसे भी कुछ मदद मिल जाएगी। चलिए, उसके यहां चलें।"

मिस्टर बेकर मुझे वहां ले गए। उस बहन को एक किनारे ले जाकर उन्होंने कुछ बातें कीं और उसने मुझे टिकाना मंजूर कर लिया। 35 शिलिंग फी हफ्ता देना तय हुआ।

मि. बेकर वकील और साथ ही कट्टर पादरी थे। अभी वह जिन्दा हैं और अब सिर्फ पादरी का ही काम करते हैं, वकालत छोड़ दी है। रूपये-पैसे से सुखी हैं। मेरे साथ अभी उनका पत्र-व्यवहार चला जा रहा है। पत्रों का विषय एक ही होता है-भिन्न-भिन्न रीतियों से ईसाई धर्म की खूबियों की चर्चा, और इस मत का प्रतिपादन कि ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा और तारनहार माने बिना परम शान्ति नहीं मिल सकती।

मैंने उन्हें बता दिया- "मैं जन्म से हिंदू हूं। इस धर्म का मुझे अधिक ज्ञान नहीं है, दूसरे धर्मों का भी थोड़ा ही ज्ञान है। मैं क्या मानता हूं, क्या मानना चाहिए, यह सब मैं नहीं जानता। अपने धर्म का गंभीरता से अध्ययन करना चाहता हूं। दूसरे धर्मों का अभ्यास भी यथाशक्ति करने का इरादा है।"

यह सब सुनकर मि. बेकर खुश हुए और कहा-"मैं 'साउथ अफ्रीका जनरल मिशन' का एक डाइरेक्टर हूं। मैंने अपने खर्च से एक गिरजाघर बनवाया है। उसमें जब-तब धर्म का व्याख्यान दिया करता हूं। मैं रंग-भेद को नहीं मानता। मेरे पास कुछ काम करने वाले साथी भी है। हम रोज एक बजे कुछ मिनट के लिए मिलते हैं और आत्मा की शान्ति तथा प्रकाश (ज्ञानोदय) के निमित्त प्रार्थना करते है। उसमें आप आएं तों मुझे प्रसन्नता होगी। वहां अपने साथियों से भी आपका परिचय कराऊंगा। वे सब आपसे मिलकर खुश होंगे और मुझे विश्वास है कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आपको भी उनका समागम पसन्द आएगा। मैं कुछ धार्मिक पुस्तकें भी आपको पढ़ने को दूंगा। पर असली पुस्तक तो बाइबिल ही है। उसे पढ़ने की मैं आपसे खासतौर से सिफारिश करता हूं।

मैंने मि. बेकर को धन्यवाद दिया और कहा कि जब तक चल सकेगा, एक बजे आपके मंडल में प्रार्थना के लिए आ जाया करूंगा।

"तो कल एक बजे यहीं आइयेगा और हम साथ ही प्रार्थना-मन्दिर चलेंगे।"

हम बिदा हुए। बहुत सोचने-विचारने का अभी मुझे अवकाश न था। मि. जांस्टन के पास गया। बिल चुकाया। नये घर में गया। वहां भोजन किया। मकान-मालकिन भली स्त्री थी। उसने मेरे लिए निरामिष भोजन बनाया था। इस कुटुम्ब में हिलमिल जाने में मुझे देर न लगी। भोजन से निपटकर दादा अब्दुल्ला ने जिस मित्र के नाम पत्र दिया था उनसे मिलने गया। परिचय किया। भारतीयों की दुर्दशा की विशेष बाते जानीं। उन्होंने मुझसे अपने यहां रहने का आग्रह किया। मैंने धन्यवाद दिया और मेरे लिए जो व्यवस्था हो चुकी थी वह उन्हें बतलाई। उन्होंने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया कि जिस चीज की आवश्यकता हो मांग लूं।

शाम हुई। व्यालू किया और अपने कमरे में जाकर विचारप्रवाह में बहने लगा। मैंने तत्काल आपने लिए कोई काम न देखा। अब्दुल्ला सेठ को यह बात लिख दी। मि. बेकर की मित्रता का क्या अर्थ हो सकता है? इनके धर्म-बंधुओं से मैं क्या पा सकूंगा? ईसाई-धर्म के अध्ययन में मुझे कहां तक जाना है? हिन्दू-धर्म का साहित्य कहां से प्राप्त किया जा सकता है? उसे जाने बिना ईसाई-धर्म का स्वरूप मैं कैसे जान सकता हूं? एक ही निर्णय पर पहुंच सका-जो कुछ पढ़ूं निष्पक्ष चित्त से पढ़ूं और मि. बेकर के समुदाय को ईश्वर जब जो सुझाये वह उत्तर दूं। अपना धर्म जब तक पूरी तरह समझ न लूं तब तक मुझे दूसरा धर्म स्वीकार करने का विचार न करना चाहिए। यों सोचते-सोचते नींद की गोद में पहुंच गया।

11 : ईसाइयों से संपर्क

दूसरे दिन एक बजे मैं मि. बेकर के प्रार्थना-समाज में गया। वहां मिस हैरिस, मिस गेग, मि. कोट्स आदि से परिचय हुआ। सबने घुटने टेककर प्रार्थना की। मैंने भी उनका अनुकरण किया। प्रार्थना में जिसका जी जो चाहता वह ईश्वर से मांगता था। 'दिन शांति से बीते', 'ईश्वर हमारे हृदय का द्वार खोले', इत्यादि तो होता ही था। मेरे लिए भी प्रार्थना हुई-"हम लोगों के बीच में जो नया भाई आया है उसे तू मार्ग दिखा। जो शांति तूने मुझे दी है वह उसे भी दे। जिन प्रभु ईसा ने मुझे मुक्त किया है वह उसे मुक्त करें। यह सब हम प्रभु ईसू के नाम पर मांगते हैं।" इस प्रार्थना में भजन-कीर्तन नहीं था। सिर्फ कोई विशेष मांग ईश्वर से करनी और बिखर जाना। यह सबके दोपहर के भोजने का समय होता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसलिए सब इस प्रकार प्रार्थना करके भोजन के लिए चले जाते थे। प्रार्थना में पांच मिनट से अधिक न लगते थे।

मिस हैरिस और मिस गेग प्रौढ़ अवस्था की दो कुमारियां थीं। मि. कोट्स क्वेकर[1] थे। दोनों कुमारियां साथ रहती थीं। उन्होंने मुझे हर रविवार को अपने यहां चार बजे की चाय पर आने का न्यौता दिया। मि. कोट्स जब मिलते तो हर रविवार को मुझे उन्हें हफ्ते भर का धार्मिक रोजनामचा सुनाना पड़ता। कौन-कौन पुस्तकें पढ़ीं, मेरे मन पर उनका क्या असर हुआ, यह सब बताना होता। उक्त बहनें अपने मधुर अनुभव सुनाया करतीं और उन्हें प्राप्त परम शान्ति की बातें करतीं।

मि. कोट्स निर्मल चित्त के पक्के युवा क्वेकर थे। मेरे साथ उनका सम्बंध गाढ़ा हो गया। हम अक्सर साथ घूमने भी जाया करते। वह मुझे ईसाइयों के यहां ले जाया करते।

कोट्स ने मुझे किताबों से लाद दिया। ज्यों-ज्यों वह मुझे पहचानते जाते त्यों-त्यों उन्हें जो पुस्तकें अच्छी लगती, मुझे पढ़ने को देते रहते। मैंने भी केवल श्रद्धा से उन पुस्तकों का पढ़ना स्वीकार किया। इन पुस्तकों पर हममे बहस भी होती।

1893 के साल में ऐसी पुस्तकें मैंने बहुत पढ़ीं। उन सबके नाम तो मुझे याद नहीं हैं, पर उनमें सिटीटेंपल वाले डॉ. पारकर की 'कमेंटरी' (टीका), पियर्सन का 'मेनी इनफालिबल प्रूफ्स', बटलर की 'एनॉलोजी' इत्यादि थीं। इनमें से कुछ तो समझ में ने आता, कुछ रुचता, कुछ न रुचता। यह सब मैं कोट्स को बता दिया करता। 'मेनी इनफालिबल प्रूफ्स' का अर्थ है 'अनेक अकाट्य प्रमाण' अर्थात बाइबिल के लेखक के मत से जिस धर्म का उपदेश किया गया है उसके समर्थन के प्रमाण। इस पुस्तक का मुझ पर कुछ भी असर न हुआ। पारकर की टीका नीतिवर्धक मानी जा सकती है, पर ईसाई-धर्म की प्रचलित धारणाओं के बारे में शंका रखने वालों को उससे कोई मदद न मिल सकती थी बटलर की 'एनॉलोजी' बहुत गम्भीर और कठिन किताब जान पड़ी। उसे पांच-सात बार पढ़ना चाहिए। वह नास्तिक को आस्तिक बनाने के लिए लिखी हुई जान पड़ी। उसमें ईश्वर के अस्तित्व के बारे में दी गई दलीलों का मेरे लिए कोई उपयोग न था; क्योंकि यह मेरा नास्तिकता का काल नहीं था। पर जो दलीलें ईसा के एकमात्र अवतार और मनुष्य और ईश्वर के बीच में मध्यस्थता करने वाला होने के विषय में दी गई थीं, उनकी छाप मुझ पर न पड़ी।

पर कोट्स हार मानने वाले आदमी नहीं थे। मुझ पर उनकी अपार ममता थी। उन्होंने मेरे गले में वैष्णवी कंठी देखी। उन्हें यह वहम जान पड़ा और उसे देखकर उन्हें दुःख हुआ। "यह वहम तुम-जैसों को शोभा नहीं देता। लाओ, तोड़ दूं?"

---

1. ईसाइयों को एक सम्प्रदाय जो सादगी और सरल व्यवहार पर बहुत जोर देता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

"यह कंठी नहीं टूट सकती। माताजी की प्रसादी है।"
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"पर आपका उसमें विश्वास है?"

"इसका गूढ़ार्थ मैं नहीं जानता। इसे न पहनूं तो मेरा कोई अनिष्ट होगा, ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता। पर जो माला मुझे माताजी ने प्रेमपूर्वक पहनाई, जिसे पहनाने में उन्होंने मेरा कल्याण माना, उसका बिना कारण मैं त्याग नहीं करूंगा। काल पाकर जीर्ण हो जाएगी और अपने आप टूट जाएगी तब दूसरी लेकर पहनने का मुझे शौक न रहेगा। पर यह कंठी नहीं टूट सकती।"

कोट्स मेरी इस दलील की कदर न कर सके, क्योंकि उन्हें मेरे धर्म में अनास्था थी। वह तो मुझे अज्ञान कूप में से निकालने की आशा रखते थे। उन्हें मुझे यह बताना था कि दूसरे धर्मों में कुछ सत्य भले ही हो, पर पूर्ण सत्यरूप ईसाई धर्म को स्वीकार किये बिना मुझे मुक्ति नहीं मिलने की, ईसा की बिचवई के बिना पाप धुल नहीं सकते और पुण्य कर्म जितने हैं सब व्यर्थ हैं। उन्होंने जैसे मुझे पुस्तकों का परिचय कराया वैसे ही जिन्हें वह पक्के ईसाई मानते थे उनसे भी परिचय कराया।

उनमें ही 'प्लीमथ ब्रदर्न' का कुटुम्ब भी था।

'प्लीमथ ब्रदर्न' नाम का एक ईसाई सम्प्रदाय हैं। कोट्स के कराये हुए परिचयों में अनेक परिचय मुझे अच्छे लगे। वे मुझे ईश्वर से डरने वाले आदमी जान पड़े। पर इस कुटुम्ब में मेरे सामने यह दलील रखी गई- "हमारे धर्म की खूबी ही आप नहीं समझ सके हैं। आपकी बातों से हम देखते हैं कि आपको सदा क्षण-क्षण में अपनी भूलों का विचार करना, उन्हें सुधारना, और न सुधार सकें तो पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इस क्रिया-कलाप में से आपको कब मुक्ति मिल सकती है? आपको शान्ति तो नहीं ही मिलेगी। हम पापी हैं यह तो आप स्वीकार करते ही हैं। अब हमारे विश्वास की परिपूर्णता देखिये। हमाारा प्रयत्न व्यर्थ है। फिर भी मुक्ति तो मिलनी ही चाहिए। पाप का बोझ कैसे उठे? हम उसे ईसा पर डाल दें। वह तो ईश्वर का एकमात्र निष्पाप पुत्र है। उसका वरदान है कि जो उस पर विश्वास रखते हैं उनके पाप वह धो देता है। ईश्वर की यह अगाध उदारता है। ईसा की इस मुक्ति की योजना को हमने स्वीकार कर लिया है, इससे हमारे पाप हमें चिपटते नहीं। पाप तो होते ही हैं। इस दुनिया में पाप किये बिना कैसे रहा जा सकता है? इसी से ईसा ने सारे जगत के पापों का एक ही बार प्रायश्चित्त कर डाला। जिसे उनके महाबलिदान को स्वीकार करना हो वह वैसा करके शान्ति प्राप्त कर सकता है। कहां तुम्हारी अशान्ति और कहां हमारी शान्ति!"

यह दलील मेरे गले बिलकुल न उतरी। मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया- "यदि सर्वमान्य ईसाई धर्म यही हो तो मेरा काम उससे न चलेगा। मैं पाप के परिणाम

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
से मुक्ति नहीं मांगता, मैं तो पापवृत्ति से, पाप-कर्म से मुक्ति मांगता हूं। जब तक वह नहीं मिलती तब तक अपनी अशान्ति ही मुझे प्रिय रहेगी।"

प्लीमथ ब्रदर ने उत्तर दिया- "मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपका प्रयत्न व्यर्थ है। मेरे कथन पर फिर विचार कीजिएगा।"

और इन भ्राई ने जैसा कहा वैसा करके भी दिखा दिया-जानबूझकर अनीति कर दिखाई।

पर सारे ईसाई ऐसा नहीं मानते, इतना तो मैं इन परिचयों के पहले ही जान गया था। कोट्स स्वयं ही पापभीरु पुरुष थे। उनका हृदय निर्मल था। वह हृदय-शुद्धि की शक्यता को मानते थे। उक्त बहनें भी वैसी ही थीं। मेरे हाथ पड़ने वाली पुस्तकों में कितनी ही भक्ति से भरी थीं। इससे इस परिचय से कोट्स को जो घबराहट हुई उसे मैंने शान्त क़िया और विश्वास दिलाया कि एक प्लींमथ ब्रदर की अनुचित धारणा के कारण मैं ईसाई धर्म के विषय में प्रतिकूल मत नहीं बना सकता। मेरी कठिनाइयां तो बाइबिल और उसके गूढ़ अर्थ के विषय में हैं।

12 : हिंदुस्तानियों से परिचय

ईसाई-सम्बन्धों के बारे में अधिक लिखने से पहले उसी समय के अन्य अनुभवों की चर्चा कर देना आवश्यक जान पड़ता है।

नेटाल में जो स्थान दादा अब्दुल्ला का था वही स्थान प्रिटोरिया में सेठ तैयब हाजी खान मुहम्मद का था। उसके बिना कोई भी सार्वजनिक उद्योग वहां न चल सकता था। उनसे मैंने पहले ही हफ्ते में पहचान कर ली। मैंने उनसे कहा कि मैं प्रिटोरिया के हरेक हिंदुस्तानी से मिलना और उनकी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं और इस सारे काम में आपकी मदद चाहता हूं। उन्होंने यह सहायता देना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मेरा पहला कदम तो सब हिंदियों की सभा करके उनके सामने स्थिति का चित्र उपस्थित करना था। सेठ हाजी मुहम्मद हाजी जूसब के यहां, जिनके नाम मुझे सिफारिशी पत्र मिला था, यह सभा हुई। उसमें खास करके मेमन व्यापारी आए थे। कुछ हिंदू भी थे। प्रिटोरिया में हिंदुओं की आबादी थी ही बहुत कम।

यह मेरे जीवन का पहला भाषण माना जा सकता है। मैंने माकूल तैयारी की थी। मुझे सत्य पर बोलना था। व्यापारियों के मुंह से सुनता आ रहा था कि व्यापार में सच्चाई नही चल सकती। मैं उस समय भी इस बात को नहीं मानता था। आज भी नहीं मानता। यह कहने वाले व्यापारी मित्र आज भी पड़े हैं कि व्यापार और सत्य साथ नहीं चल सकते। ऐसे लोग व्यापार को व्यवहार और सत्य को धर्म कहते हैं। साथ न चल सकने के लिए दलील यह देते हैं कि व्यवहार एक चीज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है, धर्म दूसरी। उनकी धारणा है कि व्यवहार में शुद्ध सत्य नहीं चल सकता, उसमें तो सत्य यथाशक्ति ही बोला-बरता जा सकता है। इस मत का मैंने अपने भाषण में जोरदार शब्दों में खंडन किया और व्यापारियों को उनके दोहरे फर्ज की याद दिलाई। परदेश आकर उनकी जिम्मेदारी देश की अपेक्षा ज्यादा हो गई है, क्योंकि मुट्ठी-भर हिंदुस्तानियों के आचरण से हिंदुस्तान के करोड़ों लोगो के चरित्र की नापतौल की जाती है। अंग्रजों के रहन-सहन की तुलना में हमारा रहन-सहन गंदा है यह मैं समझ चुका था। उस ओर भी मैंने उनका ध्यान खीचा।

हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई अथवा गुजराती, मद्रासी, पंजाबी, सिंधी, कच्छी, सूरती आदि भेदों को भुला देने पर जोर दिया। अन्त में यह सलाह दी कि एक मंडल स्थापित करके हिंदुस्तानियों के कष्ट-कठिनाइयों का इलाज अफसरों से मिलकर, आवेदनपत्र आदि भेजकर करना चाहिए और कहा कि इस काम में जितना समय मुझे मिलेगा उतना बिना किसी वेतन-पुरस्कार के दूंगा।

मैंने देखा कि सभा पर मेरी बातों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा।

चर्चा हुई। कितनों ने घटनाओं की सूचना मुझे भेजने को कहा। मेरी हिम्मत बढ़ी। इस सभा में अंग्रेजी जानने वाले मुझे थोड़े ही दिखायी दिए। मैंने सोचा कि इस पराए देश में अंग्रेजी का ज्ञान हमारे लिए उपयोगी है। इसलिए मैंने जिनके पास फुर्सत हो उन्हें अंग्रेजी पढ़ने की सलाह दी। कहा कि अवस्था अधिक हो जाने पर भी पढ़ा जा सकता है और इस उम्र में अध्ययन करने वालों के दृष्टांत सुनाए। मैंने स्वयं, क्लास खुले तो, उसमें अथवा छिटपुट पढ़ने वाले मिलें तो उन्हें पढ़ाने का काम अपने ऊपर लिया। क्लास तो नहीं खुला, पर तीन आदमी, उनके सुभीते के अनुसार और उनके घर जाकर पढ़ा आऊं तो पढ़ने को तैयार हुए। उनमें दो मुसलमान थे-एक हज्जाम, एक किरानी। एक हिंदू छोटा दुकानदार था। मैंने सबको पढ़ाना स्वीकार किया। अपनी पढ़ाने की शक्ति के बारे में तो मुझे तनिक भी अविश्वास न था। मेरे शिष्यों को थका मानिए तो मान लीजिए; पर मैं न थका। कभी ऐसा भी होता कि उनके यहां जाता तो उन्हें फुर्सत न होती। मैंने धीरज न छोड़ा। इनमें से किसी को अंग्रेजी का गम्भीर अध्ययन तो करना ही न था। पर दो ने कोई आठ महीने में अच्छी प्रगति कर ली, यह कह सकता हूं। दो को हिसाब-किताब रखना और साधारण चिट्ठी लिख लेना आ गया। हज्जाम को तो इतनी ही अंग्रेजी सीखनी थी कि अपने ग्राहकों से बातचीत कर ले। दो ने तो इस पढ़ाई से काफी पैसा कमा लेने की योग्यता भी प्राप्त कर ली।

सभा के फल से मुझे संतोष हुआ। हर महीने या हर हफ्ते ऐसी सभा करने का निश्चय हुआ। सभा कमोबेश नियमित रूप से होती थी और विचार-विनिमय हुआ करता था। नतीजा यह हुआ कि प्रिटोरिया में शायद ही कोई हिंदुस्तानी रहा होगा जिसे मैं पहचानने नहीं लगा अथवा जिसकी स्थिति से मैं वाकिफ न हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गया होऊं। हिंदुस्तानियों की स्थिति का ऐसा ज्ञान प्राप्त करने का फल यह हुआ कि मेरी प्रिटोरिया में रहने वाले ब्रिटिश एजेंट से परिचय करने की इच्छा हुई। मैं मि. जेकोबस डि-वट से मिला। उन्हें हिंदुस्तानियों के साथ सहानुभूति थी। उनका प्रभाव थोड़ा था, पर उन्होंने कहा कि मुझसे जो मदद हो सकेगी देता रहूंगा और आपको जब जरूरत हो मुझसे मिल लिया करें। रेलवे अफसरों से पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और बतलाया कि उनके ही कायदों के अनुसार हिंदुस्तानियों को यात्रा की मनाही नहीं हो सकती। फलस्वरूप यह उत्तर आया कि जो हिंदुस्तानी अच्छे कपड़े पहने होंगे उन्हे ऊंचे दरजे के टिकट दिये जाएंगे। इससे पूरी सुविधा तो नहीं मिली; क्योंकि किसने अच्छे कपड़े पहन रखे हैं किसने नहीं, इसका निर्णय तो स्टेशन मास्टर पर ही रहा।

ब्रिटिश एजेंट ने मुझे भारतीयों के सम्बन्ध में हुआ पत्र-व्यवहार पढ़ने को दिया। तैयब सेठ ने भी दिया था। उससे मैंने जाना कि आरेंज फ्री स्टेट से हिंदुस्तानी किस बेदर्दी के साथ निकाल बाहर किये गए। खुलासा यह कि ट्रांसवाल और फ्री स्टेट के हिंदुस्तानियों की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का गहरा अध्ययन मैं प्रिटोरिया में कर पाया। इस अध्ययन आगे चलकर मुझे पूरा उपयोग हो सकता है, इसका मुझे उस समय कतई पता न था। मैं तो एक साल पूरा करके या मुकदमा पहले समाप्त हो जाए तो उससे पहले ही, देश लौट जाने वाला था।

पर ईश्वर ने कुछ और ही सोच रखा था।

13 : कुलीपने का अनुभव

ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेट के हिंदुस्तानियों की हालत का पूरा चित्र देने का यहां मौका नहीं है। उसकी पूरी कल्पना करने की इच्छा रखने वालों को 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' पढ़ना चाहिए। पर यहां उसकी रूपरेखा दे देना आवश्यक है।

आरेंज फ्री स्टेट में तो कानून बनाकर सन् 1888 में या उसके पहले हिंदुस्तानियों से सब हक छीन लिये गए थे। वहां उन्हें सिर्फ होटल के वेटर या ऐसा ही कोई और छोटा धंधा करते हुए पड़े रहने भर की इजाजत रह गई थी। जो हिंदुस्तानी व्यापारी थे वे नाममात्र का मुआविजा देकर निकाल दिए गए। व्यापारियों ने दरख्वास्त वगैरा दी, पर नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है!

ट्रांसवाल में सन् 1885 में कड़ा कानून बना। 1886 में कुछ सुधार हुआ। उसके फलस्वरून हर एक हिंदुस्तानी के लिए दाखिले की फीस के रूप में तीन पौंड जमा करने कानून बना। उनके लिए अलग किए गए कुछ खास हलकों में ही वे जमीन के मालिक हो सकते थे। पर उन स्थानों में भी उन्हें जमीन पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मालिकाना हक नहीं ही मिला। उन्हें चुनाव में मत देने का अधिकार भी नहीं था। यह तो खास एशियावासियों के लिए बना कानून था। इसके सिवा जो कानून काले रंग के लोगों पर लागू थे वे भी एशियावासियों पर लागू होते ही थे। उनके अनुसार हिंदुस्तानी पटरी (फुटपाथ) पर अधिकारपूर्वक नहीं चल सकते थे, रात को 9 बजे के बाद परवाने के बिना बाहर न निकल सकते थे। पिछले कानून का अमल हिंदुस्तानियों पर न्यूनाधिक मात्रा में होता था। अरब माने जाने वाले खास मेहरबानी के तौर पर इस प्रतिबंध के बाहर समझे जाते थे। पर इतनी राहत देना भी पुलिस की मर्जी पर था।

इन दोनों नियमों का असर मुझे अपने ही ऊपर जांचना पड़ा। मि. कोट्स के साथ अक्सर मैं रात में घूमने निकला करता था। घर पहुंचते दस भी बज जाते थे, अतः मुझे पुलिस पकड़ ले तो? यह डर मुझे जितना था उससे अधिक कोट्स को था; क्योंकि अपने हब्शियों को तो वही परवाने देते थे। मुझे कैसे परवाना दें? मालिक को अपने नौकर को ही परवाना देने का अधिकार था। मैं लेना और कोट्स देना चाहते हों तो भी वह नहीं दिया जा सकता था, क्योंकि वह धोखेबाजी होती।

अतः कोट्स या उनके कोई मित्र मुझे सरकारी वकील डॉ. क्राउजे के पास ले गये। हम दोनों एक ही 'इन' के बैरिस्टर निकले। रात को नौ बजे के बाद बाहर निकलने के लिए मुझे परवाने की जरूरत हो यह बात उन्हें असह्य लगी। उन्होंने मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की। परवाना देने के बदले उन्होंने मुझे अपनी ओर से एक पत्र दिया, जिसका आशय यह था कि मैं जब और जहां चाहूं जाऊं, पुलिस को उसमें दखल न देना चाहिए। घूमते हुए यह पत्र सदा मैं अपने पास रखता था उससे कभी काम लेना नहीं पड़ा। पर इसे केवल संयोग ही समझना चाहिए।

डॉ. क्राउजे ने मुझे अपने घर आने का निमंत्रण दिया। यह भी कह सकता हूं कि हममें दोस्ती जुड़ गई। मैं कभी-कभी उनके यहां जाया करता। उनके द्वारा उनके विशेष प्रसिद्ध भाई से मेरा परिचय हुआ। यह जोहानबर्ग में पब्लिक प्रोसिक्यूटर (सरकारी वकील) नियुक्त हुए थे। उन पर बोअर-युद्ध के समय एक अंग्रेज अफसर का खून कराने का षडयंत्र रचने का मुकदमा चला था, जिसमें सात साल कैद की सजा मिली थी। उनकी सनद भी बेंचरों ने छीन ली थी। लड़ाई समाप्त होने पर डॉ. क्राउजे जेल से छूटे। सम्मान के साथ ट्रांसवाल की कचहरी में फिर से दाखिल हुए और अपना धंधा भी करने लगे। ये संबंध मुझे बाद को सार्वजनिक कार्य में उपयोगी हुए। मेरे कितने ही सार्वजनिक काम उनकी बदौलत आसान हो गये।

पटरी पर चलने का प्रश्न मेरे लिए कुछ गंभीर परिणाम वाला साबित हुआ। मैं सदा प्रेसिडेंट स्ट्रीट से होकर एक खुले मैदान में घूमने जाया करता था। इस मुहल्ले में प्रेसिडेंट क्रूगर का मकान था। यह मकान आडम्बर से सर्वथा रहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
था। उसके इर्द-गिर्द कोई चहारदीवारी या अहाता भी न था। आस-पास के दूसरे घरों से इसमें कोई अंतर न जान पड़ता था। प्रिटोरिया में बहुत से लखपतियों के घर इस घर से बहुत बड़े शानदार और अहाते-चहारदीवारी वाले थे। प्रेसिडेंट की सादगी मशहूर थी। वह किसी अफसर का मकान है, इसका पता उसके सामने एक संतरी के टहलते रहने से ही चलता था। मैं प्रायः सदा ही इस सिपाही के बिलकुल पास से होकर गुजरा करता था; पर वह मुझे कुछ न कहता था। सिपाही समय-समय पर बदला करते थे। एक बार एक सिपाही ने, बिना चेताए, बिना पटरी पर से उतर जाने को कहे, मुझे ढकेला, ठोकर मारी और नीचे उतार दिया। मैं हैरान हुआ। लात मारने का कारण पूछूं उसके पहले ही मि. कोट्स जो घोड़े पर सवार होकर उसी वक्त उधर से गुजर रह थे, मुझे पुकारकर बोले:

"गांधी, मैंने सब देखा है। आप मुकदमा चलाना चाहें तो मैं गवाही दूंगा। आप पर इस तरह हमला किया गया, इसका मुझे बड़ा खेद है।"

मैंने कहा- "इसमें खेद का कोई कारण नहीं। सिपाही बेचारे को क्या मालूम। उसके लिए तो सब काले एक-से ही हैं। वह हब्शियों को पटरी पर से इसी तरह उतारता होगा, इसलिए उसने मुझे भी धक्का दे दिया। मैंने तो नियम ही कर लिया है कि मेरे अपने ऊपर जो गुजरे उसके लिए अदालत न जाऊंगा। अतः मुझे मुकदमा नहीं चलाना है।"

"यह बात तो आपने अपने स्वभाव के अनुरूप ही कही, पर इस पर फिर विचार कीजिए। ऐसे आदमी को कुछ तो सबक मिलना चाहिए।" फिर उस सिपाही से पूछताछ कर कोट्स ने उसकी भर्त्सना की। मैं सब बातें समझ न सका। सिपाही डच था और उसके साथ उनकी बातें डच में हुईं। सिपाही ने मुझसे माफी मांगी। मैं तो पहले ही माफ कर चुका था।

पर मैंने तब से वह रास्ता छोड़ दिया। दूसरे सिपाही को इस घटना का क्या पता होगा? मैं जान-बूझकर फिर लात खाने क्यों जाऊं? इसलिए मैं दूसरे रास्ते से घूमने जाने लगा।

इस घटना ने प्रवासी भारतीयों के प्रति मेरी भावना को अधिक तीव्र कर दिया। इन कायदों के बारे में ब्रिटिश एजेंट से चर्चा करके मौका आने पर इसके लिए एक 'टेस्ट' केस (आजमाइशी मुकदमा) दायर करने के बारे में मैंने उन लोगों से बातचीत की।

इस प्रकार मैंने भारतीयों की दुर्दशा को पढ़कर, सुनकर और अनुभव करके ज्ञान प्राप्त किया। मैंने देखा कि स्वाभिमान की रक्षा चाहने वाले हिंदुस्तानियों के लिए दक्षिण अफ्रीका योग्य मुल्क नहीं है। यह स्थिति किस तरह बदली जा सकती है इस चिंता में मेरा मन अधिकाधिक उलझने लगा। पर अभी मेरा मुख्य कर्त्तव्य तो दादा अब्दुल्ला का मुकदमा सम्भालना ही था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14 : मुकदमे की तैयारी

प्रिटोरिया में मुझे जो एक साल मिला वह मेरे जीवन में अमूल्य था। सार्वजनिक काम करने की अपनी शक्ति का कुछ अंदाजा मुझे यहां हुआ। उसे सीखने का अवसर भी यहां मिला। धार्मिक भावना अपने आप तीव्र होने लगी। कह सकता हूं कि सच्ची वकालत भी यहीं सीखी। नया बैरिस्टर पुराने बैरिस्टर के दफ्तर में रहकर जो कुछ सीखता है वह मैं यहीं सीख पाया। यहां मन में यह विश्वास पैदा हुआ कि मैं वकालत के काम में एकबारगी नालायक न रहूंगा। वकील बनने की कुंजी भी यहीं मेरे हाथ लगी।

दादा अब्दुल्ला का मुकदमा छोटा न था। चालीस हजार पौण्ड अर्थात 6 लाख रुपए का दावा था। व्यापार से सम्बन्ध रखता था। इससे उसमें बहीखाते की उलझनें बहुत थीं। दावे का आधार अंशतः प्रामेसरी नोट लिख देने के वचन का पालन था। मुद्दालेह का यह जवाब था कि प्रामेसरी नोट धोखा देकर लिखाये गए और उनका पूरा मुआविजा नहीं मिला। इसमें वाकेआत (तथ्य) और कानून के नुक्ते बहुत थे ही, खाते की उलझनें भी बहुत थीं।

दोनों पक्ष अच्छे-से-अच्छे सालिसिटर और बारिस्टर ले गए थे। इसलिए उन दानों के कामों का अनुभव प्राप्त करने का मुझे बढ़िया मौका मिला। मुद्दई का मुकदमा सालिसिटर के लिए तैयार करने का और पोषक तथ्य इकट्ठे करने का सारा भार मुझ पर था। उसमें से सालिसिटर कितना रखता है और सालिसिटर के तैयार किए मुकदमे के खुलासे से बारिस्टर कितने का उपयोग करता है यह मैं देख सकता था। मैं समझ गया कि इस दावे की तैयारी में मुझे अपनी ग्रहण शक्ति और मुकदमे को तरतीब देने की शक्ति का सही अंदाजा हो जाएगा।

मैंने केस में पूरा मन लगाया, उसमें डूब गया। आगे-पीछे के सब कागज-पत्र पढ़ गया। मुझ पर अपने मुवक्किल के विश्वास और उसकी होशियारी की हद न थी। इससे मेरा काम बहुत आसान हो गया। मैंने बहीखाते का बारीकी से अध्ययन कर लिया। बहुत से गुजराती कागज-पत्र थे जिनका उलथा भी मुझे ही करना पड़ा। इससे अनुवाद करने की शक्ति भी बढ़ी।

मैं कसकर मेहनत करता था। यद्यपि, जैसाकि ऊपर लिख आया हूं, धार्मिक चर्चा आदि और सार्वजनिक काम में मेरा मन खूब लगता था और उनमें समय भी देता था, पर मेरे लिए ये गौण वस्तुएं थीं। मुकदमे की तैयारी को मैं अपना मुख्य कार्य मानता था। उसके लिए कानून या और जो कुछ पढ़ना होता वह मैं सदा पहले पढ़ रखता था। फल यह हुआ कि मुकदमे के तथ्यों पर मेरा इतना अधिकार हो गया जितना मुद्दई-मुद्दालेह को भी शायद न था। कारण यह कि मेरे पास दोनों के कागद-पत्र होते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे स्वर्गीय मि. पिंकट के शब्द याद आये। उनका अधिक समर्थन पीछे दक्षिण अफ्रीका के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर स्वर्गीय मि. लेनर्ड ने एक मौके पर किया था। मि. पिंकट का कहना था- "तथ्य तीन-चौथाई कानून है।" एक मुकदमे में मुझे मालूम था कि न्याय तो मेरे मुवक्किल की ओर है, पर कानून कुछ खिलाफ जाता जान पड़ा। मैं निराश होकर मि. लेनर्ड की मदद लेने दौड़ा। उन्हें भी तथ्य की दृष्टि से मुकंदमा मजबूत लगा। बोले, "गांधी, मैंने एक बात सीखी है वह यह कि तथ्य पर हमारा सच्चा कब्जा रहे तो कानून अपने आप हमारे पास आ जाएगा। इस मुकदमे के तथ्य हमें समझ लेने चाहिए। आप एक बार फिर इस मुकदमे को पढ़-पचा लेने के बाद मुझसे मिलें।" उन्हीं तथ्यों को फिर से जांचने पर, उनका मनन करने पर, मैंने उन्हें भिन्न रूप में देखा और उस पर लगने वाली मुकदमे की नजीर भी हाथ लग गई जो दक्षिण अफ्रीका में चला था। मैं खुश-खुश मि. लेनर्ड के यहां पहुंचा। वह खुश होकर बोले- "जाइए, हमें यह मुकदमा जीतना चाहिए। जरा इसका खयाल रखना होगा कि किस जज के सामने जाता है।"

दादा अब्दुल्ला के मुकदमे की तैयारी करते समय मैं तथ्य की महिमा इतनी है, यह न जान सका था। तथ्य का अर्थ है सच्ची बात। सच्चाई का पल्ला पकड़े रहने से कानून अपने आप हमारी मदद को आ जाता है।

मैंने तो अंत में यह भी देख लिया कि मेरे मुवक्किल का मुकदमा बहुत मजबूत है। कानून को उसकी मदद करनी ही चाहिए।

पर मैंने देखा कि मुकदमा लड़ने में दोनों फरीक, जो एक-दूसरे के रिश्तेदार हैं और एक ही शहर के रहने वाले हैं, बरबाद हो जायेंगे। मुकदमे के अन्त का किसी को पता नहीं। कचहरी में तो वह चाहे जितना लम्बा किया जा सकता है। उसके लम्बा होने में दोनों में से एक को भी फायदा न होगा। इससे मुकदमा जल्दी खत्म हो यह तो दोनो ही फरीक चाहते थे।

तैयब सेठ से मैंने अनुरोध किया। आपस में झगड़ा निबटा लेने की सलाह दी। उन्हें अपने वकील से मिलने को कहा। किसी ऐसे आदमी को पंच चुन ले जिस पर दोनों का विश्वास हो तो मामला झटपट निबट जाए। वकीलों का खर्च इतना चढ़ता जा रहा था कि उसे चुकाने में बड़े व्यापारी की भी बधिया बैठ जाय। दोनों ऐसे जी-जान से मुकदमा लड़ रहे थे कि एक भी इतमीनान से दूसरा कोई काम न कर सकता था। आपस में वैर भी बढ़ता ही जाता था। मुझे वकालत के पेशे से नफरत हुई। वकील की हैसियत से दोनों पक्षों के वकीलों का काम यही था कि एक-दूसरे को जीतने के लिए कानूनी नुक्ते ढूंढ़ निकालें। यह बात मैंने इस मुकदमे में ही पहले-पहल जानी कि जीतने वाले को कुल खर्चा कदापि नहीं मिल सकता। फरीक से ली जा सकने वाली कानूनी फीस का एक हिसाब होता है, मुवक्किल और वकील के दरमियान का हिसाब दूसरा होता है। यह सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मुझे असह्य लगा। मुझे अपने धर्म दोनों रिश्तेदारों में मेल करा देना ही जान पड़ा। समझौता कराने के लिए मैंने जी-जान से कोशिश की। तैयब सेठ मान गये। अन्त में पंच चुना गया। मुकदमा चला। दादा अब्दुल्ला जीत गये।

पर इतने से मुझे संतोष न हुआ। पंच के फैसले की तामील हो तो तैयब हाजी खान मुहम्मद इतना रूपया एकबारगी दे ही न सकते थे। दक्षिण अफ्रीका में बसने वाले पोरबंदर के मेमनों में आपसी अलिखित नियम था कि मर जांय, पर दिवाला न निकालें। तैयब सेठ 37000 पौंड की डिग्री और खर्च एकमुश्त न दे सकते थे। उन्हें एक दमड़ी कम भी न देना था, न दिवाला ही निकालना था। रास्ता एक ही था-दादा अब्दुल्ला उन्हें काफी लम्बी मुहलत दे दें। दादा अब्दुल्ला ने उदारता दिखाई और खूब लम्बी मुहलत दे दी। पंच चुनवाने में मुझे जितनी मेहनत करनी पड़ी उससे ज्यादा यह लम्बी मुहलत दिलवाने में करनी पड़ी। दोनों पक्षों को खुशी हुई। दोनों की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। मेरे संतोष की सीमा न रही। मैंने सच्ची वकालत करना सीखा, मनुष्य-स्वभाव का उज्ज्वल पक्ष ढूंढ़ निकालना सीखा, मनुष्य-हृदय में पैठना सीखा। मुझे जान पड़ा कि वकील का कर्त्तव्य फरीकैन के बीच में खुदी हुई खाई को भरना है। इस शिक्षा ने मेरे मन में ऐसी जड़ जमाई कि मेरी बीस साल की वकालत का अधिक समय अपने दफ्तर में बैठे सैकड़ों मुकदमों में सुलह कराने में ही बीता। इसमें मैंने कुछ खोया नहीं। पैसे के घाटे में रहा यह भी नहीं कहा जा सकता। आत्मा तो नहीं गंवाई।

15 : धार्मिक मंथन

अब फिर ईसाई मित्रों के साथ अपने संपर्क पर विचार करने का अवसर है।

मेरे भविष्य के बारे में मि.. बेकर की चिंता बढ़ती जाती थी। वह मुझे वेलिंग्टन कन्वेन्शन में ले गए। प्रोटेस्टेंट ईसाइयों में थोड़े-थोड़े बरस बाद धर्म-जागृति अर्थात आत्मशुद्धि के निमित्त विशेष प्रयत्न किये जाते हैं। इसे धर्म की पुनः प्रतिष्ठा अथवा धर्म का पुनरूद्धार कह सकते हैं। ऐसा ही सम्मेलन वेलिंग्टन में था। उसके सभापति वहां के प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ पादरी रेवरेंड एण्ड्रू मरे थे। मि. बेकर को यह आशा थी कि इस सम्मेलन में होने वाली जागृति, वहां आने वालों का धर्मोत्साह, उनकी सच्ची श्रद्धा मेरे हृदय पर ऐसी गहरी छाप डालेगी कि मैं ईसाई हुए बिना न रह सकूंगा।

पर मि. बेकर का अंतिम आधार था प्रार्थना की शक्ति। प्रार्थना में उन्हें भरपूर श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि अंतःकरण से की हुई प्रार्थना को ईश्वर अवश्य सुनता है। प्रार्थना से ही मुलर (एक प्रसिद्ध भावुक ईसाई) जैसे व्यक्ति के अपना लोक-व्यवहार चलने के दृष्टांत वह मुझे सुनाया करते थे। प्रार्थना की महिमा के विषय में मैंने सब तटस्थ भाव से सुना। मैंने उनसे कहा कि यदि ईसाई होने की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Vidyabharati Foundation Chennai and eGangotri
आवाज मेरे अंतर से उठे तो उसे स्वीकार करने में मुझे कोई चीज रोक नहीं सकती। अन्तर्नाद के अधीन होना तो मैं इसके कई बरस पहले ही सीख चुका था। उसके आदेश का अनुसरण करने में मुझे आनंद आता था। उसके विरूद्ध जाना मेरे लिए कठिन और कष्टकर था।

हम वेलिंग्टन गए। मुझ 'सांवले साथी' का साथ मि. बेकर के लिए जरा भारी पड़ा। अनेक बार मेरे लिए उन्हें कठिनाइयां झेलनी पड़तीं। रास्ते में हमें टिकना था, क्योंकि मि. बेकर का संघ रविवार को यात्रा न करता था, और बीच में रविवार पड़ता था। रास्ते में और स्टेशन पर होटल के मालिक ने पहले तो होटल में मुझे लेने से इनकार किया। पर मि. बेकर यों सहज में झुक जाने वाले आदमी नहीं थे! वह होटल में टिकने के अधिकार पर डटे रहे। पर मैं उनकी कठिनाइयों को समझ सकता था। वेलिंग्टन में भी डेरा उनके साथ ही था। वहां भी उन्हें छोटी-छोटी असुविधाएं उठानी पड़ती थीं। वह अपनी भलमनसी से उन्हें छिपाने की कोशिश करते थे फिर भी मैं देख लेता था।

सम्मेलन में ईसाइयों का मिलन हुआ। उनकी श्रद्धा देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैं मि. मरे से मिला। मैंने बहुतों को अपने (मरे) लिए प्रार्थना करते हुए देखा। उनके कितने ही भजन मुझे बड़े मधुर लगे।

सम्मेलन तीन दिन चला। सम्मेलन में आने वालों की धर्मनिष्ठा को मैंने समझा और सराहा। पर मुझे अपने विश्वास, अपने धर्म में परिवर्तन करने का कारण न मिला। मुझे यह न दिखाई दिया कि अपने को ईसाई कहलाकर ही मैं स्वर्ग जा सकता या मुक्ति पा सकता हूं। अपने भले ईसाई मित्रों को जब मैंने यह बात बताई तो उनके दिलों को चोट लगी; पर मैं लाचार था।

मेरी कठिनाइयां गम्भीर थीं। 'ईसामसीह ही एक ईश्वर के पुत्र हैं, उन्हें जो मानता है वह तरता है', यह बात मेरे गले न उतरी अगर ईश्वर का बेटा होना सम्भव हो हम सब भी उसके बेटे हैं। ईसा यदि ईश्वर तुल्य है, ईश्वर ही है तो मनुष्य मात्र ईश्वर के समान हैं, ईश्वर हो सकते हैं। ईसा की मृत्यु से और उनके रक्त से जगत के पाप धुल गये, इसके अक्षरार्थ को सत्य मानने को मानव-बुद्धि तैयार ही न होती थी। रूपक के रूप में भले ही उसमें कुछ सत्य हो। इसके सिवा ईसाइयों के विश्वासानुसार केवल मनुष्य की ही आत्मा है, अन्य जीवों के नहीं, देह के नाश के साथ उनका सम्पूर्ण नाश हो जाता है; पर मेरा विश्वास इसके विरूद्ध था। ईसा को मैं एक त्यागी, महात्मा, दैवी शिक्षक के रूप में स्वीकार कर सकता था, पर उन्हे अद्वितीय पुरूष मानने को तैयार न हो सकता था। ईसा की मृत्यु से जगत को एक महान उदाहरण मिला, पर उनकी मृत्यु में कोई गूढ़ चमत्कारी प्रभाव था इसे मेरा हृदय स्वीकार न कर सकता था। ईसाइयों के पवित्र जीवन में मुझे ऐसी कोई बात न मिली, जो अन्य धर्मावलम्बियों के जीवन में न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मिलती हो। उनमें हुआ परिवर्तन जैसा ही परिवर्तन मैंने दूसरों के जीवन में भी होते देखा था। सिद्धांत की दृष्टि से ईसाई-सिद्धांतों में मुझे कोई आलौकिकता न मिली। त्याग की दृष्टि से हिंदू धर्म मानने वालों का त्याग मुझे बढ़ा-चढ़ा दिखाई दिया। ईसाई धर्म को मैं सम्पूर्ण अथवा सर्वश्रेष्ठ धर्म न मान सका।

यह हृदय-मंथन मैंने अवसर आने पर ईसाई मित्रों के सामने रखा। उसका ऐसा उत्तर वे न दे सके जिससे मेरा समाधान हो।

पर जैसे मैं ईसाई धर्म को स्वीकार न कर सका, वैसे हिंदू धर्म के सम्पूर्ण अथवा सर्वश्रेष्ठ होने का भी मैं उस समय निश्चय न कर पाया। हिंदू धर्म की त्रुटियां मेरी आंखों के सामने फिरा करती थीं। अस्पृश्यता यदि हिंदू धर्म का अंग हो तो वह सड़ा हुआ और फालतू अंग जान पड़ा। अनेक सम्प्रदायों तथा अनेक जाति-उपजातियों के अस्तित्व का औचित्य मैं न समझ सका। वेदों के ही ईश्वरप्रणीत होने का क्या अर्थ है? वेद ईश्वरप्रणीत है तो बाइबिल और कुरान क्यों नहीं हैं?

जैसे ईसाई मित्र मुझ पर असर डालने की कोशिश कर रहे थे वैसे ही मुसलमान मित्रों का प्रयत्न भी जारी था। अब्दुल्ला सेठ मुझे इस्लाम का अध्ययन करने को ललचा रहे थे। उसकी खूबियों की चर्चा तो करते ही रहते थे।

मैंने अपनी कठिनाइयां रायचंदभाई के सामने रखीं। हिंदुस्तान के अन्य धर्मशास्त्रियों के साथ भी पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। उनके उत्तर आये। रायचंदभाई के पत्र से मुझे कुछ शांति मिली। उन्होंने मुझे धीरज रखने और हिंदू धर्म का गम्भीर अध्ययन करने की सलाह दी। उनमें एक वाक्य का भावार्थ था- "निष्पक्ष रूप से विचार करने पर मुझे यह प्रतीति हुई है कि हिंदू धर्म में जैसे सूक्ष्म और गूढ़ विचार हैं, आत्मा का जैसा निरीक्षण है, दया है, वैसे दूसरे धर्म में नहीं है।"

मैंने सेलका कुरान (टीका) खरीदकर पढ़ना शुरू किया। इस्लाम-सम्बन्धी और पुस्तकें भी प्राप्त कीं। विलायत के ईसाई मित्रों से पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। उनमें से एक ने एडवर्ड मेटलेंड से परिचय कराया। उनके साथ पत्र-व्यवहार चला। उन्होंने एना किंग्सफोर्ड के साथ मिलकर 'परफेक्ट वे' (उत्तम मार्ग) नामक पुस्तक लिखी थी, वह मुझे पढ़ने को भेजी। उसमें प्रचलित ईसाई धर्म का खंडन था। 'बाइबिल का नया अर्थ' नामक पुस्तक भी उन्होंने मुझे भेजी। ये पुस्तकें मुझे पसंद आईं। उनसे हिंदू-मत को पुष्टि मिली। टाल्सटाय की 'बैकुंठ तुम्हारे हृदय में है' ('द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू') नामक पुस्तक ने मुझे मोह लिया। उसका मुझ पर बहुत गहरा असर पड़ा। इस पुस्तक की स्वतंत्र विचार शैली, उसकी प्रौढ़नीति और उसके सत्य के सामने मि. कोट्स की दी हुई सब पुस्तकें शुष्क लगीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मेरा अध्ययन उस दिशा में मुझे ले गया जो ईसाई मित्रों को अभिलषित न थी। एडवर्ड मेटलैंड के साथ मेरा पत्र-व्यवहार काफी लंबा हुआ। कवि (रायचंदभाई) के साथ तो अंत तक चला। उनकी भेजी हुई पुस्तकें भी मैंने पढ़ीं। उनमें 'पंचीकरण', 'मणिरत्नमाला', योगवासिष्ठका, 'मुमुक्षु-प्रकरण', 'हरिभद्र सूरिका', 'षडदर्शनसमुच्चय' इत्यादि थे।

यों, यद्यपि मैं ईसाई मित्रों के अकल्पित मार्ग पर चल पड़ा तथापि उनके समागमन ने मुझमें जो धर्मजिज्ञासा जाग्रत की उसके लिए तो मैं उनका सदा के लिए ऋणी हो गया। अपना यह सम्बन्ध मुझे सदा स्मरण रहेगा। ऐसे मधुर और पवित्र सम्बन्ध आगे चलकर बढ़ते ही गए, घटे नहीं।

16 : को जाने कल की?

"खबर नहीं इस जुग में पल की
समझ मन! को जाने कल की?"

मुकदमा खत्म हो जाने पर मेरे प्रिटोरिया में रहने का प्रयोजन न रहा। मैं डरबन गया। वहां जाकर हिंदुस्तान लौटने की तैयारी की। अब्दुल्ला सेठ मेरा सम्मान-सत्कार किए बिना जाने देने वाले न थे। उन्होंने सिडनहम में मेरे लिए दावत का जलसा किया। वहां सारा दिन बिताना था।

मेरे पास कुछ अखबार पड़े थे। उन्हें मैं देख रहा था। एक अखबार के एक कोने में मैंने एक छोटा पैराग्राफ देखा। शीर्षक था 'इंडियन फ्रेंचाइज' जिसका अर्थ होता है 'भारतीय मताधिकार।' उस पैराग्राफ का मतलब यह था कि हिंदुस्तानियों को नेटाल की कौंसिल में सदस्य चुनने का जो हक हासिल था वह छीन लिया जाए। इस विषय के बिल पर असेंबली में बहस हो रही थी। मुझे इस बिल का पता न था। इस जलसे में शरीक किसी भी आदमी को हिंदुस्तानियों का हक छीन लेने वाले इस बिल की कोई खबर न थी

मैंने अब्दुल्ला सेठ से पूछा। उन्होंने कहा, "ऐसी बातों का हमें क्या पता? हमें तो व्यापार पर कोई संकट आए तो अलबत्ता उसका पता चलता है। देखिए न, आरेंज फ्री स्टेट में हमारे व्यापार की जड़ उखड़ गई। उस विषय में हमने मेहनत की। पर हम तो अपंग ठहरे। अखबार लें तो भी भाव-ताव भर ही समझ पाते हैं। कायदे-कानून की बातों को हम क्या समझें? हमारे आंख-कान हैं। हमारे गोरे वकील।"

मैंने पूछा, "पर यहां के जन्में हुए और अंग्रेजी पढ़े-लिखे जो इतने नौजवान हिंदुस्तानी अपने यहां हैं, वे?"

अब्दुल्ला सेठ ने सिर पर हाथ रखा। बोले, "अरे भाई, उनसे हमें क्या मिलता है? वे बेचारे इसमें क्या समझते हैं? वे हमारे पास भी नहीं फटकते और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सच पूछिए तो हम उन्हें नहीं पहचानते। वे ईसाई हैं, इसलिए पादरियों के पंजे में हैं और पादरी गोरे हैं। इसलिए वे सरकार के ताबे में हैं।"

मेरी आंखे खुलीं। इस वर्ग को अपनाना चाहिए। ईसाई धर्म का यही अर्थ है? वे ईसाई हो गए तो क्या देश से भी उनका नाता टूट गया? वे परदेशी हो गए?

पर मुझे तो देश वापस जाना था, इसलिए इन विचारों को मन के बाहर न निकाला। अब्दुल्ला सेठ से पूछा, "पर यदि यह कानून ज्यों-का-त्यों पास हो गया तो आप लोगों के लिए बहुत कष्टकर होगा। यह तो हिंदुस्तानियों की हस्ती को मिटाने का पहला कदम है। इसमें आपके स्वाभिमान की हानि है।"

"होगी। पर आपको मैं इस 'फ्रेंचाइज' (इस प्रकार अंग्रेजी भाषा के बहुतेरे शब्द कुछ बदलकर हिंदुस्तानियों के रूढ़ हो गये थे। 'मताधिकार' कहने से किसी की समझ में आता था) का इतिहास बताता हूं। हम तो इसमें कुछ भी नहीं समझते। पर आप तो जानते ही हैं कि हमारे बड़े वकील मि. एस्कंब हैं। यह जबरदस्त लड़वैये हैं। उनकी और यहां के जेटी इंजीनियर की खूब लड़ाई चलती है। मि. एस्कंब के कौंसिल में जाने में यह लड़ाई बाधक होती थी। उन्होंने हमें हमारी स्थिति का ज्ञान कराया। उनके कहने से हमने अपने नाम वोटर-सूची में लिखवाये और वें सब वोट मि. एस्कंब को दिए। इतने से आप समझ लेंगे कि इस मत का मूल्य आप जितना आंकते हैं उतना हम क्यों नहीं आंकते। पर आप जो कहते हैं वह अब हम समझ सकते हैं। खैर, अब आप क्या सलाह देते हैं?"

दूसरे मेहमान यह बात ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। उनमें से एक ने कहा, "मैं आपको सच-सच बता दूं? आप इस स्टीमर से न जाएं और एक-आध महीना यहां रूक जायं तो जिस तरह कहें उस तरह हम लड़ सकते हैं।"

दूसरे बोल उठे, "बिलकुल ठीक है। अब्दुल्ला सेठ, आप गांधीभाई को रोक लीजिए।"

अब्दुल्ला सेठ उस्ताद आदमी थे। बोले, "अब उन्हें रोकने का मुझे अधिकार नहीं है, या जितना मुझे है उतना ही आप लोगों को भी है। पर आप लोग जो कहते हैं वह बिलकुल ठीक है। हम सब मिलकर उन्हें रोकें। पर यह तो बैरिस्टर हैं, इनकी फीस का क्या होगा?"

फीस की बात सुनकर मुझे कष्ट हुआ। मैंने बीच में टोककर कहा, "अब्दुल्ला सेठ, इसमें मेरी फीस की बात तो उठनी ही न चाहिए। सार्वजनिक सेवा में फीस कैसी? मैं रुकूं तो एक सेवक की भांति रुक सकता हूं। इन भाइयों में सबको मैं अच्छी तरह नहीं पहचानता। पर आप समझते हों कि सब मेहनत करेंगे तो मैं एक महीना रुक जाने को तैयार हूं। यह सही है कि आपको मुझे कुछ देना नहीं है, फिर भी ऐसे काम बिलकुल बिना पैसे के तो हो ही नहीं सकते। हमें तार देने पड़ेगें, कुछ छपाना पड़ेगा। जहां-तहां आन-जाना पड़ेगा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसमें गाड़ी-भाड़ा लगेगा। कभी स्थानीय वकीलों को भी सलाह लेनी पड़ सकती है। मुझे यहां के कानूनों का पता नहीं है। कानून की किताबें देखनी होंगी। फिर ऐसे काम अकेले से नहीं हो सकते। बहुतों को उसमें शामिल होना होगा।"

बहुत-सी आवाजें एक साथ आईं, "खुदा की मेहरबानी है। पैसे तो मिल ही जायेंगे। आदमी भी हैं। आप रहना कबूल कर लें तो और सब हो जायेगा।"

जलसा कार्यकारिणी समिति बन गई। मैंने सलाह दी कि खाना-पीना जल्द निपटाकर हमें घर पहुंचना चाहिए। आंदोलन की रूप-रेखा मन में बनाई। मताधिकार कितने आदमियों को प्राप्त हैं आदि बातें जान लीं। मैंने एक महीना रुक जाने का निश्चय किया।

इस प्रकार ईश्वर ने दक्षिण अफ्रीका में मेरे स्थाई निवास की नींव डाली और आत्मसम्मान के संग्राम का बीजारोपण हुआ।

17 : रह गया

सन् 1893 में नेटाल में भारतीय समुदाय के अग्रगण्य नेता सेठ हाजी मुहम्मद हाजी दादा माने जाते थे। धन-सम्पत्ति में सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम मुख्य थे, लकिन वह और दूसरे लोग भी सार्वजनिक कामों में सेठ हाजी मुहम्मद को ही आगे रखते थे। अतः उन्हीं के सभापतित्व में अब्दुल्ला सेठ के मकान पर सभा हुई। उसमें फ्रेंचाइज (मताधिकार) बिल का विरोध करने का प्रस्ताव हुआ। स्वयंसेवकों के नाम लिखे गए। इस सभा में नेटाल में जन्मे हुए हिंदुस्तानी अर्थात ईसाई युवक भी बुलाये गए थे। मि. पाल डरबन की अदालत के दुभाषिए थे। मि. सुभान गाडफ्रे मिशन स्कूल के हेडमास्टर थे। वह भी सभा में आए और उनके असर से उस समुदाय के नवयुवक अच्छी संख्या में शामिल हुए थे। इन सबने स्वयंसेवकों में नाम लिखाया। व्यापारियों की संख्या तो अधिक थी ही। उनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय थे-सेठ दाऊद मुहम्मद, मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन, सेठ आदमजी मियां खां, ए. कोलंदा वेल्लु पीले, सी. लछीराम, रंगसामी पाडियाची, आमद जीवा आदि। पारसी रुस्तमजी को तो होना ही चाहिए था। कर्मचारी वर्ग में से पारसी माणिकजी, जोशी, नरसीराम आदि दादा अब्दुल्ला इत्यादि की बड़ी फर्मों के नौकर थे। इन सबको सार्वजनिक काम में शामिल होने में अचम्भा हुआ। इस प्रकार सार्वजनिक काम में न्यौते जाने और योग देने का उनका यह प्रथम अनुभव था। सिर पर आई हुई विपत्ति के सामने सब ऊंच-नीच, छोटा-बड़ा, मालिक-नौकर, हिंदू-मुसलमान, पारसी, ईसाई, गुजराती, मद्रासी, सिंधी आदि का भेद भूल गए थे। सब हिंदी की संतान और सेवक थे।

बिल का दूसरा वाचन हो चुका था या होने को था। उस समय असेंबली में हुए भाषणों में कहा गया था कि कानून इतना कड़ा होते हुए भी हिंदुस्तानियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

की ओर से उसका कोई विरोध नहीं हुआ। यह इस बात का सबूत है कि हिंदुस्तानी लापरवाह हैं और मताधिकार का प्रयोग करने के योग्य नहीं हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने वस्तुस्थिति सभा को समझाई। पहला काम तो यह हुआ–असेंबली के अध्यक्ष को तार दिया गया कि वह बिल पर आगे विचार मुल्तवी रखें। इसी आशय का तार प्रधामंत्री सर जान राबिन्सन को भी दिया गया। एक तार दादा अब्दुल्ला के दोस्त की हैसियत से मि. एस्कंब को भी भेजा गया। असेंबली के अध्यक्ष के तार का यह जवाब आया कि बिल पर विचार दो दिन मुल्तवी रहेगा। सबको खुशी हुई।

आवेदन पत्र बना। उसकी तीन प्रतियां भेजनी थीं। अखबारों के लिए भी एक प्रति तैयार करानी थी। अर्जी पर जितने भी हस्ताक्षर हो सकें, कराने थे। सारा काम एक रात में पूरा करना था। उपर्युक्त शिक्षित स्वयंसेवक और दूसरे लोग भी सारी रात जागे। उनमें सुंदर अक्षर लिखने वाले मि. आर्थर नाम के एक वृद्ध थे। उन्होंने सुंदर अक्षरों में अर्जी की नकल तैयार की। दूसरों ने उसकी और नकलें कीं। एक आदमी बोलता और पांच लिखते जाते। इस प्रकार पांच प्रतियां एक साथ तैयार हो गईं। व्यापारी स्वयंसेवक अपनी-अपनी गाड़ियां लेकर या अपने खर्च से गाड़ियां किराया करके हस्ताक्षर लेने निकल पड़े।

अर्जी गई। अखबारों में छपी। उस पर अनुकूल आलोचनाएं हुईं। व्यवस्थापक मंडल पर भी असर हुआ। उसकी चर्चा भी खूब हुई। अर्जी में दी हुई दलीलों का खंडन हुआ, पर वह खंडन खुद करने वालों को भी लचर लगा। फिर भी बिल पास हो गया।

इस सब का नतीजा हमें पहले से जाना-समझा था। फिर भी भारतीय समाज में नई जान आ गई। हम एक जाति हैं, केवल व्यापारिक अधिकारों के लिए ही नहीं, बल्कि सामुदायिक स्वत्वों के लिए लड़ना भी सबका धर्म है। यह बात सबकी समझ में आ गई।

इन दिनों लार्ड रिपन उपनिवेश-मंत्री थे। उनके पास 'जंगी' (बड़ी) अर्जी भेजने का निश्चय हुआ। इस अर्जी पर जितने हस्ताक्षर कराये जा सकें, कराने थे। यह काम एक दिन का नहीं था। स्वयंसेवक बनाए गए और सबने काम पूरा करने में हाथ बंटाया।

अर्जी बनाने में मैंने खूब मेहनत की। उस विषय पर जितना साहित्य मिल सका पढ़ लिया। हिंदुस्तान में हम एक प्रकार का मताधिकार भोगते हैं इस सिद्धांत की दलील को और नेटाल में हिंदुस्तानियों की तादाद बहुत ही कम है इस व्यावहारिक दलील को मैंने अपना केंद्रबिंदु बनाया।

अर्जी पर दस हजार हस्ताक्षर हुए। एक पखवाड़े में दरख्वास्त भेजने भर को हस्ताक्षर मिल गए। इतने समय में नेटाल में दस हजार दस्तखत लेने के काम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को पाठक कोई छोटी-मोटी बात न समझें। हस्ताक्षर सारे नेटाल में से लेने थे। लोग ऐसे काम से अनजान थे। हम लोगों ने यह तै कर रखा था कि दस्तखत करने वाला जब तक यह न समझ ले कि वह किस बात पर सही कर रहा है तब तक उससे सही न ले, इसलिए खास स्वयंसेवक भेजकर ही हस्ताक्षर प्राप्त करने थे। गांव दूर-दूर थे। इसलिए काम करने वाले काफी हों और लगन से काम करें तभी ऐसा काम शीघ्रता से हो सकता था। यही हुआ। सबने उत्साहपूर्वक काम किया। उनमें सेठ दाऊद मुहम्मद, पारसी रूस्तमजी, आदमजी मियां खां और आदम जीवा की सूरतें आज भी मेरी आखों के सामने फिरा करती हैं। वे बहुत-से हस्ताक्षर लाये थे। दाऊद सेठ अपनी गाड़ी लेकर सारे दिन के लिए निकल पड़ते। किसी ने जेब-खर्च तक न मांगा।

दादा अब्दुल्ला का घर धर्मशाला या सार्वजनिक कार्यालय-सा बन गया था। शिक्षित भाई तो मेरे पास ही रहते थे। उनका और दूसरे कार्यकर्ताओं का भोजन दादा अब्दुल्ला के यहां ही होता था। इस प्रकार सभी काफी खर्चे में पड़े।

अर्जी गई। उसकी एक हजार प्रतियां छपवाई गई थीं। उस अर्जी ने हिंदुस्तान की जनता को नेटाल का प्रथम परिचय कराया। जितने अखबारों और सार्वजनिक नेताओं के नाम जानता था उन सबकों अर्जी की नकलें भेज दीं।

'टाइम्स आफ इंडिया' ने उस पर अंग्रलेख लिखकर हिंदुस्तानियों की मांग का जोरदार समर्थन किया। विलायत में भी अर्जी की प्रतियां सब पक्षों के नेताओं को भेजी गई थीं। वहां हमें 'लंदन टाइम्स' का समर्थन मिला। अतः आशा हुई कि बिल को मंजूरी न मिलेगी।

अब स्थिति ऐसी न रही कि मैं नेटाल छोड़ सकूं। लोगों ने मुझे चारों ओर से घेरा और नेटाल में ही स्थाई रूप से रहने का अतिशय आग्रह किया। मैंने अपनी कठिनाइयां बताईं। मैंने अपने मन में निश्चय कर रखा था कि सार्वजनिक पैसे पर न रहूंगा। मुझे अलग घर लेकर रहने की आवश्यकता दिखाई दी। उस समय मेरा खयाल था कि घर भी अच्छा और अच्छे मुहल्ले में लेना चाहिए। मैंने सोचा कि दूसरे बैरिस्टर जैसे रहते हैं वैसे मेरे रहने में भारतीय समाज का मान बढ़ेगा। मुझे दिखाई दिया कि ऐसी 'गिरस्ती' मैं सालाना 300 पौंड से कम में नहीं चला सकता, अतः मैंने तै किया कि इतने पैसे का वकालत का काम देने की हामी भरी जाय, तभी मैं रह सकता हूं। और उन लोगों को यह बता दिया।

साथियों ने कहा, 'लेकिन इतने पैसे आप सार्वजनिक सेवा के लिए लें तो यह हम बर्दाश्त कर सकेंगे। इतने पैसे इकट्ठे कर देना हमारे लिए आसान है। वकालत से जो कुछ मिले वह आपका ही होगा।'

मैंने जवाब दिया, "मैं इस तरह पैसे नहीं ले सकता। मैं अपने सार्वजनिक काम का इतना मूल्य नहीं आंकता। मुझे उसमें कुछ वकालत तो करनी न होगी।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मुझे तो आप लोगों से काम लेना है, इसके पैसे कैसे लिए जा सकते हैं? इसके सिवा सार्वजनिक कामों के लिए मुझे आप लोगों से पैसे लेने पड़ेंगे। अगर मैं अपने लिए पैसे लूं तो आप लोगों से बड़ी रकमें निकलवाने में मुझे संकोच होगा और अंत में हमारी गाड़ी अटक जायेगी। समाज से तो मैं साल में 300 पौंड से ज्यादा ही खर्च कराने वाला हूं।"

"पर आपकों अब हम लोग पहचानने लगे हैं। आपको अपने लिए पैसे कहां मांगने हैं। आपके रहने का खर्च तो हमें देना ही चाहिए।"

"यह तो आपका स्नेह और सामयिक उत्साह आपसे कहलवा रहा है। यह कैसे मान लें कि यही उत्साह और यही स्नेह सदा बना रहेगा? मुझे तो आपको कभी कड़वे वचन भी कहने पड़ेंगे। उस समय भी आपके स्नेह का पात्र बना रह सकूंगा या नहीं, यह तो भगवान ही जाने! पर मूल बात यह है कि सार्वजनिक सेवा के लिए मैं पैसे कदापि नहीं ले सकता। आप सब लोग अपना वकालत का काम मुझे देने का वादा कर दें तो मेरे लिए काफी है। यह भी शायद आपको भारी पड़े। मैं कोई गोरा बैरिस्टर तो हूं नहीं। अदालत मुझे दाद देगी या नहीं, इसका भी मुझे क्या पता? मैं कैसी वकालत कर सकूंगा यह भी नहीं जानता। अतः मुझे पहले से वकालत का मेहनताना देने में भी आपको जोखिम उठानी है। फिर भी आप मुझे वकालत का मेहताना देंगे तो वह मेरी सार्वजनिक सेवा के नाते ही तो माना जायेगा?

इस बहस का नतीजा यह रहा कि कोई बीस व्यापारियों ने मेरा एक वर्ष का वर्षासन (साल भर का खर्च) बांध दिया। इसके अतिरिक्त दादा अब्दुल्ला मुझे बिदाई में जो भेंट देने वाले थे उसके बदले उन्होंने मेरे लिए जरूरी फर्नीचर खरीद दिया। इस तरह मैं नेटाल में रह गया।

18 : वर्ण-बाधा

न्यायालय का प्रतीक तराजू है। एक निष्पक्ष, अंधी पर बुद्धिमान बुढ़िया उसे पकड़े हुए है। उसे विधाता ने अंधी बनाया है, इसलिए कि मुंह देखकर टीका न काढ़े, बल्कि जो गुण में योग्य हो उसी को तिलक करे। पर इसके विपरीत, नेटाल की वकील-सभा वहां के न्यायालय से मुंह देखकर टीका लगवाने पर तुल गई थी; किंतु न्यायालय ने इस मौके पर अपने प्रतीक को फबने वाला काम किया।

मुझे वकालत की सनद लेनी थी। मेरे पास बंबई हाइकोर्ट का प्रमाणपत्र था। विलायत का प्रमाण-पत्र उसी के (बंबई हाइकोर्ट के) दफ्तर में था। दाखिले की दरख्वास्त के साथ नेकचलनी के दो सर्टिफिकेटों की जरूरत समझी जाती है। मैंने सोचा कि ये सर्टिफिकेट गोरों के हों तो अच्छा रहेगा। इसलिए दो प्रसिद्ध गोरे व्यापारियों के जिनसे अब्दुल्ला सेठ के मार्फत मुझसे साबिका पड़ चुका था,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रमाणपत्र ले लिये थे। दरख्वास्त किसी वकील के मार्फत जानी चाहिए थी और साधारण नियम यह था कि ऐसी दरख्वास्त एटर्नी-जनरल बिना मेहनताना लिये पेश करें। मि. एस्कंब एटर्नी-जनरल थे। वह अब्दुल्ला सेठ के वकील थे यह बात पहले कही जा चुकी है। मैं उनसे मिला और उन्होंने खुशी से मेरी दरख्वास्त पेश करना मंजूर किया।

इतने में अचानक वकील-सभा की ओर से मुझे नोटिस मिला। उसमें मेरे प्रवेश का विरोध किया गया था। दूसरा एक कारण यह दिया गया था कि सनद की दरख्वास्त के साथ मैंने असली सर्टिफिकेट नत्थी नहीं किया है। पर विरोध की मुख्य दलील यह थी कि अदालत में वकील के दाखिले के नियम बनाते समय यह बात सोची भी न गई होगी कि कोई काला या पीला आदमी भी दाखिले के लिए दरख्वास्त देगा। नेटाल गोरों के पुरूषार्थ से बना है और इसलिए उसमें गोरों की प्रधानता होनी चाहिए। यदि काले वकील दाखिल होने लगेंगे तो धीरे-धीरे गोरों की प्रधानता जाती रहेगी और उनकी रक्षा की दीवार ढह जाएगी।

इस विरोध के समर्थन के लिए वकील-सभा ने एक प्रख्यात वकील को नियुक्त किया था। इस वकील का भी दादा अब्दुल्ला से सम्बन्ध था। उनके द्वारा उन्होंने मुझे बुलवाया। उन्होंने मेरे साथ साफ-साफ बातें कीं। मेरा पूर्ववृत्त पूछा। बतलाने पर बोले, "मुझे तो आपके खिलाफ कुछ कहना नहीं है। मुझे डर था कि शायद आप यहीं जन्में हुए कोई धूर्त्त हों! दूसरे आपके पास असल प्रमाणपत्र न होने से मेरे संदेह को पुष्टि मिली। दूसरों के प्रमाणपत्रों का उपयोग कर लेने वाले आदमी भी हैं ही। आपने जो गोरों के प्रमाणपत्र पेश किए हैं उनका मुझ पर कोई असर नहीं हुआ। वे आपको क्या जानें? उनके साथ आपकी जान-पहचान कितनी है?"

मैं बीच में बोला, "पर यहां तो मेरे लिए सभी नए हैं। अब्दुल्ला सेठ भी तो यहीं से जानने लगे हैं।"

"ठीक है; पर आप तो कहते हैं कि वह आपके नगर के हैं। और आपके पिता वहां के दीवान थे, इसलिए वह आपके कुटुम्ब को तो जानते ही हैं न? उनका हलफनामा आप पेश कर दें तो फिर मुझे कोई आपत्ति न रह जायेगी। मैं वकील-सभा को लिख दूंगा कि मैं आपका विरोध नहीं कर सकता।"

मुझे गुस्सा आया, पर मैंने उसे दबाया। मैंने सोचा कि अगर मैंने अब्दुल्ला सेठ का ही प्रमाणपत्र पेश किया होता तो उसकी बेकद्री करके गोरों की पहचान मांगी जाती। फिर मेरी वकालत की योग्यता का मेरे जन्म से क्या वास्ता? यदि मैं दुष्ट या कंगाल मां-बाप का लड़का होऊं तो मेरी योग्यता की जांच में उसकी आपत्ति क्यों उठाई जाए? पर इन सब विचारों को मन में ही रखकर मैंने जवाब दिया, "गो, मैं यह नहीं मानता कि सब तथ्य मांगने का वकील-सभा को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अधिकार है, फिर भी आप जैसा चाहते हैं वैसा हलफनामा दाखिल कराने को तैयार हूं।"

अब्दुल्ला सेठ का हलफनामा लिखाकर उक्त वकील को दे दिया। उन्होंने संतोष प्रकट किया। पर सभा को संतोष न हुआ। उसने मेरे दाखिले के खिलाफ अपना विरोध अदालत के सामने रखा। अदालत ने मि. एस्कंब का जवाब तक नहीं सुना और सभा का विरोध रद्द कर दिया। प्रधान न्यायाधीश ने कहा:

"प्रार्थी के असल प्रमाणपत्र पेश न करने की दलील में कोई दम नहीं है। उसने झूठा हलफ लिया होगा तो उसके लिए उस पा फौजदारी मुकदमा चल सकता है और उसका नाम वकीलों की सूची से खारिज कर दिया जायेगा। अदालत के कानून में काले-गोरे का भेद नहीं है। हमें मि. गांधी को वकालत करने से रोकने का अधिकार नहीं है। दरख्वास्त मंजूर की जाती है। मि. गांधी, आप शपथ ले सकते हैं।"

मैं उठा। रजिस्ट्रार के सामने जाकर हलफ लिया। हलफ लेते ही प्रधान न्यायाधीश ने कहा, "अब आपको अपनी पगड़ी उतार देनी चाहिए। एक वकील की हैसियत से वकीलों के लिए बने हुए अदालत के पोशाक-संबंधी नियम का पालन आपके लिए भी जरूरी है।"

मैंने अपनी मर्यादा समझी। डरबन के मजिस्ट्रेट की कचहरी में जिस पगड़ी के पहने रहने पर मैं अड़ा रहा उसे मैंने यहां उतार दिया। उतारने के खिलाफ मेरे पास दलील तो थी; पर मुझे तो बड़ी लड़ाइयां लड़नी थीं। पगड़ी पहने रहने के आग्रह में मुझे अपनी लड़ने की कला की समाप्ति नहीं करनी थी। शायद वह कुछ धूमिल हो जाती।

अब्दुल्ला सेठ और उसके दूसरे मित्रों को मेरी नम्रता (या निर्बलता?) पसंद न आई। उसकी राय में मुझे वकील की हैसियत में पगड़ी पहने रहने का आग्रह रखना चाहिए था। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की। 'जैसा देश वैसा भेस' कहावत का रहस्य समझाया। हिंदुस्तान में गोरे अधिकारी या जज मजबूर करें तो उसका विरोध करना उचित होगा। नेटाल जैसे देश में और उस न्यायालय के एक पदाधिकारी के रूप में मुझे न्यायालय की रीति का इस तरह विरोध करना शोभा न देगा।

इस तरह की दलीलों से मैंने मित्रों को कुछ शांत तो किया, पर मैं नहीं समझता कि मैं उनके दिमाग में यह बात पूरी तौर से बैठा सका कि एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न संयोगों में भिन्न-भिन्न रूप से देखी जा सकती है। पर मेरे जीवन में आग्रह और अनाग्रह सदा साथ-साथ ही चलते आये हैं। सत्याग्रह में इसकी अनिवार्यता मैंने बाद को अनेक बार अनुभव की है। इस समझौतावृत्ति के कारण मुझे कितनी ही बार अपनी जान की जोखिम उठानी और मित्रों का असंतोष सहन करना पड़ा है। पर सत्य वज्र के समान कठिन है और कमल के समान कोमल।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वकील-सभा के विरोध ने दक्षिण अफ्रीका में मेरे लिए दूसरे विज्ञापन का काम किया। अधिकांश अखबारों ने मेरे दाखिले की निंदा की और वकीलों पर ईर्ष्या का दोष लगाया। इस विज्ञापन से मेरा काम किसी हद तक आसान हो गया।

19 : नेटाल-इंडियन-कांग्रेस

वकालत का धंधा मेरे लिए गौण वस्तु थी और सदा गौण ही रही। नेटाल में अपना रहना सार्थक करने को तो मुझे सार्वजनिक कार्य में तन्मय हो जाना था। भारतीय मताधिकार-प्रबंधक कानून के विरोध में सिर्फ अर्जी भेजकर ही तो बैठा नहीं जा सकता था। उसके बारे में आंदोलन जारी रहने से ही उपनिवेश-मंत्री पर असर पड़ सकता था। इसके लिए एक संस्था स्थापित करने की आवश्यकता जान पड़ी। अतः अब्दुल्ला सेठ से सलाह की। दूसरे साथियों से भी मिला और एक सार्वजनिक संस्था स्थापित करने का निश्चय हुआ।

उसके नामकरण में कुछ धर्मसंकट पड़ा। इस संस्था को किसी दल का पक्षपात न करना था। मैं जानता था कि महासभा (कांग्रेस) का नाम विलायत के कंजरवेटिव (पुराण-पंथी) पक्ष में अप्रिय है। पर महासभा भारत का प्राण थी। उसकी शक्ति बढ़नी ही चाहिए। वह नाम छिपाने अथवा उसे धारण करते हुए झिझकने में नामर्दी की बू आती थी। अतः मैंने अपनी दलीलें पेश करके संस्था का नाम 'कांग्रेस' ही रखने की राय दी और 1894 के मई महीने की 22वीं तारीख को 'नेटाल-इंडियन-कांग्रेस' का जन्म हुआ।

दादा अब्दुल्ला की बैठक भर गई थी। लोगों ने इस नवजात संस्था का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। विधान सीधा-सादा रखा गया। चंदा भारी था। हर महीने कम-से-कम पांच शिलिंग देने वाला ही सदस्य हो सकता था। धनी व्यापारियों से उन्हें गुदगुदाकर जितना अधिक पैसा ले सकें, लेने की छूट रखी गई। अब्दुल्ला सेठ से दो पौंड मासिक लिखवाए गए। दूसरे दो सज्जनों से भी उतना ही लिखवाया। अपने बारे में मैंने सोचा कि मुझे इस काम में कंजूसी न करनी चाहिए। अतः अपने नाम एक पौंड मासिक लिखवाया। यह रकम मेरे लिए बीमें की किस्त-जैसी थी। पर मैंने सोचा कि अगर मेरा खर्च चलेगा तो मेरे लिए हर महीने एक पौंड बहुत भारी न होगा। ईश्वर ने मेरी गाड़ी चलाई। एक पौंड देने वालों की तादाद काफी रही, दस शिलिंग वालों की उनसे भी अधिक। इसके सिवा सदस्य हुए बिना भेंट के रूप में जो कोई दानस्वरूप कुछ दे दे उसे तो सधन्यवाद स्वीकार कर ही लेना था।

अनुभव से दिखाई दिया कि तकादे के बिना कोई चंदा न देता था। डरबन से बाहर वालों के यहां बार-बार जाना असम्भव था। आरम्भशूरता का दोष तुरंत सामने आया। डरबन में भी बहुत फेरे लगाने पर पैसे मिलते थे। मैं मंत्री था। इसलिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पैसा वसूल करने का बोझ मेरे सिर था। मुझे अपने मुहर्रिर को लगभग सारा दिन चंदा वसूल करने के काम में ही रखना पड़ता था। मुहर्रिर भी थक गया। मुझे दिखाई दिया कि चंदा मासिक नहीं, वार्षिक होना चाहिए और सबसे पेशगी मिल जाना चाहिए। बैठक बुलाई गई। सबने इस सुझाव का स्वागत किया और कम-से-कम तीन पौंड सालाना चंदा लेने की बात तै पाई। वसूली आसान हो गई।

आरम्भ में ही मैंने यह सीख लिया था कि सार्वजनिक काम कभी कर्ज लेकर नहीं करना चाहिए। और बातों में लोगों का भले ही विश्वास किया जाय, पर पैसे के वादे का विश्वास नहीं करना चाहिए।

मैंने देख लिया था कि लिखी रकम चुकाने का धर्म लोग कभी नियमित रूप से नहीं पालते। नेटाल के हिंदुस्तानी भी इसके अपवाद न थे। इससे 'नेटाल-इंडियन-कांग्रेस' ने कभी कर्ज लेकर काम किया ही नहीं।

सदस्य बनाने में साथियों ने बेहद उत्साह दिखाया। उसमें उन्हें रस मिलता था, अमूल्य अनुभव भी मिलता था। बहुतेरे खुशी से नाम लिखाते और तुरंत पैसे दे देते थे। दूर-दूर के गांवों में जरा कठिनाई पड़ती थी। सार्वजनिक काम के मानी क्या होते हैं, इसे लोग नहीं समझते। बहुत-से स्थानों में तो लोग अपने यहां आने का आमंत्रण देते और प्रमुख व्यापारियों के यहां टिकाने का प्रबंध करते। पर इन यात्राओं में एक जगह आरंभ में ही हमें कठिनाई का सामना करना पड़ा। वहां 6 पौंड मिलने चाहिए थे, पर वह व्यापारी तीन से आगे बढ़ता ही न था। उतना ले लें तो फिर दूसरों से भी अधिक न मिलता। ठहरे उसी के यहां थे। हम सब भूखे थे। पर जब तक चंदा न मिल जाए तब तक खाएं कैसे? इस भाई से खूब आरजू-मिन्नत की। वह टस-से-मस न होता था। कस्बे के अन्य व्यापारियों ने भी उसे समझाया। सारी रात झक-झक में गुजर गई। गुस्सा तो अनेक साथियों को आया; पर किसी ने विनय न त्यागी। बिलकुल सवेरा हो जाने पर यह भाई पिघला और 6 पौंड दे दिये। हमें खिलाया-पिलाया। यह घटना टोंगाट में घटी थी। इसका असर उत्तर तट पर ठेठ स्टेंगर तक और भीतर ठेठ चार्ल्सटाउन तक पड़ा, हमारा वसूली का काम आसान हो गया।

पर पैसा जमा करना ही तो उद्देश्य न था, आवश्यकता से अधिक पैसा न रखने का तत्त्व भी मैं सीख चुका था।

सभा आवश्यकतानुसार प्रति सप्ताह या प्रति मास हुआ करती थी। उसमें पिछली बैठक की कार्रवाई पढ़ी जाती और अनेक प्रकार की चर्चा होती थी। सभा में बहस या मत प्रकाशित करने की और संक्षेप में तथा प्रसंगानुकूल बोलने की आदत तो लोगों को थी ही नहीं। खड़े होकर बोलते सकुचाते थे। मैंने सभा के नियम समझाए और लोगों ने उन्हें माना। उनसे होने वाले फायदे उनकी समझ में आये और जिन्हें कभी सभा में बोलने की आदत न थी, वे सार्वजनिक प्रश्नों पर बोलने और विचार करने लगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक काम चलाने में छोटे खर्चों में बहुत पैसे चले जाते हैं यह भी मैं जानता था। आरम्भ में मैंने रसीद-बही तक न छपाने का निश्चय रखा था। अपने दफ्तर में साइक्लोस्टाइल मशीन थी, उसी पर रसीद छपा ली थी। रिपोर्ट भी इसी तरह छपा लेता था। जब तिजोरी में पैसे काफी आ गए, सदस्य बढ़ गए, काम बढ़ा तभी रसीद वगैरा छपाने लगा। ऐसी किफायतशारी हर एक संस्था में होना जरूरी है, फिर भी वह सदा हो नहीं पाती, यह मैं जानता हूं। इसी से इस नन्हीं-सी उगती हुई संस्था के बाल-काल की ये छोटी-छोटी तफसीली बातें बता देना उचित समझता हूं। लोग रसीद की परवाह न करते थे, फिर भी उन्हें आग्रहपूर्वक रसीद दी जाती थी। इससे हिसाब शुरू से ही, पाई-पाई का, ठीक रहा और मैं समझता हूं कि आज भी नेटाल-कांग्रेस दफ्तर में 1894 के पूरे ब्यौरे वाली बहियां मिल जानी चाहिए। बारीकी से रखा हुआ हिसाब हर एक संस्था की नाक है। इसके बिना संस्था अंत में गंदी और प्रतिष्ठा रहित हो जाती है। शुद्ध हिसाब के बिना शुद्ध सत्य की रक्षा होना असम्भव है।

कांग्रेस का दूसरा अंग दक्षिण अफ्रीका में पैदा हुए पढ़े-लिखे हिंदुस्तानियों की सेवा करना था। इसके लिए 'कोलोनियल बार्न इंडियन एज्युकेशनल एसोसिएशन' स्थापित किया गया। उसमें मुख्यतः ये नवयुवक ही सदस्य थे। उनके लिए चंदा बहुत हल्का रखा गया था। सभा के जरिए उनकी आवश्यकताओं का पता चलता, उनकी विचार-शक्ति बढ़ती, उनका व्यापारियों के साथ संबंध जुड़ता और उन्हें खुद भी सेवा करने का अवसर मिलता। यह संस्था वाद-समिति जैसी थी। उसकी बैठकें नियम से होतीं, उसमें सदस्यगण भिन्न-भिन्न विषयों पर भाषण करते और निबंध पढ़ते थे। उसके अंतर्गत एक छोटा पुस्तकालय भी स्थापित किया गया।

कांग्रेस का तीसरा अंग था-बाहरी आंदोलन। इसके अंदर दक्षिण अफ्रीका के अंग्रेजों और बाहर इंग्लैंड में तथा हिंदुस्तान में नेटाल के भारतीयों की सच्ची स्थिति प्रकट करने का काम था। इसके लिए मैंने दो पुस्तिकाएं लिखीं। पहली पुस्तिका का नाम था 'दक्षिण अफ्रीका में बसने वाले हर एक अंग्रेज से अपील' ('एन अपील टु एवरी ब्रिटेन इन साउथ अफ्रीका')। उसमें नेटालवासी हिंदुस्तानियों की सामान्य स्थिति का प्रमाण सहित दिग्दर्शन था। दूसरी थी 'भारतीय मताधिकार-एक अपील।' ('दि इंडियन फ्रेंचाइज-एन अपील') उसमें भारतीयों के मताधिकार का इतिहास आंकड़ों और प्रमाणों के साथ दिया गया था। इन दोनों पुस्तिकाओं के लिखने में मैंने खूब मेहनत की थी और पढ़ा था। उसका फल भी वैसा ही हुआ। उनका खूब प्रचार किया गया। इस प्रयत्न के फलस्वरूप दक्षिण अफ्रीका में हिंदुस्तानियों के दोस्त पैदा हो गए। इंग्लैंड में और हिंदुस्तान में सब पक्षों की मदद मिली और काम करने का पक्का रास्ता मिल गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20. बालासुंदरम्

"जैसी नीयत वैसी बरकत" इन नियम को मैंने अपने बारे में घटित होते अनेक बार देखा है। जनता की अर्थात गरीबों की सेवा करने की मेरी प्रबल इच्छा ने सदा गरीबों के साथ अनायास मेरा संबंध जोड़ दिया।

'नेटाल-इंडियन-कांग्रेस' में यद्यपि उपनिवेशों में जन्मे हुए हिंदुस्तानियों का प्रवेश हो गया था, मुंशी-मुनीम वर्ग भी उसमें पहुंच गया था, फिर भी ठेठ मजदूरों, गिरमिटियों के वर्ग का प्रवेश नहीं हुआ था। कांग्रेस उनकी नहीं हो पाई थी। वे उसका चंदा देकर उसमें दाखिल होकर उसे अपना न सकते थे। कांग्रेस के लिए उनके मन में प्रेम तभी उत्पन्न हो सकता था, जब वह उनकी सेवा करे। इसका अवसर अपने आप आया और ऐसे समय जबकि कांग्रेस या मैं स्वयं इसके लिए शायद ही तैयार थे। कारण यह कि अभी मुझे वकालत शुरू किए मुश्किल से दो-चार महीने ही हुए थे। कांग्रेस का भी बाल-काल था। इतने में एक दिन एक मद्रासी फटे कपड़े पहने, रोता-कांपता साफा हाथ में लिये मेरे सामने आ खड़ा हुआ। उसंके मुंह से खून बह रहा था, आगे के दो दांत गिर गये थे। उसे उसके मालिक ने बुरी तरह पीटा था। अपने मुहर्रिर के जरिए, जो तमिल जानता था, मैंने उसका हाल मालूम किया। बालासुंदरम् (उक्त मद्रासी का नाम) एक प्रतिष्ठित गोरे के यहां मजदूरी करता था। मालिक को किसी बात पर गुस्सा आ गया होगा, आपे से बाहर होकर बालासुंदरम् की पूरी मरम्मत कर दी जिससे उसके दो दांत टूट गये।

मैंने उसे डॉक्टर के यहां भेजा। उन दिनों वहां गोरे डॉक्टर ही मिलते थे। मुझे चोट के सर्टिफिकेट की जरूरत थी। उसे प्राप्त कर मैं बालासुंदरम् को मजिस्ट्रेट के पास ले गया। वहां उसने हलफनामा दाखिल किया। उसे पढ़कर मजिस्ट्रेट को मालिक पर गुस्सा आया। उसकी तलबी के लिए समन जारी करने का हुक्म दिया।

मेरी नीयत मालिक को दंड दिलाने की न थी। मुझे तो बालासुंदरम् को उससे छुटकारा दिलाना था। मैं गिरमिटिया मजदूरों के सम्बन्ध का कानून पढ़ गया। साधारण नौकर काम छोड़ दे तो मालिक उस पर दीवानी कर सकता है, उसे फौजदारी में नहीं ले सकता। गिरमिट और साधारण नौकरी में तो बड़ा फर्क था, पर खास यह था कि गिरमिटिया मालिक का काम छोड़ दे तो यह फौजदारी जुर्म समझा जाता और इसलिए उसे कैद की सजा भोगनी पड़ती। इसीलिए सर विलियम विल्सन हंटर ने इस स्थिति को लगभग गुलामी की दशा माना है। गुलाम की तरह गिरमिटया भी मालिक की मिलकियत समझा जाता था।

बलासुंदरम् की मुक्ति के दो ही मार्ग थे-या तो गिरमिटियों के लिए नियुक्त अफसर, जो कानून में उनका रक्षक समझा जाता था, गिरमिट रद्द कर दे या दूसरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के नाम कर दे या मालिक खुद उसे अलग करने को तैयार हो जाए। मैंने मालिक से मिलकर कहा, "मुझे आपको सजा नहीं दिलानी है। यह तो आप जानते ही हैं कि इस आदमी पर गहरी मार पड़ी है। आप अगर उसका गिरमिट दूसरे के नाम करा लेने को तैयार हो जाएं तो मुझे संतोष हो जायेगा।" मालिक तो यही चाहता था। इसके बाद मैं रक्षक से मिला। वह भी मान गया, लेकिन इस शर्त पर कि बालासुंदरम् के लिए अच्छा नया मालिक ढूंढ़ दूं।

मुझे नया अंग्रेज मालिक ढूंढ़ना था। हिंदुस्तानियों को गिरमिटिया मजदूर रखने की इजाजत नहीं थी। मैं अभी थोड़े ही अंग्रेजों को जानता था। उनमें से एक से मिला। उसने मुझ पर मेहरबानी करके बालासुंदरम् को रखना मंजूर किया। मैंने इस कृपा के लिए धन्यवाद दिया। मजिस्ट्रेट ने मालिक् को अपराधी बताकर यह लिख दिया कि बालासुंदरम् का गिरमिट दूसरे के नाम कर दिया जाए, यह उसे मंजूर है।

बालासुंदरम् के मामले की बात गिरमिटियों में चारों ओर फैल गई और मैं उनका हितू मान लिया गया। मुझे इससे प्रसन्नता हुई। मेरे दफ्तर में गिरमिटिया की भीड़ लगने लगी। उनका सुख-दुःख जानने का मुझे अच्छा सुभीता मिल गया।

बालासुंदरम् के मामले की गूंज ठेठ मद्रास प्रांत तक पहुंची। इस सूबे को जिस-जिस हिस्से से लोग नेटाल की गिरमिट में जाते थे, उन्हें गिरमिटियों ने ही इस घटना की खबर दे दी। यह मामला इतने महत्त्व का न था, पर लोगों को यह जानकर अचम्भा-सा हुआ कि उनके लिए प्रकाश्य रूप से काम करने वाला कोई निकल आया है। इससे उन्हें कुछ सहारा मिला।

मैं ऊपर कह चुका हूं कि बालासुंदरम् अपना साफा उतारकर उसे हाथ में लिये मेरे पास आया था। इस घटना में बड़ा करुण रस भरा है, वह हमारी हीनता का भी निदर्शक है। मेरे पगड़ी उतारने की कथा तो पाठक पढ़ ही चुके हैं। गिरमिटियो और दूसरे अजनबी हिंदुस्तानी को भी किसी गोरे के यहां जाने पर उसके सम्मानार्थ शिरोवस्त्र उतार देना पड़ता-चाहे वह टोपी हो, बंधी हुई पगड़ी हो या लपेटा हुआ साफा हो। दोनों हाथों से सलाम करना ही काफी न था। बालासुंदरम् ने सोचा कि मेरे सामने भी वैसे ही आना चाहिए, मेरे लिए तो यह दृश्य पहला अनुभव था। मैं शरमाया, बालासुंदरम् को साफा बांध लेने को कहा। उसने बड़े संकोच से साफा बांधा, पर इससे उसे जो प्रसन्नता हुई उसे मैं देख सका। दूसरे को अपमानित करने में मनुष्य अपना सम्मान कैसे मान सकता है, इस पहेली को मैं आज तक हल न कर सका।

CC-0. Vasanthakumari Manya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21 : तीन पौंड का कर

बालासुंदरम् की घटना ने गिरमिटिया हिंदुस्तानियों से मेरा सम्बन्ध जोड़ दिया। पर उन पर कर लगाने के सिलसिले में जो आंदोलन चला उसके फलस्वरूप मुझे उनकी स्थिति का गहरा अध्ययन करना पड़ा।

इसी साल-सन् 1894 में-हर गिरमिटिया हिंदुस्तानी पर प्रति वर्ष 25 पौंड अर्थात 375 रुपये का कर लगाने के कानून का मसविदा नेटाल सरकार ने बनाया। उसे पढ़कर, मैं तो दिङमूढ़ हो गया। मैंने उसे स्थानीय कांग्रेस के सामने पेश किया। कांग्रेस ने इस विषय में जैसा आंदोलन होना उचित था उसे करने का प्रस्ताव पेश किया।

इस कर का ब्यौरा थोड़ा जान लेना चाहिए।

1860 ई. के लगभग जब नेटाल में बसने वाले गोरों ने देखा कि यहां ईख की अच्छी उपज हो सकती है, तो उन्होंने मजदूरों की तलाश शुरू की। बिना मजदूरों के न तो ईख उपजाई जा सकती थी और न चीनी बन सकती थी। नेटाल के हब्शियों से यह काम होने वाला न था। इससे नेटाल निवासी गोरों ने भारत-सरकार से लिखा-पढ़ी करके हिंदुस्तानी मजदूरों को नेटाल ले जाने की इजाजत ले ली। उन्हें पांच बरस मजदूरी करने का बंधन और पांच बरस के बाद स्वतंत्र रूप से नेटाल में बसने की छूट का लालच दिया गया। जमीन पर पूरा मालिकाना हक भी उनके लिए रखा गया था। उस वक्त गोरे चाहते थे कि हिंदुस्तानी मजदूर अपने पांच साल पूरे करने के बाद जमीन जोतें और अपने उद्यम का लाभ नेटाल को दें।

हिंदुस्तानी मजदूरों ने यह लाभ आशा से अधिक दिया। साग-तरकारी खूब बोई। हिंदुस्तान की कितनी ही बढ़िया-बढ़िया तरकारियां वहां उपजाई। जो साग-भाजियां वहां पहले से पैदा हो रही थीं उनके दाम सस्ते करा दिए। हिंदुस्तान से आम लाकर लगाए। पर इसके साथ-साथ उन्होंने रोजगार करना भी शुरू कर दिया। मकान बनाने को जमीनें खरीदीं और मजदूर न रहकर बहुतेरे अच्छे जमींदार और मकान मालिक बन गए। मजदूरों में से बहुतों के इस तरह मकान-मालिक बन जाने के बाद स्वतंत्र व्यापारी भी आये। स्वर्गीय सेठ अबूबकर अहमउ उनमें सबसे पहले थे। उन्होंने अपना कार-बार खूब जमाया।

गोरे व्यापारी चौंके। उन्होंने पहले जब हिंदुस्तानी मजदूरों का स्वागत किया था तब वे उनकी व्यापार-शक्ति का अंदाजा नहीं कर सके थे। वे किसान की भांति स्वतंत्र रहें। यहां तक तो उस वक्त उनको कोई हर्ज न था; पर व्यापार की प्रतिद्वंद्विता उन्हें असह्य हो गई। यह थी हिंदुस्तानियों के साथ उनकी विरोध की जड़। उसमें और बातें भी शामिल हो गईं। हमारी भिन्न रहन-सहन, हमारी सादगी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हमारा कम मन से संतोष कर लेना, आरोग्य-नियमों की ओर हमारी लापरवाही, घर-आंगन को साफ रखने में आलस्य, उनकी मरम्मत में कंजूसी, हमारा भिन्न धर्म-ये सब बातें विरोध की आग को बढ़ाने वाली साबित हुईं।

वह विरोध मिले हुए मताधिकार को छीन लेने और गिरमिटियों पर कर लगाने के बिलों के रूप में प्रकट हुआ। कानून के बाहर तो तरह-तरह की 'कोंचाई' शुरू हो ही चुकी थी।

पहली तजबीज तो यह थी कि गिरमिट पूरा होने लगने पर हिंदुस्तानियों को जबरदस्ती वापस भेज दिया जाए, जिसमें उनके इकरारनामे की मुद्दत हिंदुस्तान में पूरी हो। पर इस तजबीज को भारत-सरकार मानने वाली न थी। इसलिए यह तजबीज़ पेश की गई कि :

(1) मजदूरी का इकरार पूरा हो जाने पर गिरमिटिया हिंदुस्तान लौट जाएं; या

(2) हर दूसरे साल नया इकरारनामा लिखें और हर बार उसके वेतन में कुछ वृद्धि की जाय;

(3) वापस न जाएं और मजदूरी का नया इकरारनामा भी न लिखें तो हर साल 25 पौंड का कर दें।

यह तजबीज मंजूर कराने के लिए सर हेनरी बीन्स और मि. मेसन का डेपूटेशन हिंदुस्तान भेजा गया। उस वक्त लार्ड एल्गिन वाइसराय थे। उन्होंने 25 पौंड का कर तो नामंजूर कर दिया, पर वैसे हर एक हिंदुस्तानी से तीन पौंड का कर लेने की स्वीकृति दे दी। मुझे उस समय ऐसा लगा और अब तक लगता है कि वाइसराय ने यह मंजूरी देकर भारी भूल की। उन्होंने इसमें हिंदुस्तान के हित का बिलकुल खयाल न किया। नेटाल के गोरों के लिए ऐसा सुभीता कर देना किसी तरह का फर्ज न था। तीन-चार बरस बाद यह कर हर वैसे (गिरमिट-मुक्त) हिंदुस्तानी की स्त्री और उसके हर 16 और इससे बड़ी उम्र के लड़के और 13 या इससे बड़ी उम्र की लड़की से लेने का निश्चय हुआ। इस प्रकार पति-पत्नी और दो बच्चों के कुटुम्ब से, जिसमें पति को अधिक-से-अधिक 14 शिलिंग माहवार मिलते हों, 12 पौंड अर्थात 180 का कर लेना भारी जुल्म माना जाना चाहिए। दुनिया में कहीं भी ऐसी स्थिति के आदमियों से ऐसा कर नहीं लिया जाता था।

इस कर के विरुद्ध घोर युद्ध छिड़ा। अगर नेशनल-इंडियन-कांग्रेस की ओर से इसके खिलाफ आवाज न उठाई गई होती तो वाइसराय शायद 25 पौंड भी मंजूर कर लेते। इस बात की पूरी सम्भावना है कि उसका 25 से 3 पौंड हो जाना भी कांग्रेस के आंदोलन का ही प्रताप हो। पर ऐसा सोचना मेरी गलती भी हो सकती है। मुमकिन है, भारत-सरकार ने 25 पौंड के प्रस्ताव को शुरू से नामंजूर कर दिया हो, और कांग्रेस के विरोध न करने पर भी वह 3 पौंड का ही कर स्वीकार करती, फिर भी हिंदुस्तानी के हित की हानि तो होती ही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हिन्दुस्तानी के हित-रक्षक की हैसियत से ऐसा अमानुषी कर वाइसराय को कभी स्वीकार न करना चाहिए था।

पच्चीस से 3 पौंड (375 से 45 रुपए) होने में कांग्रेस क्या यश लेती? उसे तो यही खल रहा था कि वह गिरमिटियों के हित की पूरी रक्षा न कर सकी। तीन पौंड का यह कर आज नहीं तो कल हटना ही चाहिए, इस निश्चय को उसने कभी आंख से ओझल न होने दिया। इसकी पूर्ति में बीस बरस लग गए। इस संग्राम में नेटाल के ही नहीं, सारे दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों को शामिल होना पड़ा। उसमें गोखले को निमित्त बनना पड़ा। गिरमिटिया हिंदुस्तानियों को पूरा हिस्सा लेना पड़ा। उसके लिए कितनों को गोली का निशाना बनना पड़ा। दस हजार से अधिक भारतीयों को जेल जाना पड़ा।

पर अंत में सत्य की विजय हुई। भारतीयों की तपस्या से सत्य मूर्त्तिमान हुआ। उसके लिए अटल श्रद्धा, धीरज और सतत प्रयत्न की आवश्यकता थी। कौम हारकर बैठ जाती, कांग्रेस लड़ाई को भूल जाती और कर को अनिवार्य मानकर घुटने टेक देती, तो वह आज तक गिरमिटिया हिंदुस्तानियों से वसूल होता रहता और दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों और सम्पूर्ण भारत के मुंह पर उसकी कालिख पुत जाती।

22 : धर्म-निरीक्षण

मैं जो इस प्रकार समाज-सेवा में तन्मय हो गया था, उसका कारण आत्मदर्शन की आकांक्षा थी। ईश्वर की पहचान सेवा से होगी। यह मानकर मैंने सेवा-धर्म स्वीकार किया था। भारत की सेवा करने का कारण यह था कि वह मुझे सहज प्राप्त थी, उसकी ओर मेरी रुचि थी। उसे मुझे ढूंढ़ने नहीं जाना पड़ा था। मैं तो यात्रा करने, काठियावाड़ के कुचक्रों से छूटने और रोजी कमाने की गरज से दक्षिण अफ्रीका गया था; पर पड़ गया ईश्वर की खोज में-आत्म-दर्शन के प्रयत्न में। ईसाई भाइयों ने मेरी ज्ञान की भूख बहुत उभार दी थी। वह किसी तरह से शांत होने वाली न थी। मैं शांत होना चाहूं तो भी ईसाई भाई-बहन, मुझे शांत होने देने वाले न थे। डरबन में मि. स्पेंसर वाल्टन ने, जो दक्षिण अफ्रीका के मिशन के मुखिया थे, मुझे पकड़ा। उनके घर में मैं कुटुम्बी जैसा हो गया। इस सम्बन्ध का मूल प्रिटोरिया में हुआ समागम था। मि. वाल्टन का ढंग कुछ निराला था। उन्होंने कभी मुझसे ईसाई बनने को कहा हो, ऐसा याद नहीं आता; पर अपना जीवन उन्होंने मेरे सामने रख दिया और अपने कार्यकलाप का मुझे निरीक्षण करने दिया। उनकी धर्मपत्नी बड़ी विनीत पर तेजस्वी महिला थीं।

मुझे इन दम्पत्ति का तरीका पसंद आता था। हमारे बीच जो मौलिक भेद थे उनका हम दोनों को पता था। यह मतभेद बहस-मुबाहसों से मिटने वाला न था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जहां उदारता, सहिष्णुता और सत्य है वहां मतभेद भी लाभदायक सिद्ध होते हैं। मझे इन दम्पति की नम्रता, उद्योगशीलता और कार्यपरायणता प्रिय थी। इसलिए हम जब-तब मिलते रहते थे।

इस सम्बन्ध ने मुझे जाग्रत रखा। धार्मिक अध्ययन के लिए प्रिटोरिया में मुझे जो अवकाश मिला था वह तो अब नामुमकिन बात थी, पर जो कुछ समय बचता, उसका उपयोग मैं ऐसे अध्ययन में अवश्य करता था। मेरा पत्र-व्यवहार जारी था। रायचंदभाई मुझे रास्ता दिखा रहे थे। किसी मित्र ने मुझे नर्मदाशंकर की 'धर्म-विचार' पुस्तक भेजी। उसकी प्रस्तावना मेरे लिए सहायक सिद्ध हुई। नर्मदाशंकर के विलासमय जीवन की बात मैंने सुनी थी। प्रस्तावना में उनके जीवन में हुए परिवर्तनों का वर्णन किया गया था। उसने मेरे मन को अपनी ओर खींचा और इससे उस पुस्तक के लिए मेरे मन में आदर उत्पन्न हुआ। मैंने उसे ध्यान देकर पढ़ा। मैक्समूलर की 'भारत क्या सीखता है'[1]? पुस्तक को मैंने बड़ी रुचि से पढ़ा। थियोसोफिकल सोसायटी द्वारा प्रकाशित उपनिषदों का भाषांतर पढ़ा। इन सबसे हिंदू-धर्म के प्रति मेरा आदर-भाव बढ़ा। उसकी खूबियां मेरी समझ में आने लगीं। पर अन्य धर्मों के प्रति मेरे मन में अनादर नहीं उपजा। वाशिंगटन अरविंग कृत मुहम्मद का चरित्र[2] और कर्लाइल की मुहम्मद-स्तुति पढ़ी। पैगम्बर के प्रति मेरा सम्मान बढ़ा। 'जरथुस्त के वचन'[3] नामक पुस्तक पढ़ी।

यों मैंने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त किया। आत्मनिरीक्षण बढ़ा। जो पढ़ा और रुचा, उस पर अमल करने की आदत पक्की हुई। इससे हिंदू-धर्म में बताई हुई प्राणायाम सम्बन्धी कुछ क्रियाएं, पुस्तक के सहारे, जैसा कुछ समझ सका, शुरू की, पर वे मुझसे सधी नहीं। इस साधना में मैं आगे न बढ़ सका। हिंदुस्तान वापस लौटने पर उसका अभ्यास किसी शिक्षक की देखरेख में करने की बात सोची, पर यह इरादा कभी पूरा न हुआ।

टाल्सटाय की पुस्तकों का अध्ययन बढ़ा लिया। उनका 'गास्पेल्स इन ब्रीफ' (नव विधान का सार), 'ह्वाट टु डू?' (क्या करें?) आदि पुस्तकों ने मेरे हृदय पर गहरा असर डाला। विश्वप्रेम मनुष्य को कहां तक ले जा सकता है इसे मैं अधिकाधिक समझने लगा।

इसी समय एक दूसरे ईसाई-कुटुम्ब के साथ मेरा सम्बन्ध हुआ। उन लोगों की इच्छा से मैं हर रविवार को वेस्लियन गिरजे में जाया करता। प्रायः हर रविवार को मुझे शाम को उनके यहां खाना भी पड़ता। वेस्लियन गिरजे का मुझ पर

---

1. 'इंडिया-ह्वाट कैन इट टीच अस?'
1. 'लाइफ ऑव मुहम्मद एण्ड हिज सक्सेसर्स'।
2. 'दी सेयिंगस ऑव जरथुस्त'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अच्छा असर नहीं पड़ा। वहां जो भजन होते थे वे मुझे नीरस लगते थे। दर्शकों में मुझे भक्ति भाव नहीं मिला। यह 'ग्यारह बजे का जमाव' मुझे भक्तों की नहीं, बल्कि कुछ मन बहलावे और कुछ लकीर पीटने के लिए आए हुए संसारी जीवों की टोली जान पड़ी। कभी-कभी इस सभा में बरबस मुझे नींद के झोंके आने लगते, जिससे मैं लज्जित होता; पर अपने आस-पास भी किसी को ऊंघते देखता तो मेरी लज्जा कुछ हल्की पड़ जाती। अपनी यह स्थिति मुझे रुची नहीं। अन्त में मैंने इस गिरजे में जाना छोड़ दिया।

जिस कुटुम्ब में हर रविवार को मैं जाता था वहां से तो कह सकता कि मुझे छुट्टी ही मिल गई। घर की मालकिन सीधी, भली, पर संकुचित मनवाली स्त्री जान पड़ी। उसके साथ सदा कुछ-न-कुछ धर्मचर्चा हुआ ही करती। उन दिनों मैं घर पर 'लाइट ऑफ एशिया' पढ़ा करता था। हम ईसा और बुद्ध के जीवन की तुलना करने लगे।

"बुद्ध की दया को देखिए, वह मनुष्य-जाति से आगे बढ़कर अन्य प्राणियों तक जा पहुंची थी। उनके कंधे पर खेलते हुए मेमने का चित्र आंखों के सामने आते ही क्या आपका हृदय प्रेम से परिपूर्ण नहीं हो जाता? यह प्राणीमात्र के प्रति प्रेम, मैं ईसा के चरित्र में नहीं पाता।"

उस बहन को क्लेश हुआ। मैं समझ गया। मैंने अपनी बात वहीं रोक दी। हम खाने के कमरे में गए। उनका कोई पांच बरस का हँसमुख बच्चा भी हम लोगों के साथ था। मुझे बच्चा मिल जाए तो फिर और क्या चाहिए? उसके साथ मैंने दोस्ती तो कर ही ली थी। मैंने उसकी थाली में पड़े मांस के टुकड़े का मजाक किया और अपनी रकाबी में विराजते सेब की स्तुति करने लगा। निर्दोष बालक पिघल गया और स्तवन में शामिल हो गया। पर माता? वह बेचारी खिन्न हुई।

मैं चेता। चुप हो रहा। बात का विषय बदल दिया।

दूसरे सप्ताह सावधान रहकर मैं उनके यहां गया जरूर, पर मेरे पांव बोझिल हो गए थे। मैं खुद ही वहां जाना बंद कर दूं यह मुझे न सूझा, न उचित लगा। पर उस भली बहन ने ही मेरी मुश्किल हल कर दी। वह बोली, "मि. गांधी, आप बुरा न मानिएगा, पर मुझे आपसे कहना होगा कि आपके संग का मेरे बच्चे पर बुरा असर होने लगा है। अब वह मांस खाने में रोज नाक-भौं सिकोड़ता है और आपकी उस दिन की बात याद दिलाकर फल मांगता है। मुझसे यह न चल सकेगा। मेरा बच्चा मांस छोड़ देने पर बीमार भले ही न पड़े, पर कमजोर तो हो ही जाएगा। यह मैं कैसे बरदाश्त कर सकती हूं? आप जो चर्चा करते हैं, वह हम समझदारों के बीच फब सकती है; पर बच्चों पर तो उसका बुरा ही असर होता है।"

"मिसेज.....मुझे दुःख है। आपकी मातृ-भावना को मैं समझ सकता हूं। मेरे भी बच्चे हैं। इस अनिष्ट स्थिति का अंत आसानी से हो सकता है। मेरे बोलने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का जो असर होगा, उसकी अपेक्षा मैं क्या खाता हूं, क्या नहीं खाता; यह देखने का असर बच्चे पर बहुत ज्यादा हो सकता है। इसलिए सबसे अच्छा रास्ता यह है कि अब से मैं रविवार को आपके यहां न आया करूं। हमारी मित्रता में इससे कोई अंतर न पड़ेगा।"

बहन ने प्रसन्न होकर कहा, "मैं आपकी एहसानमंद हूं।"

23 : घर का काम-काज

बंबई और विलायत में मैं घर बसा चुका था, पर उसमें और नेटाल में घरबार वाला बनने में अंतर था। नेटाल में बहुत-सा खर्च केवल प्रतिष्ठा के लिए बांध रखा था। मैंने मान रखा था कि नेटाल में भारतीय बैरिस्टर और हिंदुस्तानियों के प्रतिनिधि के रूप में काफी खर्च रखना चाहिए। इसलिए अच्छे मुहल्ले में अच्छा मकान लिया था। घर को अच्छी तरह सजाया भी था; भोजन सादा था, पर अंग्रेज मित्रों को निमंत्रण देना होता; भारतीय साथियों को भी न्यौता करता था, इसलिए खाने-पीने का खर्च भी सहज ही बढ़ गया था।

नौकर की तंगी तो सब कहीं जान पड़ती थी। किसी को नौकर बनाकर रखना मुझे आया ही नहीं।

मेरा एक मित्र मेरे साथ रहता था। एक रसोइया रखा था। वह घर के आदमी जैसा हो गया था। दफ्तर में जो क्लर्क आदि रखे थे, उनमें से भी जिन्हें रख सकता था घर में रख लिया था।

अपने इस प्रयोग को मैं सफल मानता हूं, पर उसमें से मुझे संसार के कड़वे अनुभव भी हुए।

वह साथी बहुत होशियार और मेरी दृष्टि से मेरे प्रति सच्चा था; पर मैं उसे परख न सका। दफ्तर के एक कर्मचारी को मैंने घर में रख लिया था।, उससे इस साथी को जलन हो गई। उसने ऐसा जाल रचा कि उस कर्मचारी पर मुझे शक हो जाए। यह कर्मचारी बड़ी स्वतंत्र प्रकृति का था। उसने घर और दफ्तर दोनों छोड़ दिए। मुझे दुःख हुआ। उसके साथ कोई अन्याय न हो गया हो, यह विचार मुझे कुरेद रहा था।

इतने में जो रसोइया मैंने रखा था उसे कार्यवश अन्यत्र जाना पड़ा। मैंने उसे मित्र की सेवा टहल के लिए रखा था। अतः उसके बदले मैंने दूसरा रसोइया रखा। बाद को मुझे मालूम हुआ कि यह आदमी उड़ती चिड़िया भांपने वाला था; पर मेरे लिए वह ऐसा उपयोगी सिद्ध हुआ, मानो मुझे वैसे ही आदमी की जरूरत रही हो।

इस रसोइए को रखे मुश्किल से दो या तीन दिन हुए होंगे कि इतने में उसने मेरे घर में अजानकारी में होने वाले अनाचार को ताड़ लिया और मुझे खबरदार

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

कर देने का निश्चय किया। मेरे सहज विश्वासी तथा अपेक्षाकृत भलामानस होने की धारणा लोगों में फैली हुई थी। इससे इस रसोइए को मेरे ही घर में चलने वाली भ्रष्टता भयानक जान पड़ी।

मैं दफ्तर से भोजन के लिए एक बजे घर आया करता था। लगभग बारह बजे होंगे। इतने में यह रसोइया हांफता हुआ आया और बोला "आपको कुछ देखना हो तो इसी क्षण घर चलिए।"

मैने पूछा-"इसके मानी? मुझे काम तो बताओ, ऐसे वक्त मुझे घर चलकर क्या देखना है?"

रसोइया बोला, "न चलेंगे तो पछताएंगे। इससे अधिक मैं आपसे नहीं कहना चाहता।"

उसकी दृढ़ता ने मुझे खींचा। अपने मुहर्रिर को साथ लेकर मैं घर गया। रसोइया आगे चला। घर पहुंचने पर वह मुझे दुमंजिले पर ले गया। जिस कमरे में उक्त साथी रहता था उसकी ओर इशारा करके बोला,

"इस कोठरी को खोलकर देखिए।"

अब मैं सब समझ गया। मैंने कमरे का दरवाजा खटखटाया। जवाब क्यों मिलता? मैंने बहुत जोर से दरवाजा खटखटाया। दीवार कांप उठी। दरवाजा खुला। अंदर एक बदचलन औरत दिखाई दी। मैंने उससे कहा, "बहन, तुम तो यहां से चल ही दो। अब से फिर कभी इस घर में कदम न रखना।"

साथी से कहा, "आज से मेरा तुम्हारा सम्बन्ध टूटा। मैं खूब ठगा और बेवकूफ बना। मेरे विश्वास का यह बदला न मिलना चाहिए था।"

साथी बिगड़ा। मेरा सारा पर्दाफाश कर देने की धमकी दी।

"मेरे पास कोई पर्दा है ही नहीं। मैंने जो कुछ किया है वह खुशी से जाहिर करो। पर तुमसे मेरा सम्बन्ध तो टूट ही गया।"

साथी और गरमाया। मैंने नीचे खड़े अपने मुहर्रिर से कहा, "तुम जाओ, पुलिस सुपरिटेंडेंट को मेरा सलाम बोलो और कहो कि मेरे एक साथी ने मेरे साथ विश्वासघात किया है। उसे मैं अपने घर में नहीं रखना चाहता हूं, फिर भी वह निकलने से इनकार करता है। कृपा करके मुझे मदद भेजिए।"

पाप के पांव नहीं होते। मेरे इतना कहते ही साथी ढीला पड़ा। उसने माफी मांगी। सुपरिटेंडेंट के यहां आदमी न भेजने को गिड़गिड़ाने लगा और तुरंत घर छोड़कर चला जाना कबूल किया। उसने घर छोड़ दिया।

इस घटना से मेरे जीवन की आवश्यक शुद्धि हुई। यह साथी मेरे लिए मोहरूप और अनिष्टकारी था, मैं अब ही इस बात को स्पष्ट रीति से देख सका। इस साथी को रखने में मैंने अच्छे काम के लिए बुरे साधन को अपनाया था। मैंने बबूल के पेड़ से आम की आशा रखी थी। साथी का चाल-चलन अच्छा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
न होने पर भी मैंने यह मान लिया था कि वह मेरे प्रति सच्चा है। उसे सुधारने की कोशिश में मैं खुद गंदगी में सन-सा गया था। अपने हित चिंतकों की सलाह की मैंने अवहेलना की थी। मोह ने मुझे बिलकुल अंधा बना दिया था।

इस दुर्घटना से मेरी आंख न खुल गई होती, मुझे सत्य का पता न लग गया होता, तो हो सकता है कि जो स्वार्पण मैं कर सका हूं उसे करने में मैं कभी समर्थ न होता। मेरी सेवा सदा अधूरी रहती, क्योंकि वह साथी मेरी प्रगति में अवश्य बाधक होता। उसे मुझे अपना बहुत-सा समय देना पड़ता। मुझे अंधकार में रखने और गलत रास्ते पर ले जाने की उसमें शक्ति थी।

पर 'जाको राखे साइयां मार सके नहिं कोय', मेरी निष्ठा शुद्ध थी। इसलिए गलतियां करते हुए भी मैं बच गया और मेरे प्रथम अनुभव ने मुझे सावधान कर दिया।

उक्त रसोइए को कौन जाने ईश्वर ने ही भेजा हो? उसे रसोई बनाना न आता था। इसलिए वह मेरे यहां रह नहीं सकता था। पर उसके आए बिना मुझे दूसरा कोई जगा नहीं सकता था। वह बहन मेरे घर में कुछ पहले-पहल आई हो सो बात नहीं थी। पर इस रसोइए जितनी हिम्मत दूसरे को कहां से हो सकती थी? साथी के ऊपर मेरा जो बेहद विश्वास था उसे सभी जानते थे।

इतनी सेवा करके रसोइए ने उसी दिन और उसी क्षण विदा मांगी, "मैं आपके घर में नहीं रह सकता। आप हैं भोले बाबा। यहां मेरा काम नहीं है।"

मैंने आग्रह नहीं किया।

उक्त क्लर्क पर संदेह उपजाने वाला यह साथी ही था, यह मुझे अब मालूम हुआ। उसके साथ हुए अन्याय के मार्जन की मैंने बहुत कोशिश की, पर मैं कभी उसे पूरा संतोष न दे सका। यह मेरे लिए सदा दुःख की बात रही। फूटे बर्तन को चाहे जितना पक्का जोड़िए वह जुड़ा हुआ ही माना जाएगा, साबुत कभी नहीं होगा।

24 : देश की ओर

अब मुझे दक्षिण अफ्रीका में रहते तीन बरस हो चुके थे। लोगों को मैं पहचानने लगा था। वे मुझे पहचानने लगे थे। सन् 1896 में मैंने 6 महीने के लिए देश जाने की इजाजत चाही। मैंने देखा कि मुझे दक्षिण अफ्रीका में अधिक दिन रहना पड़ेगा। यह कह सकता हूं कि मेरी वकालत अच्छी चल निकली थी। सार्वजनिक कार्यों में मेरी उपस्थिति की आवश्यकता लोग समझते थे। मैं भी समझता था। इससे मैंने दक्षिण अफ्रीका में सकुटुम्ब रहने का निश्चय किया और इसके लिए एक बार देश हो आना ठीक समझा। मैंने यह भी देखा कि देश जाने में कुछ लोक कार्य भी हो सकता है। देश में लोकमत जगाकर इस प्रश्न में लोगों की अधिक दिलचस्पी पैदा की जा सकती है। तीन पौंड का कर एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नासूर-सड़ा बहता रहने वाला मांस था। उसके रहते हुए बिना चित्त को चैन नहीं मिल सकता था।

पर मेरे देश जाने पर कांग्रेस का और शिक्षा-मण्डल का काम कौन संभालेगा? दो साथियों पर दृष्टि गई आदमजी मियां खां और पारसी रूस्तमजी। व्यापारी वर्ग में बहुत-से काम करने वाले पैदा हो गये थे। पर मंत्री का काम उठा सकने, नियमित रूप से काम करने और दक्षिण अफ्रीका में जन्मे हुए भारतीयों का मन जीत सकने की योग्यता रखने वालों में ये दो पहली पांत में खड़े किये जा सकते थे। मंत्री के लिए साधारण अंग्रेजी जानने की जरूरत तो थी ही। इनमें से स्वर्गीय आदमजी मियां खां को मंत्री-पद देने की सिफारिश मैंने कांग्रेस से की और वह मंजूर हुई। अनुभव से यह चुनाव बहुत अच्छा साबित हुआ। अपनी लगन, उदारता, मीठे स्वभाव और विवेक से सेठ आदमजी मियां खां ने सबको संतोष दिया। सबको विश्वास हो गया कि मंत्री का काम करने के लिए वकील-बैरिस्टर की या डिग्रीधारी बड़े अंग्रेजीदां की जरूरत नहीं है।

सन् 1896 के मध्य में मैं देश जाने के लिए 'पोंगोला' स्टीमर में सवार हुआ। यह स्टीमर कलकत्ते जाने वाला था।

स्टीमर में मुसाफिर बहुत कम थे। दो अंग्रेज अफसर थे जिनसे मेरा साथ हो गया। एक के साथ रोज एक घंटा शतरंज खेलता था। स्टीमर के डॉक्टर ने मुझे एक 'तमिल-शिक्षक' (तमिल सिखाने वाली) पुस्तक दी। मैंने उसका अभ्यास आरम्भ कर दिया।

नेटाल में मैंने देखा कि मुसलमानों से अधिक निकट का सम्बन्ध जोड़ने के लिए मुझे उर्दू सीखने की जरूरत है और मद्रासी भाइयों से हिलमिल सकने के लिए तमिल सीखने की।

उर्दू के लिए उक्त अंग्रेज मित्र के अनुरोध से मैंने उनके यात्रियों में से एक अच्छा मुंशी ढूंढ़ निकाला। हम दोनों की पढ़ाई ठीक चलने लगी। अंग्रेज अफसर धारणा शक्ति में मुझसे बढ़ा हुआ था। उर्दू अक्षर पहचानने में मुझे कठिनाई पड़ती थी, पर वह तो एक बार जिस शब्द को देख लेता उसे कभी भूलता ही नहीं था। मैं अधिक श्रम करके भी उसकी बराबरी पर न पहुंच सका।

तमिल का अभ्यास भी ठीक चलता रहा। उसमें किसी से मदद न मिल सकती थी। पुस्तक भी इस रीति से लिखी गई थी कि मदद की जरूरत ज्यादा न पड़े।

मुझे आशा थी कि यह पढ़ाई देश पहुंचने के बाद भी जारी रख सकूंगा। पर वह तो नहीं हो पाया। सन् 1893 के बाद का मेरा वाचन और अध्ययन मुख्यतः जेल में ही हुआ। इन दोनों भाषाओं का ज्ञान मैंने बढ़ाया अवश्य, पर वह सब जेल में ही। तमिल का दक्षिण अफ्रीका की जेल में और उर्दू का यरवदा में। पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तमिल बोलना कभी न सीख पाया, पढ़ना ठीक तौर से आ गया था; पर अभ्यास के अभाव में वह भी भूलता जा रहा है। यह कमी मुझे अब तक सालती है। दक्षिण अफ्रीका के मद्रासी भाइयों से मैंने भरपूर प्रेम पाया है। उसकी याद मुझे हरदम बनी रहती है। उनकी श्रद्धा, उनका परिश्रम, उनमें से बहुतों का निःस्वार्थ त्याग जब कभी किसी भी तमिल-तेलुगु को देखता हूं तो याद आए बिना नहीं रहता। और ये सभी लगभग निरक्षर थे। जैसे पुरूष थे वैसी ही स्त्रियां थीं। दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई ही निरक्षरों की थी। उसके योद्धा भी निरक्षर थे। वह गरीबों की थी, और गरीब उसमें जूझे।

इन भोले और भले भारतीयों का मन जीतने में भाषा की बाधा मुझे कभी न हुई। उन्हें टूटी-फूटी हिंदुस्तानी और टूटी-फूटी अंग्रेजी आती थी, इससे हमारी गाड़ी चल जाती थी। पर मैं तो इस प्रेम के बदले में तमिल-तेलुगु सीखना चाहता था। तमिल तो कुछ सीख ली। तेलुगु सीखने का प्रयास हिंदुस्तान में किया, पर वह ककहरे से आगे न बढ़ सका।

मैं तमिल-तेलुगु तो न पढ़ पाया और अब शायद ही हो सके। इसीलिए यह आशा रखता हूं कि ये द्राविड़ भाषा-भाषी हिंदुस्तानी सीखेंगे। दक्षिण अफ्रीका के द्राविड़ 'मद्रासी' तो थोड़ी-बहुत हिंदी अवश्य बोल लेते हैं। कठिनाई उन्हीं को होती है जो अंग्रेजी पढ़े हुए हैं। मानो अंग्रेजी का ज्ञान हमारे लिए अपनी भाषाएं सीखने में बाधा रूप हो!

पर यह तो विषयांतर हो गया। हमें अपनी यात्रा की कहानी पूरी करनी चाहिए।

अभी 'पोंगोला' के कप्तान का परिचय कराना बाकी है। हममें मित्रता हो गई थी। यह भला कप्तान प्लीमथ ब्रदर सम्प्रदाय का था। इसलिए हममें जहाजरानी की बनिस्बत अध्यात्म विद्या की ही बातें अधिक होतीं। कप्तान नीति और धर्मश्रद्धा को दो चीजें मानता था। उसकी दृष्टि से बाइबिल की शिक्षा बच्चों का खेल था। उसकी खूबी ही उसकी सरलता थी। बालक, स्त्री, पुरूष सब ईसा को और उनके बलिदान को मान लें तो उनके पाप धुल जाएं। इस प्लीमथ ब्रदर ने मेरा प्रिटोरिया के ब्रदर का परिचय ताजा कर दिया। जिसमें नीति की रखवाली करनी पड़े, वह धर्म उसे नीरस लगा। इस मित्रता और अध्यात्म-चर्चा का मूल था; मेरा निरामिषाहार। मैं मांस क्यों नहीं खाता? गोमांस में क्या दोष है? पेड़-पौधों की भांति पशु-पक्षियों को भी ईश्वर ने क्या मनुष्य के सुख-भोग और आहार के लिए नहीं सिरजा है? निस्सन्देह, यह प्रश्नमाला आध्यात्मिक चर्चा में पहुंचा देती थी।

हम एक-दूसरे को समझा न सके। मैं अपने इस विचार में दृढ़ था कि धर्म और नीति एक ही वस्तु की वाचक हैं। कप्तान को अपने मत के सत्य होने में तनिक भी शंका न थी।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौबीसवें दिन यह आनंददायक यात्रा पूरी हुई और हुगली का सौंदर्य निरखता हुआ मैं कलकत्ते में उतरा। उसी दिन मैंने बंबई जाने का टिकट कटाया।

25 : हिंदुस्तान में

कलकत्ते से बंबई जाते हुए प्रयाग बीच में पड़ता था। वहां ट्रेन 45 मिनट रुकती थी। इसी बीच मैंने शहर का एक चक्कर लगा, आने की सोची। मुझे किसी अंग्रेज दवा बेचने वाले के यहां से दवा भी लेनी थी। दवाफरोश ऊंघता हुआ बाहर निकला। दवा देने में काफी देर लगा दी। मैं स्टेशन पहुंचा तो गाड़ी चलती दिखाई दी। स्टेशनमास्टर भला आदमी था। उसने मेरे लिए गाड़ी एक मिनट रोकी थी, पर मुझे वापस आते न देख मेरा सामान उतरवा लेने की सावधानी उसने रखी।

मैं केलनर के होटल में ठहरा और वहीं से अपना काम शुरू करने का निश्चय किया। प्रयाग के 'पायोनियर' पत्र की ख्याति मैंने सुन रखी थी। वह जनता की आकांक्षाओं का विरोधी है, यह बात भी मुझे मालूम थी। मेरा खयाल है कि उस समय मि. चेजनी (छोटे) सम्पादक थे। मुझे तो सब पक्षवालों से मिलकर सबकी सहायता लेनी थी, अतः मि. चेजनी को मैंने मुलाकात के लिए पत्र लिखा। ट्रेन छूट जाने की बात बताकर यह लिख दिया कि अगले ही दिन मुझे प्रयाग चले जाना है। उत्तर में उन्होंने मुझे तुरंत मिलने के लिए बुलाया। मुझे प्रसन्नता हुई। उन्होंने मेरी बात गौर से सुनी। कहा कि आप (मैं) कुछ लिखें तो मैं तुरंत उस पर टिप्पणी लिखूंगा। साथ ही यह भी कहा, "लेकिन मैं आपसे यह नहीं कह सकता कि मैं आपकी सभी बातों का समर्थन करूंगा। उपनिवेशियों (दक्षिण अफ्रीका के गोरों) का दृष्टि बिंदु भी तो हमें समझना और देखना होगा।"

मैंने उत्तर दिया, "आप इस प्रश्न का अध्ययन और चर्चा करेंगे इतना ही मेरे लिए काफी है। मैं शुद्ध न्याय के सिवा न कुछ मांगता हूं, न कुछ चाहता हूं।"

बाकी का दिन प्रयाग के भव्य त्रिवेणी संगम के दर्शन और अपने ऊपर ले रखे काम के बारे में सोचने-विचारने में बिताया।

इस अनसोची मुलाकात ने मुझ पर नेटाल में हुए हमले का बीज बोया।

बंबई में बिना रुके सीधा राजकोट गया और एक पुस्तिका लिखने की तैयारी में लग गया। उसे लिखने और छपाने में लगभग एक महीना लग गया। इसका मुख पृष्ठ हरा था, इससे बाद को वह 'हरी पोथी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसमें दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का चित्रण मैंने जान-बूझकर हलका रखा था। नेटाल में लिखी हुई दो पुस्तिकाओं में, जिनकी चर्चा पहले कर चुका हूं, मैंने जैसी भाषा लिखी थी, उससे यहां नरम भाषा से काम लिया। कारण यह कि मैं जानता था कि छोटा दुःख भी दूर से देखने पर बड़ा दिखाई देता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरी पुस्तिका की दस हजार प्रतियां छपवाकर मैंने हिंदुस्तान के अखबारों और सब दलों के प्रमुख पुरूषों के पास भेजीं। 'पायोनियर' में उस पर सबसे पहले लेख निकला। उसका सारांश विलायत गया और फिर इस सारांश का सारांश रायटर के द्वारा नेटाल गया। यह तार तो तीन सतर का था। नेटाल में हिंदुस्तानियों के साथ होने वाले व्यवहार का मैंने जो चित्र खींचा था, उसका यह 'लघु संस्करण' था। वह मेरे शब्दों में न था। उसका क्या असर हुआ, इस पर पीछे विचार करूंगा। धीरे-धीरे सब प्रमुख पत्रों में इस प्रश्न की विस्तृत चर्चा हुई।

डाक से भेजने के लिए इस पुस्तिका के पैक़ेट आदि बनवाना टेढ़ा और पैसा देकर कराएं तो खर्चे का काम था। मैंने आसान उपाय ढूंढ़ निकाला। पास-पड़ोस के सब लड़कों को इकट्ठा किया और उनसे सबेरे के दो-तीन घंटों में जितना दे सकें उतना समय मांगा। लड़कों ने खुशी से इतनी सेवा कबूल कर ली। अपनी ओर से मैंने उन्हें अपने पास इकट्ठे काम में लाए हुए डाक के टिकट और आशीर्वाद देने की बात कही। लड़कों ने हँसते-खेलते मेरा काम पूरा कर दिया। निरे बच्चों को इस तरह स्वयं सेवक बनाने का मेरा यह पहला ही प्रयोग था। इन बालकों में से दो आज मेरे साथी हैं।

इसी बीच बंबई में पहली बार प्लेग का प्रकोप हुआ। चारों ओर घबराहट फैली हुई थी। राजकोट में भी प्लेग फैलने का डर था। मैंने सोचा कि स्वास्थ्य विभाग में काम कर सकता हूं। मैंने लिखा कि अपनी सेवा राज्य को अर्पण करने के लिए तैयार हूं। राज्य ने जो कमेटी बनाई उसमें मुझे ले लिया। पाखानों की सफाई पर मैंने जोर दिया और कमेटी ने तै किया कि गली-गली जाकर पाखानों की जांच की जाय। गरीब लोगों ने अपने पाखानों की जांच करने देने में तनिक भी आनाकानी नहीं की। इतना ही नहीं, जो सुधार उन्हें बतलाये गए वे उन्होंने कर लिए। पर जब हम राजदरबार वालों, 'बड़े आदमियों' के घर जांचने निकले तो कितनी ही जगह तो हमें पाखाने देखने की इजाजत भी न मिलती थी। सुधार की तो बात ही क्या? हमारा सामान्य अनुभव यह रहा कि धनिक वर्ग के पाखाने अधिक गंदे थे। उनमें अंधेरा, बदबू और बेहद गंदगी थी। खुड्ढियों पर कीड़े बजबजाते थे। उन्हें काम में लाना, रोज जीते-जी नरक में प्रवेश करने जैसा था। जो सुधार हमने सुझाए वे बहुत ही साधारण थे। मैला जमीन पर न गिरने देकर कूड़े में गिराएं। पानी को भी जमीन में जज्ब न होने देकर कूड़े में गिराने का उपाय किया जाए। खुड्ढी और भंगी के आने की जगह के बीच में दो दीवार रखी जाती हैं वह तोड़ दी जाए, जिससे सारा पाखाना भंगी अच्छी तरह साफ कर सके। पाखाने कुछ बड़े हो जाएं और उनमें

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हवा-रोशनी जा सके। बड़े आदमियों ने इन सुधारों को लाने में बड़े एतराज उठाए और अंत में पूरे नहीं किए।

कमेटी को भंगियों के मुहल्ले में जाना तो था ही। कमेटी के सदस्यों में से केवल एक सदस्य मेरे साथ वहां जाने को तैयार हुए। भंगियों की बस्ती में जाना और वह भी पाखाने की जांच कराने के लिए? पर मुझे तो भंगियों का मुहल्ला देखकर हर्षजनक आश्चर्य हुआ। भंगी-मुहल्ले में जाने का मेरे जीवन में तो यह पहला ही मौका था। भंगी भाई-बहनों को हमें देखकर आश्चर्य हुआ। हमने उनके पाखाने देखने चाहे। वे बोले:

"हमारे यहां पाखाने कहां? हमारे पाखाने तो जंगल में हैं। पाखाने तो आप बड़े आदमियों के यहां होते हैं।"

मैंने पूछा, "तो अपने घर हमें देखने दोगे?"

"आइए न, भाईसाहब! जहां आपका जी चाहे जाइए। यही तो हमारे घर हैं।"

मैं अंदर गया और घर-आंगन दोनों की सफाई देखकर खुश हो गया। घर के भीतर सब लिपा-पुता देखा, आंगन बुहारा-झाड़ा और जो थोड़े से बर्तन-भांडे थे, सब साफ और चमचमाते हुए।

इस मुहल्ले में बीमारी फैलने का डर मुझे नहीं दिखाई दिया।

एक पाखाने का जिक्र किए बिना नहीं रह सकता। हर घर में नाली तो थी ही। उसमें पानी भी गिराया जाता और पेशाब भी किया जाता। अतः ऐसा कमरा शायद ही मिलता जिसमें बदबू न हो। पर एक घर में तो सोने के कमरे में मोरी और पाखाना दोनों देखे, और वह सारा मैला नाली की राह नीचे उतरता था। इस कोठरी में खड़ा रहना कठिन था। घर का मालिक उसमें कैसे सो सकता था, इसका विचार पाठक ही करें।

कमेटी ने हवेली (वैष्णव-मंदिर) का मुआयना भी किया। हवेली के मुखिया जी से गांधी-कुटुम्ब का प्रेम का सम्बन्ध था। मुखिया जी ने हवेली देखने देना और उसमें जितना सुधार हो सकता था उतना करा देना मंजूर किया। उन्होंने खुद वह हिस्सा कभी देखा न था। हवेली की रोज की जूठन और पत्तलें पिछवाड़े की दीवार के ऊपर से फेंक दी जाती थीं और वह हिस्सा चील-कौओं का अड्डा बन गया था। पाखाने तो गंदे थे ही। मुखिया जी ने कितना सुधार किया यह मैं न देख सका। हवेली की गंदगी देखकर दुःख तो हुआ ही। यदि हवेली को हम पवित्र स्थान-देवस्थान-समझें, तो वहां तो स्वास्थ्य-नियमों का पूर्ण पालन होने की आशा रखी जानी चाहिए। स्मृतिकारों ने अंतर्बाह्य शौच पर काफी जोर दिया है, यह बात उस समय भी मेरे ध्यान से बाहर न थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

26 : 'राजनिष्ठा और शुश्रूषा'

शुद्ध राजनिष्ठा मैंने जितनी अपने अंदर पाई है उतनी शायद ही दूसरे में देखी हो। इस राजनिष्ठा का मूल मुझे सत्य पर अपने स्वाभाविक प्रेम में दिखाई देता है। राजनिष्ठा या अन्य किसी वस्तु का स्वांग मुझसे कभी न भरा गया। नेटाल में जब मैं किसी सभा में जाता तो वहां 'गॉड सेव दि किंग' (खुदा बादशाह को सलामत रखे) अवश्य गाया जाता। मैंने सोचा, मुझे भी उसे गाना चाहिए। ब्रिटिश राजनीति में दोष तो मैं उस समय भी देखता था, फिर भी कुल मिलाकर मुझे वह नीति अच्छी लगती थी। मैं उस समय मानता था कि ब्रिटिश शासन और शासकों का झुकाव समष्टि रूप से प्रजा पोषण की ओर है।

दक्षिण अफ्रीका में उलटी नीति दिखाई देती थी। वर्गद्वेष के दर्शन होते थे। मैं मानता था कि यह क्षणिक और स्थानिक है। अत: राजनिष्ठा में मैं अंग्रेजों से भी आगे बढ़ जाना चाहता था। मैंने लगन के साथ श्रम करके अंग्रेजों के राष्ट्र-गीत 'गॉड सेव दि किंग' की लय सीख ली। वह सभाओं में गाया जाता तो मैं अपना सुर उसमें मिला देता और जो-जो अवसर आडंबर बिना राजभक्ति-प्रदर्शन के आते उनमें मैं शामिल होता था।

इस राजनिष्ठा को जिंदगी भर में मैंने भुलाया कभी नहीं। इससे निजी लाभ उठाने का मुझे कभी खयाल तक न हुआ। राजभक्ति को ऋण समझकर मैंने सदा उसे अदा किया।

मैं जब हिंदुस्तान आया तब महारानी विक्टोरिया की डायमंड जुबली (हीरक-जंयती)की तैयारियां हो रही थीं। राजकोट में भी एक समिति बनी। मुझे उसका निमंत्रण मिला और मैंने स्वीकार किया। पर मुझे उसमें दंभ की गंध मिली। मैंने देखा कि उसमें दिखावा बहुत होता है। यह देखकर मुझे दु:ख हुआ। समिति में रहूं या न रहूं, यह प्रश्न मेरे सामने उपस्थित हुआ। अंत में अपने कर्त्तव्य का पालन कर संतोष कर लेने का निश्चय किया।

एक सुझाव यह था कि पेड़ लगाए जाएं। उसमें मुझे ढोंग दिखाई दिया। जान पड़ा वृक्षारोपण साहबों को महज खुश करने के लिए हो रहा है। मैंने लोगों को यह समझाने की कोशिश की कि पेड़ लगाना कोई फर्ज नहीं, एक सलाहभर है। लगाना हो तो दिल लगाकर लगाना चाहिए, नहीं तो बिलकुल न लगाना चाहिए। मुझे कुछ ऐसा खयाल है कि मैं यह कहता तो लोग मेरी बात को हँसी में उड़ा देते थे। अपने हिस्से का पेड़ मैंने ठीक तौर से लगाया और उसे सींचा-सेया, इतना मुझे याद है।

'गॉड सेव दि किंग' मैं कुटुम्ब में बच्चों को सिखाता था। मुझे याद है कि मैंने उसे ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थियों को सिखाया था। पर वह यही अवसर था

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
या सातवें महीने के सत्याग्रह का यह ठीक याद नहीं है। आगे चलकर मुझे यह गीत गाना खटका। अहिंसा विषयक मेरे विचार ज्यों-ज्यों दृढ़ होते गये, त्यों-त्यों अपनी वाणी और विचारों की मैं अधिक चौकसी रखने लगा। इस गीत में दो पंक्तियां (इस आशय की) ये भी हैः

उसके शत्रुओं का नाश कर,
उनकी चालों को विफल कर।

इनका गाना मुझे खटका। अपने मित्र डॉ. बूथ को मैंने अपनी कठिनाई बताई। उन्होंने भी स्वीकार किया कि यह गाना अहिंसावादी को नहीं फबता। जिन्हें हम दुश्मन कह रहे हैं वह दगा करेंगे ही, यह कैसे मान लिया जाए? यह कैसे कहा जा सकता है कि जिसे हम अपना शत्रु मान रहे हैं वह बुरा ही होगा? ईश्वर से तो न्याय ही मांगा जा सकता है। डॉ. बूथ ने इस दलील का औचित्य स्वीकार किया। उन्होंने समाज में गाने के लिए नया ही गीत रचा। डॉ. बूथ का अधिक परिचय आगे कराऊंगा।

राजनिष्ठा की तरह ही शुश्रूषा की वृत्ति भी मुझमें स्वाभाविक थी। यह कह सकता हूं कि बीमार की, चाहे वह अपना हो या पराया, सेवा करने का मुझे शौक था। राजकोट में मेरा दक्षिण अफ्रीका का काम चल रहा था, इस बीच मैं एक बार बंबई आया। मुख्य-मुख्य नगरों में सभाएं करके लोकमत को विशेष रूप से तैयार करने का मेरा इरादा था। इसी गरज से मैं वहां गया। पहले तो न्यायमूर्ति रानडे से मिला। उन्होंने मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनी और मुझे सर फिरोजशाह मेहता से मिलने की सलाह दी। इसके बाद मैं जस्टिस बदरूद्दीन तैयबजी से मिला। उन्होंने भी मेरी बात सुनकर वही सलाह दी, "मैं और जस्टिस रानडे आपकी बहुत थोड़ी रहनुमाई कर सकते हैं। हमारी स्थिति तो आप जानते ही हैं। हम सार्वजनिक कार्यों में योग नहीं दे सकते। पर हमारी हमदर्दी तो आपके साथ है ही। सच्चे मार्गदर्शक तो सर फिरोजशाह हैं।"

सर फिरोजशाह से तो मैं मिलने को था ही। पर इन दो बुजुर्गों से उनकी सलाह के अनुसार चलने की बात सुनकर मुझे अंदाजा हुआ कि सर फिरोजशाह का जनता पर कितना अधिकतर था।

सर फिरोजशाह से मिला। मैं उनके तेज से चकाचौंध हो जाने को तो तैयार था ही। उनके नाम के साथ जोड़े जाने वाले विशेषणों को सुन ही चुका था। 'बंबई के शेर', 'बंबई के बेताज बादशाह' से मुझे मिलना था। पर बादशाह ने मुझे डराया नहीं। बाप जिस प्रेम से अपने जवान बेटे से मिलता है वैसे ही वह मिले। मुझे उनसे उनके 'चेंबर' में मिलना था। उनके पास उनके अनुयायियों का जमघट तो लगा ही रहता था। वाचा थे, कामा थे। इनसे उन्होंने मेरा परिचय कराया। वाचा का नाम मैं सुन ही चुका था। यह फिरोजशाह के दाहिने हाथ माने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाते थे। वीरचंद गांधी ने अंकशास्त्री (स्टेटिसटीशियन) के रूप में मुझे उनका परिचय दिया था। उन्होंने कहा, "गांधी, हम फिर मिलेंगे।"

इन सबमें मुश्किल से दो मिनट लगे होंगे। सर फिरोजशाह ने मेरी बात सुन ली। न्यायमूर्ति रानडे और तैयबजी से मिलने की बात भी मैंने उन्हें बतला दी। "गांधी, तुम्हारे लिए मुझे आम सभा करनी होगी। तुम्हें मदद देनी ही चाहिए।" अपने मुहर्रिर की ओर फिरकर उसे सभा का दिन नियत करने को कहा। दिन तै कर और सभा से एक दिन पहले मिलने की आज्ञा देकर मुझे विदा किया। मैं निर्भय होकर खुश-खुश घर लौटा।

बंबई की इस यात्रा में मैं अपने बहनोई से, जो वहीं रहते थे, मिलने गया। वह बीमार थे। वह गरीब स्थिति के आदमी थे। बहन से अकेले उनकी सेवा-टहल न हो पाती थी। बीमारी कड़ी थी। मैंने उन्हें अपने साथ राजकोट चलने को कहा। वह राजी हो गए। बहन-बहनोई को लेकर मैं राजकोट आया। जितना सोचता था उससे बीमारी ज्यादा बढ़ गई। मैंने उन्हें अपने कमरे में रखा। सारा दिन उनके पास ही रहता। रात में भी जागना पड़ता। उनकी सेवा करते हुए दक्षिण अफ्रीका का काम मैं कर रहा था। बहनोई का स्वर्गवास हो गया। पर उनके आखिरी दिनों में उनकी सेवा करने का अवसर मुझे मिला, इससे मुझे बड़ा संतोष हुआ।

रोगी की सेवा के मेरे इस शौक ने आगे चलकर विशाल रूप धारण किया। यहां तक कि उसे करने में मैं अपना काम छोड़ देता, अपनी पत्नी और सारे घर को लगा देता। इस वृत्ति को मैं शौक कहता हूं, इसलिए कि मैंने देखा कि यह वृत्ति जब आनंददायक हो जाती है तभी निभ सकती है। खींचतानकर, दिखावे या लोकलाज की खातिर की जाए तो यह सेवा आदमी को कुचल देती है और उसे करते हुए उसका जीवन सूख जाता है। जिस सेवा में आनंद नहीं मिलता वह न तो सेवक को फलती है और न सेव्य को भाती है। जिस सेवा में आनंद मिलता है उस सेवा के सामने ऐश-आराम या पैसा कमाना इत्यादि तुच्छ लगते हैं।

27 : बंबई में सभा

अपने बहनोई के देहांत के दूसरे ही दिन मुझे बंबई की सभा के लिए जाना था। सार्वजनिक सभा के लिए भाषण सोच सकूं इतना वक्त मुझे न मिला था। जागरण की थकावट मालूम हो रही थी। आवाज भारी हो गई थी। ईश्वर ज्यों-त्यों बेड़ा पार करेगा यह सोचते हुए मैं बंबई गया। भाषण लिखने की बात तो मैंने सपने में भी न सोची थी।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा की तारीख के पहले दिन शाम को पाँच बजे आज्ञानुसार मैं सर फिरोजशाह के दफ्तर में हाजिर हुआ।

उन्होंने पूछा, "गांधी, तुम्हारा भाषण तैयार है?" मैंने डरते-डरते उत्तर दिया, "जी नहीं, मैंने तो जबानी ही बोलने की बात सोच रखी है।"

"बंबई में यह नहीं चलेगा। यहां रिपोर्टिंग खराब है। इस सभा का कुछ फायदा हमें उठाना हो तो तुम्हारा भाषण लिखा हुआ ही होना चाहिए और वह रातों-रात छप जाना चाहिए। रात को भाषण लिख सकोगे न?"

मैं घबराया। पर लिखने की कोशिश करने की हामी भरी।

बंबई के सिंह ने कहा, "मुंशीजी, तुम्हारे पास भाषण लेने कब जाएं?"

मैंने जवाब दिया-"ग्यारह बजे।"

सर फिरोजशाह ने अपने मुहर्रिर को उस वक्त भाषण लेकर रातों-रात छपा लेने का हुक्म दिया और मुझे विदा किया।

दूसरे दिन मैं सभा में गया। अब मैंने समझा कि भाषण लिखने की ताकीद करने में कितनी अक्लमंदी थी। फरामजी कावसजी इंस्टीट्यूट-हॉल में सभा थी। मैंने सुन रखा था कि सर फिरोजशाह जहां बोलने वाले हों, उस सभा में बड़े होने को भी जगह नहीं मिलती। विद्यार्थी-समुदाय ऐसी सभाओं में खासतौर से रस लेता है।

ऐसी सभा का यह मेरा पहला अनुभव था। मुझे निश्चय हो गया कि मेरी आवाज कोई सुन न सकेगा। कांपते-कांपते मैंने भाषण पढ़ना शुरू किया। सर फिरोजशाह मुझे बढ़ावा देते जाते थे, 'जरा और जोर से' कहते जाते थे। मेरा खयाल है कि इस प्रोत्साहन से मेरी आवाज और धीमी पड़ती जाती थी।

पुराने मित्र केशवराव देशपांडे मेरी मदद को बढ़े। मैंने भाषण उनके हाथ में दे दिया। उनकी आवाज तो अच्छी ही थी, पर श्रोता क्यों सुनने लगे। 'वाचा' 'वाचा' की पुकार से हॉल गूंज उठा। वाचा उठे। उन्होंने देशपांडे के हाथ से कागज ले लिया। मेरा काम हो गया। सभा में तुरंत शांति हो गई और अथ से इति तक सारा भाषण सभा ने सुना। रिवाज के मुताबिक जहां चाहिए था वहां 'शेम-शेम' ('धिक्कार-धिक्कार') और करतलध्वनि भी होती रही। मुझे खुशी हुई।

सर फिरोजशाह को भाषण पसंद आया। मुझे ऐसा संतोष हुआ मानो गंगा नहा लिया।

इस सभा के फलस्वरूप देशपांडे और एक पारसी सज्जन पिघले। पारसी सज्जन आज एक सरकारी पद पर हैं, इसलिए उनका नाम प्रकट करते डरता हूं। उनके निश्चय को जज खुरदेशजी ने डांवाडोल किया और डिगाने का निमित्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक पारसी बहन बनी। ब्याह करें या दक्षिण अफ्रीका जाएं? यह समस्या उनके सामने आई। उन्होंने विवाह करना अधिक श्रेयस्कर समझा। पर इन पारसी मित्र की ओर से पारसी रुस्तमजी ने प्रायश्चित किया और पारसी बहन के कर्म का प्रायश्चित एक दूसरी पारसी बहन सेविका का काम करते हुए खादी के पीछे वैराग्य लेकर कर रही हैं। इसलिए इस दंपति को मैंने माफी दे दी है। देशपांडे को ब्याह का लोभ न था। पर वह न आ सके। उसका प्रायश्चित्त तो वह खुद ही कर रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका को वापस जाते हुए जंजीबार में तैयबजी नाम के एक सज्जन मिले थे। उन्होंने भी आने की उम्मीद दिलाई थी। पर वह दक्षिण अफ्रीका क्यों आने लगे? उनके न आने का बदला अब्बास तैयबजी चुका रहे हैं। पर बैरिस्टर मित्रों को दक्षिण अफ्रीका आने को ललचाने में मेरे प्रयत्न इस प्रकार निष्फल हो गए।

यहां मुझे पेस्तनजी पादशाह की याद आ रही है। उनके साथ मेरा विलायत से ही स्नेह का सम्बन्ध हो गया था। उनसे मेरा परिचय लंदन के एक अन्नाहारी भोजनालय में हुआ था। उनके भाई बरजोरजी की एक सनकी के रूप में प्रसिद्धि भी मैंने सुन रखी थी, पर उनसे मिला नहीं था। मित्र मंडली का कहना था कि वह 'सनकी' है। घोड़े पर दया करके ट्राम में नहीं बैठते, शतावधानी की जैसी स्मरणशक्ति होते हुए भी डिग्री नहीं लेते; तबीयत ऐसी आजाद थी कि किसी के दबाव में आने वाले न थे और पारसी होते हुए निरामिष भोजी थे। पेस्तनजी बिलकुल उस ढंग के तो नहीं माने जाते थे, पर उनकी बुद्धिमानी की प्रसिद्धि थी। यह शोहरत विलायत में भी थी। पर हमारे सम्बन्ध की जड़ तो उनका अन्नाहार था। उनके बुद्धि-वैभव की बराबरी करना मेरी शक्ति के बाहर था।

बंबई में मैंने पेस्तनजी को ढूंढ़ निकाला। वह हाईकोर्ट में सर दफ्तर (प्रोथोनोटरी) थे। जब मैं मिला उस समय एक वृहद् गुजराती शब्दकोष की तैयारी में लगे हुए थे। दक्षिण अफ्रीका के काम में मदद मांगने में एक भी मित्र को मैंने छोड़ा नहीं था। पेस्तनजी पादशाह ने तो मुझे भी दक्षिण अफ्रीका न जाने की सलाह दी। "मुझसे तुम्हें मदद तो क्या मिलेगी, मुझे तो तुम्हारा दक्षिण अफ्रीका वापस जाना ही पसंद नहीं है। यहां अपने देश में ही क्या कम काम है? देखिए, अपनी भाषा की ही सेवा का काम क्या थोड़ा है? मुझे विज्ञान की शब्दावली के पर्याय ढूंढ़ने हैं। यह तो एक क्षेत्र है। देश की गरीबी का विचार कीजिए। दक्षिण अफ्रीका में हमारे भाइयों पर मुसीबत जरूर है, पर उसमें आप जैसे आदमी का खप जाना मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। हम यदि यहीं राज्यशक्ति अपने हाथ में कर लें तो उनकी मदद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अपने आप हो जाएगी। आपको मैं नहीं समझा सकता पर आप-जैसे अन्य सेवकों को आपके साथ कराने में मैं मदद तो नहीं दूंगा।"

मुझे ये वचन तो रुचे नहीं, पर पेस्तनजी पादशाह के लिए मेरे मन में आदर बढ़ा। उनका देशप्रेम, भाषाप्रेम देखकर मैं मुग्ध हो गया। हमारे बीच की प्रेम गांठ इस प्रसंग से और पक्की हो गई। उनके दृष्टिबिंदु को मैं अच्छी तरह समझ सका। मुझे तो जान पड़ा कि उनकी दृष्टि से भी दक्षिण अफ्रीका का काम छोड़ने के बजाए मुझे उसमें और जोर से लगे रहना चाहिए। देशभक्त को देशसेवा के एक भी अंग की, जहां तक हो सके उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और मेरे लिए तो गीता का यह श्लोक तैयार ही था-

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

[3135]

"चढ़त पराए अच्छे धर्म से उतरना स्वधर्म अच्छा है। स्वधर्म में मौत भी अच्छी है, परधर्म भयावह है।"

28 : पूना में

सर फिरोजशाह ने मेरा रास्ता आसान कर दिया। बंबई से मैं पूना गया। मुझे पता था कि पूना में दो दल हैं। मुझे तो सबकी मदद चाहिए थी। लोकमान्य से मिला। उन्होंने कहा:

"सब पक्षों की सहायता लेने का आपका विचार बिल्कुल ठीक है। आपके मामले में कोई मतभेद हो ही नहीं सकता। पर आपके लिए तटस्थ सभापति चाहिए। आप प्रो. भंडारकर से मिलें। वह आजकल किसी आन्दोलन में शामिल नहीं होते। पर शायद इस काम के लिए तैयार हो जाएं। उनसे मिलकर मुझे सूचित करें कि क्या हुआ। मैं आपकी पूरी सहायता करना चाहता हूं। आप प्रोफेसर गोखले से तो मिलेंगे ही। मेरे पास जब आना हो निस्संकोच आ सकते हैं।"

लोकमान्य का यह मुझे प्रथम दर्शन था। उनकी लोकप्रियता का रहस्य तुरन्त मेरी समझ में आ गया।

यहां से मैं गोखले के पास गया। वह फर्ग्यूसन कॉलेज में थे। मुझ से बड़े प्रेम से मिले और मुझे अपना लिया। उनका भी मेरा पहला ही परिचय था। पर ऐसा लगा जैसे हम पहले मिल चुके हों। सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय-जैसे और लोकमान्य समुद्र के समान लगे। गोखले गंगा-से जान पड़े। उसमें मैं नहा सकता हूं। हिमालय पर चढ़ा नहीं जा सकता। समुद्र में डूबने का डर रहता है। पर गंगा की गोद में तो क्रीड़ा की जा सकती है, उसमें डोंगी खेई जा सकती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। गोखले ने बातचीत से मेरी जांच की, जैसे कोई विद्यार्थी स्कूल में भर्ती होने जाए तो की जाती है। किस-किस से और कैसे मिलूं यह बताया, और मेरा भाषण देखने को मांगा। मुझे कॉलेज की व्यवस्था दिखाई-समझाई। जब जरूरत हो मुझसे फिर मिलना और डॉ. भंडारकर का जवाब बतलाना, यह कहकर मुझे विदा किया। राजनैतिक क्षेत्र में जो स्थान गोखले ने जीवित अवस्था में ही मेरे हृदय में बनाया और आज स्वर्गवासी हो जाने के बाद भी जिस पर वह विराज रहे हैं, उस स्थान पर अधिकारी कोई दूसरा न हो सका।

रामकृष्ण भंडारकर मुझसे वैसे मिले जैसे बाप बेटे को भेंटता है। जब मैं उनके यहां गया वह दोपहर का वक्त था। ऐसे समय भी मैं अपना काम कर रहा था यह बात ही इस परिश्रमी पंडित को प्यारी लगी और तटस्थ सभापति सम्बन्धी मेरा आग्रह सुनकर "दैट्स इट, दैट्स इट"-'यही ठीक है, यही ठीक है' के उद्‌गार उनके मुंह से अनायास निकल गए।

बातचीत के अंत में वह बोले, "तुम चाहे जिससे पूछो वह तुम्हें बतलाएगा कि मैं फिलहाल किसी राजनैतिक काम में हिस्सा नहीं लेता हूं। पर तुम्हें मैं विमुख नहीं लौटा सकता। तुम्हारा मामला इतना मजबूत और तुम्हारा उद्यम इतना स्तुत्य है कि मुझसे तुम्हारी सभा में आने से इनकार नहीं किया जा सकता। तुमने अच्छा किया कि श्री तिलक और श्री गोखले से मिल लिए। उन लोगों से कहिएगा कि मैं दोनों दलों की बुलाई सभा में खुशी से आऊंगा और सभापति-पद स्वीकार करूंगा। समय के सम्बन्ध में मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं है। दोनों पक्षों को जो समय अनुकूल होगा, मैं उसके अनुकूल हो जाऊंगा" यह कहकर मुझे धन्यवाद और आशीर्वाद दे विदा किया।

बिना किसी शोर-शराबे के, बिना किसी आडंबर के एक मामूली मकान में पूना की इस विद्वान और त्यागी मंडल ने सभा की और मुझे पूर्ण प्रोत्साहन देकर विदा किया।

यहां से मैं मद्रास गया। मद्रास तो पागल हो उठा। बालासुंदरम की घटना का सभा पर गहरा असर पड़ा। मेरा भाषण मेरे हिसाब से लम्बा था। पूरा छपा हुआ था। पर शब्द-शब्द सभा ने ध्यानपूर्वक सुना। सभा के अंत में पूर्वोक्त 'हरी पुस्तिका' की लूट हो गई। मद्रास में संशोधन और परिवर्द्धन के बाद उसकी दूसरी आवृत्ति दस हजार की छपवाई। उसका बहुत-सा भाग निकल गया। पर मैंने देखा कि दस हजार की जरूरत न थी। उत्साह का अंदाजा मैंने अधिक क़र लिया था। मेरे भाषण का असर तो अंग्रेजी जानने वाले वर्ग पर ही पड़ा था। उस वर्ग के लिए अकेले मद्रास में दस हजार प्रतियों की जरूरत नहीं हो सकती थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां मुझे सबसे बड़ी सहायता स्व. परमेश्वरन पिल्ले से मिली। यह 'मद्रास स्टैंटर्ड' के संपादक थे। उन्होंने इस प्रश्न का अच्छा अध्ययन किया था। अपने दफ्तर में मुझे जब-तब बुलाते और मुनासिब सलाह दिया करते थे। 'हिन्दू' के जी. सुब्रह्मण्यम से भी मिला था। उन्होंने और डॉ. सुब्रह्मण्यम ने भी पूरी हमदर्दी दिखलाई थी। पर जी. परमेश्वरन पिल्ले ने तो मुझे अपने अखबार का इस काम के लिए यथेच्छ उपयोग करने की आजादी दे दी और मैंने निस्संकोच होकर उसका उपयोग किया। सभा पाच्याप्पा हाल में हुई थी और जहां तक मुझे याद है उसमें डॉ. सुब्रह्मण्यम सभापति हुए थे।

मद्रास से मैंने बहुतों से इतना प्रेम और उत्साह पाया कि यद्यपि वहां सबके साथ मुझे मुख्यतः अंग्रेजी में ही बोलना पड़ता था, फिर भी वहां घर-सा ही लगा। प्रेम के सामने कौन बंधन टिक सकता है? प्रेम किस बंधन को नहीं तोड़ सकता?

29 : 'जल्दी लौटो'

मद्रास में मैं कलकत्ता गया। कलकत्ते में मेरी कठिनाइयों का पार न रहा। 'ग्रेट ईस्टर्न' होटल में उतरा। किसी से जान, न पहचान। होटल में 'डेली टेलीग्राफ' के प्रतिनिधि मि. एलर थॉर्प से परिचय हुआ। वह बंगाल क्लब में रहते थे। उन्होंने मुझे वहां निमंत्रित किया। उस समय उन्हें इसका पता न था कि होटल के दीवानखाने में किसी हिन्दुस्तानी को नहीं ले जाया जा सकता। बाद में उन्हें इस रोक का पता चला। अतः वह मुझे अपने कमरे में ले गए। हिन्दुस्तानियों के प्रति स्थानीय अंग्रेजों की यह नफरत देखकर उन्हें खेद हुआ। मुझे दीवानखाने में न ले जाने के लिए क्षमा मांगी।

'बंगाल के देव' सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से मिलना तो था ही। उनसे मिला। उस समय उनके आस-पास दूसरे मिलने वाले भी बैठे थे। उन्होंने कहा, "मुझे डर है कि आपके काम में लोग रस न लेंगे। आप देखते ही हैं यहीं कुछ कम विडंबनाएं नहीं हैं। फिर भी आपसे जो बने वह अवश्य करें। इस काम में आपको राजा-महाराजाओं की मदद दरकार होगी। ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन के प्रतिनिधियों से भी मिलिएगा। राजा सर प्यारेमोहन मुकर्जी और महाराज टागोर से भी मिलिएगा। दोनों उदारवृत्ति के पुरुष हैं और सार्वजनिक कामों में काफी हिस्सा लेते हैं।" मैं इन सज्जनों से मिला। वहां मेरी दाल न गली। दोनों ने कहा, "कलकत्ते में सार्वजनिक सभा करना सहज काम नहीं। पर करनी हो तो उसका बहुत कुछ दारमदार सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर होगा।"

मेरी कठिनाइयां बढ़ती जा रही थीं। 'अमृत बाजार पत्रिका' के दफ्तर में गया। वहां भी जो सज्जन मुझ से मिले उन्होंने मान लिया कि मैं कोई रमताराम हूंगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'बंगवासी' के संपादक ने तो हद कर दी। मुझे घंटे भर बैठाए रखा। दूसरों के साथ संपादक महोदय बातें करते जाते थे। वे लोग अपनी बात खत्म करके उठते भी जाते, पर वह मेरी तरफ देखते ही न थे। घंटाभर राह देखकर जब मैंने अपनी बात छेड़ी तो बोले, "आप देखते नहीं हैं, हमारे पास कितना काम है? आप-जैसे तो बहुतेरे हमारे पास आते रहते हैं। आप तशरीफ ले जाएं, यही अच्छा है। हमें आपकी बात नहीं सुननी है।" मुझे क्षणभर दुःख तो हुआ, पर मैं संपादक का दृष्टि बिंदु समझ गया। 'बंगवासी' की ख्याति तो सुन ही रखी थी। संपादक के यहां आने-जाने वालों का तांता लगा रहता है, यह भी देख सकता था। वे सभी उनके परिचित होते थे। उनके अखबार के लिए विषयों की कमी न थी। उस समय दक्षिण अफ्रीका का तो नाम भी मुश्किल से सुनने में आता था। नित नए आदमी संपादक के पास अपने दुखड़े लेकर आते ही रहते थे। उनके लिए तो अपना दुःख ही बड़े-से-बड़ा सवाल होता है। पर संपादक के यहां तो सदा ऐसे दुखियों का जमघट रहता है। बेचारा सबके लिए क्या कर सकता है? फिर दुखिया की दृष्टि में संपादक की शक्ति बहुत बड़ी चीज होती है। पर स्वयं संपादक को तो पता रहता है कि उसकी शक्ति उसके दफ्तर की चौखट भी नहीं लांघती।

मैंने हिम्मत नहीं हारी। दूसरे संपादकों से मिलना जारी रखा। अपनी रीति के अनुसार अंग्रेजों से भी मिला। 'स्टेट्समैन' और 'इंग्लिशमैन' दोनों दक्षिण अफ्रीका के सवाल का महत्त्व समझते थे। उन्होंने लंबी मुलाकातें-इंटरव्यू-छापी। 'इंग्लिशमैन' के मि. सांडर्स ने मुझे अपनाया। उनके दफ्तर का दरवाजा, उनके अखबार के कॉलम मेरे लिए खुले रहते। उन्होंने अपने अग्रलेख में भी काट-छांट करने की छूट मुझे दे दी। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि हम लोगों में स्नेह का संबंध हो गया। उनसे जो मदद हो सके वह करते रहने का उन्होंने वचन दिया। दक्षिण अफ्रीका लौट जाने पर भी मुझसे पत्र लिखते रहने को कहा और उनसे जो कुछ हो सकता हो वह करने का वादा किया। मैंने देखा कि इस वचन का उन्होंने अक्षरशः पालन किया और जब तक सख्त बीमार नहीं हो गए मुझे पत्र-व्यवहार जारी रखा। मेरे जीवन में ऐसे अनेक अनसोचे मधुर संबंध हुए हैं। मि. सांडर्स को मेरी जो बात पसंद आई, वह भी अतिशयोक्ति का अभाव और सत्य परायणता। उन्होंने मुझसे जिरह करने में कसर नहीं रखी थी। उसमें उन्होंने पाया कि दक्षिण अफ्रीका के गोरों के पक्ष को निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत करने और भारतीय पक्ष से उसकी तुलना करने में मैंने कोताही नहीं की थी।

मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि प्रतिपक्षी को न्याय देकर हम जल्दी न्याय पा सकते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मुझे अनपेक्षित सहायता मिल जाने से कलकत्ते में भी सार्वजनिक सभा होने की आशा बंधी। इतने में डरबन से तार मिला–"पार्लियामेंट जनवरी में बैठेगी। जल्दी वापस आओ।"

इससे एक पत्र अखबारों में लिखकर तुरंत लौट जाने की जरूरत बतला दी और कलकत्ते से कूच कर दिया। दादा अब्दुल्ला के बंबई के एजेंट को तार दिया कि पहले स्टीमर से मेरे जाने का बंदोबस्त करें। दादा अब्दुल्ला ने खुद 'कूरलैंड' नाम का स्टीमर खरीद लिया था। उसमें मुझे तथा मेरे कुटुम्ब को मुफ्त ले जाने का आग्रह किया। मैंने उसे धन्यवाद सहित स्वीकार किया और दिसम्बर के आरम्भ में मैं 'कूरलैंड' स्टीमर से अपनी धर्मपत्नी, दो बच्चों और अपने स्वर्गीय बहनोई के इकलौते लड़के को साथ लेकर दूसरी बार दक्षिण अफ्रीका की ओर रवाना हुआ। इस स्टीमर के साथ ही दूसरा स्टीमर 'नादरी' भी डरबन के लिए रवाना हुआ। उसके एजेंट दादा अब्दुल्ला थे। दोनों स्टीमरों में मिलाकर आठ सौ के लगभग हिन्दुस्तानी मुसाफिर रहे होंगे। उनमें आधे से ऊपर ट्रांसवाल जाने वाले थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा भाग

1 : तूफान की भनक

बाल-बच्चों के साथ मेरी यह पहली समुद्र-यात्रा थी। मैं अनेक बार लिख चुका हूं कि हिन्दू-संसार में विवाह छोटी उम्र में होने और मध्यम वर्ग वालों में प्रायः पति के साक्षर और पत्नी के निरक्षर होने के कारण पति-पत्नी के जीवन में अंतर रहता है और पति को पत्नी का शिक्षक बनना पड़ता है। मुझे अपनी धर्मपत्नी के और बच्चों के कपड़े-लत्ते, खाने-पहनने और बोलचाल की सम्भाल रखनी थी। मुझे उन्हें तौर-तरीका सिखाना था। उन दिनों की कितनी ही बातों की याद करके मुझे आज भी हँसी आती है। हिन्दू-पत्नी पति परायणता को अपने धर्म की पराकाष्ठा मानती है, हिन्दू-पति अपने को पत्नी का ईश्वर मानता है। इसलिए पत्नी को वह जैसे नचाए वैसे नाचना होता है।

जब की मैं बात लिख रहा हूं, उस समय मैं मानता था कि सभ्य समझे जाने के लिए हमारा बाहरी आचार-व्यवहार जहां तक हो सके यूरोपियनों से मिलता-जुलता होना चाहिए। ऐसा होने से ही दूसरों पर हमारा असर पड़ सकता है और असर पड़े बिना देश-सेवा सम्भव नहीं हो सकती।

अतः पत्नी की और बच्चों की पोशाक मैंने ही पसंद की। उनकी काठियावाड़ी बनियों-सा मुझे कैसे सुहाता? पारसी हिन्दुस्तानियों में सबसे अधिक सुधरे हुए सभ्य समझे जाते हैं। इसलिए जहां यूरोपियन पहनावे का अनुकरण ठीक न लगे वहां पारसी ढंग अपनाया। पत्नी के लिए पारसी बहनों की-सी साड़ियां लीं, बच्चों के लिए पारसी कोट-पतलून लिया। सबके लिए बूट (अंग्रेजी जूते) और मोजे तो होने ही चाहिए थे। पत्नी को और बच्चों को भी दोनों चीजें कई महीने तक न रुचीं। जूते काटते, मोजे गंधाते, पांव सूज आते। इन अड़चनों का जवाब मेरे पास तैयार था। उत्तर की योग्यता की अपेक्षा आज्ञा का बल तो अधिक था ही। अतः पत्नी और बच्चों ने विवश होकर पहनावे का यह फेरफार स्वीकार कर लिया। उतनी ही विवशता और इससे भी अधिक अनिच्छा से खाने में वे छुरी-कांटे से काम लेने लगे। पीछे जब मेरा मोह दूर हुआ तो उन्होंने बूट-मोजे, छुरी-कांटे इत्यादि को छोड़ दिया। पहले ये परिवर्तन जैसे दुःखदायी हुए थे वैसे ही आदत पड़ने पर उनका त्याग भी कष्टकर था। पर आज तो मैं देखता हूं कि हम सारे सुधारों का केंचुल उतारकर हल्के हो गए हैं।

इस स्टीमर में अपने कितने ही सम्बन्धी और जान-पहचान वाले भी थे। उनसे तथा डेक के दूसरे यात्रियों से भी मैं खूब हिल-मिल गया था। यह स्टीमर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अपने मुवक्किल और फिर अपने मित्र का होने के कारण बिल्कुल घर-जैसा लगता था और मैं हर जगह बेतकल्लुफ़ी से घूम-फिर सकता था।

स्टीमर बिना किसी बंदरगाह पर रुके सीधा नेटाल पहुंचने वाला था। इसलिए केवल अठारह दिन की यात्रा थी। मानो हमारे पहुंचते ही उठने वाले तूफान की हमें पहले से सूचना देने के लिए, हमारे पहुंचने में तीन या चार दिन बाकी थे कि समुद्र में भारी तूफान उठा। इस दक्षिणी भूखंड में दिसम्बर का महीना गर्मी और वर्षा का समय होता है, इसलिए दक्षिणी समुद्र में इन दिनों छोटे-मोटे तूफान तो उठा ही करते हैं। पर यह तूफान इतने जोर का था और इतनी देर ठहरा कि यात्री घबरा गए।

यह दृश्य भव्य था। दुःख में सब एक हो गए। भेदभाव भूल गए। ईश्वर को दिल से याद करने लगे। हिन्दू-मुसलमान सब साथ मिलकर भगवान को भजने लगे। कुछ लोगों ने मिन्नतें भी मानीं। कप्तान यात्रियों के पास आया और उन्हें आश्वासन देते हुए बोला, "गो यह तूफान बहुत जोर का माना जा सकता है; पर मुझे इससे अधिक भयानक तूफानों का तजुर्बा स्वयं है। स्टीमर मजबूत हो तो यकायक डूबता नहीं।" यात्रियों को उसने इस प्रकार बहुत समझाया, पर इससे उनकी तसल्ली न होती थी। स्टीमर में आवाज तो ऐसी हो रही थी, मानो अभी कहीं टूटता है, अभी कहीं छेद होता है। हिचकोले ऐसे खाता था मानो अभी उलट जाएगा। ऐसे समय में डेक पर तो कोई रह ही कैसे सकता था। सिवा इसके कोई दूसरी बात किसी के मुंह से न निकलती थी:

जाही विधि राखे राम ताही विधि रहिए।

जहां तक मुझे याद है, चौबीस घंटे इस घोर चिंता में गुजरे होंगे। अंत में बादल बिखरे। सूर्यनारायण ने दर्शन दिए। कप्तान बोला, "तूफान गया।"

लोगों के चेहरे से चिंता की छाया दूर हुई और इसके साथ ही ईश्वर भी गायब हो गया! मौत का डर गया। फिर राग-रंग, खान-पान शुरू हो गया। माया का परदा फिर पसर गया। नमाज रही, भजन रहे, पर तूफान के समय उनमें जो गंभीरता आ गई थी वह जाती रही।

पर इस तूफान की बदौलत मैं मुसाफिरों में घुल-मिल गया। मैं कह सकता हूं कि मुझे तूफान का भय नहीं था या बहुत ही कम था। लगभग ऐसे ही तूफानों से पहले मेरा पाला पड़ चुका था। मुझे समुद्र लगता नहीं था, न चक्कर आते थे। अतः मैं मुसाफिरों में निर्भय होकर घूम सकता था, उन्हें ढांढस बंधा सकता था और कप्तान की भविष्यवाणियां उन तक पहुंचाया करता था। यह स्नेह-ग्रंथि मेरे लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

हमारे स्टीमर ने 18 या 19 दिसम्बर को डरबन बंदर में लंगर डाला। 'नादरी' भी उसी दिन पहुंचा।

पर असली तूफान का अनुभव तो अभी होना बाकी था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2 : तूफान

अठारहवीं दिसम्बर को दोनों स्टीमरों ने आस-पास लंगर डाला। दक्षिण अफ्रीका के बंदरगाह में यात्रियों के स्वास्थ्य की पूरी जांच होती है। राह में किसी को कोई छूत वाली बीमारी हो जाए तो जहाज सूतक में-क्वारंटीन में-रखा जाता है। हमारे बंबई छोड़ते समय वहां प्लेग था, इसलिए हमें कुछ सूतक भुगतने का डर था ही। बंदर में लंगर डालने के बाद जहाज को पहले पीला झंडा उड़ाना होता है। डॉक्टर के जांच कर लेने और 'रिहाई' दे देने के बाद पीला झंडा उतरता है और तब यात्रियों के भाई-बंदों को स्टीमर पर आने की इजाजत मिलती है।

इस नियम के अनुसार स्टीमर पर भी पीला झंडा उड़ रहा था। डॉक्टर आया। जांच करके पांच दिन तक सूतक फरमा दिया। उसके मत से प्लेग के कीड़े तेईस दिन तक जिंदा रह सकते हैं। अतः उसने बंबई छोड़ने के बाद से तेईस दिन तक जहाज को सूतक में रखने का निश्चय किया।

पर इस सूतक की आज्ञा का अर्थ केवल स्वास्थ्य-रक्षा न था। डरबन के गोरे नागरिक हमें उलटे पांव लौटा देने का आन्दोलन कर रहे थे, वह भी इस आज्ञा में कारणभूत था।

दादा अब्दुल्ला की तरफ से हमें शहर में चलने वाले इस आन्दोलन की खबर मिलती रहती थी। गोरे एक के बाद दूसरी विराट सभाएं कर रहे थे। दादा अब्दुल्ला को धमकियां देते थे। लालच भी देते थे। वे अपने दोनों स्टीमरों को लौटा ले जाए तो गोरे उनका सारा नुकसान भर देने को तैयार थे। पर दादा अब्दुल्ला किसी की धमकी से डरने वाले न थे। इस समय वहां सेठ अब्दुलकरीम हाजी आदम गद्दी पर थे। उन्होंने प्रण कर लिया था कि चाहे जितनी हानि उठानी पड़े स्टीमर को बंदर पर लाऊंगा और यात्रियों को उतारूंगा। मेरे पास बराबर उनकी ब्यौरेवार चिट्ठियां आती थीं। सौभाग्यवश इस समय स्व. मनसुखलाल हीरालाल नाजर मुझसे मिलने के लिए डरबन आ गए थे। वह होशियार और बहादुर आदमी थे। उन्होंने उचित सलाह दी। उनके वकील मि. लाटन भी वैसे ही जवांमर्द थे। उन्होंने गोरों की करतूतों की खूब निंदा की और इस मौके पर कौम को जो सलाह दी वह केवल वकील की भांति पैसा लेकर नहीं, बल्कि सच्चे मित्र के रूप में।

इस प्रकार डरबन में द्वंद्व-युद्ध छिड़ा। एक ओर मुट्ठीभर गरीब हिन्दुस्तानी और उनके इने-गिने अंग्रेज मित्र थे, दूसरी ओर थे धनबल, विद्याबल और संख्या बल में भरपूर गोरे। इस बलवान प्रतिपक्षी को राज्य का बल भी मिल गया, क्योंकि नेटाल की सरकार ने खुल्लमखुल्ला उनकी मदद की। मि. हेरी एस्कंब ने, जो मंत्रिमंडल में थे और उसके कर्ता-धर्ता थे, इस पक्ष की सभा में खुले तौर पर हिस्सा लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हमारा सूतक केवल स्वास्थ्य रक्षा के नियमों की ही देन नहीं था। जैसे भी हो एजेंट को या यात्रियों को दबाकर हमें वापस भेजना था। एजेंट को तो धमकी मिलती ही थी। अब हम लोगों के पास भी धमकियां आईं-"तुम लोग लौट न गए तो समुद्र में डुबा दिए जाओगे। वापस जाने पर तो वापसी का भाड़ा भी शायद तुम्हें मिल जाए।" मैंने यात्रियों के बीच खूब चक्कर लगाए, उन्हें धीरज बंधाया। 'नादरी' के यात्रियों को भी धैर्य का संदेश भेजा। यात्री शांत रहे, उन्होंने हिम्मत दिखाई।

मुसाफिरों के मन बहलाव के लिए जहाज पर खेलों का प्रबंध किया गया था। बड़ा दिन आया। कप्तान ने उस दिन पहले दर्जे के यात्रियों को दावत दी। उनमें खास करके मैं और मेरा कुटुम्ब ही था। भोजन के बाद भाषण की चाल तो है ही। मैंने पश्चिमी सभ्यता पर भाषण किया। मैं जानता था कि यह अवसर गम्भीर भाषण करने का नहीं होता। पर मुझसे दूसरी तरह का भाषण हो नहीं सकता था। आमोद-प्रमोद में मैं शामिल होता था पर मेरा दिल तो डरबन में चलने वाली लड़ाई में ही था; क्योंकि इस हमले में मध्यबिंदु मैं ही था। मुझ पर दो अभियोग थे:

1. मैंने हिन्दुस्तान में नेटालवासी गोरों की अनुचित निंदा की,
2. मैं नैटाल को हिन्दुस्तानियों से भर देना चाहता हूं और इसलिए 'कूरलैंड' और 'नादरी' में खासकर नेटाल में बसाने के लिए ही उन्हें भरकर लाया था।

पर मैं स्वयं सर्वथा निर्दोष था। मैंने किसी को नेटाल आने को ललचाया नहीं था। 'नादरी' के यात्रियों को तो मैं पहचानता भी न था। 'कूरलैंड' में अपने दो-तीन रिश्तेदारों को छोड़कर और सैकड़ों यात्रियों के नाम-धाम तक न जानता था। हिन्दुस्तान में मैंने नेटाल के अंग्रेजों के बारे में ऐसा एक शब्द भी नहीं कहा था जो मैं नेटाल में न कह चुका होऊं, और मैं जो, कुछ बोला था उसके लिए मेरे पास भरपूर प्रमाण थे।

अतः नेटाल के अंग्रेज जिस सभ्यता की उपज थे, जिसके वे प्रतिनिधि और हिमायती थे, उस सभ्यता के लिए मेरे मन में दुःख पैदा हुआ। मैं उसी के बारे में सोचा करता था। इस कारण उसके सम्बन्ध के अपने विचार मैंने इस छोटी-सी सभा के सामने रखें और श्रोता-वर्ग में उन्हें सुन लिया। मैंने जिस भाव से उन विचारों को उपस्थित किया था, कप्तान आदि ने उसी भाव में उन्हें ग्रहण किया। उन विचारों से उनके जीवन में कोई परिवर्तन हुआ या नहीं, यह मैं नहीं जानता। पर इस भाषण के बाद मेरी कप्तान तथा अन्य अफसरों से पश्चिमी सभ्यता के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें हुईं। पश्चिम की सभ्यता को मैंने प्रधानतः हिंसक बतलाया, पूर्व की सभ्यता को अहिंसक। प्रश्नकर्ताओं ने मेरा सिद्धांत मुझी पर घटितं किया। बहुत करके कप्तान ने ही पूछा:

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"गोरे जैसी धमकी दे रहे हैं तदनुसार ही वे आपको पीड़ा पहुंचाएं तो अपने अहिंसा के सिद्धांत पर आप किस तरह अमल करेंगे?"

मैंने जवाब दिया, "मुझे आशा है कि उन्हें माफ कर देने और उन पर मुकदमा न चलाने की हिम्मत और बुद्धि ईश्वर मुझे देगा। आज भी उन पर मुझे रोष नहीं है। उनके अज्ञान, उनकी संकुचित दृष्टि पर मुझे दुःख होता है। मैं यह मानता हूं कि वे जो कह और कर रहे हैं उसे वे शुद्ध भाव से ठीक मान रहे हैं। अतः मेरे रोष करने का कोई कारण नहीं।" प्रश्नकर्ता हँसे। मेरी बात शायद उन्हें सच न जान पड़ी हो।

इस तरह हमारे दिन बीते और लम्बे होते गए। सूतक समाप्ति की अवधि अंत तक तय न हुई। इस विभाग के अफसर से पूछने पर जवाब मिलता, "यह मेरी शक्ति से बाहर की बात है। सरकार से मुझे हुक्म मिले तो मैं आप लोगों को उतरने दूं।"

अंत में यात्रियों को और मुझको अल्टीमेटम (अंतिम सूचना) मिली। दोनों को जान से हाथ धोने की धमकी दी गई थी। मैंने और यात्रियों ने भी जवाब में लिखा कि नेटाल बंदर में उतरने का हमें हक है और हमने तै कर लिया है कि चाहे जो खतरा सामने आए, हम अपने हक पर डटे रहेंगे।

अंत में तेइसवें दिन, अर्थात् 1879 की जनवरी 13 तारीख को, हमारे[1] स्टीमर को मुक्ति मिली और यात्रियों को उतारने की आज्ञा निकली।

3 : कसौटी

जहाज 'धक्के' (डेक) पर लगा। यात्री उतरे। पर मेरे लिए मि. एस्कंब ने कप्तान को कहलाया था, "गांधी तथा उनके कुटुम्ब को शाम को उतारिएगा। उनके विरुद्ध गोरे बहुत उत्तेजित हो रहे हैं और उनकी जान जोखिम में है। पोर्ट सुपरिंटेंडेंट मि. टेटम उन्हें शाम को लिवा ले जाएंगे।"

कप्तान ने मुझे यह संदेश सुनाया। मैंने उनके अनुसार चलना कबूल कर लिया। पर यह संदेश मिले आधा घंटा भी न हुआ होगा कि मि. लाटन पहुंचे और कप्तान से मिलकर बोले, "मि. गांधी अगर मेरे साथ आएं तो मैं उन्हें अपनी जोखिम पर ले जाना चाहता हूं। स्टीमर के एजेंट के वकील की हैसियत से मैं आपसे कहता हूं कि मि. गांधी के बारे में जो संदेशा आपको मिला है उसकी जिम्मेदारी से आप मुक्त हैं।"

कप्तान से इस प्रकार बातचीत करके वह मेरे पास आए और मुझसे कुछ इस तरह आशय की बातें कहीं, "आपको जिंदगी का डर न हो तो मैं चाहता हूं कि

1. दोनों जहाजों को।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
श्रीमती गांधी और बच्चे गाड़ी में रुस्तमजी सेठ के यहां चले जाएं और आप तथा मैं आम रास्ते से होकर पैदल चलें। अंधेरा होने पर आपका गुपचुप शहर में दाखिल होना मुझे तो बिल्कुल पसंद नहीं आता। मेरी समझ में आपका बाल तक बांका नहीं होने का। अब तो सब प्रकार से शांति है, गोरे तितर-बितर हो गए हैं। पर कुछ भी हो, मेरी राय है कि आपको लुक-छिपकर नगर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।"

मैं राजी हो गया मेरी धर्मपत्नी और बच्चे गाड़ी में बैठकर रुस्तमजी सेठ के यहां सही-सलामत पहुंच गए। मैं कप्तान की इजाजत लेकर मि. लाटन के साथ उतरा। रुस्तम जी सेठ का घर लगभग दो मील दूर था।

जैसे ही मैं जहाज से उतरा, कुछ लड़कों ने मुझे पहचान लिया और 'गांधी-गांधी' चिल्लाने लगे। तुरंत ही दस-पांच आदमी इकट्ठे हो गए और शोर बढ़ा। मि. लाटन ने भीड़ बढ़ती देख रिक्शा मंगवाया। मुझे तो उसमें बैठना कभी पसंद न आया था। उस पर बैठने का यह मेरा पहला ही अनुभव होने जा रहा था। पर छोकरे क्यों बैठने देते? उन्होंने रिक्शे वाले को धमकाया और वह भागा।

हम आगे बढ़े। मजमा भी बढ़ता गया। खासी भीड़ लग गई। सबसे पहले तो मजमे ने मुझे मि. लाटन से अलग किया। फिर मुझ पर कंकड़ और सड़े अंडों की वर्षा आरम्भ हुई। मेरी पगड़ी किसी ने छीनकर फेंक दी। लात-ठोकरें भी पड़ने लगीं।

मुझे चक्कर आ गया। मैं बगल के घर की जाली पकड़कर दम लेने लगा; पर वहां खड़ा रहना तो मुमकिन ही न था। अब तमाचों की बारी थी।

इतने में पुलिस सुपरिटेंडेंट की पत्नी, जो मुझे पहचानती थी, उस रास्ते से गुजरीं। मुझे देखते ही वह मेरी बगल में आकर खड़ी हो गईं और धूप नहीं थी तो भी अपनी छतरी खोल ली। इससे भीड़ कुछ दबी। अब मुझ पर आघात करना हो तो मिसेज अलेक्जेंडर को बचाकर ही किया जा सकता था।

इसी बीच कोई हिन्दुस्तानी नवयुवक मुझ पर मार पड़ते देख थाने को दौड़ गया। सुपरिटेंडेंट मि. अलेक्जेंडर ने पुलिस की एक टुकड़ी घेरा डालकर मुझे बचा लेने को भेजी। वह समय से पहुंची। मेरा रास्ता थाने के पास से ही होकर जाता था। सुपरिटेंडेंट ने मुझे थाने में आश्रय लेने को कहा। मैंने इनकार किया और कहा, "लोगों को जब अपनी भूल मालूम हो जाएगी तब वे शांत हो जाएंगे। मुझे उनकी न्याय-बुद्धि पर भरोसा है।"

पुलिस-टुकड़ी के साथ मैं सही-सलामत पारसी रुस्तमजी के घर पहुंचा। मेरी पीठ पर घुस की चोट थी। एक ही जगह थोड़ा छिला था। स्टीमर में डॉ. दादो बरजोर वहीं मौजूद थे। उन्होंने मेरी समुचित शुश्रूषा की।

यों भीतर शांति थी, पर बाहर तो गोरों ने घर घेर लिया। शाम हो गई थी। अंधेरा हो चला था। हजारों आदमी बाहर खड़े शोर मचा रहे थे। "गांधी को हमारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हवाले करो' की पुकार मच रही थी। लक्षण बुरे देखकर सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडर वहां पहुंच गए थे और भीड़ की धमकी से नहीं, बल्कि विनोद-वार्ता से वश में रख रहे थे।

फिर भी वह चिंता से मुक्त न थे। उन्होंने मुझे इस आशय का संदेश भेजा, "आप अपने मित्र के मकान और माल को और अपने बाल-बच्चों को बचाना चाहते हो तो मैं जैसे बताऊं उस रीति से आपको छिपकर इस घर से निकल जाना चाहिए।"

एक ही दिन में मुझ पर दो परस्पर विरोधी काम करने का प्रसंग आया। जब प्राण-भय केवल काल्पनिक जान पड़ता था तब मि. लाटन ने मुझे खुले बंदों बाहर निकलने की सलाह दी और मैंने उसे मान लिया। जब खतरा मेरे सामने आकर खड़ा हो गया तब दूसरे मित्र ने इससे उल्टी सलाह दी और उसे भी मैंने मान लिया। कौन कह सकता है कि मैं अपनी जान की जोखिम से डरा या मित्र के जान-माल की जोखिम से, अथवा अपने बाल-बच्चों की जान को खतरा होने से, या तीनों से? कौन निश्चयपूर्वक कह सकता है कि मेरा जहाज पर से हिम्मत दिखाकर उतरना और पीछे जब खतरा सचमुच सामने आया तब छिप्कर भाग निकलना उचित था? पर बीती बात के बारे में इस तरह की चर्चा ही बेकार है। उसका उपयोग इतना ही है कि जो हुआ उसे समझ लें, उससे जो सीख मिलती हो वह ले लें। अमुक प्रसंग में अमुक मनुष्य क्या करेगा, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वैसे ही यह भी हम देख सकते हैं कि मनुष्य के बाह्याचरण से उसके गुणों की जो परख की जाती है वह अधूरी और अनुमान मात्र होती है।

कुछ भी हो, भागने के काम में लग जाने से मैं अपने घावों को भूल गया। मैंने हिन्दुस्तानी सिपाही की वर्दी पहनी। कहीं सिर पर मार पड़े तो उससे बचने के लिए उस पर पीतल की तश्तरी रखकर ऊपर बड़ा मद्रासी साफा बांधा। दो खुफिया पुलिस वाले साथ थे, उनमें से एक ने हिन्दी व्यापारी का पहनावा पहना। अपना चेहरा हिन्दुस्तानी की तरह रंग लिया। दूसरे ने क्या पहना, यह मैं भूल गया हूं। हम बगल की गली से होकर पड़ोस की एक दुकान में पहुंचे और गोदाम में लगी हुई बोरों की थप्पियों को अंधेरे में लांघकर दुकान के दरवाजे से भीड़ में से होते हुए निकल गए। गली के नुक्कड़ पर मेरे लिए गाड़ी खड़ी थी। उसमें बिठाकर मुझे उसी थाने में ले गए, जिसमें आश्रय लेने की सलाह सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडर ने पहले दी थी। मैंने मि. अलेक्जेंडर और खुफिया अफसरों को धन्यवाद दिया।

यों जब एक ओर मैं भगाया जा रहा था तब दूसरी ओर मि. अलेक्जेंडर भीड़ से गाना गवा रहे थे। गीत का भाव यह है:

'चलो, गांधी को फांसी लटका दें,
उस इमली के पेड़ पर'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे सही-सलामत थाने में पहुंच जाने की खबर मि. अलेक्जेंडर को मिल जाने पर उन्होंने भीड़ से कहा, "आप लोगों का शिकार तो इस दुकान में से सही-सलामत निकल गया।" मजमें में से कोई क्रुद्ध हुआ, कोई हँसा। बहुतों ने इस बात पर विश्वास करने से इनकार किया।

मि. अलेक्जेंडर बोले, "तो अपने में जिसे आप चुनें उसे मैं अंदर ले जाकर तलाशी दिलवा दूं। अगर आप गांधी को ढूंढ़ निकालें तो मैं उन्हें आपके हवाले कर दूंगा। न निकाल सके तो आप बिखर जाएं। इतना तो मुझे निश्चय है कि आप पारसी रुस्तमजी का मकान न जलाएंगे और न गांधी के स्त्री-बच्चों को कष्ट देंगे।"

मजमे ने प्रतिनिधि चुने। उन्होंने लौटकर उसे निराशाजनक समाचार सुनाया। सब सुपरिटेंडेंट अलेक्जेंडर की समय सूचकता और होशियारी की तारीफ करते हुए-कुछ दांत पीसते हुए भी-बिखर गए।

तत्कालीन उपनिवेश-मंत्री स्वर्गीय मि. चेंबरलेन ने मुझ पर हमला करने वालों पर मुकदमा चलाया जाए और मुझे न्याय मिले, इसके लिए तार दिया। मि. एस्कंब ने मुझे मिलने को बुलाया। मुझे चोट पहुंची, इसलिए खेद प्रकट करके कहा, "यह तो आप मानेंगे ही कि आपका बाल तक भी बांका होने में मुझे खुशी नहीं हो सकती। मि. लाटन की सलाह मानकर आपने तुरंत उतर जाने का साहस किया, ऐसा कहने का आपको अधिकार था। पर मेरे संदेश को मान लिया होता तो यह दु:खद कांड न हुआ होता। अब अगर आप हमला करने वालों को पहचान सकें तो मैं उन्हें गिरफ्तार करवाने और उन पर मुकदमा चलवाने को तैयार हूं। मि. चेंबरलेन की भी यही इच्छा है।"

मैंने जवाब दिया-"मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है। हमला करने वालों में से एक-दो को शायद पहचान लूं, पर उन्हें सजा दिलाने से मुझे क्या लाभ होगा? फिर मैं हमला करने वालों को दोषी भी नहीं मानता। उन्हें न तो यह समझाया गया कि मैंने हिन्दुस्तान में अतिरंजित बातें कहकर नेटाल के गोरों को बदनाम किया। उन्होंने इस बात को सही मान लिया और क्रुद्ध हुए तो इसमें अचम्भा क्या है? दोष तो मुखियों, और मुझे कहने की इजाजत दीजिए, तो आपका मानना चाहिए। आप लोगों को सही रास्ते ले जा सकते थे। पर आपने भी रायटर के तार को सही मान लिया और कल्पना कर ली कि मैंने अवश्य अतिश्योक्ति की होगी। मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है। जब असलियत जाहिर होगी और लोग उसे जानेंगे तब खुद पछताएंगे।"

"तो आप मुझे यह बात लिखकर दे देंगे? मुझे ऐसा तार मि. चेंबरलेन को भेजना पड़ेगा। मैं यह नहीं चाहता कि आप जल्दी में कुछ लिखकर दे दें। मैं आपसे चाहता हूं कि मि. लाटन तथा अपने दूसरे मित्रों से सलाह करके जो ठीक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

जान पड़े वह करें। हां, इतना स्वीकार करता हूं कि आप यदि आक्रमणकारियों पर मुकदमा न चलाएं तो शांति स्थापना करने में मुझे बड़ी मदद मिलेगी और आपकी प्रतिष्ठा तो निश्चय ही बढ़ेगी।" मैंने जवाब दिया, "इस विषय में मेरा विचार पक्का हो चुका है। मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है यह तै समझिए। अतः मैं यहीं आपको लिखकर दिए देता हूं।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहकर मैंने आवश्यक वक्तव्य लिखकर दे दिया।

4 : शांति

हमले के दो-एक दिन बाद, जब मैं मि. एस्कंब से मिला तब थाने में ही था। रखवाली के लिए एक-दो सिपाही मेरे साथ रहते थे। पर वास्तव में जब मुझे मि. एस्कंब के पास ले गए तब रखवाली की जरूरत नहीं रह गई थी।

जिस दिन मैं जहाज से उतरा उसी दिन, अर्थात् पीला झंडा उतरते ही, 'नेटाल एडवर्टाइजर' का प्रतिनिधि मुझसे मिल गया था। उसने मुझसे खूब सवाल किए और उसके जवाब में मैं एक-एक आरोप का उत्तर पूरा-पूरा दे सका था। सर फिरोजशाह की नेक सलाह से हिन्दुस्तान में उस समय मैंने लिखे बिना तो एक भी भाषण नहीं किया था। अपने उन सब भाषणों और लेखों का संग्रह मेरे पास ही था। मैंने वह उसे दिया और यह साबित कर दिया कि मैंने हिन्दुस्तान में ऐसी एक भी बात नहीं कही जो ज्यादा जोरदार शब्दों में दक्षिण अफ्रीका में न कही हो। मैंने यह भी बता दिया था कि 'कूरलैंड' और 'नादरी' के यात्रियों के लाने में मेरा हाथ बिल्कुल न था। उनमें अधिकतर तो पुराने ही आदमी थे और बहुतेरे नेटाल में रहने वाले नहीं, बल्कि ट्रांसवाल जाने वाले थे। उस समय नेटाल में कामकाज मंदा था। ट्रांसवाल में वहां से बहुत अधिक पैसा कमाया जा सकता था। उससे अधिक हिन्दुस्तानी वहां जाना पसंद करते थे।

इस खुलासे का और साथ ही हमला करने वालों पर मुकदमा दायर करने से इनकार करने का असर इतना ज्यादा पड़ा कि गोरे शर्मिन्दा हुए। अखबारों ने मुझे बेकसूर ठहराया और हुल्लड़ करने वालों की निंदा की। इस प्रकार परिणाम में तो मुझे लाभ ही हुआ और मेरा लाभ मेरे कार्य का ही लाभ था। भारतीय समाज की प्रतिष्ठा बढ़ी और मेरा रास्ता अधिक आसान हो गया।

तीन या चार दिन में मैं अपने घर गया और थोड़े ही दिनों में अपने कामकाज में लग गया। मेरी वकालत भी इस घटना से चमक उठी।

पर इस प्रकार हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढ़ने के साथ-साथ उनके प्रति द्वेष भी बढ़ा। उनमें दृढ़ता से लड़ने की शक्ति है, गोरों को इस बात का इत्मीनान हो गया और इसके साथ ही उनका भय बढ़ा। नेटाल की असेंबली-व्यवस्थापक सभा-में दो कानून पेश हुए, जिनसे हिन्दुस्तानियों की कठिनाइयां और बढ़ गईं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक से हिन्दुस्तानी व्यापारियों के धंधे को नुकसान पहुंचा, दूसरे से हिन्दुस्तानियों के आवागमन पर कड़ा अंकुश लग गया। सौभाग्यवश मताधिकार की लड़ाई के समय यह फैसला हो गया था कि हिन्दुस्तानियों के खिलाफ हिन्दुस्तानी की हैसियत से कोई कानून नहीं बनाया जा सकता, यानी कानून में रंगभेद या जातिभेद नहीं होना चाहिए। इसलिए उपर्युक्त दोनों कानून उनकी भाषा को देखते हुए तो सब पर लागू होते जान पड़ते थे, पर उनका हेतु केवल हिन्दुस्तानी कौम पर दबाव डालना था।

इन कानूनों ने मेरा काम बहुत बढ़ा दिया और हिन्दुस्तानियों में जागृति भी बढ़ाई। ये कानून हिन्दुस्तानियों को इस तरह समझा दिए गए कि उनकी बारीक-से-बारीक बातों से भी कोई हिन्दुस्तानी अनजान न रहे। हमने उनका उल्था भी प्रकाशित किया। झगड़ा विलायत पहुंचा। पर कानून नामंजूर नहीं हुए।

मेरा अधिकतर समय सार्वजनिक काम में ही जाने लगा। मनसुखलाल नाजर उन दिनों नेटाल में ही थे, यह मैं लिख चुका हूं। वह मेरे साथ रहे। वह लोककार्य में अधिक योग देने लगे जिससे मेरा काम कुछ हल्का हुआ।

मेरी अनुपस्थिति में सेठ आदमजी मियां खां ने अपने मंत्रीपद के दायित्व को बड़ी अच्छी तरह निभाया, सदस्य बढ़ाए और लगभग एक हजार पौंड स्थानीय कांग्रेस-कोष में बढ़ा दिए। यात्रियों में हुए हमले के कारण साथ ही उपर्युक्त भारतीयों में कानूनों के बनने से जो जागृति हुई उससे मैंने इस वृद्धि में और वृद्धि करने का प्रयत्न किया और कोष में लगभग 5,000 पौंड हो गए। मेरे मन में यह लोभ था कि अगर कांग्रेस का स्थाई कोष हो जाए और उसकी जमीन ले ली जाए तथा उसका भाड़ा आने लगे तो कांग्रेस निर्भय हो जाए। सार्वजनिक संस्था का यह मेरा पहला ही अनुभव था। मैंने अपना विचार साथियों के सामने रखा। उन्होंने उसका स्वागत किया। मकान लिए गए और किराए पर उठा दिए गए। उनके भाड़े से कांग्रेस का माहवार खर्च आसानी से चलने लगा। मिलकियत का मजबूत ट्रस्ट बन गया। आज इस तरह यह संपत्ति मौजूद है, पर अंदर-अंदर वह अंतर्कलह का मूल बन रही है। जायदाद का किराया आज अदालत में जमा होता है।

यह दुःखद प्रसंग तो मेरे दक्षिण अफ्रीका छोड़ने के बाद आया। पर सार्वजनिक संस्थाओं के लिए स्थाई कोष रखने के सम्बन्ध में मेरे विचार दक्षिण अफ्रीका में ही बदल गए थे। अनेक सार्वजनिक संस्थाओं की उत्पत्ति और उनके प्रबन्ध की जिम्मेदारी उठाने के बाद मेरी पक्की राय हो गई कि किसी भी सार्वजनिक संस्था को स्थाई कोष के भरोसे चलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इसमें उसकी नैतिक अधोगति का बीज छिपा रहता है।

सार्वजनिक संस्था का अर्थ है; लोगों की स्वीकृति और उनके पैसे से चलने वाली संस्था। ऐसी संस्था को जब सहायता न मिले तब उसे जीवित रहने का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अधिकार ही नहीं रहता। ऐसा देखने में आता है कि स्थाई संपत्ति के भरोसे चलने वाली संस्था लोकमत से स्वतंत्र हो जाती है और कितनी ही बार तो विपरीत आचरण भी करती है। ऐसा अनुभव हिन्दुस्तान में हमें पग-पग पर होता है। कितनी ही धार्मिक कहलाने वाली संस्थाओं के हिसाब-किताब का कुछ ठिकाना ही नहीं है, उनके ट्रस्टी ही उनके मालिक बन बैठे हैं और वे किसी के सामने जवाबदेह नहीं दिखाई देते। जैसे प्रकृति स्वयं रोज पैदा करती और रोज खाती है, वही नियम सार्वजनिक संस्थाओं का भी होना चाहिए। इस विषय में मुझे तनिक भी चिंता नहीं है। जिस संस्था को लोग सहायता देने को तैयार न हों उसे सार्वजनिक संस्था के रूप में जीवित रहने का हक नहीं है। साल-बसाल मिलने वाला चंदा; उन संस्थाओं की लोकप्रियता और उनके संचालकों की सच्चाई की कसौटी है और मेरी राय में हर एक संस्था को इस कसौटी पर कसा जाना चाहिए।

इस कथन से किसी को गलतफहमी नहीं होनी चाहिए। उपर्युक्त टीका ऐसी संस्थाओं पर घटित नहीं होती, जिन्हें मकान इत्यादि की आवश्यकता नहीं होती। पर सार्वजनिक संस्थाओं के रोज के खर्चे का आधार लोगों से मिलने वाला चंदा ही होना चाहिए।

ये विचार दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के सामने दृढ़ हुए। यह छह वर्ष की बड़ी लड़ाई स्थाई कोष के बिना चली, यद्यपि उसके लिए लाखों रुपयों की आवश्कयता थी। मुझे ऐसे अवसर याद हैं जब अगले दिन खर्च कहां से आएगा इसका मुझे पता न होता था। पर आगे जिन विषयों की चर्चा की जाने वाली है उनका जिक्र यहां नहीं करूंगा। उपर्युक्त मत का समर्थन इस कथा में पाठकों को उन प्रसंगों में यथास्थान मिल जाएगा।

5 : बच्चों की शिक्षा

सन् 1897 की जनवरी में, जब मैं डरबन में उतरा तब मेरे साथ तीन बच्चे थे। मेरा भानजा कोई दस बरस का, मेरा बड़ा लड़का कोई नौ बरस का और दूसरा लड़का पांच बरस का। इन सबको कहां पढ़ाएं?

गोरों के लिए खुले हुए स्कूलों में मैं अपने लड़कों को भेज सकता था, पर यह केवल कृपा और अपवाद रूप में हो सकता था। दूसरे हिन्दुस्तानी लड़के वहां नहीं पढ़ सकते थे। हिन्दुस्तानी लड़कों को पढ़ाने के लिए ईसाई मिशन के स्कूल थे। उनमें मैं अपने लड़कों को भेजने को तैयार न था। वहां दी जाने वाली शिक्षा मुझे पसंद न थी। गुजराती के द्वारा तो वहां शिक्षा मिलती ही कहां से? अंग्रेजी में ही पढ़ाई होती थी और बहुत कोशिश कीजिए तो अशुद्ध तमिल या हिन्दी में मिल सकती थी। इन और दूसरी कमियों को सहन करना मेरे लिए सम्भव न था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैं खुद लड़कों को पढ़ाने की थोड़ी कोशिश करता था, पर वह अत्यन्त अनियमित थी। गुजराती शिक्षक जैसा मैं चाहता था वैसा पा न सका था।

मैं परेशान हो गया। मुझे रुचने वाली शिक्षा बच्चों को दे सके, ऐसे अंग्रेजी शिक्षक के लिए विज्ञापन दिया। मैंने सोचा कि इससे जो शिक्षक मिलेगा उससे थोड़ी नियमित शिक्षा दिलाऊंगा और बाकी की पढ़ाई जैसी कुछ मुझसे बनेगी चलाऊंगा। एक अंग्रेज महिला को 7 पौंड मासिक पर रखकर गाड़ी कुछ आगे बढ़ाई।

बच्चों के साथ मेरी बातचीत केवल गुजराती में ही होती थी। उससे उन्हें कुछ गुजराती की शिक्षा मिल जाती थी। उन्हें देश लौटा देने को मैं तैयार न था। मुझे उस समय भी ऐसा लगता था कि बच्चों को मां-बाप से जुदा नहीं रहना चाहिए। जो शिक्षा सुव्यवस्थित घर में बच्चे अनायास पा जाते हैं वह छात्रालय में नहीं पा सकते। इससे अधिकतर वे मेरे साथ ही रहे। भानजे और बड़े लड़कों को मैंने कुछ महीने देश में भिन्न-भिन्न छात्रालयों में भेजा सही, पर वहां से उन्हें फौरन वापस बुला लिया। बाद को मेरा बड़ा लड़का, वय प्राप्त होने पर अपनी इच्छा से अहमदाबाद के हाई स्कूल में पढ़ने के लिए दक्षिण अफ्रीका छोड़कर आया था। मुझे ऐसा खयाल है कि अपने भानजे को जो शिक्षा मैं दे सका उससे उसे संतोष था। वह भरी जवानी में थोड़े ही दिनों की बीमारी के बाद चल बसा। मेरे दूसरे तीन लड़के कभी किसी स्कूल में गए ही नहीं। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के सिलसिले में मैंने जो स्कूल खोला था उसमें उनकी थोड़ी नियमित पढ़ाई हुई थी।

मेरे ये प्रयोग अधूरे थे। लड़कों को मैं स्वयं जितना समय देना चाहता था उतना न दे सका। इससे और दूसरे अनिवार्य संयोगों के कारण मैं जितना चाहता था उतना अक्षर-ज्ञान उन्हें नहीं दे सका। मेरे सब लड़कों को इस बारे में मुझसे कमोबेश शिकायत भी रही है; क्योंकि जब-जब 'बी.ए.', 'एम.ए.' और मैट्रिकुलेट से भी उनका साबका पड़ता तो वे स्कूल में न पढ़ सकने की कमी अपने आप में अनुभव करते हैं।

फिर भी मैं मानता हूं कि जो अनुभव-ज्ञान उन्हें मिला, माता-पिता का जो सहवास उन्हें प्राप्त हो सका, स्वतंत्रता का जो पदार्थ पाठ वे सीख पाए यदि मैंने उन्हें चाहे जैसे स्कूल में भेजने का और जो सादगी और सेवा-भाव उन्होंने सीखा वह मुझसे जुदा रहकर विलायत में या दक्षिण अफ्रीका में बनावटी तालीम उन्होंने पाई होती तो न सीख पाते बल्कि उनकी बनावटी रहन-सहन, मेरे देश-कार्य में कदाचित बाधक हो जाती।

अतः यद्यपि मैं जितना चाहता था, उतना अक्षरज्ञान उन्हें न दे सका, फिर भी अपने पिछले वर्षों का विचार करता हूं तो उनके प्रति मेरा जो धर्म था उसका मैंने यथाशक्ति पालन नहीं किया, ऐसा खयाल मुझे नहीं आता, न मुझे पश्चाताप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
होता है। इसके विपरीत अपने बड़े लड़के के बारे में मैं जो दुःखद परिणाम देखता हूं वह मेरे अधकचरे पूर्वकाल की प्रतिध्वनि है, ऐसा मुझे सदा भासित हुआ है। तब उसकी उम्र इतनी हो चुकी थी कि, जिसे मैंने हर प्रकार से अपना मोहकाल-वैभवकाल माना है, उसकी याद उसे बनी रहे। वह क्यों माने कि वह मेरा मोहकाल था! वह क्यों माने कि वह मेरा ज्ञानकाल था और उसके बाद हुए परिवर्तन अयोग्य और मोहजन्य थे? वह क्यों यह न माने कि उस समय मैं जगत के राजमार्ग से चल रहा था, इसलिए सुरक्षित था और बाद को किए हुए परिवर्तन मेरे अभिमान और अज्ञान की निशानी थे? यदि मेरे लड़के बैरिस्टर आदि हुए होते तो क्या बुराई होती? मुझे उनके पंख काट देने का क्या हक था? मैंने उन्हें ऐसी स्थिति में क्यों न रखा कि वे डिग्रियां लेकर मनचाहा जीवन-पथ चुन सकें? ऐसी दलील मेरे कितने ही दोस्तों ने भी सामने रखी हैं।

मुझे इस दलील में कुछ तथ्य नहीं दिखाई दिया। कितने ही विद्यार्थियों से मेरा साबका पड़ा है। दूसरे बालकों पर मैंने दूसरे प्रयोग भी किए हैं या कराने में सहायक हुआ हूं, उनके नतीजे भी मैंने देखे हैं। वे बालक मेरे लड़कों के हम-उम्र हैं। मैं नहीं मानता कि वे मेरे लड़कों से मनुष्यत्व में आगे बढ़े हुए हैं या मेरे लड़के उनसे कुछ अधिक सीख सकते हैं।

फिर भी प्रयोगों के अंतिम परिणाम तो भविष्य ही बता सकता है। यहां इस विषय की चर्चा करने का प्रयोजन इतना ही है कि मनुष्य जाति की उत्क्रांति का अध्ययन करने वाले, गृहशिक्षा और स्कूली पढ़ाई के भेद का और माता-पिता के अपने जीवन में किए हुए फेर-फारों का उनके बच्चों पर क्या असर होता है, इसका कुछ अंदाजा कर सकें।

इसके सिवा, सत्य का पुजारी इस प्रयोग से यह देख सकें कि सत्य की आराधना उसे कहां तक ले जाती है और स्वतंत्रता देवी अपने उपासक से कितना बलिदान चाहती है। यह भी इस प्रकरण का उद्देश्य है। लड़कों को अपने साथ रखते हुए भी यदि मैंने आत्मसम्मान की परवा न की होती, यदि मैंने यह विचार न रखा होता कि दूसरे हिन्दुस्तानी बच्चे जिसे नहीं पा सकते, मुझे अपने लड़कों के लिए उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिए, तो मैं अपने लड़कों को अक्षर-ज्ञान जरूर दिला सकता। पर तब स्वतंत्रता और आत्मसम्मान का जो पदार्थ-पाठ उन्होंने सीखा है वह न सीख पाते और जहां स्वतंत्रता और अक्षर-ज्ञान में ही चुनाव करना हो वहां कौन कहेगा कि स्वतंत्रता अक्षर-ज्ञान से हजार गुना बढ़कर नहीं है?

1920 में जिन नवयुवकों को मैंने स्वतंत्रता-घातक स्कूल और कॉलेज छोड़ने का आह्वान किया था और जिनसे मैंने कहा था कि स्वतंत्रता के लिए निरक्षर रहकर सार्वजनिक सड़क पर मिट्टी फोड़ना गुलामी में रहकर अक्षरज्ञान प्राप्त करने से अच्छा है, वे अब मेरे कथन का मूलतत्त्व शायद समझ सकेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७ : सेवावृत्ति

मेरा धंधा अच्छा चल रहा था, पर इससे मुझे संतोष न मिलता था। जीवन अधिक सादा होना चाहिए, कुछ शारीरिक सेवाकार्य होना चाहिए, यह मंथन मन में चलता ही रहता था।

इतने में एक दिन एक अपंग, कुष्ठ पीड़ित मनुष्य मेरे यहां आया। उसे खाना देकर भगा देने को दिल तैयार न हुआ। उसे एक कोठरी में टिकाया। उसके घाव साफ किए और उसकी सेवा टहल की।

पर यह बात अधिक दिन न चल सकती थी। घर में हमेशा के लिए उसे रख लेने का मेरे पास सुभीता न था, न मेरी हिम्मत थी। अतः मैंने उसे गिरमिटियों के लिए खुले हुए सरकारी अस्पताल भेज दिया।

मेरे चित्त को शांति न मिली। इस तरह का सेवा-शुश्रूषा का कुछ काम सदा किया करूं तो कैसा अच्छा हो। डॉ. बूथ सेंट अडम्स मिशन के अध्यक्ष थे। वह सदा जो कोई वहां जाता उसे मुफ्त दवा दिया करते थे। बड़े सज्जन और दयालु थे। पारसी रुस्तमजी की उदारता से डॉ. बूथ के निरीक्षण में एक छोटा-सा अस्पताल खुला। मेरे मन में बड़ी इच्छा हुई कि इस अस्पताल में नर्स के रूप में काम करूं। उसमें दवा देने का काम एक-से-दो घंटे तक का रहता था। दवा बनाकर देने के लिए किसी वेतनभोगी कर्मचारी या स्वयंसेवक की आवश्यकता थी। मैंने यह काम अपने ऊपर लेने और उतना समय अपने कामों से बचाने का निश्चय किया। मेरा वकालत का अधिकतर काम तो दफ्तर में बैठे-बैठे मशविरा देना, मसविदे बनाना या झगड़े निपटाना होता था। कुछ मामले मजिस्ट्रेट की कचहरी में होते थे। उनमें से अधिकांश तो ऐसे होते थे जिनमें किसी को कोई एतराज न हो। ऐसे मामलों की पैरवी मि. खान ने, जो मुझसे पीछे आए थे और उन दिनों मेरे साथ ही रहते थे, अपने ऊपर ले ली और मैं उस छोटे-से अस्पताल में काम करने लगा।

मुझे रोज सवेरे वहां जाना पड़ता था। आने-जाने और काम करने में लगभग दो घंटे लग जाते थे। इस काम से मुझे कुछ शांति मिली। मेरा काम था रोगी का रोग समझकर डॉक्टर को समझाना और जो दवा बताए वह बनाकर रोगी को देता। इस काम से पीड़ित भारतीयों के साथ मेरा अधिक निकट का सम्बन्ध जुड़ा। उनका बड़ा भाग तो तमिल, तेलगू अथवा उत्तर भारत के गिरमिटियों का था।

यह अनुभव मेरे लिए आगे चलकर बड़े काम का साबित हुआ। बोअर युद्ध के समय घायलों की मरहम-पट्टी और दूसरे रोगियों की सेवा-शुश्रूषा में मुझे इससे बड़ी मदद मिली।

बच्चों के पालन-पोषण का प्रश्न तो मेरे सामने था ही। दक्षिण अफ्रीका में मेरे दो लड़के और हुए। उनको किस तरह पालें-पोसें, इस मसले को हल करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में मुझे इस अनुभव से अच्छी सहायता मिली। ऐसा स्वतंत्र स्वभाव मुझे बहुत परेशानी में डाल दिया करता था, आज भी डाल देता है। हम दोनों ने प्रसव कार्य आदि को शास्त्रीय पद्धति के अनुसार करने का निश्चय कर रखा था। अतः डॉक्टर और नर्स का प्रबंध होते हुए भी शंका थी कि ऐन मौके पर डॉक्टर न मिला और दाई भाग गई तो मेरी क्या दशा होगी? दाई तो हिन्दुस्तान की रखनी थी। सीखी हुई हिन्दुस्तानी दाई हिन्दुस्तान में ही कठिनाई से मिलती है; दक्षिण अफ्रीका की तो बात ही क्या? अतः मैंने बच्चों के पालन-पोषण का अध्ययन कर लिया। डॉ. त्रिभुवनदास की 'मांने शिखामण' (माता की सीख) नामक पुस्तक पढ़ी। कह सकता हूं कि उसमें कुछ कमबेशी करके अंतिम दो बच्चों को मैंने खुद ही पाला-पोसा। दाई की सहायता हर बार थोड़े दिन-दो महीने से अधिक तो नहीं ही ली, वह भी खासकर धर्मपत्नी की सेवा के लिए ही। बच्चों को नहलाने-धुलाने का काम आरम्भ में मेरे ही हाथों होता था।

अंतिम बच्चे के जन्म-समय में मेरी पूरी परीक्षा हो गई। पत्नी को प्रसव-वेदना यकायक आरम्भ हुई। डॉक्टर घर पर न थे। दाई को बुलाना था। वह पास होती तो भी उससे प्रसव कराने का काम हो न सकता था। प्रसव कार्य का सारा काम मुझे अपने हाथों ही करना पड़ा। सौभाग्यवश मैंने 'मांने शिखामण' पुस्तक में इस विषय को ध्यानपूर्वक पढ़ लिया था, इसलिए मुझे परेशानी न हुई।

मैंने देखा कि बच्चों का योग्य रीति से पालन-पोषण हो सके, इसलिए मां-बाप दोनों को शिशुपालन आदि का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। मैंने तो इस विषय में अपनी सावधानी का लाभ पग-पग पर मिलते देखा है। जो साधारण स्वास्थ्य मेरे लड़के आज भोग रहे हैं वह, मैंने इस विषय का साधारण ज्ञान प्राप्त करके उसका उपयोग न किया होता तो, वे न भोग पाते। हम लोगों में यह वहम फैला हुआ है कि पहले पांच वर्षों में बच्चे को शिक्षा-प्राप्ति की आवश्यकता नहीं होती। सच तो यह है कि पहले पांच वर्षों में बच्चे को जो मिलता है वह फिर कभी मिलता ही नहीं। अपने अनुभव से मैं कह सकता हूं कि बच्चे की शिक्षा मां के पेट से आरम्भ होती है। गर्भाधान काल की माता-पिता की शारीरिक और मानसिक स्थिति का भी प्रभाव बालक पर पड़ता है। बच्चा गर्भ काल की माता की प्रकृति, उसके आहार-विहार के अच्छे-बुरे फल की विरासत लेकर जन्मता है। जन्म के अनंतर वह माता-पिता का अनुकरण करने लग जाता है और खुद असहाय होने के कारण अपने विकास के लिए मां-बाप पर अवलम्बित रहता है।

जो समझदार दंपती इस बात को समझेंगे वे तो पति-पत्नी के समागम को कभी विषय-वासना की तृप्ति का साधन न बनाएंगे; बल्कि जब उन्हें संतान की चाह होगी तभी सहवास करेंगे। रतिसुख कोई स्वतंत्र वस्तु है, यह मानना मुझे तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
घोर अज्ञान ही लगता है। जनन-क्रिया पर संसार का अस्तित्व अवलंबित है। संसार ईश्वर की लीला-स्थल है, उसकी महिमा का प्रतिबिम्ब है। संसार के सुव्यवस्थित विकास के लिए ही रति-क्रिया का निर्माण हुआ है, जो यह समझाता है, वह विषय-वासना को महा प्रयत्न करके अंकुश में रखेगा और रति-सुख भोगने के फलस्वरूप भी होने वाली संतति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संरक्षण के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता है उसको प्राप्त करेगा और उसका लाभ अपनी संतान को देगा।

7 : ब्रह्मचर्य-1

अब ब्रह्मचर्य के विषय में विचार करने का समय आ गया है। एक पत्नी-व्रत तो विवाहकाल से ही मेरे हृदय में बस रहा था। पत्नी के प्रति वफादारी मेरे सत्य के व्रत का अंग थी। पर अपनी स्त्री के साथ भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, यह बात दक्षिण अफ्रीका में ही स्पष्ट रूप से मेरी समझ में आई। किस प्रसंग से अथवा किस पुस्तक के प्रभाव से यह विचार मेरे मन में उपजा, यह आज मुझे ठीक याद नहीं आता। इतना स्मरण है कि इसमें रायचंदभाई का प्रभाव प्रधान था।

उनके साथ हुआ एक सम्वाद मुझे याद है। मैं एक बार ग्लैडस्टन के प्रति मिसेज ग्लैडस्टन के प्रेम की प्रशंसा कर रहा था। मैंने कहीं पढ़ा था कि मिसेज ग्लैडस्टन आम सभा में भी अपने पति को चाय बनाकर पिलाया करती थीं। इस चीज का पालन इस नियमबद्ध दम्पति के जीवन का एक नियम हो गया था। मैंने कवि को वह प्रसंग पढ़कर सुनाया और इस सिलसिले में मैंने दम्पति-प्रेम की स्तुति की। रायचंदभाई ने कहा "इसमें तुम्हें महत्त्व कहां दिखाई देता है? मिसेज ग्लैडस्टन के पत्नीत्व में या सेवाभाव में? वह महिला ग्लैडस्टन की बहन होती तो? या उनकी स्वामिभक्त चाकरानी होती और उतने ही प्रेम से चाय देती तो? ऐसी बहनों, ऐसे नौकरों के दृष्टांत क्या हमें आज नहीं मिलते? और यदि नारी-जाति के बदले ऐसा प्रेम नर-जाति में देखा होता तो क्या तुम्हें आनंददायक आश्चर्य न होता? मेरी बातों पर विचार करना।"

रायचंदभाई स्वयं विवाहित थे। ऐसा याद आता है कि उस समय तो मुझे उनके वचन कठोर लगे। पर उन वचनों ने मुझे लौह चुंबक की भांति पकड़ लिया। पुरुष चाकर की ऐसी स्वामिभक्ति का मूल्य, पत्नी की निष्ठा के मूल्य से तो हजार गुना अधिक हो जाता है। पति-पत्नी में ऐक्य होता है, इसलिए उनमें परस्पर प्रेम होना कोई अचरज की बात नहीं है। नौकर-मालिक के बीच उस प्रकार का प्रेम यत्नपूर्वक उत्पन्न करना पड़ता है। दिन-दिन कवि के वचन का बल मेरी दृष्टि में बढ़ता जान पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मुझे पत्नी के साथ कैसा सम्बन्ध रखना चाहिए? पत्नी को विषयभोग का साधन बनाने में पत्नी के प्रति निष्ठा कहां रहती है? जब तक मैं विषय-वासना के अधीन रहूं, तब तक तो मेरी वफादारी की कीमत मामूली-सी ही रहेगी। यहां मुझे यह बता देना चाहिए कि हमारे पारस्परिक सम्बन्ध में पत्नी की ओर से कभी आक्रमण हुआ ही नहीं। इस दृष्टि से मैं जब चाहूं तभी ब्रह्मचर्य पालन का रास्ता मेरे लिए खुला था। मेरी आसक्ति ही मुझे रोक रही थी।

जाग जाने के बाद भी दो बार तो मैं विफल ही रहा। प्रयत्न करता, पर गिर पड़ता। प्रयत्न में मुख्य उद्देश्य ऊंचा नहीं था। वह संतति-निग्रहमात्र था। उसके बाहरी उपायों के बारे में मैंने विलायत में कुछ पढ़ा था। डॉ. एलिंसन के इन उपायों का प्रचार करने का उल्लेख अन्नाहार-प्रकरण में कर चुका हूं। उसका थोड़ा और क्षणिक प्रभाव मुझ पर पड़ा था। पर मि. हिल्स ने जो उसका विरोध और अंतर्साधना का-संयम का-समर्थन किया उसका असर बहुत ज्यादा पड़ा और अनुभव से वह चिरस्थायी बन गया। इससे संतानोत्पत्ति की अनावश्यकता समझ में आते ही संयम पालन का प्रयत्न आरम्भ किया।

संयम-पालन की कठिनाइयों का पार न था। अलग खाटें रखीं; रात को थककर ही सोने की कोशिश की। इस सारे प्रयत्न का, अधिक परिणाम मुझे तुरंत नहीं दिखाई पड़ा। पर आज भूतकाल पर दृष्टि डालता हूं तो देखता हूं कि इन सारे प्रयत्नों ने मुझे अंतिम निश्चय करने का बल दिया।

अंतिम निश्चय तो कहीं 1906 ईसवी में ही कर पाया। उस समय सत्याग्रह का आरम्भ नहीं हुआ था। स्वप्न में भी मुझे उसका खयाल न था। बोअर युद्ध के बाद नेटाल में जुलू-विद्रोह हुआ। उन दिनों मैं जोहान्सबर्ग में वकालत करता था। मेरे मन ने कहा कि मुझे इस 'बलवे' के सिलसिले में भी अपनी सेवा नेटाल-सरकार को अर्पण करनी चाहिए। मैंने वह अर्पण की और वह स्वीकृत हुई। उसका वर्णन आगे आएगा; पर इस सेवा के सिलसिले में मेरे अंदर गहरे विचार उत्पन्न हुए। अपने स्वभाव के अनुसार मैंने साथियों से उसकी चर्चा की। मुझे ऐसा दिखाई दिया कि बच्चे पैदा करना और उनका पालन-पोषण सार्वजनिक सेवा के विरोधी हैं। इस 'बलवे' में सेवाकार्य के निमित्त दाखिल होने के लिए मुझे अपनी जोहान्सबर्ग की गृहस्थी उजाड़ देनी पड़ी। टीम-टाम से जमाए हुए घर और साज-सामान का, जिन्हें बसाए मुश्किल से एक महीना हुआ होगा, मैंने त्याग कर दिया। पत्नी और लड़कों को फिनिक्स में रख दिया और मैं डोली-बरदारों की टुकड़ी लेकर निकल पड़ा। कठिन कूच करते हुए मैंने देखा कि यदि मुझे लोकसेवा में ही तन्मय होना हो तो पुत्रैषणा और वित्तैषणा का भी त्याग और वानप्रस्थ-धर्म पालन करना होगा।

'बलवे' में तो मुझे डेढ़ महीने से अधिक न देना पड़ा। पर यह छह हफ्तों का समय मेरे जीवन का बहुत ही मूल्यवान समय था। व्रत का महत्त्व इस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मेरी समझ में अधिक-से-अधिक आया। मैंने देखा कि व्रत बंधन का नहीं, बल्कि मुक्ति का द्वार है। आज तक अपने प्रयत्नों में जितनी चाहिए उतनी सफलता न पाने का कारण मेरा कृतनिश्चय न होना था। मुझे अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं था। मैंने देखा कि व्रत से न बंधकर मनुष्य मोह में पड़ता है। व्रत से बंधना व्यभिचार से निकलकर एक-पत्नीव्रत का पालन करने के समान है। 'मैं प्रयत्न करना तो ठीक समझता हूं, पर व्रत में नहीं बंधना चाहता', यह वचन निर्बलता की निशानी है। इसमें सूक्ष्म रूप से भोग-वासना छिपी है। त्याज्य वस्तु के सर्वथा त्याग में हानि कैसे हो सकती है? जो सांप मुझे डसने वाला है, मैं उसका निश्चयपूर्वक त्याग करता हूं; त्याग का प्रयत्नमात्र नहीं करता। मैं जानता हूं कि केवल प्रयत्न करके रह जाने का फल मौत हो सकता है। प्रयत्न में सांप की विकरालता के स्पष्ट ज्ञान का अभाव है। इसी प्रकार जिस वस्तु के त्याग का इष्ट होने के विषय में हमें स्पष्ट दर्शन-निश्चयात्मक ज्ञान-नहीं हुआ है, यह सिद्ध होता है। 'मेरा विचार आगे चलकर बदल जाए तो?' यह शंका करके अक्सर हम व्रत लेते हुए डरते हैं। इस विचार में स्पष्ट दर्शन का अभाव है। इसी से निष्कुलानंद ने कहा है:

'त्याग न टके रे वैराग बिना।।'

जब किसी वस्तु के विषय में सम्पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हो गया हो तब उसके विषय में व्रत लेना अनिवार्य हो जाता है।

8 : ब्रह्मचर्य-2

भलीभांति चर्चा और प्रौढ़ विचार के बाद सन् 1906 में व्रत लिया। व्रत लेने के समय तक मैंने धर्मपत्नी से सलाह नहीं की थी; पर लेते समय की। उसकी ओर से कोई विरोध नहीं हुआ।

यह व्रत लेते समय तो मुझे बहुत कठिन लगा। मेरी शक्ति अल्प थी। विकारों को कैसे दबा पाऊंगा? अपनी पत्नी के साथ सविकार सम्बन्ध का त्याग कुछ अनोखी-सी बात लगती थी। फिर भी मेरा कर्त्तव्य यही है, यह मैं साफ देख सकता था। मेरी नीयत शुद्ध थी। शक्ति भगवान देगा, यह भरोसा रखकर मैं कूद पड़ा।

आज बीस बरस बाद, उस व्रत को स्मरण करके मुझे सानंद आश्चर्य होता है। संयम-पालन की वृत्ति तो 1901 से ही प्रबल थी और मैं उसे पाल भी रहा था, पर जो स्वतंत्रता और आनंद मैं अब पाने लगा उसकी 1906 से पहले प्राप्ति की याद मुझे नहीं है। कारण यह है कि उस समय मैं वासनाबद्ध था, किसी भी क्षण उसके वश में हो जा सकता था। अब वासना मुझ पर सवारी गांठने में असमर्थ हो गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसके सिवा अब ब्रह्मचर्य की महिमा मैं अधिकाधिक समझने लगा। व्रत मैंने फिनिक्स में लिया। घायलों की सेवा के काम से छुट्टी पाने पर मैं फिनिक्स गया। वहां से मुझे तुरंत जोहान्सबर्ग जाना था। मैं वहां गया और महीने भर के अंदर ही सत्याग्रह-लड़ाई की नींव पड़ी। मानो यह ब्रह्मचर्य व्रत उसके लिए मुझे तैयार करने को ही आया हो। सत्याग्रह की योजना मैंने कुछ पहले से नहीं बना रखी थी। उसकी उत्पत्ति अनायास, अनिच्छापूर्वक हुई। पर मैंने देखा कि उसके पहले के मेरे सब कदम-फिनिक्स जाना, जोहान्सबर्ग का भारी घर-खर्च घटा देना और अंत में ब्रह्मचर्य-व्रत लेना-मानो उसकी तैयारी रूप थे।

ब्रह्मचर्य के सम्पूर्ण पालन का अर्थ ब्रह्मदर्शन है, यह ज्ञान मुझे शास्त्र के द्वारा नहीं हुआ। यह अर्थ मेरे सामने शनैः-शनैः अनुभवसिद्ध होता गया। तत्सम्बन्धी शास्त्र-वाक्य मैंने बाद को पढ़े। ब्रह्मचर्य में शरीर-रक्षण, बुद्धि-रक्षण और आत्मा का रक्षण है, व्रत लेने के बाद इसका मुझे दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव होने लगा। कारण, अब ब्रह्मचर्य को घोर तपस्या रूप रहने देने के बदले रसमय बनाना था, उसी के सहारे निभाना था। अतः अब उसकी नित नई खूबियों के दर्शन होने लगे।

यद्यपि मैं इस व्रत में इस तरह रस लूट रहा था, पर कोई यह न समझे कि उसकी कठिनाई का अनुभव नहीं करता था। आज छप्पन वर्ष पूरे हो चुके हैं फिर भी कठिनता का अनुभव तो होता ही है। वह असिधारा व्रत है, इसका अनुभव दिन-दिन अधिकाधिक हो रहा है। इस व्रत में सदा जाग्रत रहने की आवश्यकता दिखाई देती है।

ब्रह्मचर्य का पालन करना हो तो स्वादेंद्रिय पर काबू करना ही चाहिए। मेरा अपना अनुभव है कि जीभ को जीत लेने पर ब्रह्मचर्य का पालन अतिशय सरल है। अतः इसके बाद के मेरे खुराक के प्रयोग केवल अन्नाहार की नहीं, बल्कि ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे। प्रयोग करके मैंने अनुभव किया कि खुराक थोड़ी, सादी, बिना मिर्च-मसाले की और कुदरती हालत में होनी चाहिए। ब्रह्मचारी का भोजन वनपक्व फल है, यह अपने ऊपर तो छह वर्ष तक प्रयोग करके मैं देख चुका हूं। खुश्क और ताजे पेड़-पके फलों पर रहते समय, जिस निर्विकार अवस्था का अनुभव मैं करता था वह खुराक में परिवर्तन करने के बाद नहीं हुआ। फलाहार-काल में ब्रह्मचर्य सहज था, दुग्धाहार में वह कष्ट-साध्य हो गया। फलाहार से दुग्धाहार पर मुझे क्यों जाना पड़ा, इसकी चर्चा यथास्थान होगी। यहां तो इतना ही कहना काफी है कि ब्रह्मचारी के लिए दूध का आहार विघ्नकारक है, इस विषय में मुझे शंका नहीं है। इससे किसी को यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि ब्रह्मचारी मात्र के लिए दूध का त्याग इष्ट है। ब्रह्मचर्य पर खुराक का असर कितना पड़ता है, इस विषय में बहुत प्रयोगों की आवश्यकता है। दूध के समान स्नायुपोषक और उतनी ही आसानी से पचने वाला फलाहार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अभी तक मुझे दूसरा नहीं मिला, न कोई वैद्य, हकीम या डॉक्टर वैसे फल या अन्न बता सका। अतः दूध को विकारोत्पादक वस्तु जानते-मानते हुए भी, मैं उसके त्याग की सलाह फिलहाल किसी को नहीं दे सकता।

बाह्य उपचारों में जैसे खुराक की किस्म और परिमाण की मर्यादा की आवश्यकता है वही बात उपवास की भी समझनी चाहिए। इंद्रियां ऐसी बलवान हैं कि उन्हें चारों ओर से, ऊपर से और नीचे से-(इस प्रकार) दशों दिशाओं से, घेरा जाए तभी वे वश में रहती हैं। इतना तो सभी जानते हैं कि खुराक के बिना वे काम नहीं कर सकतीं। इसलिए इंद्रिय दमन के निमित्त इच्छापूर्वक किए हुए उपवास से इंद्रिय दमन में बड़ी मदद मिलती है, इस विषय में मुझे तनिक भी शंका नहीं। कितने लोग उपवास करते हुए भी जो असफल होते हैं, उसका कारण यह है कि उपवास ही सब कर देगा, यह मानकर वे स्थूल उपवास मात्र करते हैं और मन से छप्पन प्रकार के भोगों का स्वाद लेते रहते हैं। उपवास-काल में उपवास के बाद क्या खाऊंगा, इसका मन से स्वाद लेते रहते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि न स्वादेंद्रिय पर काबू मिला और न जननेंद्रिय पर। उपवास की सच्ची उपयोगिता वहीं होती है जहां मनुष्य का मन भी देह दमन का साथ देता है। मतलब यह कि मन को विषय-भोग के प्रति विराग होना चाहिए। विषय की जड़ें मन में रहती हैं। उपवास आदि साधनों से बहुत मदद मिलती है पर आवश्यकता से कम ही मिलती हैं। कह सकते हैं कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयासक्त रह सकता है। पर उपवास के बिना विषयासक्ति का जड़-मूल से नाश होना सम्भव नहीं है। इसलिए ब्रह्मचर्य के पालन में उपवास अनिवार्य अंग है।

ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले बहुतेरे असफल होते हैं क्योंकि वे खाने-पीने, देखने-सुनने इत्यादि में अब्रह्मचारी जैसे रहना चाहते हैं और फिर भी ब्रह्मचर्य पालन की इच्छा रखते हैं। यह प्रयत्न वैसा ही कहा जाएगा जैसे गरमी में जाड़े का मजा लेने की कोशिश करना। संयमी के और स्वच्छंदाचारी के, भोगी के और त्यागी के जीवन में भेद होना अनिवार्य है। समता ऊपर से देखने भर को होती है, भेद स्पष्ट दिखाई देना चाहिए। आंखों से काम दोनों लेते हैं; पर ब्रह्मचारी देवदर्शन करता है, भोगी नाटक-सिनेमा में रमा रहता है। कानों से काम दोनों लेते हैं, पर एक ईश्वर-भजन सुनता है, दूसरे को विलासी गाने सुनने में मजा आता है। जागते दोनों हैं, पर एक जाग्रत अवस्था में हृदय-मंदिर में विराजने वाले राम को भजता है, दूसरा नाच-रंग की धुन में सोना भूल जाता है। खाते दोनों हैं, पर एक शरीर रूपी तीर्थ क्षेत्र की रक्षा भर के लिए देह को भाड़ा देता है, दूसरा स्वाद के लिए देह में भांति-भांति की चीजें भरकर उसे दुर्गन्धित कर डालता है। यों दोनों के आचार-विचार में भेद रहा ही करता है और यह अंतर दिन-दिन बढ़ता जाता है, घटता नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ब्रह्मचर्य का अर्थ है, मन-वचन-काया से सब इंद्रियों का संयम। इस संयम के लिए उपर्युक्त त्यागों की आवश्यकता है, यह मुझे दिन-दिन दिखाई देता गया। आज भी दिखाई दे रहा है। त्याग के क्षेत्र की सीमा ही नहीं है, वैसे ही जैसे ब्रह्मचर्य की महिमा की नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य थोड़े प्रयत्न से सधने वाला नहीं है। करोड़ों जनों के लिए तो यह सदा केवल आदर्श रूप रहेगा क्योंकि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी अपनी त्रुटियों का नित्य दर्शन करेगा, अपने अंदर कोने-अन्तरे में छिपे हुए विकारों को पहचान लेगा और उनको निकालने का सतत प्रयत्न करता रहेगा। जब तक विचारों पर ऐसा काबू नहीं मिलता कि चाहे बिना एक भी विचार मन में न आए, तब तक ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण नहीं है। विचार मात्र विकार हैं। उन्हें वश में करने का अर्थ है; मन को वश में करना और मन को वश करना तो वायु को वश में करने से कठिन है। फिर भी अगर आत्मा है तो यह वस्तु भी साध्य है ही। हमारे रास्ते में कठिनाइयां आती हैं, इसलिए कोई यह न मान ले कि यह असाध्य है। यह परम अर्थ है और परम अर्थ के लिए परमप्रयत्न की आवश्यकता हो, इसमें आश्चर्य ही क्या?

पर ऐसा ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्नसाध्य नहीं है, यह मैंने देश में आने के बाद समझा। कह सकता हूं कि तब तक मैं मोहग्रस्त था। मैंने मान लिया था कि फलाहार से विकार जड़मूल से चले जाते हैं और अभिमानवश यह मानता था कि अब मुझे कुछ करना ही नहीं है।

पर इस विचार के प्रकरण तक पहुंचने में अभी देर है, तब तक इतना कह देना आवश्यक है कि जो लोग ईश्वर-साक्षात्कार के लिए मेरी व्याख्या वाले ब्रह्मचर्य वाले ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं, वे यदि अपने प्रयत्न के साथ ही ईश्वर पर श्रद्धा रखने वाले होंगे तो उनके निराश होने का कोई कारण नहीं है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।[1]

(गीता 2। 59)

अतः रामनाम और रामकृपा-यही आत्मार्थी का अंतिम साधन है, इस वस्तु का साक्षात्कार मैंने हिन्दुस्तान में किया।

---

1. निराहारी के विषय तो शांत हो जाते हैं, पर वासना का शमन नहीं होता। ईश्वर-दर्शन से वासना भी शांत हो जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9 : सादगी

भोग भोगना तो आरंभ किया, पर वह टिक न सका। घर का ठाट-बाट जमाने में मुझे उस पर मोह नहीं उपजा, अतः घर बसाने के साथ ही मैंने खर्च घटाना शुरू कर दिया। धोबी का खर्च भी अधिक जान पड़ा। दूसरे वह वक्त पर कपड़े न देता था, इससे दो-तीन दर्जन कमीजों और इतने ही कॉलरों से मेरा काम न चलता था। कॉलर रोज बदलता। कमीज रोज नहीं तो एक दिन बीच में देकर बदलता था। इससे दोहरा खर्च पड़ता था। यह मुझे बेकार लगा। अतः धुलाई का सामान जुटाया। धुलाई-कला पर पुस्तक पढ़कर धोना सीखा। पत्नी को भी सिखाया। काम का बोझ कुछ बढ़ा तो जरूर, पर नई चीज थी, इससे करने में मजा आता।

मेरा पहला अपने हाथों से धोया हुआ कॉलर तो मुझे कभी न भूलेगा। उसमें मांड़ी अधिक लग गई और इस्त्री काफी गरम नहीं थी। कॉलर जल जाने के डर से इस्त्री को भली-भांति दबाया नहीं, इससे कॉलर में कड़ापन तो आ गया, पर उसमें से मांड़ी झड़ा करती थी।

वही कॉलर लगाकर मैं कचहरी गया और वहां बैरिस्टरों के विनोद का साधन बन गया। पर ऐसा मजाक सह लेने की शक्ति उस समय भी मुझ में यथेष्ट थी।

"कॉलर धोने का यह पहला ही मौका है, इसलिए इससे मांड़ी झड़ती है। मुझे इससे कोई अड़चन नहीं होती और आप सब लोगों के लिए इतनी दिल्लगी का सामान जुटा दिया सो घाते में रहा।" मैंने यह कैफियत दी।

एक मित्र ने पूछा, "पर क्या धोबियों का अकाल है?"

"यहां धोबी का खर्च मुझे तो असह्य लगता है। जितनी कॉलर की कीमत उतनी धुलाई दो और ऊपर से धोबी की गुलामी भी करो। इससे तो मैं अपने हाथ से धो लेना अधिक अच्छा समझता हूं।"

स्वावलम्बन की यह खूबी मैं मित्रों को न समझा पाया।

मैं कह सकता हूं कि अंत में धोबी के धंधे में अपने कामभर की कुशलता मैंने प्राप्त कर ली। घर की धुलाई धोबी की धुलाई से किसी तरह घटिया नहीं थी। कॉलर की सख्ती और चमक भी धोबी के धोए कालर से उन्नीस न थी।

गोखले के पास स्व. महादेव गोविन्द रानडे की प्रसाद स्वरूप एक चादर थी। इस चादर को वह बड़े जतन से रखते थे और विशेष अवसरों पर ही काम में लाते थे। जोहान्सबर्ग में उनके सम्मान में जो भोज दिया गया था वह सम्मेलन का महत्त्वपूर्ण अवसर था। दक्षिण अफ्रीका में यह उनका बड़े-से-बड़ा भाषण था। अतः उस अवसर पर उन्हें उस चादर का उपयोग करना था। उसमें शिकन पड़ी हुई थी और उस पर इस्त्री करने की आवश्यकता थी। धोबी को बुलाकर तुरन्त इस्त्री करा देना सम्भव न था। मैंने अपनी कला का उपयोग करने की इजाजत मांगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"आपकी वकालत का तो मैं विश्वास कर लूंगा, पर इस चादर पर अपनी धोबीगिरी दिखाने की इजाजत मैं आपको नहीं दे सकता। इस चादर पर आपने दाग लगा दिया तो? इसकी कीमत आप जानते हैं?" यह कहकर बड़े उल्लास से प्रसाद की कथा मुझे कह सुनाई।

मैंने फिर प्रार्थना की और दाग न पड़ने की जिम्मेदारी ली। मुझे इस्त्री करने की अनुमति मिली। मुझे अपनी कुशलता का सर्टिफिकेट मिल गया! अब दुनिया मुझे सर्टिफिकेट न दे तो उससे क्या होता है? जैसे धोबी की गुलामी से छूटा वैसे ही नाई की गुलामी से भी छूटने का अवसर आ गया। हजामत तो विलायत जाने वाले सभी हाथ से बनाना सीख ही लेते हैं। पर बाल छंटाई कोई सीखता हो, इसका खयाल मुझे नहीं है। प्रिटोरिया में मैं एक बार एक अंग्रेज हज्जाम की दुकान पर पहुंचा। उसने मेरी हजामत बनाने से साफ इनकार किया और इनकार करते हुए जो अपमान किया वह घाते में रहा। मुझे दुःख हुआ। मैं बाजार पहुंचा और बाल काटने की कल खरीद ली। घर आकर शीशे के सामने खड़े होकर बाल कतरे। जैसे-तैसे बाल कट तो गए, पर पीछे के बाल काटने में बड़ी कठिनाई हुई। सीधे नहीं ही कटे। कचहरी में खूब कहकहा लगा। "तुम्हारे सिर पर चूहा तो नहीं चढ़ गया था?" मैंने कहा, "नहीं जनाब! मेरे काले सिर को सफेद हज्जाम कैसे छुए। इसलिए जैसे-तैसे अपने हाथ से काटे बाल मुझे अधिक प्यारे हैं।"

इस उत्तर से मित्रों को अचरज नहीं हुआ। सच पूछिए तो उस हज्जाम का कोई दोष नहीं था। वह काले चमड़े वालों के बाल काटने लगे तो उसकी रोजी मारी जाए। हमीं लोग कहां अपने अछूतों के बाल उच्च वर्ण के हिन्दुओं के हज्जामों को काटने देते हैं? इसका बदला मुझे दक्षिण अफ्रीका में एक नहीं, अनेक बार मिला और यह हमारी करनी का फल है। मेरा यह विश्वास होने के कारण इस बात से मुझे कभी रोष नहीं हुआ।

स्वावलम्बन और सादगी के शौक ने आगे चलकर जो तीव्र रूप प्राप्त किया, उसका वर्णन उचित स्थान पर होगा। उसकी जड़ तो मेरे अंदर आरम्भ से ही थी। उसे फलने-फूलने के लिए केवल सिंचाई की आवश्यकता थी। वह मिल गई।

10 : बोअर-युद्ध

सन् 1897 से 99 के बीच हुए जीव के अन्य अनेक अनुभवों को छोड़कर अब बोअर-युद्ध पर आता हूं। यह युद्ध जब हुआ उस समय मेरा झुकाव बोअरों की ही ओर था। पर मैं मानता था कि ऐसे मामले में व्यक्तिगत विचारों के अनुसार काम करने का अधिकार मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ है। इस विषय में हुए अंतर्मंथन का सूक्ष्म निरीक्षण मैंने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास'[1] में किया है,

1. यह पुस्तक सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित हुई है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसलिए यहां नहीं करना चाहिए। जिज्ञासु जनों को मैं यह इतिहास पढ़ जाने की सलाह दूंगा। यहां तो इतना ही कहना काफी है कि ब्रिटिश राज्य के प्रति मेरी राजभक्ति मुझे उस युद्ध में भाग लेने को बरबस घसीट ले गई। मैंने सोचा कि जब मैं ब्रिटिश प्रजा होने के नाते अधिकार मांगता हूं तो ब्रिटिश प्रजा के रूप में ब्रिटिश राज के रक्षण में हिस्सा लेना भी मेरा धर्म होता है। उस समय मेरा मत था कि हिन्दुस्तान की सम्पूर्ण उन्नति ब्रिटिश साम्राज्य के अंदर रहकर हो सकती है।

अत: जितने साथी मिले, लेकर और बहुत-सी मुसीबतें उठाकर हमें घायलों की शुश्रूषा करने वाली एक टुकड़ी बनाई। अब तक साधारणत: यहां अंग्रेजों में यही खयाल था कि हिन्दुस्तानी खतरे के कामों में नहीं पड़ते, उनकी निगाह अपने हानि-लाभ को छोड़कर और किसी चीज को नहीं देखती, स्वार्थ के सिवा उन्हें और कुछ नहीं दिखाई देता। इस कारण बहुत-से अंग्रेज मित्रों से मुझे निराश करने वाले उत्तर ही मिले। अकेले डॉ. बूथ ने काफी उत्साह दिलाया। उन्होंने हमें घायल योद्धाओं की परिचर्या करने की शिक्षा दी। हमने डॉक्टर से इस काम की योग्यता के सर्टिफिकेट प्राप्त किए। मि. लाटन और स्व. एस्कंब ने भी हमारे इस उद्योग को पसंद किया। अंत में हमने लड़ाई में सेवा करने की इजाजत के लिए सरकार से दरख्वास्त की। जवाब में सरकार से हमें धन्यवाद मिला, पर हमें बताया गया कि तत्काल हमारी सेवा की आवश्यकता नहीं है।

पर मैं ऐसी 'ना' से संतोष मानकर बैठ जाने वाला न था। डॉ. बूथ को साथ लेकर मैं नेटाल के बिशप (लाट पादरी) से मिला। हमारी टुकड़ी में बहुत से हिन्दुस्तानी ईसाई थे। बिशप को हमारी तजबीज बहुत पसंद आई। उन्होंने सहायता करने का वचन दिया।

बीच में संयोग भी अपना काम कर रहा था। बोअरों की तैयारी, दृढ़ता, वीरता इत्यादि, जितना सोचा गया था उससे अधिक तेजस्वी सिद्ध हुई। सरकार को बहुसंख्यक रंगरूटों की जरूरत हुई और अंत में हमारी प्रार्थना स्वीकृत हुई।

हमारी टुकड़ी में लगभग 1,100 आदमी थे। उसमें लगभग 40 मुखिया थे। तीन सौ के करीब स्वतंत्र हिन्दुस्तानी उसमें भरती हुए थे, बाकी के गिरमिटिए थे। डॉ. बूथ भी हमारे साथ थे। टुकड़ी ने अच्छा काम किया। यद्यपि उसे गोलाबारी की हद के बाहर ही काम करना होता था और उसे, रेडक्रॉस,[1] का संरक्षण प्राप्त था; फिर भी कठिनाई के समय गोले-बारूद की हद में काम करने का अवसर

---

1. 'रेडक्रास' का अर्थ है लाल स्वस्तिक। युद्ध में घायलों की शुश्रूषा करने वाले इस चिह्न से अंकित वस्त्र अपने बाएं हाथ पर बांधते हैं। उन्हें शत्रु भी कष्ट न पहुचाएं, ऐसा नियम है। अधिक विवरण के लिए देखिए, दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह, खण्ड 1, प्रकरण 9।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भी हमें मिला। ऐसी जोखिम में न पड़ने का इकरार सरकार ने अपनी इच्छा से हमारे साथ किया था। पर स्पियांकोप की हार के बाद स्थिति बदल गई। इससे जनरल बुलर ने संदेश भेजा कि गो आप लोग इकरार की रू से जोखिम लेने को मजबूर नहीं हैं, फिर भी अगर आप जोखिम लेकर भी घायल सिपाहियों और अफसरों को रणक्षेत्र से उठाकर डोलियों में ढो ले जाने को तैयार हो जाएं तो सरकार आपका एहसान मानेगी। हम तो जोखिम उठाने को तैयार ही थे। अतः स्पियांकोप की लड़ाई के बाद हम गोले-बारूद की हद के अंदर काम करने लगे।

इन दिनों सबको अक्सर दिन में बीस-पच्चीस मील की मंजिल तै करनी पड़ती थी। एक बार तो घायलों को डोली में लेकर उतने मील पैदल चलना पड़ा था। जिन घायल योद्धाओं को हमें इस प्रकार ढोकर ले जाना पड़ा, उनमें जनरल वुडगेट आदि भी थे।

छह सप्ताह के बाद हमारी टुकड़ी को विदाई दी गई। स्पियांकोप और वालक्रांज की हार के बाद लेडी स्मिथ वगैरा मुकामों को बोअरों के घेरे में से बड़ी तेजी से निकाल लेने का विचार ब्रिटिश सेनापति ने त्याग दिया था और इंग्लैंड तथा हिन्दुस्तान से और अधिक सेना के आने की राह देखने और धीरे-धीरे आगे बढ़ने का निश्चय किया था।

हमारे छोटे-से काम की उस वक्त तो बड़ी तारीफ हुई। इससे हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढ़ी। "आखिर हिन्दुस्तानी साम्राज्य के वारिस तो हैं ही" जैसे गीत गाए गए। जनरल बुलर ने हमारी टुकड़ी के काम की अपने खरीते में तारीफ की। मुखियों को युद्ध के तमगे भी मिले।

हिन्दुस्तानी कौम अधिक संगठित हो गई। गिरमिटिए हिन्दुस्तानियों से मुझे अधिक मिलने-जुलने का मौका मिला। उनमें अधिक जागरूकता आई और हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, मद्रासी, गुजराती, सिंधी सभी हिन्दुस्तानी हैं, यह भावना अधिक दृढ़ हुई। सबने माना कि अब हिन्दुस्तानियों के दुःख दूर होने ही चाहिए। गोरों के व्यवहार में भी उस समय तो काफी परिवर्तन दिखाई दिया।

लड़ाई में जिन गोरों से हमारा साबका पड़ा, उनका व्यवहार मधुर था। हजारों 'टामियों' (गोरे सैनिकों) से हमारा संग-साथ हुआ। वे हमारे साथ दोस्ताना बर्ताव रखते थे और हम उनकी सेवा के लिए हैं, यह जानकर हमारा उपकार मानते थे।

मनुष्य-स्वभाव दुःख के समय कैसा पिघलता है, इसका एक मधुर संस्मरण यहां दिए बिना नहीं रहा जाता। हम चीवली छावनी की ओर जा रहे थे। यह वही क्षेत्र था, जहां लॉर्ड रॉबर्ट्स के पुत्र लेफ्टिनेंट रॉबर्ट्स को घातक चोट लगी थी। लेफ्टिनेंट रॉबर्ट्स के शव को ले जाने का गौरव हमारी टुकड़ी को मिला था। उस दिन धूप सख्त थी। हम कूच कर रहे थे। सभी प्यासे थे। पानी पीने के लिए रास्ते में एक छोटा-सा झरना था। कौन पहले पानी पिए? हमने तै किया था कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पहले 'टामी' पानी पी लें तब हम पिएंगे। टामी हमें देख तुरन्त हमसे पहले पानी पी लेने का आग्रह करने लगे। इस प्रकार बहुत देर तक हममें 'आप पहले', 'हम पीछे' का मधुर झगड़ा चलता रहा।

11 : नगर-सुधार और अकाल फंड

समाज का एक भी अंग अनुपयोगी रहे, यह मुझे सदा अखरा है। जनता के दोषों पर परदा डालकर उसका बचाव करना या दोष दूर किए बिना हक हासिल करना, मुझे सदा अरुचिकर लगा है। इससे दक्षिण अफ्रीका में बसने वाले हिन्दुस्तानियों पर लगाए जाने वाले एक दोष को, जिसमें कुछ तथ्य था, दूर करने की बात अपने वहां बसने के समय से ही सोच रखी थी। हिन्दुस्तानियों पर जब-तब तोहमत लगाई जाती थी कि वे अपने घर-द्वार साफ नहीं रखते और बहुत मैले रहते हैं। इस आरोप को दूर करने के लिए आरम्भ में हिन्दुस्तानियों में मुखिया माने जाने वाले लोगों के घरों में तो सुधार शुरू हो ही गया था, पर घर-घर घूमने का काम तो डरबन में प्लेग के प्रकोप का भय होने पर आरम्भ हुआ। इसमें म्युनिसिपैलिटी के अफसरों का भी सहयोग और सम्मति थी। हमारी सहायता मिल जाने से उनका काम हल्का हो गया और हिन्दुस्तानियों को कम कष्ट भोगने पड़े। कारण यह कि साधारणतः ऐसा होता है कि प्लेग आदि का उपद्रव होने पर अफसर घबरा जाते हैं, उपाय करने में हद से आगे बढ़ जाते हैं और उनकी दृष्टि में जो लोग खटकते हैं उन पर उनका दबाव असह्य हो जाता है। हिन्दुस्तानियों ने (कौम ने) अपने-आप प्रभावकारी उपायों से काम लेना शुरू कर दिया, इसलिए इन सख्तियों से बच गए।

मुझे कुछ कटु अनुभव भी हुए। मैंने देखा कि नेटाल सरकार से अधिकारों की मांग करने में जितनी आसानी से मैं कौम की मदद पा सकता था उतनी आसानी से लोगों से उनका फर्ज अदा कराने की कोशिश मैं न पा सका। कितनी ही जगह अपमान होता, कितनी ही जगह विनयपूर्वक लापरवाही दिखाई जाती। गंदगी की सफाई करने का कष्ट उठाना कठिन लगता था। पैसा खर्च करने की तो बात ही क्या? लोगों से कुछ भी काम कराना हो तो धीरज रखना होगा, यह पाठ मैंने और अच्छी तरह सीख लिया। सुधार की गरज तो खुद सुधारक को होती है। जिस समाज में वह सुधार करना चाहता है तो उसे विरोध, तिरस्कार और जान जोखिम की भी आशा रखनी चाहिए। सुधारक जिसे सुधार मानता है, समाज उसे कुधार क्यों न माने? या (कदाचित) कुधार न माने तो भी उस ओर से उदासीन क्यों न रहे?

इस आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तानी समाज में घर-द्वार साफ रखने की आवश्यकता कमोबेश मान ली गई। अधिकारियों की निगाह में मेरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
साख बढ़ी। उन्होंने जान लिया कि मेरा पेशा महज शिकायतें करना या हक माँगना ही नहीं है; बल्कि शिकायतें करने या हक मांगने में मैं जितना मुस्तैद हूं, भीतरी सुधार के लिए भी मुझमें उतना ही उत्साह और मुस्तैदी है।

पर अभी समाज की भावना को एक और दिशा में जगाना रह गया था। इन उपनिवेशवासी भारतीयों को भारतवर्ष के प्रति अपना धर्म भी अवसर आने पर समझना और पालना था। भारतवर्ष तो कंगाल है। लोग पैसा कमाने परदेश जाते हैं। उनकी कमाई का कुछ भाग भारतवर्ष को आड़े वक्त में मिलना चाहिए। सन् 1897 में वहां अकाल था और सन् 1899 में फिर भारी अकाल पड़ा। इन दोनों अकालों के समय दक्षिण अफ्रीका से अच्छी मदद गई थी। पहले अकाल के समय जितनी रकम इकट्ठी हो सकी थी, दूसरे अकाल के अवसर पर उससे बहुत बड़ी रकम जमा हुई थी। इस चंदे में हमने अंग्रेजों के सामने भी हाथ फैलाया और उनकी ओर से इसका अच्छा उत्तर मिला था। गिरमिटिए हिन्दुस्तानियों ने भी अपना भाग अर्पण किया था।

इस प्रकार इन दो अकालों के समय, जो प्रथा चली वह अब तक कायम है। हम देखते हैं कि भारतवर्ष में जब कोई सार्वजनिक संकट होता है तो दक्षिण अफ्रीका की ओर से वहां बसने वाले हिन्दुस्तानी अच्छी रकम भेजते हैं।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की सेवा करते हुए मैं खुद एक-एक करके बहुत-सी बातें अनायास सीख रहा था। सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसे ज्यों-ज्यों सेया जाए त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते दिखाई देते हैं। उसका अंत ही नहीं होता। ज्यों-ज्यों उसकी गहराई में पहुंचिए त्यों-त्यों रत्न मिला करते हैं, सेवा के अवसर उपलब्ध होते हैं।

12 : देश-गमन

लड़ाई के काम से मुक्त होने पर मुझे जान पड़ा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीका में नहीं है, बल्कि देश में है। मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीका में बैठे-बैठे मैं कुछ सेवा तो अवश्य कर सकूंगा, पर वहां मेरा मुख्य काम पैसा कमाना ही हो जाएगा।

देश से मित्रों का देश लौट आने के लिए आग्रह भी चल रहा था। मुझे भी दिखाई दिया कि देश जाकर मेरा उपयोग अधिक हो सकेगा। नेटाल में तो मि. खान और मनसुखलाल नाजर थे ही।

मैंने साथियों के सामने मुक्त होने की प्रार्थना रखी। बड़ी कंठिनाई से यह प्रार्थना एक शर्त के साथ स्वीकृत हुई। शर्त यह थी कि एक बरस के अंदर अगर कौम को मेरी जरूरत मालूम हुई तो मैं फिर दक्षिण अफ्रीका लौट आऊं। मुझे यह शर्त कड़ी लगी, पर प्रेम-पाश से बंधा हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काचे रे तांतणे मन हरजीए बांधीं
जेम ताणे तेम तेमनी रे।
मन लागी कटारी प्रेमनी।[1]

मीराबाई की यह उपमा थोड़ी-बहुत मुझ पर घटित हो रही थी। पंच भी परमेश्वर ही हैं। मित्रों की बात को मैं ठुकरा नहीं सकता था। मैंने वचन दिया और इजाजत ली। कह सकता हूं कि इस समय मेरा निकट सम्बन्ध नेटाल के साथ ही था। नेटाल के हिन्दुस्तानियों ने मुझे प्रेमामृत से सराबोर कर दिया। जगह-जगह मानपत्र देने को सभाएं हुईं और हर जगह से कीमती भेंटें आईं।

1896 में जब मैं देश आया तब भी भेंटें मिली थीं, पर इस समय की भेंटों और सभाओं के दृश्य में मैं घबराया। भेंटों में सोने-चांदी की चीजें तो थीं ही, हीरे की चीजें भी उनमें थीं।

इन सब चीजों को स्वीकार करने का मुझे क्या हक है। इन्हें स्वीकार करूं तो कौम की सेवा में पैसे लेकर न करता था, यह अपने मन को कैसे समझाऊं? इन भेंटों में से मुवक्किलों की थोड़ी-सी चीजों को बाद कर दें तो बाकी सब मेरी सार्वजनिक सेवा के बदले में ही थीं। इसके सिवा मेरा मन तो मुवक्किलों और दूसरे साथियों में कोई भेद न मानता था। बड़े-बड़े मुवक्किल सब सार्वजनिक कामों में मदद दिया करते थे।

इसके सिवा इन भेंटों में पचास गिन्नियों का एक हार कस्तूरबाई के लिए था। पर उसे मिली हुई चीज भी मेरी सेवा के लिए निमित्त से ही थी, इसलिए वह अलग नहीं की जा सकती थी।

जिस शाम को इनमें से मुख्य भेंटे मिली थीं वह रात मैंने पागल की तरह जागकर बिताई। अपने कमरे में चक्कर लगाता रहा, पर गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी। सैकड़ों की कीमत की सौगात छोड़ना कठिन लग रहा था। रखना उससे भी ज्यादा कठिन लगता था।

मैं शायद भेंटों को पचा लूं, पर मेरे बच्चों का क्या होगा? स्त्री का क्या होगा? उन्हें शिक्षा तो सेवा की मिलती थी। सदा समझाया जाता था कि सेवा के दाम नहीं हुआ करते। कीमती गहने वगैरा मैं रखता नहीं था। सादगी बढ़ती जा रही थी। ऐसी स्थिति में सोने की घड़ियां कौन काम में लाएगा? सोने की जंजीर और हीरे की अंगूठियां कौन पहनेगा? गहने-गांठों का मोह तजने का उपदेश उस समय भी मैं औरों को दिया करता था। अब इन जेवरों और जवाहरात का मैं क्या करूं?

---

1. हरिजी ने मुझे कच्चे (प्रेम के) धागे से बांध रखा है। ज्यों-ज्यों उसे तानते हैं त्यों-त्यों मैं उनकी होती जाती हूं। मुझे प्रेम की कटारी लगी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि मैं इन चीजों को नहीं रख सकता। पारसी रुस्तमजी आदि को इन गहनों का ट्रस्टी बनाकर उनके नाम लिख देने का मसविदा बनाया और सवेरे स्त्री-पुत्रादि से सलाह करके अपना बोझ हल्का करने का निश्चय किया।

पत्नी को समझना कठिन होगा यह मैं जानता था। बच्चों को समझाने में बिल्कुल कठिनाई न होगी इसका मुझे विश्वास था। इस मामले में उन्हें वकील बनाने का इरादा किया।

लड़के तो तुरंत समझ गए। वे बोले, "हमें इन जेवरों की जरूरत नहीं है। हमें इन सबको वापस ही कर देना चाहिए और अगर हमें इन चीजों की जरूरत हुई तो हम खुद क्या नहीं खरीद सकेंगे?"

मैं खुश हुआ, "तो अपनी मां को समझाओगे न?" मैंने पूछा।

"जरूर, जरूर। यह हमारा काम रहा। उसे कहां ये जेवर पहनने हैं। वह तो हम लोगों के लिए ही इन्हें रखना चाहती है। जब हमें नहीं चाहिए तब वह क्यों जिद करेगी?"

पर काम जितना सोचा था उससे ज्यादा मुश्किल निकला।

"तुम्हें भले ही जरूरत न हो, तुम्हारे लड़कों को भले ही न हो। लड़कों को जिस राह लगाओ लग जाते हैं। भले ही मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओं का क्या होगा? उन्हें तो जरूरत होगी? और कौन जानता है कि कल क्या होगा? इतने प्रेम से दी हुंई चीजें लौटाई नहीं जा सकतीं।" यों वाग्धारा चली और उसमें अश्रुधारा का भी संगम हुआ। बच्चे दृढ़ रहे, मुझे तो हिलना-डुलना था ही नहीं।

मैंने धीरे से कहा-"लड़कों का ब्याह होने तो दो! हमें बचपन में उनके ब्याह कहां रचाने हैं? बड़े होने पर तो वे खुद जो करना चाहेंगे करेंगे और हमें क्या गहनों की शौकीन बहुएं खोजनी हैं? फिर भी कुछ करना ही हो तो मैं कहां जाता हूं?"

"जानती हूं आपको। मेरे गहने भी ले लिए, वही तो आप हैं न! मुझे सुख से नहीं पहनने दिए, सो वही अब आप मेरी बहुओं के लिए लाएंगे? लड़कों को अभी से बैरागी बना रहे हैं। ये जेवर वापस नहीं दिए जा सकते और मेरे हार पर आपका क्या हक है?"

मैंने पूछा-"पर यह हार तुम्हारी सेवा के बदले में मिला है या मेरी सेवा के?"

"जो हो, पर आपकी सेवा मेरी भी सेवा हुई। मुझसे रातदिन जो मजदूरी करवाई क्या वह सेवा में नहीं गिनी जाएगी? मुझे रुलाकर भी जिस-तिस को घर में टिका रखा और उसकी चाकरी कराई वह क्या थी?"

ये सारे बाण तीखे थे। इनमें से कितने ही चुभते थे। पर गहने तो मुझे वापस करने ही थे। बहुत बातों में मैं ज्यों-त्यों राजी कर पाया। 1896 में मिली हुई और 1901 में मिली हुई भेंटें मैंने लौटा दीं। उनका ट्रस्ट बना और उसका लोकहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के लिए उपयोग मेरी इच्छा अथवा ट्रस्टियों की इच्छा के अनुसार किया जाए इस शर्त के साथ वे बैंक में रख दी गईं। इन जेवरों को बेचने के निमित्त से बहुत बार मैं पैसा इकट्ठा कर चुका हूं। यह धन आज भी आपत्ति कोष की भांति मौजूद है और उसमें वृद्धि होती गई है।

अपने इस कार्य पर मुझे कभी पछतावा नहीं हुआ। दिन बीतने पर कस्तूरबाई को भी उसका औचित्य मालूम हो गया। हम बहुत लालचों से बच गए।

मैं इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि लोकसेवक के लिए निजी भेंटें निषिद्ध हैं।

13 : देश में

इस प्रकार देश जाने को विदा हुआ। राह में मॉरिशस (टापू) पड़ता था। वहां जहाज देर तक ठहरा था। अतः वहां उतरा और वहां की स्थिति की काफी जानकारी प्राप्त कर ली। एक रात वहां के गवर्नर सर चार्ल्स ब्रूस के यहां भी बिताई थी।

हिन्दुस्तान पहुंचने पर कुछ समय घूमने-फिरने में बिताया। यह सन् 1901 की बात है। इस साल की कांग्रेस कलकत्ते में होने वाली थी। दीनशा एदलजी वाचा अध्यक्ष थे। मुझे महासभा में तो जाना था ही। महासभा का मेरा यह पहला अनुभव था।

बंबई से जिस गाड़ी में सर फिरोजशाह रवाना हुए उसी से मैं भी गया। मुझे उनसे दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में बातें करनी थीं। मुझे उनके डिब्बे में एक स्टेशन तक जाने की इजाजत थी। उन्होंने अपने लिए खास सैलून लगवाया था। उनके शाही खर्च और ठाट-बाट से मैं वाकिफ था। जिस स्टेशन पर उनके डिब्बे में जाने की इजाजत मुझे मिली थी उस स्टेशन पर मैं उसमें गया। उनके डिब्बे में इस समय श्री दीनशा और श्री चिम्मनलाल सीतलवाड[1] बैठे थे। उनके साथ राजनैतिक चर्चा चल रही थी। मुझे देखकर सर फिरोजशाह बोले-"गांधी! तुम्हारा काम होने वाला नहीं। जो प्रस्ताव तुम कहोगे हम पास कर देंगे, पर अपने देश में ही हमें कौन से हक मिल रहे हैं? मैं तो जानता हूं कि जब तक अपने देश में हमें अधिकार नहीं मिलते तब तक उपनिवेशों में हमारी दशा सुधर नहीं सकती।"

मैं तो सुनकर हक्का-बक्का रह गया। सर चिम्मनलाल ने हां-में-हां मिलाई। सर दीनशा ने मेरी ओर करुणाभरी दृष्टि से देखा।

मैंने समझाने की कोशिश की, पर बंबई के बेताज के बादशाह को मुझ-जैसा आदमी क्या समझा सकता था? वह मुझे महासभा में प्रस्ताव पेश करने देंगे, इतने से ही मैंने संतोष माना।

सर दीनशा मुझे बढ़ावा देते हुए बोले-"गांधी, प्रस्ताव बनाकर मुझे दिखलाना।"

---

1. दोनों को पीछे 'सर' की उपाधि मिली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैंने धन्यवाद दिया। दूसरे स्टेशन पर ज्योंही गाड़ी खड़ी हुई मैं भागा और अपने डिब्बे में घुस गया।

कलकत्ते पहुंचा। शहर वाले अध्यक्ष आदि नेताओं को धूमधाम से ले गए। मैंने किसी स्वयंसेवक से पूछा, "मुझे कहां जाना है?"

वह मुझे रिपन कॉलेज ले गया, वहां बहुत-से प्रतिनिधि टिकाए गए थे। मेरे सौभाग्य से जिस हिस्से में मैं था उसी में लोकमान्य का डेरा था। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह एक दिन पीछे पहुंचे थे। लोकमान्य जहां हों वहां छोटा-सा दरबार लग ही जाता। मैं चित्रकार होता तो जिस चारपाई पर वह बैठते थे उसकी तस्वीर खींच देता; उस स्थान और उनकी बैठक का मुझे अब तक इतना स्पष्ट स्मरण है। उनसे मिलने आने वाले अगणित आदमियों में एक का ही नाम मुझे याद है-'अमृत-बाजार पत्रिका' के मोतीबाबू। उन दोनों का ठठाकर हँसना, और शासकों के अन्याय के बारे में उनकी बातें, भूली नहीं जा सकतीं।

पर जरा वहां के प्रबंध पर एक निगाह डालें।

स्वयंसेवक एक-दूसरे से लड़ते रहते थे। जो काम जिसे सौंपिए वह उसका न होता। वह तुरंत दूसरे को हांक देता, दूसरा तीसरे को। बेचारा प्रतिनिधि न तीन में होता न तेरह में, न छप्पन के मेल में।

मैंने कुछ स्वयंसेवकों से दोस्ती गांठी। उनसे दक्षिण अफ्रीका की कुछ बातें कीं। इससे वह जरा झेंपे। मैंने उन्हें सेवा का मर्म समझाने की कोशिश की। वह कुछ समझे, पर सेवा कुकुरमुत्ते की भांति जल्दी से करनी नहीं आ जाती। उसके लिए इच्छा चाहिए और फिर अभ्यास। इन भोले और भले स्वयंसेवकों में इच्छा तो बहुत थी, पर शिक्षा और अभ्यास कहां से लाते? महासभा साल में तीन दिन के लिए जगकर फिर सो जाती। हर साल की तीन दिन की तालीम से कितना सीखा जा सकता था?

जैसे स्वयंसेवक वैसे ही प्रतिनिधि। उनकी भी उतने ही दिनों की तालीम रहती। अपने हाथ से अपना कोई काम न करते। हर बात में हुकुम, "स्वयंसेवक, यह लाओ", "वालंटियर, वह लाओ" लगा ही रहता।

अखा भगत के 'अतिरिक्त अंग' का पूरा अनुभव हुआ। छुआछूत वाले बहुत थे। द्राविड़ी (तामिल) रसोई तो बिल्कुल अलग थी। इन प्रतिनिधियों को तो दृष्टिदोष-देखने की भी छूत लगती थी। उनके लिए कॉलेज के अहाते में चटाइयों का रसोईघर बनाया गया था। धुआं उसमें इतना रहता था कि आदमी का दम घुट जाए। खाना-पीना सब उसी के अंदर। रसोईघर क्या था, तिजोरी थी। कहीं से खुली न होनी चाहिए।

मुझे यह वर्णधर्म उल्टा लगा। महासभा में आने वाले प्रतिनिधि जब इतनी छूतछात रखते हैं तो उन्हें भेजने वाले कितनी छूतछात रखते होंगे, इस प्रकार का त्रैराशिक लगाकर जो जवाब निकला उस पर मैंने लम्बी सांस ली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गंदगी की हद नहीं थी। सब कहीं पानी-ही-पानी हो रहा था। पाखाने कम ही थे। उनकी बदबू याद करके आज भी मेरा सर चकराता है। एक स्वयंसेवक को मैंने वह हालत दिखाई। वह तिनककर बोला-"यह तो भंगी का काम है।" मैंने झाड़ू मांगी। वह मेरा मुंह ताकने लगा। मैंने झाड़ू ढूंढ़ ली। पाखाना साफ कर लिया। पर यह तो अपने सुभीते के लिए हुआ। भीड़ इतनी थी और पाखाने इतने कम थे कि हर इस्तेमाल के बाद उनकी सफाई होनी चाहिए थी। यह मेरे बूते के बाहर की बात थी, अतः मैंने अपने भर का सुभीता करके संतोष किया। मैंने देखा कि औरों को यह गंदगी खलती न थी।

पर इतने से ही बस न था। रात को कोई-कोई तो कमरे के आगे के बरामदे में ही निपट लेते थे। सवेरे स्व्यंसेवकों को मैंने मैला दिखाया। साफ करने को कोई तैयार न था। उसे साफ करने का गौरव मैंने ही प्राप्त किया।

आज यद्यपि इन बातों में बहुत सुधार हुआ है, फिर भी अविचारी प्रतिनिधि आज भी महासभा के शिविर को जहां-तहां मलत्याग करके गंदा करते हैं और सब स्वयंसेवक उसे साफ करने को तैयार नहीं होते।

मैंने अनुभव किया कि ऐसी गंदगी में यदि कांग्रेस की बैठक अधिक दिनों तक जारी रहे तो अवश्य बीमारियां फैल जाएं।

14 : क्लर्क और बैरा

महासभा के अधिवेशन में एक-दो दिन की देर थी। महासभा के कार्यालय में मेरी सेवा स्वीकार हो सकती हो तो सेवा करने और अनुभव प्राप्त करने का मैंने निश्चय किया था।

मैं उसी दिन नहा-धोकर महासभा के दफ्तर में गया। श्री भूपेन्द्रनाथ बसु और श्री घोषाल मंत्री थे। भूपेन्द्रबाबू के पास पहुंचा और काम मांगा। उन्होंने मेरी ओर देखा और बोले:

"मेरे पास तो कोई काम नहीं है, पर शायद मि. घोषाल आपको कुछ काम दे सकें, उनके पास जाइए।"

मैं घोषाल बाबू के पास गया। उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा। फिर जरा हँसकर पूछा:

"मेरे पास तो क्लर्क का काम है। उसे करिएगा?"

मैंने जवाब दिया-"जरूर करूंगा। मेरी शक्ति से जो बाहर न हो वह सब करने के लिए मैं आपके पास आया हूं।"

"शाबाश नौजवान, यही सच्चा सेवाभाव है।"

बगल में खड़े स्वयंसेवकों की ओर देखकर बोले:

"सुनते हो, यह युवक क्या कहता है?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर मेरी ओर मुड़कर बोले:

"तो देखिए, यह तो है कागजों का ढेर और यह मेरे सामने कुर्सी। आप उस पर विराजिए। आप देख रहे हैं कि सैकड़ों आदमी मेरे पास आया करते हैं। उनसे मिलूं या ये बेकार पोथे लिखने वालों को जवाब दूं? मेरे पास ऐसे क्लर्क नहीं हैं जिनसे यह काम ले सकूं। इन सब कागजों में बहुतों में कोई काम की बात न होगी। पर आप सबको देख जाएं। जिनकी पहुंच स्वीकार करना जरूरी समझें कर दें और जिसके जवाब के बारे में मुझसे पूछने की आवश्यकता हो पूछ लें।" मैं तो इस विश्वास से गद्‌गद हो गया।

मि. घोषाल मुझे पहचानते न थे। नाम-धाम तो जानने का काम उन्होंने बाद को किया। कागजों का ढेर साफ करने का काम मुझे बहुत आसान लगा। लगा हुआ ढेर तो मैंने तुरंत निबटा दिया। घोषाल बाबू खुश हुए। वह बातूनी आदमी थे। मैं देखता था कि बातों में अपना बहुत वक्त गुजारते थे। मेरा इतिहास जानने के बाद तो मुझे क्लर्क का काम सौंपने पर उन्हें कुछ शर्म मालूम हुई। पर मैंने उन्हें निश्चिंत कर दिया।

"कहां आप और कहां मैं! आप महासभा के पुराने सेवक हैं, मेरे लिए तो बुजुर्ग हैं। मैं ठहरा अनुभवहीन नवयुवक। यह काम सौंपकर मुझ पर तो आपने एहसान किया है। क्योंकि मुझे महासभा में काम करना है, उसका कामकाज समझने का आपने मुझे अलभ्य अवसर दिया है।"

घोषाल बाबू बोले-"सच पूछिए तो यही सच्ची वृत्ति है; पर आज के युवक यह नहीं समझते। मगर मैं तो महासभा को उसके जन्म से जानता हूं। उसे जन्म देने में मि. ह्यूम के साथ मेरा भी हिस्सा था।"

हम दोनों में खासी दोस्ती हो गई। दोपहर के भोजन में वह मुझे अपने साथ ही बैठाते थे। घोषाल बाबू के बटन भी 'बैरा' लगाता था। यह देखकर बैरा का काम मैंने ही ले लिया। मुझे वह रुचता था। बड़ों के लिए मेरे मन में खूब आदर था। मेरा भाव समझ जाने पर घोषाल बाबू मुझे अपनी व्यक्तिगत सेवा के सब काम करने देते थे। बटन लगाते समय मुझसे मुस्कराकर कहते-"देखिए न, महासभा के सेवक को बटन लगाने का वक्त भी नहीं मिलता, क्योंकि उस वक्त भी उसके लिए काम रहता है।" इस भोलेपन पर मुझे हँसी तो आई, पर ऐसी सेवा से मन तनिक भी हटा नहीं। उससे मुझे जो लाभ हुआ उसकी तो कीमत ही नहीं आंकी जा सकती।

चंद दिनों में ही महासभा की कार्य-प्रणाली का मुझे ज्ञान हो गया। अधिकांश नेताओं से भेंट हो गई। गोखले, सुरेन्द्रनाथ इत्यादि सुभट लोग वहां आते-जाते रहते थे। उनकी रीति-नीति देखने का मुझे मौका मिला। वहां वक्त की जो बरबादी होती थी वह भी मेरी निगाह के सामने आई। अंग्रेजी का वहां जैसा दौर-दौरा रहता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
था यह भी देख लिया। यह देखकर उस समय भी मुझे दुःख हुआ था। मैंने देखा कि एक के द्वारा हो सकने वाले काम में अनेक लग जाते थे और यह भी देखा कि कितने ही जरूरी कामों को करने वाला कोई भी न था। मेरा मन इन सारी बातों की ओलाचना किया करता था। पर चित्त उदार होने से यह मान लेता था कि अधिक सुधार न हो सकता होगा और किसी के प्रति मन में अनादर नहीं होता था।

15 : महासभा में

महासभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ। पंडाल की शान स्वयंसेवकों की कतारें, मंच पर नेताओं का जमाव इत्यादि देखकर मैं घबराया। इस महासमारोह में मेरा पता कहीं लग सकता है, यह सोचकर मैं उद्विग्न हुआ।

अध्यक्ष का भाषण खासी पोथी थी। उसे पूरा पढ़ा जाना तो मुमकिन ही न था। उसके कुछ अंश ही पढ़े गए।

इसके बाद विषय-निर्वाचनी समिति के सदस्य चुने गए। उसमें मुझे गोखले ले गए थे।

सर फिरोजशाह ने मेरा प्रस्ताव लेने की हामी तो भरी थी, पर इसे विषय-निर्वाचिनी समिति में कौन पेश करेगा, कब करेगा, यह सोचते हुए मैं समिति में बैठा था। एक-एक प्रस्ताव पर लम्बे-लम्बे भाषण होते थे और सब अंग्रेजी में। हर एक के पीछे बड़े-बड़े नाम। इस नक्कारखाने में मेरी तूती की आवाज कौन सुनेगा? रात ज्यों-ज्यों बीत रही थी मेरा कलेजा धड़क रहा था। मुझे ऐसा याद है कि अंत में पेश होने वाले प्रस्ताव आज के विमान की चाल से चल रहे थे। सभी भागने की तैयारी में थे। रात के ग्यारह बजे थे। मेरी बोलने की हिम्मत न होती थी। मैं गोखले से मिल लिया था और उन्होंने मेरा प्रस्ताव देख लिया था। उनकी कुरसी के पास जाकर मैंने धीरे से कहा-"मेरे लिए कुछ कीजिएगा।"

उन्होंने कहा-"मैं आपके प्रस्ताव को भूला नहीं हूं। यहां की उतावली आप देख रहे हैं, पर मैं इस प्रस्ताव को भूलने नहीं दूंगा।"

सर फिरोजशाह बोले-"अब तो सब प्रस्ताव हो गए?"

गोखले बोल उठे-"दक्षिण अफ्रीका का प्रस्ताव तो बाकी ही है! मि. गांधी कब से बैठे राह देख रहे हैं।"

"आप उस प्रस्ताव को देख गए हैं?" सर फिरोजशाह ने पूछा।

"जी हां, देख लिया है।"

"आपको पसंद आया?"

"ठीक है।"

"तो गांधी, पढ़ो।"

मैंने कांपते हुए पढ़ सुनाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गोखले ने समर्थन किया।

"सर्वसम्मति से पास।" सब बोल उठे।

वाचा बोले-"गांधी, तुम पांच मिनट लेना।"

इस दृश्य से मुझे प्रसन्नता न हुई। किसी ने प्रस्ताव को समझने का कष्ट न उठाया। सब जल्दी में थे। गोखले ने देख लिया था, इसलिए दूसरों को देखने-सुनने की जरूरत न जान पड़ी।

सवेरा हुआ। मुझे तो अपने भाषण की चिंता लगी थी। पांच मिनट में क्या बोलूंगा? मैंने तैयारी तो अच्छी कर ली थी, पर शब्द जो चाहिए नहीं सूझते थे। लिखा भाषण न पढ़ने का निश्चय था। पर ऐसा जान पड़ा कि दक्षिण अफ्रीका में भाषण करने की जो स्वतंत्रता आई थी, वह यहां मैं खो बैठा हूं।

मेरे प्रस्ताव की बारी आने पर सर दीनशा ने मेरा नाम पुकारा। मैं खड़ा हुआ। सिर चकराने लगा। ज्यों-त्यों करके प्रस्ताव पढ़ा। किसी कवि ने अपनी कविता छपाकर सब प्रतिनिधियों में बांटी थीं। उसमें परदेश जाने और समुद्र यात्रा की बड़ाई थी। वह मैंने पढ़ सुनाई और दक्षिण अफ्रीका के दुःखों की कुछ कथा सुनाई। इतने में सर दीनशा की घंटी बजी। मुझे निश्चय था कि मैंने पांच मिनट अभी नहीं लिए हैं। मुझे यह मालूम नहीं था कि यह घंटी मुझे चेताने के लिए दो मिनट बाकी रहते ही बजा दी गई थी। बहुतों को आध-आध, पौन-पौन घंटे बोलते देखा था और घंटी नहीं बजी थी। मुझे दुःख तो हुआ। घंटी बजते ही बैठ गया। पर उक्त काव्य में सर फिरोजशाह को उत्तर मिल गया, वह मेरी छोटी अक्ल ने उस समय मान लिया।

प्रस्ताव पास होने के बारे में पूछना ही क्या। उन दिनों दर्शक और प्रतिनिधि का भेद शायद ही किया जाता था। प्रस्तावों का विरोध तो होता ही न था। सब हाथ उठा देते थे। सारे प्रस्ताव एक मत से पास होते थे। मेरे प्रस्ताव का भी यही हुआ। अतः मुझे प्रस्ताव का महत्त्व नहीं जान पड़ा, फिर भी महासभा में मेरा प्रस्ताव पास हुआ यह बात ही मेरी प्रसन्नता के लिए काफी थी। महासभा की जिस पर मुहर लग गई, उस पर सारे भारत की मुहर है, यह ज्ञान किसके लिए यथेष्ट न होगा!

16 : लॉर्ड कर्जन का दरबार

महासभा समाप्त हुई, पर मुझे तो दक्षिण अफ्रीका के काम के लिए कलकत्ते में रहकर 'चैंबर ऑफ कॉमर्स' इत्यादि संस्थाओं के लोगों से मिलना था। इससे मैं कलकत्ते में एक महीना ठहर गया। इस बार मैंने होटल में ठहरने के बजाए परिचय प्राप्त करके इंडिया क्लब में रहने की व्यवस्था की। इस क्लब में प्रमुख भारतीय नेता उतरा करते थे; इसमें यह लोभ था कि उनसे मिल-जुलकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan
दक्षिण अफ्रीका के मामले में उनकी दिलचस्पी पैदा कर सकूंगा। इस क्लब में गोखले सदा नहीं पर जब-तब बिलियर्ड खेलने आया करते थे। मैं कलकत्ते में कुछ दिन ठहरने वाला हूं, इसका उन्हें पता लगते ही मुझे उन्होंने अपने साथ रहने को निमंत्रित किया। मैंने उसे साभार स्वीकार किया, पर अपने-आप वहां जाना मुझे ठीक न लगा। एक-दो दिन राह देखता रहा, इतने में गोखले आकर मुझे अपने साथ ले गए। मेरा संकोच देखकर उन्होंने कहा, "गांधी, तुम्हें इस देश में रहना है; अतः ऐसे संकोचीपन से काम नहीं चलेगा। जितने अधिक लोगों से राह-रस्म पैदा कर सको, करनी चाहिए। मुझे तुमसे कांग्रेस का काम लेना है।"

गोखले के डेरे पर जाने के पहले का इंडिया क्लब का एक अनुभव यहां देता हूं।

इसी बीच लॉर्ड कर्जन का दरबार हुआ। उसमें जाने वाले कोई राजासाहब इस क्लब में टिके थे। मैं उन्हें सदा क्लब में तो सुंदर बंगाली धोती, कुर्ता पहने और चादर डाले देखता था। आज उन्हें पतलून, चोगा, खानसामों की-सी पगड़ी और वार्निशदार बूट पहने देखकर मुझे दुःख हुआ और मैंने इस फेरफार का कारण पूछा।

जवाब मिला-"हमारा दुःख हम ही जानते हैं। अपनी जायदाद और उपाधियां सुरक्षित रखने को हमें जो अपमान सहने पड़ते हैं, उन्हें आप कैसे जान सकते हैं?"

"पर यह खानसामा-शाही पगड़ी और ये बूट क्यों?"

"हममें और खानसामों में आपने क्या फर्क पाया? वे हमारे खानसामा हैं और हम लॉर्ड कर्जन के। मैं दरबार में गैरहाजिर रहूं तो मुझे उसका दंड भुगतना होगा। अपने साधारण पहनावे में जाऊं तो यह अपराध माना जाएगा। वहां जाकर भी क्या मुझे लॉर्ड कर्जन से बातें करने का सौभाग्य प्राप्त होगा? हरगिज नहीं।"

मुझे इस निष्कपट भाई पर दया आई। ऐसे ही प्रसंग का एक दूसरा दरबार मुझे याद आ रहा है। जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव लॉर्ड हार्डिंग के हाथों रखी ग़ई तब उनका दरबार हुआ था। उसमें राजा-महाराजाओं का होना अनिवार्य था; भारतभूषण मालवीयजी ने मुझसे भी उसमें उपस्थित रहने का विशेष रूप से आग्रह किया था। मैं वहां गया था। राजा-महाराजाओं की, केवल स्त्रियों को शोभा देने वाली, पोशाकें देखकर मुझे दुःख हुआ। रेशमी पाजामे, रेशमी अंगरखे और गले में हीरे-मोतियों के हार! हाथ में बाजूबंद और पाग पर हीरे-मोती की झालरें! इन सबके साथ कमर में सोने की मूठ वाली तलवार लटकती थी। किसी ने कहा कि ये उनके राज्याधिकार की नहीं, बल्कि उनकी गुलामी की निशानियां हैं। मैं मानता था कि ऐसे जनाने गहने वे अपनी खुशी से पहनते होंगे, पर मुझे मालूम हुआ कि ऐसे सम्मेलनों में अपने सब मूल्यवान आभूषण पहनकर जाना राजाओं के लिए लाजिमी है। यह भी मालूम हुआ कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri
कितनों को जो ऐसे गहने पहनने से नफरत है और ऐसे दरबार के मौकों को छोड़कर और किसी अवसर पर वे उन्हें नहीं पहनते थे। इस बात में कहां तक सच्चाई थी, इसका मुझे पता नहीं। वे दूसरे मौकों पर गहने पहनते हों या न पहनते हों, क्या वाइसराय के दरबार में और क्या दूसरी जगह, कहीं भी औरतों को ही सजने वाले गहने पहनकर उन्हें जाना पड़े, यही काफी दु:ख की बात है। धन, शक्ति और मान मनुष्य से क्या-क्या पाप और अनर्थ नहीं कराते!

17: गोखले के साथ एक मास-1

पहले ही दिन से गोखले ने मुझे यह नहीं समझने दिया कि मैं मेहमान हूं। मुझे इस तरह रखा मानो मैं उनका सगा छोटा भाई हूं। मेरी सब आवश्यकताएं जान लीं और तदनुसार प्रबंध कर दिया। खुशकिमती से मेरी जरूरतें थोड़ी ही थीं सब काम खुद क़र लेने की आदत मैंने डाल ली थी, इसलिए मुझे दूसरों से थोड़ी ही सेवा लेनी रहती थी। मेरी यह स्वावलम्बन की आदत, मेरी उस समय की पोशाक आदि की सफाई, मेरे उद्यम की और मेरी नियमितता की उन पर गहरी छाप पड़ी और इनकी वह इतनी तारीफ करने लगे कि मैं घबरा उठता था।

उनके पास मुझसे छिपा रखने की कोई बात है यह मुझे न जान पड़ा। जो कोई बड़ा आदमी उनसे मिलने आता उसका मुझसे परिचय कराते। उन परिचयों में मेरी आंखों के सामने आज सबसे अधिक डॉक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय आते हैं। वह गोखले के मकान के पास ही रहते थे। और प्राय: नित्य आते थे।

" यह प्रोफेसर राय हैं, जिन्हें हर महीने आठ सौ रुपये मिलते हैं और जो अपने खर्च के लिए 40 रुपया रखकर बाकी सब लोकहित के कामों में दे देते हैं। इन्होंने ब्याह नहीं किया है न करना चाहते हैं।" इन शब्दों में गोखले ने मुझे उनका परिचय क़राया।

आज के डॉक्टर राय में और उस समय के प्रोफसर राय में मैं थोड़ा ही अंतर पाता हूं। जो पहनावा तब था लगभग वही आज है। हां, आज खादी रहती है। उस समय खादी तो थी ही नहीं; स्वदेशी मिल के कपड़े रहे होंगे। गोखले की और प्रोफसर राय की बातें सुनने में मेरी तृप्ति ही न होती थी। क्योंकि उनकी बातें या तो देशहित से सम्बंध रखने वाली होती थीं या कोई ज्ञानवार्ता होती थी। कुछ बातें दु:खद भी होतीं; क्योंकि उनमें नेताओं की टीका होती थी। जिन्हें मैंने महान योद्धा समझना सीखा था वे बौने दिखाई देने लगे।

गोखले की कार्य-प्रणाली से मुझे जितनी प्रसन्नता हुई उतनी ही शिक्षा मिली। वह अपना एक क्षण भी बेकार न जाने देते थे। मैंने देखा कि उनके सारे सम्बन्ध देश-कार्य के लिए हैं। सारी बातों का विषय भी देश-हित होता था। उनकी बातों में मुझे कहीं मलिनता, दम्भ या झूठ की गंध न मिली। हिंदुस्तान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की गरीबी और गुलामी उन्हें प्रतिक्षण चुभती थी। कितने ही लोग, कितने ही विषयों में उनकी दिलचस्पी पैदा कराने आते। उन्हें वह एक ही जवाब देते–"आप यह काम कीजिए, मुझे अपना करने दीजिए मुझे तो देश की स्वाधीनता प्राप्त करनी है। वह मिलने के बाद मुझे और कुछ सूझेगा। फिलहाल तो इस धंधे से मेरे पास एक क्षण भी बाकी नहीं रह बचता।"

रानडे के प्रति उनका पूज्य भाव तो बात-बात में टपकता था। 'रानडे यह कहते थे' यह तो उनकी बातचीत में लगभग 'सूत उवाच' जैसा था। मैं जब वहां था उसी बीच रानडे की जयंती (या पुण्यतिथि अब ठीक याद नहीं रहा) पड़ती थी। ऐसा जान पड़ा जैसे गोखले उसे सदा मनाया करते हैं। उस समय वहां मेरे सिवा उनके मित्र प्रोफेसर काथवेट और एक सब जज महाशय थे। इन्हें उन्होंने जयंती मनाने को निमंत्रित किया और उस अवसर पर उन्होंने हम लोगों को रानडे के अनेक संस्मरण सुनाए। रानडे, तैलंग और मांडलिक की तुलना भी की। मुझे याद है कि उन्होंने तैलंग की भाषा की प्रशंसा की। मांडलिक की सुधार के नाते स्तुति की। अपने मुवक्किल का वह कितना खयाल रखते थे इसके दृष्टांत रूप में एक किस्सा सुनाया कि रोज की ट्रेन छूट जाने पर किस तरह स्पेशल ट्रेन खुलवाकर वह कचहरी पहुंचे थे। रानडे की सर्वतोमुखी प्रतिभा का वर्णन करने के उपरांत उस काल के नेताओं में उन्हे सर्वोपरि बतलाया। रानडे केवल न्यायमूर्ति ही नहीं थे। वह इतिहासकार थे, अर्थशास्त्री थे, सुधारक थे; जज होते हुए भी महासभा में दर्शक के रूप में, पर निडर भाव से, उपस्थित होते थे। उसी प्रकार उनकी बुद्धिमता पर लोगों को इतना विश्वास था कि सभी उनके निर्णयों को स्वीकार करते थे। इन बातों का वर्णन करते हुए गोखले के हर्ष की सीमा न रहती थी।

गोखले घोड़ा-गाड़ी रखते थे। मैंने उनसे शिकायत की। मैं उनकी कठिनाइयां नहीं समझ सका था। "आप क्या सब जगह ट्राम में नहीं जा सकते? इससे क्या नेताओं की प्रतिष्ठा घटती है?"

किंचित खिन्न होकर उन्होंने उत्तर दिया–"तुम भी मुझे नहीं पहचान सके क्या? मुझे बड़ी कौंसिल में जो मिलता है वह मैं अपने काम में नहीं लाता। तुम्हें ट्राम पर सफर करते देख मुझे ईर्ष्या होती है। पर मुझसे वह नहीं हो सकता। जितने लोग मुझे पहचानते हैं उतने ही जब तुम्हें पहचानने लगेंगे तब तुम्हारा भी ट्राम में घूमना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायेगा। नेता जो कुछ करते हैं, मौज-शौक के लिए ही करते हैं, यह मानने का कोई कारण नहीं है। तुम्हारी सादगी मुझे पसंद है। मैं, जहां तक हो सकता है सादगी से रहता भी हूं, पर इतना अवश्य समझें कि कुछ खर्च मुझ-जैसों के लिए अनिवार्य हैं।"

यों मेरी एक शिकायत तो सही तौर पर रद्द हो गई, पर मुझे एक शिकायत और करनी थी जिसका समाधान कारक उत्तर वह ने दे सके।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

मैंने कहा-"पर आप काफी टहलते भी तो नहीं, फिर आप बीमार रहें तो इसमें अचरज क्या? क्या देश के काम से व्यायाम के लिए भी अवकाश नहीं मिल सकता?"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाब मिला-"मुझे किस समय आप खाली देखते हैं कि जब घूमने जा सकता हूं?"

मेरे मन में गोखले के प्रति इतना आदर था कि मैं उन्हें प्रत्युत्तर नहीं देता था। उपर्युक्त उत्तर से मेरा समाधान न हुआ, फिर भी मैं चुप रहा। मैं मानता आया हूं और आज भी मानता हूं कि कितना ही काम होने पर भी जैसे हम खाने का समय निकालते हैं वैसे ही व्यायाम का भी निकालना चाहिए। मेरी नम्र सम्मति में इससे देश की सेवा कम नहीं, बल्कि कुछ अधिक ही होती है।

18 : गोखले के साथ एक मास-2

गोखले की छत्रछाया में मैंने सारा समय घर में बैठकर नहीं बिताया।

मैंने दक्षिण अफ्रीका के अपने ईसाई मित्रों से कहा था कि मैं हिंदुंस्तान में भारतीय ईसाइयों से मिलूंगा और उनकी दशा जानूंगा। कालीचरण बनर्जी का नाम मैंने सुन रखा था। वह महासभा के काम में अगुआ रहते थे। इससे उनके लिए मेरे मन में आदर था। साधारण हिंदुस्तानी ईसाइयों के महासभा और हिंदू, मुसलमानों से भी अलग-अलग रहने के कारण उनके प्रति जो अविश्वास था वह कालीचरण बनर्जी के प्रति नहीं था। मैंने उनसे मिलने जाने के बारे में गोखले से बात की। वह बोले-"वहां जाने से तुम्हें क्या मिलेगा? वह बहुत भले आदमी हैं, पर मैं समझता हूं कि वह तुम्हें संतोष न दे सकेंगे। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं। फिर भी तुम्हें जाना हो तो शौक से जाओ।"

मैंने समय मांगा। उन्होंने मुझे समय दिया। मैं गया। उनके घर उनकी धर्मपत्नी मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई थी। उनका घर सादा था। महासभा में उन्हें कोट-पतलून में देखा था। अपने घर में उन्हें बंगाली धोती और कुर्ते में देखा। यह सादगी मुझे भाई। गो, उस वक्त मैं खुद पारसी कोट-पतलून में था, पर मुझे यह पोशाक और सादगी बहुत पसंद आई। मैंने उनका वक्त खराब न कर अपनी उलझनें उनके सामने रखीं।

उन्होंने पूछा-"आप यह मानते हैं कि हम पाप लेकर जनमते हैं?"

मैंने कहा-"जी हां, मानता हूं।"

"तो इस मूल पाप का निवारण हिंदू-धर्म में नहीं है, और ईसााई-धर्म में है।"

फिर बोले-"पाप का बदला मौत है। बाइबिल कहती है कि इस मौत से बचने का रास्ता ईसा की शरण जाना है।"

मैंने भगवद्गीता का भक्तिमार्ग सामने रखा, पर मेरा बोलना बेकार था। मैंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इन भले आदमी और उनकी भलमनसी का उपकार माना मेरा समाधान न हुआ। फिर भी इस भेंट से मुझे लाभ ही हुआ।

यह भी कह सकता हूं कि इस महीने में मैंने कलकत्ते की एक-एक गली छान डाली। बहुत-सा काम पैदल चलकर करता था। इसी समय न्यायमूर्ति शारदाचरण से मिला। सर गुरुदास बनर्जी से मिला। उनकी सहायता दक्षिण अफ्रीका के काम के लिए आवश्यक थी। राज सर प्यारी मोहन मुकर्जी के दर्शन भी इसी समय किये।

कलीचरण बनर्जी ने मुझसे काली-मंदिर की चर्चा की थी। वह मंदिर देखने की मुझे तीव्र इच्छा थी। इसका वर्णन मैंने पुस्तक में पढ़ा था। अतः एक दिन काली-मंदिर भी गया। मार्ग में बलिदान के बकरों की तो कतार-की-कतार चली जा रही थी। मंदिर की गली में पहुंचते ही भिखरियों की भीड़ लगी देखी। वहां साधु-संन्यासी भी भला कैसे न होते! मेरा नियम उस समय भी हट्टे-कट्टे भिखरियों को कुछ न देने का था, पर भिखमंगे तो मुझसे चिपक गए थे।

एक बाबाजी चबूतरे पर बैठे थे। उन्होंने बुलाया, "क्यों बच्चा, कहां जाते हो?" मैंने उचित उत्तर दिया। उन्होंने मुझे और मेरे साथी को बैठने को कहा। हम बैठ गए। मैंने पूछा-"इन बकरों का बलिदान आप धर्म मानते हैं?"

उन्होंने कहा-"जीवन के हनन को धर्म कौन मानता है?"

"तब आप यहां बैठकर लोगों को समझाते क्यों नहीं?"

"हमारा काम यह नहीं है। हम तो बैठकर भगवद भजन करते हैं।"

"पर इसके लिए आपको कोई दूसरी जगह नहीं मिली? यहीं मिली?"

बाबाजी बोले-"हमारे लिए सब ठौर सामान हैं, चाहे जहां बैठ गए। लोग तो भेड़ों के झुंड की तरह हैं, अगुआ के पीछे चलने वाले। हम साधुओं को इससे क्या मतलब?

मैंने सम्वाद आगे नहीं बढ़ाया। हम मंदिर में पहुंचे। सामने खून की नदी बह रही थी। दर्शन के लिए खड़े रहने की मेरी इच्छा नहीं रही। मैं बहुत खिन्न और उद्विग्न हुआ। यह दृश्य मैं अब तक नहीं भूल सका हूं।

एक बंगाली मंडली में उसी दिन मुझे निमत्रण था। वहां मैंने एक सज्जन से इस घातक पूजा की चर्चा की। उन्होंने कहा-"हमारा यह मत है कि वहां जो नगाड़ा वगैरा बजता है उसके शोर में बकरे को चाहे जैसे मारो, उसे पीड़ा नहीं होती।"

यह मत मेरे गले नहीं उतरा। मैंने उन सज्जन से कहा कि बकरे के जबान होती तो वह दूसरी ही बात कहता। मेरे मन ने कहा कि यह घातकी प्रथा बंद होनी ही चाहिए। वह बुद्ध देव वाली कथा याद आई; पर मैंने देखा कि यह काम मेरे बूते से बाहर है।

मैंने उस दिन जो सोचा वही आज भी सोचता हूं। मेरे नजदीक बकरे के जीवन का मूल्य मूनष्य के जीवन से कम नहीं है। मनुष्य-देह को बनाए रखने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के लिए मैं बकरे की जान लेने को तैयार न होऊंगा। मैं मानता हूं कि जो जीव जितना अधिक असहाय है, मनुष्य की घातकता से बचने और मनुष्य का आश्रय पाने का उसे उतना ही अधिकार है। पर वैसी योग्यता के बिना मनुष्य आश्रय देने में असमर्थ है। बकरे को इस पापमय होम में से बचाने के लिए जितनी आत्मशुद्धि और त्याग की रटन करते हुए ही मुझे मरना है। ऐसा कोई तेजस्वी पुरुष या कोई तेजस्विनी सती निकले, जो इस महापातक में से मनुष्य को उबारे, निर्दोष प्राणियों की रक्षा करे और मंदिरों को शुद्ध कर, यह प्रार्थना तो निरंतर भगवान से करता हूं। ज्ञानी, बुद्धिशाली, त्यागवृत्ति वाला भावना प्रधान बंगाल कैसे यह सब सहन करता है

19 : गोखले के साथ एक मास-3

काली माता के प्रीत्यर्थ होने वाला विकराल यज्ञ देखकर बंगाली-जीवन जानने की मेरी इच्छा बढ़ी। ब्रह्मसमाज के विषय में काफी पढ़ा-सुना था। प्रतापचन्द्र मजूमदार का जीवन-वृत्तांत प्राप्त किया और उसे चाव के साथ पढ़ गया। साधारण ब्रह्मसमाज और आदि ब्रह्मसमाज का भेद जाना। पंडित शिवनाथ शास्त्री के दर्शन किये। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन करने प्रो. काथवेट के साथ गया, पर वह उस समय किसी से मिलते न थे, इसलिए उनके दर्शन न हो सके। पर उनके यहां ब्रह्मसमाज का उत्सव था, उसका निमंत्रण पाकर गए थे। वहां उच्च श्रेणी का बंगला संगीत सुनने का अवसर मिला। तभी से बंगला संगीत पर मुझे अनुराग हो गया।

ब्रह्मसमाज का यथाशक्य निरीक्षण कर लेने के बाद स्वामी विकेकानंद के दर्शन न करूं यह कैसे हो सकता था! मैं बड़े उत्सह से बेलूर मठ गया और लगभग पैदल चलकर गया। पूरा चला या आधा यह मुझे अब याद नहीं रहा। मठ का एकांत स्थान मुझे बहुत पसंद आया। यह समाचार सुनकर निराश हुआ कि स्वामीजी बीमार हैं, उनके दर्शन नहीं हो सकते और वह अपने कलकत्ते वाले मकान में हैं। भागिनी निवेदिता के वास स्थान का पता लगाया। चौरंगी के एक भवन में उनके दर्शन प्राप्त किये। उनका तेज देखकर मैं सहम गया। बातचीत में भी हमारा मेल अधिक नहीं जमा। मैंने यह बात गोखले से कही। वह बोले-"मैं समझता हूं कि यह देवी बहुत तेज है, अतः उससे तुम्हारा मेल नहीं बैठ सकता"

उनके साथ मेरी भेंट एक बार फिर पेस्तनजी पादशाह के यहां हुई। पेस्तनजी की वृद्ध माता को वह उपदेश दे रही थीं। इतने में वहां जा पहुंचा, अतः मैंने उनके बीच दुभाषिए का काम किया। हमारा मेल न बैठते हुए भी मैं देखता था कि हिंदू-धर्म के प्रति भगिनी का प्रेम छलक रहा था। उनकी पुस्तकों का परिचय पीछे प्राप्त किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन के मैंने विभाग कर लिए थे। एक भाग दक्षिण अफ्रीका के काम के लिए कलकत्ते में रहने वाले नेताओं से मिलने में लगता; दूसरा, कलकत्ते की धार्मिक और अन्य सार्वजनिक संस्थाएं देखने में। एक दिन मैंने बोअर-युद्ध में भारतीय शुश्रूषादल के काम के सम्बन्ध में डॉ. मलिक के सभापतित्व में भाषण किया। 'इंगलिशमैन' के साथ मेरा परिचय इस समय भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ मि. साण्डर्स उन दिनों बीमार थे। पर उनकी मदद तो 1896 में जितनी मिली थी उतनी ही मिली। यह भाषण गोखले को पसंद आया। जब डॉ. राय ने उसकी प्रशंसा की तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

यों गोखले की छत्रछाया में रहने से बंगाल में मेरा काम बहुत असान हो गया। बंगाल के अग्रगण्य कुटुम्बों की जानकारी मुझे सहज ही हो गई और बंगाल से मेरा निकट सम्बन्ध जुड़ गया। इस चिरस्मरणीय मास के अनेक स्मरण मुझे छोड़ देने पड़ेंगे। उस महीने में मैं ब्रह्म-देश का भी एक चक्कर लगा आया था। वहां के फुंगियों से मिला। उनकी काहिली देखकर मुझे दुःख हुआ। स्वर्ण पैगाडा के दर्शन किये। मंदिर में अनगिनत छोटी मोमबत्तियां जल रहीं थीं, वे मुझे अच्छी न लगीं। मंदिर के गर्भगृह में चूहों को दौड़ लगाते देखकर स्वामी दयानंद का अनुभव याद आया ब्रह्मदेशीय महिलाओं की स्वतंत्रता और उत्साह तथा पुरुषों की काहिली देखकर मैं वहां की स्त्रियों पर तो मुग्ध हुआ और पुरुषों के लिए दुःखी हुआ।

उसी समय यह बात भी मेरे ध्यान में आ गई कि जैसे बंबई हिंदुस्तान नहीं है वैसे ही रंगून ब्रह्मदेश नहीं है। और जैसे हिंदुस्तान में हम अंग्रेज सौदागरों के कमीशन एजेंट (दलाल) बने हुए हैं, वैसे ही ब्रह्मदेश में हमने अंग्रेजों के साथ मिलकर ब्रह्मदेश वासियों को कमीशन एजेंट बनाया है।

ब्रह्मदेश से लौटकर मैंने गोखले से बिदा ली। उनका वियोग मुझे खला, पर मेरा बंगाल का या वास्तव में कलकत्ते का काम पूरा हो चुका था।

धंधे में लगने के पहले मेरा विचार था कि हिंदुस्तान की एक छोटी-सी यात्रा तीसरे दरजे में करके उस दरजे के यात्रियों का परिचय प्राप्त करूं और उनके कष्ट जान लूं। गोखले के सामने मैंने यह विचार रखा। पहले तो उन्होंने हँसकर टाल दिया; पर जब मैंने इस यात्रा से अपनी आशाओं का वर्णन किया, तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मेरी योजना को स्वीकृति दे दी। मुझे पहले तो काशीजी जाना था और वहां विदुषी एनी बेसेंट के दर्शन करने थे। वह उस समय बीमार थीं।

इस यात्रा के लिए मुझे नया साज-सामान जुटाना था। पीतल का एक डिब्बा गोखले ने ही दिया और उसमें मेरे लिए मगद के लड्डू और पूरियां रखवा दीं। बारह आने में किरमिच का एक बैग (थैला) लिया। छाप (पोरबंदर के पास के एक गांव) की ऊन का लबादा बनवाया। बैग में यह लबादा, तौलिया, कुरता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और धोती थी। ओढ़ने को एक कम्बल था। इनके अतिरिक्त एक लोटा भी साथ रख लिया। इतना सामान लेकर मैं निकला।

गोखले और डॉ. राय स्टेशन पर मुझे पहुंचाने आये। दोनों से मैंने कष्ट न करने की प्रार्थना की। पर दोनों ने आग्रह किया। गोखले बोले–"आप पहले दरजे में जाते तो शायद मैं न चलता, पर अब तो मुझे चलना ही है।"

प्लेटफार्म पर जाते हुए गोखले को तो किसी ने न रोका। उन्होंने अपनी रेशमी पगड़ी बांधी थी और धोती तथा कोट पहने हुए थे। डॉ. राय बंगाली पहनावे में थे, इसलिए उन्हें टिकटबाबू नें पहले तो अंदर जाने से रोका, पर जब गोखले ने कहा–"मेरे मित्र हैं", तब वह भी दाखिल हुए। इस तरह दोनों ने मुझे बिदा दी।

20: काशी में

यह यात्रा कलकत्ते से राजकोट तक की थी। उसमें काशी, आगरा, जयपुर, पालनपुर और राजकोट जाना था। इतने स्थान देखने के बाद और समय न बचता था। हर जगह एक-दिन ठहरा था। पालनपुर के सिवा सर्वत्र धर्मशाला में अथवा पंडों के घर यात्रियों की तरह टिका था। जहां तक मुझे याद है, इतनी यात्रा में गाड़ी-भाड़े सहित मेरे कुल इकतीस रुपये खर्च हुए थे। तीसरे दरर्ज में सफर करते हुए भी प्रायः डाकगाड़ी छोड़ देता था; क्योंकि मैं जानता था कि उसमें भीड़ अधिक होती है। उसका भाड़ा भी पैसेंजर के तीसरे दरजे के भाड़े से अधिक होने की अड़चन तो थी ही।

तीसरे दरजे के डिब्बे में गंदगी और पाखानों की बुरी दशा, जैसी आज है, वैसी ही उस समय थी। आज शायद अपने-आप कुछ सुधार हो गया हो। पर पहले और तीसरे दरजे के बीच आराम का अंतर भाड़े की दृष्टि से बहुत अधिक जान पड़ा। तीसरे दरजे वाले यात्री भेड़-बकरी की तरह समझे जाते हैं। उनके लिए भेड़-बकरियों वाले डिब्बे दिये जाते हैं। यूरोप में तो मैंने तीसरे ही दरजे में यात्रा की थी। तजरुबे के लिए एक बार पहले दरजे में सफर कर लिया था। वहां मैंने पहले और तीसरे दरजे में यहां जितना अंतर नहीं पाया। दक्षिण अफ्रीका में तीसरे दरजे के यात्री अधिकतर हब्शी ही होते हैं। फिर भी वहां के तीसरे दरजे में यहां से अधिक सुभीता है। हर खाने में बैठने वाले यात्रियों की संख्या के नियम की पाबंदी की जाती है। यहां तो तीसरे दरजे में इस नियम का पालन होते मैंने देखा ही नहीं।

रेलवे-विभाग की ओर से होने वाली इन अड़चनों के उपरांत यात्रियों की गंदी आदतें सफाई-पसंद आदमी के लिए तीसरे दरजे की यात्रा को दंडस्वरूप बना देती हैं। चाहे जहां थूकना, चाहे जहां कूड़ा फेंकना, चाहे जैसे और चाहे जब बीड़ी पीना, पान-तम्बाकू खाना और जहां बैठे हों वहीं पिचकारी छोड़ना, फर्श पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जूठन चिल्ला-चिल्लाकर बातें करना, बगल में बैठे हुए आदमी की तकलीफ-आराम की परवाह न करना और गंदी वाणी बोलना-यह तो सार्वत्रिक अनुभव है।

तीसरे दरजे की यात्रा के अपने 1902 के अनुभवों में और 1915 से 1919 तक के मेरी दूसरी बार के इसी दरजे की यात्रा के अखंड अनुभव में मैंने बहुत फर्क नहीं पाया। इस महाव्याधि का एक ही उपाय मेरी समझ में आया है। वह यह कि शिक्षित वर्ग को तीसरे दरजे में ही यात्रा करनी चाहिए; लोगों की आदतें सुधारने की कोशिश करनी चाहिए। इसके सिवा रेलवे-विभाग के अधिकारियों को शिकायतें कर-करके परेशान कर डालना चाहिए। खुद कोई सुभीता पाने या उसकी रक्षा के लिए घूस-रिश्वत न देनी चाहिए और न एक भी बेकायदे बर्ताव को दरगुजर करना चाहिए।

मेरा अनुभव है कि ऐसा करने से बहुत-कुछ सुधार हो सकता है। अपनी बीमारी के कारण मुझे सन् 1920 से तीसरे दरजे की यात्रा एक तरह से बंद कर देनी पड़ी है, इसका दुःख और लज्जा मुझे सदा बनी रहती है और वह भी ऐसे अवसर पर बंद करनी पड़ी, जबकि तीसरे दरजे की यात्रा के कष्टों को दूर करने का काम कुछ ठिकाने आ रहा था। रेलों और जहाजों में गरीब मुसाफिरों को जो तकलीफें उठानी पड़ती हैं, उनकी अपनी बुरी आदतों से इन तकलीफों में जो वृद्धि हो रही है, व्यापार के सिलसिले में विदेशी व्यापार को सरकार की ओर से जो अनुचित सुभीते दिये जा रहे हैं-यह सब हमारे जन-जीवन की एक बिलकुल अलग और महत्त्वपूर्ण समस्या रूप हो गए हैं और उस हल करने में एक-दो चतुर और लगन वाले सज्जन अपना पूरा समय लगा दें तो यह अधिक नहीं माना जायेगा।

पर तीसरे दरजे की यात्रा की बात अब यहीं छोड़कर काशी के अनुभव पर आता हूं। काशी में सवेरे उतरा। मुझे किसी पंडे के ही यहां उतरना था। बहुत-से ब्राह्मणों ने मुझे घेर लिया। उनमें जो मुझे कुछ साफ-सुथरा और भला लगा उसका घर मैंने पसंद किया। मेरा चुनाव ठीक निकला। ब्राह्मण के आंगन में गाय बंधी थी। ऊपर एक कठोरी थी, उसी में मुझे टिकाया। मुझे विधिपूर्वक गंगास्नान करना था। उसके पहले कुछ खाना न था। पंडे ने सब तैयारी की। मैंने उससे कह रखा था कि मैं सवा रुपये से अधिक दक्षिणा नहीं दे सकता, इसलिए उसी के अनुरूप तैयारी करो। पंडे ने बिना रगड़-झगड़ के मेरी बात मान ली। बोला-"हम लोग पूजा तो एक-ही-सी धनी-गरीब सबको कराते हैं। दक्षिणा यजमान की इच्छा और सामर्थ्य पर होती है।" मेरी समझ में पंडाजी ने पूजा-विधि में कोई गड़बड़ी नहीं की। बारह बजे के लगभग इससे छुट्टी पाकर मैं काशी विश्वनाथ के दर्शन करने गया। वहां जो कुछ देखा उससे दुःख ही हुआ।

बंबई मे, 1891 में, जब मैं वहां वकालत करता था, एक बार प्रार्थना-समाज के मंदिर में काशी की यात्रा विषय पर व्याख्यान सुना था। इससे कुछ नैराश्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के लिए तो पहले से तैयार था। पर जो आशा-भंग हुआ वह जितना सोचा था उससे अधिक था।

तंग, फिसलने वाली गली में से होकर जाना, शांति का नाम नहीं, मक्खियों की भिनभिनाहट, यात्रियों और दुकानदारों का शोरगुल असह्य लगा।

जहां मनुष्य ध्यान और भगवच्चिंतन की आशा रखे वहां इनमें से कुछ न मिले! ध्यान चाहिए जो उसे अपने अंतर में पाना होगा। मैंने ऐसी भावुक बहनों को अवश्य देखा जिन्हें अपने आस-पास क्या हो रहा है, इसका कुछ पता न था। वे केवल अपने ध्यान में ही निमग्न थीं, पर प्रबधकों को इसका श्रेय नहीं मिल सकता। काशी विश्वनाथ के आस-पास शांत, निर्मल, सुगंधित, स्वच्छ वातावरण-बाहरी और भीतरी भी-पैदा करना और उसे बनाये रखना प्रबंधकों का कर्त्तव्य है। इसके बदले मैंने ठगों का नये ढंग की मिठाइयों और खिलौनों का बाजार लगा पाया।

मंदिर में पहुंचने पर दरवाजे के सामने बदबू करते हुए सड़े फूल मिले। अंदर बढ़िया संगमरमर का फर्श था। किसी अंध श्रद्धालु ने उसे रुपयों से जड़वाकर खराब कर दिया था, और रुपयों में मैल भर गया था।

मैं ज्ञानवापी के पास गया। मैंने वहां ईश्वर को ढूंढ़ा, पर वह न मिला। इस मन में कुढ़ रहा था। ज्ञानवापी के पास भी गंदगी मिली। कुछ दक्षिणा चढ़ाने की श्रद्धा नहीं थी। इससे मैंने तो सचमुच ही एक पाई चढ़ाई। पुजारीजी झल्लाए। उन्होंने पाई फेंक दी। दो-चार गालियां सुनाकर बोले-"तू यों अपमान करेगा तो नरक में पड़ेगा।"

मैं शांत रहा। बोला-"महाराज, मेरा जो होना होगा, होगा। पर अपशब्द आपके मुंह में शोभा नहीं देते। यह पाई लेनी हो तो ले लीजिए, नहीं तो इससे भी हाथ धोओगे।"

"जा जा, तेरी पाई मुझे नहीं चाहिए।" कहकर दो-चार और सुना दी। मैं पाई लेकर चलता बना और सोचा कि महाराज ने पाई गंवाई और मैंने बचाई। पर महाराज पाई खोने वाले नहीं थे। उन्होंने मुझे वापस बुलाया, "अच्छा धर दो। मैं तुझ-जैसा नहीं होना चाहता। मैं न लूं तो तेरा बुरा होगा।"

मैंने चुपचाप पाई दी और लम्बा सांस लेकर चलता बना। इसके बाद दो बार काशी विश्वानाथ के दर्शन कर चुका हूं। पर वह तो 'महात्मा' बनने के बाद। अतः 1902 के अनुभव फिर कहां जैसे 'महात्मा' ही जानते हैं। बाकी गंदगी और शोर तो मैंने जैसा-का-तैसा पाया।

भगवान की दया के सम्बन्ध में किसी को शंका हो तो उसे ऐसे तीर्थ क्षेत्र देखने चाहिए। वह महायोगी, अपने नाम पर कितना ढोंग, अधर्म, पाखंड इत्यादि सहन करता है। उसने तो कह रखा है :

ये यथामां प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात "जैसा करना वैसा भरना"। कर्म को मिथ्या कौन कर सकता है फिर भगवान के दखल देने की आवश्यकता ही कहां है उसने तो अपने कानून बनाकर हाथ धो डाले हैं।

यह अनुभव लेकर मैं मिसेज बेसेंट के दर्शन करने गया। मुझे मालूम था कि वह हाल में ही बीमारी से उठी हैं। मैंने अपना नाम भेजा। वह तुरंत आईं। मुझे तो दर्शन ही करने थे, इससे मैंने कहा- "आपकी तबीयत ज्यादा खराब होने की बात मुझे मालूम है। मुझे तो आपके दर्शन ही करने थे। सेहत नाजुक होते हुए भी आपने मुझे दर्शन की इजाजत दी, इतना ही मेरे संतोष के लिए काफी है। आपको मैं अधिक कष्ट नहीं देना चाहता।" यह कहकर मैंने बिदा ली।

21 : बंबई में बसा

गोखले की बड़ी इच्छा थी कि बंबई मे जमूं; वहां बैरिस्टरी करूं और उनके लोक-सेवा के कार्य में भाग लूं। उन दिनों सार्वजनिक सेवा का अर्थ था कांग्रेस का काम। उनकी स्थापित की हुई संस्था का खास काम महासभा की व्यवस्था का संचालन था।

मेरी भी यही इच्छा थी, पर काम मिलने के बारे में मुझे आत्मविश्वास नहीं था। खुशामद करना विषतुल्य लगता था।

इसलिए पहले तो मैं राजकोट में ही रहा। वहां मेरे पुराने हितेच्छु और मुझे विलायत भेजने वाले केवलराम मावजी दवे थे। उन्होंने मुझे तीन मुकदमे दिए। काठियावाड़ के जुडिशीयल असिस्टेंट के सामने दो अपीलें थीं और एक इब्तिदाई मुकदमा जामनगर में था। यह मामला महत्त्व का था। मैंने इसकी जिम्मेदारी लेने में आनाकानी की। इस पर केवलराम बोल उठे- "हारेंगे तो हम हारेंगे न, तुमसे जितना बने करना। तुम्हार साथ मैं भी तो होऊंगा ?"

इस मुकदमे में प्रतिपक्षी की ओर से स्वर्गीय समर्थ थे। मेरी तैयारी काफी थी। हिंदुस्तान के कानून का मुझे अधिक ज्ञान नहीं था, पर केवलराम दवे ने मुझे इस बारे में पूरी तरह कर दिया था। दक्षिण अफ्रीका जाने के पहले दोस्तों से सुना करता था- "शहादत का कानून (एविडेंस एक्ट) फिरोजशाह के जबान पर है और यही उनकी सफलता की कुंजी है।" मैंने इसे याद रखा और दक्षिण अफ्रीका जाते हुए मैंने यहां का कानून-शहादत टीका सहित पढ़ डाला था। इसके सिवा दक्षिण अफ्रीका का अनुभव तो था ही।

मुकदमे में हमारी जीत हुई। इससे मेरे भीतर कुछ विश्वास उत्पन्न हुआ। उक्त दो अपीलों के बारे में तो मुझे शुरू से ही कोई डर न था। इससे ऐसा जान पड़ा कि बंबई जाऊं तो शायद वहां भी अड़चन न होगी।

इस विषय पर आने से पहले जरा अंग्रेज अधिकारियों के अविचार और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अज्ञान के विषय में अपना अनुभव सुना दूं। जुडीशीयल असिस्टेंड कहीं एक जगह जमकर नहीं बैठते थे। उनका इजलास आज यहां, कल वहां हुआ करता था। और जहां वह इजरत जाते थे वहां वकील-मुवक्किलों को भी जाना पड़ता था। वकील का मेहनताना जितना सदर मुकाम में होता, बाहर जाने पर उससे ज्यादा होना ही ठहरा। अतः मुवक्किल को सहज ही दूना खर्च पड़ जाता था। पर जज इसका विचार क्यों करने लगा?

इस अपील की सुनवाई वेरावल में होने वाली थी। वहां उन दिनों बड़े जोर का प्लेग था। मुझे याद है कि रोज पच्चास के करीब केस होते थे। वहां की आबादी 5500 के लगभग थी। गांव करीब-करीब खाली हो गया था। पर बेचारे मुवक्किल कहां जायं? गरीब होने की हालत में उन्हें बस भगवान का ही भरोसा था।

मेरे पास वकील दोस्तों का तार आया था कि मैं साहब से प्रार्थना करूं कि प्लेग के कारण मुकाम बदल दें। दरख्वास्त देने पर साहब ने पूछा-"आपको कुछ डर लगता है?" मैंने कहा-"यह मेरे डरने का सवाल नहीं है। मैं मानता हूं कि मैं अपना इंतजाम कर लूंगा। मगर मुवक्किलों का क्या होगा?"

साहब बोले-"प्लेग ने हिंदुस्तान में घर कर लिया है, उससे क्या डरना है? वेरावल की हवा कैसी सुंदर है! (साहब गांव से दूर-समुद्र-किनारे महल सरीखे तम्बू में रहते थे।) लोगों को इस प्रकार बाहर रहना सीखना चाहिए।"

इस फिलासफी के सामने मेरी क्या चलती? साहब ने पेशकार से कहा-"मि. गांधी की बात को ध्यान में रखिएगा और वकीलों तथा मुवक्किलों को बहुत दिक्कत पड़ती हो तो मुझे बतलाइएगा।"

इससे साहब ने सरल भाव से अपनी समझ के अनुसार ठीक ही किया; पर उन्हें कंगाल हिंदुस्तान की अड़चनों का अंदाज कैसे हो सकता? वह बेचारे हिंदुस्तान की जरूरतों, बुरी आदतों, स्वभाव और रिवाजों को कैसे समझते? जिसे गिन्नियों में गणना करने की आदत हो उससे पाइयों में हिसाब लगाने को कहिए तो झट से कैसे जोड़ सकेगा? नेक-से-नेक इरादा होने पर भी हाथी जैसे चींटी की दृष्टि से विचार करने में असमर्थ होता है, वैसे हाथी की जरूरत वाला अंग्रेज चींटी की जरूरत वाले हिंदुस्तानी के लिए विचार करने या नियम बनने में असमर्थ ही होगा।

अब मूल विषय पर आना चाहिए। ऊपर बताए अनुसार सफलता मिलने पर भी मैं थोड़े दिनों तक राजकोट में ही रह जाने की बात सोच रहा था। इतने में एक दिन केवलराम मेरे पास पहुंचे और बोले-"गांधी! तुम्हें यहां नहीं रहने दिया जायेगा। तुम्हें तो बंबई में रहना होगा।"

"पर वहां मुझे पूछेगा कौन? मेरा खर्च आप चलाएंगे क्या?"

"हां-हां, मै तुम्हारा खर्च चलाऊंगा। तुम्हें बैरिस्टर के रूप में कभी-कभी यहां ले आया करूंगा और मसविदे वगैरा का काम तुम्हें वहां भेजूंगा। बैरिस्टरों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को बड़ा-छोटा बनाना तो हक़ वकीलों का ही काम है न? तुमने अपनी योग्यता तो जामनगर और वेरावल में सिद्ध कर ही दी है; इसलिए मैं बेफिक्र हूं। तुम जो सार्वजनिक कार्य के लिए सिरजे गये हो, उसे हम काठियावाड़ में दफन न होने देंगे। बोलो, कब जाते हो?"

"नेटाल से मेरे थोड़े रुपये आने बाकी हैं। उनके आने पर जाऊंगा?"

रुपये एक-दो हफ्ते में आ गए और मैं बंबई गया। पेइन, गिलबर्ट और सयानी के दफ्तर में कमरे किराये पर लिए और जान पड़ा कि अब यहां जम गया।

22 : धर्म-संकट

मैंने जैसे दफ्तर लिया वैसे गिरगांव में घर लिया, पर ईश्वर ने मुझे स्थिर न होने दिया। घर लिये अधिक दिन न हुए थे कि इतने में मेरा दूसरा लड़का सख्त बीमार हुआ। उसे काले ज्वर ने पकड़ा बुखार उतरता न था। बेचैनी भी थी। साथ ही रात में सन्निपात के लक्षण भी दिखाई दिये। "इस बीमारी के पहले, बचपन में, उसे चेचक भी खूब जोरों से निकल चुकी थी।

डॉक्टर की सलाह ली। उन्होंने कहा-इसे दवा कम ही काम करेगी। इसे अंडा और मुर्गी का शोरबा देने की जरूरत है।"

मणिलाल की उम्र दस साल की थी। उससे मुझे क्या पूछना था? अभिभावक होने के कारण मुझे ही निर्णय करना था। डॉक्टर बड़े सज्जन पारसी थे। मैंने कहा-"डॉक्टर साहब! हम सब अन्नाहारी हैं। मेरा विचार अपने लड़के को इन दोनों में से एक भी चीज देने का नहीं होता है। और कुछ बता सकते हैं?"

डॉक्टर बोले-"आपके लड़के की जान खतरे में हैं। दूध और पानी मिलाकर दिया जा सकता है, पर इससे उसको पूरा पोषण नहीं मिल सकता। आप तो जानते हैं, मैं बहुतेरे हिंदू घरों में जाता हूं, पर दवा की शक्ल में तो हम चाहे जो चीज दें वे उसे ले लेते हैं। मै तो समझता हूं कि आप अपने लड़के पर ऐसी सख्ती न करें तो अच्छा है।"

"आप जों कहते हैं वह तो ठीक है। आपका यही कहना फ़र्ज है। मेरी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। लड़का बड़ा होता तो मैं जरूर उसकी इच्छा जानने की कोशिश करता और वह जो चाहता करने देता। यहां तो मुझे ही इस बच्चे के बारे में फैसला करना है। मुझे तो जान पड़ता है कि मनुष्य में धर्म की परीक्षा ऐसे ही समय होती है। सच हो या झूठ, लेकिन मैंने इसे धर्म मान रखा है कि मनुष्य को मांसादिक नहीं खाना चाहिए। जीवन के साधकों की भी सीमा होती है। कुछ बातें ऐसी हैं जो जीने के लिए भी हमें न करनी चाहिए। मेरे धर्म की मर्यादा मुझे अपने लिए और अपनों के लिए, ऐसे समय भी मांस इत्यादि का उपयोग करने से मना करती है, इसलिए आप जो बता रहे हैं वह जोखिम मुझे उठानी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पड़ेगी। पर आपसे एक प्रार्थना करता हूं। आपका इलाज तो मैं न करूंगा, पर मुझे बच्चे की छाती, नाड़ी इत्यादि देखना नहीं आता। मुझे खुद पानी के उपचारों की कुछ जानकारी है। उन्हें करने की बात सोच रहा हूं। पर अगर आप जब-जब मणिलाल की तबीयत देखने आते रहें और शरीर में होने वाले फेरफार मुझे बतलाते रहें तो मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा।"

सज्जन डॉक्टर ने मेरी कठिनाई समझी और मेरी प्रार्थनानुसार मणिलाल को देखने आना स्वीकार किया।

यद्यपि मणिलाल अपनी राय कायम करने लायक नहीं था, फिर भी डॉक्टर के साथ जो बातें हुई थीं वे मैंने उसे सुना दीं और उसका विचार पूछा।

"आप खुशी से पानी का इलाज किजिए। मुझे शोरबा नहीं पीना है और न अंडे खाने हैं।"

इस जवाब से मैं खुश हुआ। गो कि मैं समझता था कि यदि मैंने उसे ये दोनों चीजें खिलाई होती तो वह खा भी लेता।

मैं कूनेक (लूई कूने) के इलाज जानता था। उसके प्रयोग भी किये थे। रोग में उपवास का बड़ा महत्त्व है, यह भी जानता था। मैंने मणिलाल को कूने की रीती से कटिस्नान करना शुरू किया। तीन मिनट से अधिक मैं उसे टब में नहीं रखता था। तीन दिन केवल पानी मिलाये हुए संतरे के रस पर रखा।

ज्वर जाता न था। रात को कुछ अकबक करता था। तापमान 104 डिग्री तक जाता था। मैं घबराया। लड़के को गंवा बैठा तो दुनिया मुझे क्या कहेगी? बड़े भाई क्या कहेंगे? दूसरा डॉक्टर क्यों न बुलायें? वैद्य को क्यों न बुलाऊं? अपनी अक्ल आजमाने का मां-बाप को क्या हक है? ऐसे विचार मन में आते थे। फिर इस तरह के भी विचार उठते थे "हे जीव! तू अपने लिए जो करता है, वही लड़के के लिए भी करता है, परमेश्वर संतोष मानेगा। मुझे पानी के इलाज पर श्रद्धा है, दवा पर नहीं है। डॉक्टर जीवन-दान नहीं देता। वह भी तो आजमाइशें ही करता है। जीवन की डोर तो एक ईश्वर के ही हाथ में हैं? ईश्वर का नाम लेकर, उस पर भरोसा रखकर तू अपना रास्ता न छोड़।"

इस तरह का मंथन मनमें चलता रहता। रात पड़ी। मैं मणिलाल को बगल में लेकर सोया था। मैंने उसे भिगोकर निचोड़ी हुई चादर में लपेटने का निश्चय किया। मैं उठा। चादर ली। ठंडे पानी में डुबोई। निचोड़ी। इसमें सिर से पैर तक मणिलाल को लपेट दिया। ऊपर से दो कंबल उढ़ा दिये। सिर पर गीला तौलिया रखा। देह तवे की तरह तप रही थी और बिलकुल खुश्क हो रही थी। पसीना आता ही न था।

मैं बहुत थक गया था। मणिलाल को उसकी मां को सौंपकर मैं चौपाटी चला गया कि आधा घंटे हवा खाकर जरा ताजा हो लूं और शांति प्राप्त करूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रात के दस बजे होंगे। अदमियों की आवाजाही कम पड़ गई थी। मुझे थोड़ा ही होश था। विचारसागर में गोते खा रहा था। हे ईश्वर! इस धर्म-संकट में तुम मेरी लज्जा रखना। 'राम-राम' की रटन तो मुंह में थी ही। थोड़ा चक्कर लगाकर धड़कते कलेजे से वापस लौटा। ज्योंही घर में दाखिल हुआ, मणिलाल ने पुकारा-"बापू, आ गए?"

"हां भाई!"

"मुझे अब इसमें से निकालिये न। जल रहा हूं।"

"क्यों पसीना छूट रहा है क्या?"

"मैं तो भीग गया हूं। अब मुझे निकालिये न, बापूजी!"

मैंने मणिलाल का माथा देखा। माथे पर पसीने की बूंदें नजर आई। ज्वर उतर रहा था। मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

"मणिलाल! अब तेरा बुखार चला जायेगा। अभी थोड़ी देर पसीना आने दे न?"

"नहीं बापूजी, अभी तो मुझे निकालिये। पीछे फिर लपेट दीजिएगा।"

मुझे धीरज आ गया था, इसलिए बातों में लगाकर कुछ मिनट गुजारे। माथे से पसीने की धार बह चली। मैंने चादर खोला। शरीर पोंछा और बाप-बेटे सो गये। दोनों ने गहरी नींद ली।

सवेरे मणिलाल का बुखार कम पाया। दूध और पानी तथा फलों के रस पर वह चालीस दिन रहा। मैं निर्भय हो गया था। ताप हठीला होने पर भी वश में आ गया था। आज मेरे सब लड़कों में मणिलाल शरीर से सबसे ज्यादा मजबूत है।

मणिलाल का आरोग्य-लाभ ईश्वर की देन है या पानी के इलाज, अल्पाहार और शुश्रूषा की, इसका निर्णय कौन कर सकता है? सब अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार जो मानना चाहें मान लें। भगवान ने मेरी लाज रखी, इतना मैंने जाना और आज भी यही मानता हूं।

23 : फिर दक्षिण अफ्रीका

मणिलाल चंगा तो हो गया, पर मैंने देखा कि गिरगांव वाला घर रहने लायक नहीं है। उसमें सीलन थी। रोशनी काफी नहीं थी। इससे रेवाशंकर भाई से सलाह की और हम दोनों ने बंबई के किसी उपनगर में बंगला लेने का निश्चय किया। मैं बांदरा, सान्ताक्रूज वगैरा में भटका। बांदरा में कसाईखाना था, इससे वहां रहने की हममें से किसी की इच्छा नहीं हुई। घाटकोपर वगैरा समुद्र से दूर जान पड़े। सान्ताक्रूज में एक सुन्दर बंगला मिल गया। हम उसमें गए और ऐसा जान पड़ा कि आरोग्य की दृष्टि से हम सुरक्षित हो गए। मैंने चर्चगेट जाने का पहले दरजे का पास ले लिया। पहले दरजे में अक्सर मैं अकेला ही होता था, इससे कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गर्व का भी अनुभव करता था, ऐसा याद है। अक्सर बांदरा से बम्बई जाने वाली खास ट्रेन पकड़ने के लिए सान्ताक्रूज से बांदरा तक पैदल ही जाता था।

मेरा धंधा पैसे की दृष्टि से, मैंने जैसा सोचा था, उससे अच्छा चला। दक्षिण अफ्रीका के मुवक्किल भी मुझे कुछ काम दिया करते थे। मुझे आशा हुई कि उससे खर्च आसानी से चल जाएगा।

हाईकोर्ट का काम तो मुझे अभी कुछ मिलता नहीं था। पर उन दिनों 'मूट' (चर्चा) चलती थी। उसमें जाया करता था, गो उसमें शामिल होने की हिम्मत न होती थी। मुझे याद है कि उसमें जमियतराम नाना भाई खासा हिस्सा लेते थे। दूसरे नये बैरिस्टरों की तरह मैं भी हाईकोर्ट में मुकदमे सुनने जाया करता था। वहां जो जानकारी मिलती उसकी बनिस्बत समुद्र की फर्राटे से आती हुई हवा में झपकियां लेने में अधिक सुख मिलता था। झपकियां लेने वाले और साथी भी थे; अतः मुझे इसमें शरम नहीं लगती थी। मैंने देखा कि झपकियां लेना फैशन में दाखिल हो गया है।

हाईकोर्ट के पुस्तकालय का उपयोग करना आरम्भ किया और वहां कुछ जान-पहचान पैदा करना शुरू किया। मुझे आशा हुई कि थोड़े ही दिनों में मैं भी हाईकोर्ट में काम करने लगूंगा।

इस प्रकार एक ओर से अपने धंधे के बारे में कुछ निश्चिंतता आने लगी। दूसरी ओर गोखले की नजर तो मुझ पर लगी ही रहती थी। हफ्ते में दो-तीन बार चेंबर में आकर मेरा हाल-चाल पूछ जाते और अपने खास दोस्तों को भी कभी-कभी ले आते थे। अपने काम करने के ढंग से भी मुझे वाकिफ कराते जाते थे।

पर कह सकता हूं कि अपने भविष्य के बारे में ईश्वर ने मेरा सोचा कुछ भी न होने दिया। ज्यों ही मैंने स्थिर होकर काम में लगने का निश्चय किया और कुछ स्थिरता अनुभव करने लगा कि अचानक दक्षिण अफ्रीका का तार पहुंचा:

"चेंबरलेन यहां आ रहे हैं, आपको अविलम्ब आना चाहिए।" अपना वचन तो मुझे याद था ही। मैंने तार दिया-"खर्च भेजिए, आने को तैयार हूं।" उन्होंने तुरंत रुपये भेज दिए और दफ्तर समेटकर मैं रवाना हो गया।

मैंने सोचा कि मुझे वहां एक साल तो लग ही जाएगा। सो बंगला रहने दिया और बाल-बच्चों को वहीं रहने देना ठीक जान पड़ा।

मैं उस समय मानता था कि जो युवक देश में पैसा न कमा सकते हों और साहसी हों, उनका विदेश चले जाना अच्छा है। इसलिए अपने साथ चार-पांच नवयुवकों को लेता गया, जिनमें मगनलाल गांधी भी थे।

गांधी-कुटुम्ब बड़ा था। आज भी है। मैं सोचता था कि उनमें से जो लोग स्वतंत्र होना चाहें, स्वतंत्र हो जाए। मेरे पिता बहुतों का भरण-पोषण करते थे। पर वह थे रजवाड़े की नौकरी में। मुझे ऐसा लगा कि इस नौकरी से निकला जा

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सके तो अच्छा है। मैं उन्हें नौकरियां दिलाने में मदद नहीं कर सकता था। शक्ति होते हुए भी इच्छा नहीं होती थी। मेरी यह धारणा थी कि वे और दूसरे भी स्वावलम्बी बनें तो अच्छा है।

पर अंत में, ज्यों-ज्यों मेरा आदर्श आगे गया त्यों-त्यों, मैं ऐसा मानता हूं कि इन युवकों के आदर्शों को उस सांचे में ढालने की मैंने कोशिश की। उनमें मगनलाल गांधी को अपने रास्ते पर लगाने में मुझे अच्छी सफलता मिली। पर इसकी चर्चा आगे चलकर करनी होगी।

बाल-बच्चों का वियोग, बने घोंसलों को बिगाड़ना, निश्चित स्थिति से अनिश्चित में प्रवेश-यह सब क्षणभर अखरा, पर मुझे तो अनिश्चित जीवन की आदत पड़ गई थी। इस जगत में जहां ईश्वर कहिए या सत्य कहिए, उसके सिवा दूसरा कुछ भी निश्चित नहीं है, वहां अनिश्चितता का ख्याल करना ही गलत मालूम होता है। यह सम्पूर्ण वस्तु-व्यापार, जो अपने आसपास दिखाई देता और हो रहा है, क्षणिक है; उसमें जो एक परम तत्त्व निश्चित रूप से अंतर्निहित है उसकी झांकी हो जाए, उस पर श्रद्धा रहे तभी जीना सार्थक हो सकता है। उसकी खोज ही परम पुरुषार्थ है।

यह नहीं कहा जा सकता कि डबरन एक दिन भी पहले पहुंचा। मेरे लिए काम तो तैयार ही था। मि. चेंबरलेन के पास डेपुटेशन जाने की तारीख तय हो चुकी थी। मुझे उनके सामने पढ़ा जाने वाला आवेदन-पत्र बनाना था और डेपुटेशन में साथ जाना था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथा भाग

1: किया-धरा चौपट!

मि. चेंबरलेन साढ़े तीन करोड़ पौंड दक्षिण अफ्रीका से लेने आए थे; अंग्रेजों का, और हो सके तो बोअरों का, मन जीतने आए थे। अतः भारतीय प्रतिनिधियों को यह सूखा जवाब मिला:

"आप तो जानते हैं कि स्वराज्यभोगी उपनिवेशों पर साम्राज्य सरकार का अंकुश नाममात्र का ही है। आपकी शिकायतें तो सही मालूम होती हैं। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, करूंगा, पर आपको जैसे भी बने यहां के गोरों को खुश रखकर रहना है।"

जवाब सुनकर प्रतिनिधिमंडल पर पाला पड़ गया। मैंने आशा छोड़ दी। जगे तब से सवेरा मानकर फिर 'एका एक, दूआ दो' से आरम्भ करना पड़ेगा, यह समझ लिया। साथियों को यह बात समझा दी।

पर मि. चेंबरलेन का जवाब क्या भेजा था? गोलमटोल बातें कहने के बजाए उन्होंने साफ कह दिया। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का कानून उन्होंने जरा मीठे शब्दों में समझा दिया। पर हमारे पास लाठी थी ही कहां? हमारे पास तो लाठी की चोट झेलने लायक शरीर भी मुश्किल से थे।

मि. चेंबरलेन कुछ हफ्ते ही ठहरने वाले थे। दक्षिण अफ्रीका कोई छोटा-सा प्रांत नहीं है। यह एक देश है, खंड है। अफ्रीका में तो अनेक उप-खंड समाये हुए हैं। कन्याकुमारी से श्रीनगर यदि 1900 मील है तो डरबन से केपटाउन भी 1100 मील से कम नहीं है। इस खंड में मि. चेबरलेन को तूफानी दौरा करना था। वह ट्रांसवाल को रवाना हुए। मुझे वहां के हिंदुस्तानियों का 'केस' तैयार करके पेश करना था। प्रिटोरिया कैसे पहुंचा जाए? वहां मैं वक्त से पहुंच जाऊं, इसके लिए इजाजत लेने का काम हमारे आदमियों से होने वाला न था।

युद्ध के बाद ट्रांसवाल उजाड़-सा हो गया था। वहां न खाने को अन्न था, न पहनने को कपड़ा। खाली और बंद पड़ी दुकानें को भरना और खुलवाना था। यह तो धीरे-धीरे ही हो सकता था। जैसे-जैसे माल आता जाए, वैसे-वैसे ही घर-बार छोड़कर भागे हुए लोगों को लौटने दिया जा सकता था। इससे प्रत्येक ट्रांसवालवासी का परवाना लेना पड़ता था। गोरों को तो परवाना मांगते ही मिल जाता था; हिन्दुस्तानियों की मुसीबत थी। लड़ाई के समय हिन्दुस्तान से और लंका से बहुत-से अफसर और सिपाही दक्षिण अफ्रीका पहुंच गए थे। उनमें से जो लोग वहां बसना चाहते हों, उनके लिए उसका सुभीता कर देना ब्रिटिश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राज्याधिकारियों पर छोड़ा जा सकता था। नया अधिकारी मंडल तो उन्हें बनाना था ही। उसमें इन अनुभवी अधिकारियों की अनायास गुंजाइश हो गई। इन अधिकारियों की तीव्र बुद्धि ने एक नया विभाग ही ढूंढ़ निकला। उसमें उनका अधिक पटु होना भी अनिवार्य था। हब्शियों से सम्बन्ध रखने वाला एक अलग विभाग तो था ही, फिर एशियाइयों के लिए क्यों न हो? दलील ठीक समझी गई। यह नया विभाग, मेरे पहुंचने तक, खुल चुका था। वह धीरे-धीरे अपना जाल बिछा रहा था। जो अधिकरी भागे हुओं को लौटने का परवाना देता था, वही चाहे तो और सबको भी दे सकता था। पर अमुक एशियावासी है यह वह कैसे जाने? यदि इस नए विभाग की सिफारिश पर ही एशियाई परवाना मिला करे तो उक्त अधिकारी की जिम्मेदारी कम हो जाती है और उसका कार्यभार भी कुछ हल्का हो जाए। यह दलील नया विभाग खोलने के समर्थन में पेश की गई थी। पर असलियत यह थी कि नये विभाग को कुछ काम की और कुछ दाम की जरूरत थी। काम न हो तो इस विभाग की आवश्यकता सिद्ध न होती और अंत में उसे बंद कर देना पड़ता। इस कारण यह काम उसे सहज ही मिल गया।

इस मकहमें में हिंदुस्तानियों को दरख्वास्त देनी पड़ती, फिर बहुत दिनों बाद जवाब मिलता। ट्रांसवाल जाने की इच्छा रखने वाले अधिक थे, अतः उनके लिए दलाल पैदा हो गए। इन दलालों और अधिकारियों के बीच गरीब हिंदुस्तानियों के हजारों रुपये लुट गए। मुझे बतलाया गया कि बिना जोर-जरिए के परवाना मिलता ही नहीं। और जरिया होने पर भी कितनी ही बार तो एक-एक व्यक्ति के लिए सौ-सौ पौंड तक खर्च हो जाते हैं। इसमें मेरा ठिकाना कहां लगता?

मैं अपने पुराने मित्र डरबन के पुलिस सुपरिटेंडेंट के यहां पहुंचा और उनसे कहा, "आप मेरा परिचय परवाना देने वाले अधिकारी से करा दें और मुझे परवाना दिला दें। मैं ट्रांसवाल में रहा हूं, यह तो आप जानते हैं।" वह तुरंत सिर पर टोप रखकर मेरे साथ हो लिए और मुझे परवाना दिला दिया। मेरी ट्रेन को मुश्किल से एक घंटा बाकी था। मैंने सामान आदि पहले से ठीक कर रखा था। सुपरिटेंडेंट अलेक्जेंडर को धन्यवाद देकर प्रिटोरिया के लिए रवाना हो गया। कठिनाइयों का मुझे सही-सही अंदाजा हो गया था। मैं प्रिटोरिया पहुंचा। दरख्वास्त तैयार की। डरबन में प्रतिनिधियों के नाम किसी से पूछने की मुझे याद नहीं। यहां तो नया विभाग काम कर रहा था, इसलिए प्रतिनिधियों के नाम पहले से पूछ लिए गए। इसका मतलब मुझे दूर रखना था। यह खबर प्रिटोरिया के हिन्दुस्तानियों को मिल गई थी।

यह दुःखद किंतु मनोरंजक कहानी आगे लिखी जाएगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2 : एशियाई नवाबी

नये विभाग के अधिकारी समझ न पाए कि मैं ट्रांसवाल में किस तरह दाखिल हो गया? उन्होंने अपने पास आने-जाने वाले हिन्दुस्तानियों से पूछा-पर उन बेचारों को क्या पता? अधिकारियों ने अनुमान किया कि मैं अपने पूर्व परिचयों के कारण बिना परवाने के दाखिल हुआ होऊंगा और ऐसा हो तो मैं गिरफ्तार किया जा सकता हूं।

किसी बड़ी लड़ाई के बाद भी सभी जगह कुछ दिनों के लिए राज्य कर्ताओं को विशेष अधिकार दिए जाते हैं। दक्षिण अफ्रीक़ा में भी यही हुआ है। वहां शांति रक्षा के निमित्त एक खास कानून बनाया गया, जिसकी एक दफा यह थी कि कोई बिना परवाने के ट्रांसवाल में दाखिल हो वह गिरफ्तार कर लिया जाए और कैद में रखा जाए। इस दफा के अनुसार मुझे पकड़ने की सलाह होने लगी। पर मुझसे परवाना मांगने की किसी की हिम्मत न हुई।

अधिकारियों ने डरबन को तार तो दिए ही थे। वहां से जब उन्हें यह सूचना मिली कि मैं परवाना लेकर दाखिल हुआ हूं तो वे निराश हो गए। पर ऐसी नाउम्मीदी से यह विभाग हिम्मत हारने वाला नहीं था। मैं ट्रांसवाल पहुंच तो गया; लेकिन मि. चेंबरलेन के पास मुझे न पहुंचने देने में यह विभाग अवश्य सफल हो सकता था।

अतः पहले नाम मांगे गये। दक्षिण अफ्रीका में वर्ण द्वेष का अनुभव तो जहां-तहां होता ही था, पर यहां हिन्दुस्तान-सरीखी गोलमाल और चालबाजी की बू आई। दक्षिण अफ्रीका में आम महकमे जनहित के लिए चलते थे। इसलिए अधिकारियों में इस प्रकार की सरलता और नम्रता होती थी। इसका लाभ थोड़े बहुत अंशों में काली-पीली चमड़ी वालों को भी अनायास मिल जाता था। अब जब दूसरे एशियाई वातावरण का प्रवेश हुआ तो वहां की जैसी जी-हजूरी, वहां की जैसी जोड़-तोड़ वृत्ति तथा दूसरी गंदी बुराइयां भी आ घुसी। दक्षिण अफ्रीका में एक प्रकार का प्रजातंत्र था, पर एशिया में से तो निरी नवाबी आई; क्योंकि वहां प्रजातंत्र की सत्ता नहीं थी, बल्कि प्रजा पर ही सत्ता चलाई जाती थी। दक्षिण अफ्रीका में तो गोरे घर बनाकर बस गये थे अर्थात् वे वहां की प्रजा थे। इससे अधिकारियों पर उनका अंकुश था। इसमें एशिया से आए हुए निरंकुश अधिकारियों ने शामिल होकर हिन्दुस्तानियों की हालत सरौते में सुपारी के समान कर डाली।

मुझे तो इस नवाबी का खास अनुभव हो गया। पहले तो मैं इस विभाग के प्रधान के सामने तलब किया गया। यह अफसर लंका से आए थे। 'तलब किया गया' कहने में शायद अतिशयोक्ति लगे, इसलिए अपना आशय थोड़ा और स्पष्ट किए देता हूं। मेरे पास कोई लिखित आदेश नहीं आया था, पर अगुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हिन्दुस्तानियों को तो वहां बराबर जाना ही पड़ता था। वैसे अगुओं में स्व. सेठ तैयब हाजी खान मुहम्मद भी थे। उनसे साहब ने पूछा, "गांधी कौन है? वह किसलिए आया है?"

तैयब सेठ ने जवाब दिया-"वह हमारे सलाहकार हैं। उन्हें हमने बुलाया है।"

साहब बोले-"तो हम सब यहां किस मतलब के लिए हैं? हम आप लोगों की रक्षा के लिए नहीं रखे गए हैं? गांधी को यहां के बारे में क्या मालूम?"

तैयब सेठ ने अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया-"आप तो हैं ही। पर गांधी तो हमारे अपने समझे जायेंगे न! वह हमारी भाषा जानते हैं; वह हमें समझे हैं। आप तो ठहरे अधिकारी।"

साहब ने हुक्म दिया-"गांधी को मेरे पास लाना।"

तैयब सेठ आदि के साथ मैं गया। कुर्सी तो मिल ही कैसे सकती थी? हम सब खड़े रहे। साहब ने मेरी ओर देखकर पूछा, "कहिए, आप यहां किसलिए आए हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "अपने भाइयों के बुलाने से उन्हें सलाह देने आया हूं।"

"पर आपको मालूम नहीं कि आपको यहां आने का अधिकार ही नहीं है। आपको परवाना तो भूल से मिल गया है। आप यहां के निवासी नहीं माने जा सकते। आपको तो वापस जाना पड़ेगा। आप मि. चेंबरलेन के पास नहीं जा सकते। यहां के हिन्दुस्तानियों की रक्षा के लिए तो हमारा विभाग खास तौर से खोला ही गया है। अच्छा, जाइए।"

इतना कहकर साहब ने मुझे विदा किया। मुझे उत्तर देने का मौका ही न दिया।

दूसरे साथियों को रोक लिया। उन्हें धमकाया और सलाह दी कि मुझे ट्रांसवाल से विदा कर दें। साथी मुंह लटकाये हुए लौटे। यों एक नई अनसोची समस्या हमारे सामने हल करने को खड़ी हो गई।

3 : कड़वे घूंट पीने पड़े

इस अपमान का मुझे बड़ा दुःख हुआ; पर इससे पहले ऐसे अनेक अपमान सह चुका था। इससे मुझे उनका घट्ठा-सा पड़ गया था। अतः अपमान की परवा न करते हुए तटस्थ भाव से मुझे जो कर्त्तव्य जान पड़े, उसे करते जाने का निश्चय किया।

उपर्युक्त अधिकारी की दस्तखती चिट्ठी आई। उसमें लिखा था कि मि. चेंबरलेन डरबन में मि. गांधी से मिल चुके हैं। इसलिए अब उनका नाम प्रतिनिधियों की सूची में से निकाल देना जरूरी हो गया है।

साथियों को यह पत्र असह्य जान पड़ा। उन्होंने कहा, "तो हम डेपुटेशन ही नहीं ले जाएंगे।" मैंने उन्हें बताया कि हमारे भाइयों की स्थिति कैसी विषम है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Foundation. Chennai and eGangotri
यदि आप लोग मि. चेंबरलेन के पास न जाएंगे तो यह माना जाएगा कि यहां हमें कोई कष्ट है ही नहीं। अंत में जो कहना है वह तो लिखकर ही कहना है। वह लिखा तैयार है। मैं पढ़ूं या और कोई पढ़े, इसकी कोई चिंता नहीं? मि. चेंबरलेन हमसे कोई बहस थोड़े ही करने वाले हैं? मेरा जो अपमान हुआ है, उसे हमें पी जाना पड़ेगा। मैं यों कह ही रहा था कि तैयब सेठ बोल उठे-"पर आपका अपमान तो जाति का ही है न! आप हमारे प्रतिनिधि हैं, यह कैसे भुलाया जा सकता है?"

मैंने कहा, "यह सही है, पर कौम को भी तो ऐसे अपमानों को पी जाना पड़ेगा। अपने पास दूसरा उपाय ही क्या है?"

तैयब सेठ ने जवाब दिया, "जो होना है, हो जाएगा। हम अपने हाथों दूसरा अपमान क्यों स्वीकार करें? हमारा काम तो बिगड़ ही रहा है। कौन हमें हक मिल जाते हैं?"

यह जोश मुझे भाता था; पर मैं यह भी जानता था कि उसका फायदा नहीं उठाया जा सकता। जाति की मर्यादा का मुझे पता था, अतः मैंने साथियों को शांत किया और अपनी ओर से स्व. जार्ज गाडफ्रे को, जो हिन्दुस्तानी बैरिस्टर थे, ले जाने की राय दी।

यों मि. गाडफ्रे डेपुटेशन के मुखिया बने। मेरे सम्बन्ध में मि. चेंबरलेन ने थोड़ी चर्चा भी की-'एक ही आदमी के बार-बार सुनने की अपेक्षा नए को सुनना ज्यादा अच्छा है', वगैरा बातें कहकर जो घाव किया था उसे भरने की कोशिश की।

पर इससे जाति का और मेरा काम पूरा न होकर और बढ़ गया। फिर 'क का कि की' से शुरू करना जरूरी हो गया। "आपके कहने से जाति ने लड़ाई में भाग लिया, पर नतीजा तो यही निकला न?" यह ताना मारने वाले भी निकल आए। इन तानों का मुझ पर कोई असर न हुआ। मैंने कहा, "मुझे उस सलाह के लिए पछतावा नहीं है। मैं आज भी मानता हूं कि लड़ाई में भाग लेकर हमने उचित किया। वैसा करके हमने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। उसका फल भले ही हम न देख पाएं, पर शुभ काम का फल शुभ ही होता है, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। बीती का विचार करने की अपेक्षा अब हमारा क्या कर्त्तव्य है, इस पर विचार करना अधिक अच्छा है। इस बात का दूसरों ने भी समर्थन किया।

मैंने कहा, "सच पूछिए तो जिस काम के लिए मैं बुलाया गया था, उसे तो अब पूरा हो गया मान सकते हैं। पर मैं मानता हूं कि आप मुझे छुट्टी दे दें तो भी जहां तक मेरा बस चले, मैं ट्रांसवाल से न टलूं। मेरा काम अब नेटाल से नहीं, बल्कि यहां से चलना चाहिए। एक बरस के अंदर लौट जाने का खयाल मुझे छोड़ देना चाहिए और यहां की वकालत की सनद हासिल करनी चाहिए। इस नए विभाग से निबटने की हिम्मत मुझमें है। जो उससे हम न भिड़े तो जाति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Mahatma Gandhi
लुट जाएगी और शायद यहां से उसका बोरिया-बिस्तरा भी बंध जाए। जाति की हीनता तो प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। मि. चेंबरलेन मुझसे नहीं मिले, उक्त अधिकारी ने मुझसे तुच्छता का बर्ताव किया, यह तो सारी जाति का जो अपमान हो रहा है उसके मुकाबले में कुछ भी नहीं है। यहां हम कुत्तों की तरह रहें, यह सहन नहीं किया जा सकता।"

मैंने इस रूप में बात चलाई। प्रिटोरिया और जोहान्सबर्ग में रहने वाले हिन्दुस्तानी नेताओं से मशविरा करके अंत में जोहान्सबर्ग में दफ्तर रखने का निश्चय हुआ।

ट्रांसवाल में मुझे वकालत की सनद मिलने में भी शंका तो थी ही, पर वकील समुदाय की ओर से मेरी दरख्वास्त का विरोध नहीं हुआ और बड़ी अदालत ने मेरी दरख्वास्त मंजूर कर ली।

हिन्दुस्तानी को उपयुक्त स्थान में दफ्तर के लिए मकान मिलना भी कठिन काम था। मि. रीच के साथ मेरी अच्छी जान-पहचान हो गई थी। उस समय वह व्यापारी वर्ग में थे। उनके परिचित हाउस-एजेंट के जरिए मुझे दफ्तर का मकान अच्छी जगह मिल गया और मैंने वकालत शुरू कर दी।

4 : बढ़ती हुई त्यागवृत्ति

ट्रांसवाल में हिन्दुस्तानियों के हकों के लिए किस तरह लड़ना पड़ा और एशियाई विभाग के अधिकारियों के साथ कैसे भुगतना पड़ा, यह बतलाने के पहले अपने जीवन के दूसरे पहलू पर निगाह डाल देना जरूरी है।

अब तक कुछ पैसे इकट्ठे करने की इच्छा थी। परमार्थ के साथ स्वार्थ मिला हुआ था।

बंबई में जब अपना दफ्तर खोला तब एक अमेरिकन बीमा एजेंट मिलने आया था। उसका चेहरा मोहक था और बातें मधुर थीं। उसने मुझसे ऐसे ढंग से मेरे भावी हित की बातें कीं, मानों हम पुराने मित्र हों।" अमरीका में तो आपकी स्थिति के सभी आदमी अपनी जिन्दगी का बीमा करते हैं। आपको भी बीमा कराके भविष्य के बारे में निश्चिंत हो जाना चाहिए। जिन्दगी का कुछ ठिकाना नहीं। अमरीका में बीमा कराना हम अपना धर्म समझते हैं। एक छोटी-सी पॉलिसी लेने के लिए भी क्या मैं आपको तैयार नहीं कर सकता?"

तब तक दक्षिण अफ्रीका में और हिन्दुस्तान में कितने ही एजेंटों को मैं लौटा चुका था। मुझे लगता था कि बीमा कराने में कुछ डरपोकपन और ईश्वर पर अविश्वास रहता है। पर इस बार मैं ललचाया। वह आदमी जैसे-जैसे बातें करता जाता वैसे-वैसे मेरे सामने पत्नी और पुत्रों की तस्वीर आती जाती। 'अरे भले आदमी, तूने पत्नी के करीब-करीब सब जेवर बेच डाले हैं। कल को तुझे कुछ हो जाए तो पत्नी और बच्चों के पालन का बोझ गरीब भाई पर ही, जिसने बाप का स्थान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लिया और शोभित किया है, पहनेगा न? यह कोई अच्छी बात न होगी।' अपने मन के सामने मैंने इस तरह की दलीलें रखीं और 10,000 रु. का बीमा करा लिया।

पर दक्षिण अफ्रीका में मेरी स्थिति बदल गई और मेरे विचार भी पलट दिए। दक्षिण अफ्रीका की नई आपत्ति के समय मैंने जो-जो कदम उठाए वह ईश्वर को साक्षी रखकर ही उठाए थे। दक्षिण अफ्रीका में मेरा कितना वक्त जाएगा इसका पता मुझे नहीं था। मैंने समझ लिया था कि मैं हिन्दुस्तान वापस नहीं जाने पाऊंगा। अपने बाल-बच्चों को मुझे साथ ही रखना चाहिए। उनका वियोग अब नहीं होना चाहिए। उनका भरण-पोषण दक्षिण अफ्रीका में ही होना चाहिए। यह विचार मेरे मन में आने के साथ ही उक्त पॉलिसी मेरे लिए दु:खद हो गई। बीमा-एजेंट के जाल में फंस जाने पर मैं लज्जित हुआ। भाई अगर आपके बराबर है, तो छोटे भाई की विधवा का बोझ उन्हें खलेगा, यह तूने कैसे मान लिया? तू ही पहले मरेगा, यह भी कैसे सोच लिया? पालन करने वाला तो ईश्वर है; न तू है, न वे भाई। बीमा कराकर तूने अपने बाल-बच्चों को भी पराधीन बना दिया। वे स्वावलम्बी क्यों न हों? अनगिनत गरीबों के बाल-बच्चों का क्या होता है? तू उन्हें उन्हीं के जैसा क्यों नहीं समझता?

यह विचारधारा चली। उस पर अमल तुरंत नहीं कर बैठा। बीमे की एक किस्त तो दक्षिण अफ्रीका से भेजने का मुझे स्मरण है।

पर इस विचार प्रवाह को बाहर का उत्तेजना मिला। दक्षिण अफ्रीका की पहली यात्रा में मैं ईसाई वातावरण के संसर्ग में आकर धर्म के विषय में जाग्रत रहा। इस बार थियोसोफी के वातावरण में आया। मि. रीच थियोसोफिस्ट थे। उन्होंने मेरा जोहान्सबर्ग सोसायटी से सम्बन्ध करा दिया। उसका मैं सदस्य नहीं बना। थियोसोफी के सिद्धान्तों से मेरा मतभेद था, फिर भी लगभग हर एक थियोसोफिस्ट से मेरा गाढ़ा परिचय हो गया। उनके साथ नित्य धर्मचर्चा होती थी। मैं उनकी पुस्तकें पढ़ता, उनकी सभा में बोलने का अवसर भी आ जाता। थियोसोफी में भ्रातृ भावना को जगाना और बढ़ाना मुख्य बात थी। इस विषय की चर्चा हम लोग खूब करते थे और मैं जहां इस सिद्धान्त में और सदस्यों के आचरण में भेद पाता वहां आलोचना भी करता था। इस आलोचना का असर मुझ पर खासा हुआ। मैं आत्मनिरीक्षण सीख गया।

5 : निरीक्षण का परिणाम

सन् 1893 में जब ईसाई मित्रों से मेरा मेल-जोल बढ़ा, तब मैं जिज्ञासु मात्र था। ईसाई मित्र मुझे बाइबिल का संदेश सुनाने, समझाने और मुझसे उसे मनवाने की कोशिश में थे। मैं नम्रतापूर्वक तटस्थ भाव से उनके उपदेश सुन-समझ रहा था। इस निमित्त से मैंने हिन्दू-धर्म का यथाशक्ति अध्ययन किया और दूसरे धर्मों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को भी समझने की कोशिश की। अब 1903 में जरा हालत बदल गई थी। थियोसोफिस्ट मित्र मुझे अपने मंडल में मिलाना जरूर चाहते थे, पर वह हिन्दू के रूप में मुझसे कुछ पाने की इच्छा से। थियोसोफी की पुस्तक में हिन्दू-धर्म की छाया और उसका प्रभाव तो काफी है ही। इससे इन भाइयों ने मान लिया कि मैं उनकी सहायता कर सकता हूं। मैंने उन्हें समझाया कि मेरा संस्कृत का अध्ययन नहीं के बराबर है। मैंने हिन्दुओं के प्राचीन धर्मग्रंथ संस्कृत में नहीं पढ़े हैं, भाषांतरों के द्वारा भी कम ही पढ़ पाया हूं। फिर भी, चूंकि वे संस्कार और पुनर्जन्म को मानते थे, इसलिए मुझसे थोड़ी-बहुत मदद पाने की आशा रखते थे और मैं 'निरस्तपादपे देशे एरंडोऽपिद्रुमायते'[1] हो गया। किसी के साथ विवेकानन्द का तो किसी के साथ मणिलाल नभुभाई का 'राजयोग' पढ़ना शुरू किया। एक मित्र के साथ पातंजल योगदर्शन पढ़ना पड़ा। बहुतों के साथ गीता का अभ्यास आरम्भ हुआ। जिज्ञासु मंडल के नाम से एक छोटा-सा मंडल भी बनाया और नियमित अभ्यास चलने लगा। गीताजी पर मुझे प्रेम और श्रद्धा तो थी ही, अब उसकी गहराई में उतरने की आवश्यकता जान पड़ी। मेरे पास एक-दो अनुवाद थे। उनकी सहायता से मूल संस्कृत को समझने का प्रयत्न किया और नित्य एक या दो श्लोक कंठ करने का निश्चय किया।

सवेरे दातौन और स्नान के समय का उपयोग गीता कंठ करने में होने लगा। दातौन में पन्द्रह और स्नान में बीस मिनट लगते थे। दातौन अंग्रेजी तरीके से खड़े-खड़े करता था। सामने की दीवार पर गीता के श्लोक लिखकर चिपका देता था और जब-जब आवश्यकता हो उन्हें देखता था और घोखता जाता था। ये घोखे हुए श्लोक फिर स्नान करने तक पक्के हो जाते थे। इसी बीच पहले कंठ किए हुए श्लोकों को भी एक बार दुहरा जाता था। इस प्रकार तेरह अध्याय कंठ कर लेने की बात मुझे याद पड़ती है। इसके बाद काम बढ़ गया। सत्याग्रह का जन्म होने पर इस बच्चे के लालन-पालन में मेरा विचार करने का समय भी जाने लगा और कहना चाहिए कि आज भी जा रहा है।

इस गीता के पढ़ने का असर मेरे साथी पढ़ने वालों पर तो जो कुछ पड़ा उसे वे जानें, मेरे लिए तो वह पुस्तक आचार की एक प्रौढ़-पथ-प्रदर्शिका बन गई। वह मेरा धार्मिक-कोष हो गई। नए अंग्रेजी शब्दों के हिज्जे या उनके अर्थ के लिए जैसे अंग्रेजी शब्दकोष उलटता वैसे आचरण की कठिनाइयां, उसकी अटपटी समस्याएं गीताजी से हल करवाता। उसके अपरिग्रह, समभाव वगैरा शब्दों ने मुझे पकड़ लिया। समभाव की साधना कैसे हो, कैसे उसकी रक्षा हो? अपमान करने वाले अधिकारी, रिश्वत लेने वाले अधिकारी, व्यर्थ विरोध करने

---

1. जहां कोई पेड़ न हों वहां एरंड ही पेड़ होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वाले, बीते समय के साथी इत्यादि और जिन्होंने बड़े-बड़े उपकार किए हैं, ऐसे सज्जनों के बीच भेद न करने के क्या मानी हैं? अपरिग्रह का पालन कैसे होता होगा? देह है, यही क्या कम परिग्रह है? स्त्री-पुत्रादि परिग्रह नहीं तो और क्या है? इन पोथी भरी अलमारियों को फूंक तापूं? घर जलाकर तीर्थ करने जाऊं? तुरंत जवाब मिला कि घर फूंके बिना तीर्थ किया ही नहीं जा सकता। यहां अंग्रेजी कानून ने मदद की। स्नेल की कानूनी सिद्धान्तों की विवेचना याद आई। ट्रस्टी शब्द का अर्थ गीताजी के अभ्यास के फलस्वरूप विशेष रूप से समझ में आया। विधान-शास्त्र के लिए आदर बढ़ा। उसमें भी मुझे धर्म के दर्शन हुए। ट्रस्टी के पास करोड़ों रुपए हों, तथापि उसमें की एक पाई भी उसकी नहीं होती। मुमुक्षु को भी इसी तरह का आचरण करना चाहिए, यह शिक्षा मुझे गीताजी से मिली। अपरिग्रही होने में, समभावी होने में, हेतु का, हृदय का परिवर्तन आवश्यक है, यह मुझे दीपक की भांति स्पष्ट दिखाई दिया। रेवाशंकर भाई को लिखकर भेज दिया कि बीमे की पॉलिसी बंद कर दें। कुछ वापस मिले तो ले लें। न मिले तो जो दिया, उसे गया मान लें। बच्चों की और स्त्री की रक्षा उन्हें और हमें पैदा करने वाला करेगा। इस भाव का पत्र लिख भेजा। पितृ तुल्य भाई को लिखा-"आज तक तो मेरे पास जो कुछ बचा वह आपको अर्पण किया। अब मेरी आशा छोड़ दीजिए। अब जो बचेगा, वह यहीं जाति के काम में आएगा।"

यह बात मैं भाई को तुरंत नहीं समझा सका। उन्होंने मुझे पहले तो कड़े शब्दों में उनके प्रति मेरा धर्म समझाया-"तुम्हें बाप से अधिक बुद्धिमान नहीं बनना चाहिए। बाप ने जैसे कुटुम्ब का पोषण किया वैसे तुम्हें भी करना चाहिए", इत्यादि। मैंने उत्तर में विनय की कि बाप का ही काम मैं कर रहा हूं। कुटुम्ब का अर्थ थोड़ा विस्तृत कर लें तो मेरे व्यवहार का औचित्य समझ में आ जाएगा।

भाई ने मेरी आशा छोड़ दी। एक तरह से बोलना ही बंद कर दिया। मुझे दुःख हुआ, पर जिसे मैं धर्म मानता था, उसे छोड़ने में और अधिक दुःख होता था। मैंने छोटा दुःख सहन किया। तथापि भाई के प्रति मेरी भक्ति निर्मल और प्रचंड थी। भाई के दुःख का कारण मेरे प्रति उनका प्रेम था। उन्हें मेरे पैसे से भी मेरे सदाचरण की अधिक आवश्यकता थी।

अपने अंतिम दिनों में भाई पिघले। जब वह मृत्यु-शय्या पर थे तो उन्होंने मुझे सूचित किया कि मेरा आचरण ही सही और धर्मयुक्त था। उनका अत्यंत करुणाजनक पत्र आया। बाप बेटे से माफी मांग सकता हो तो उन्होंने मुझसे मांगी। मुझे लिखा कि मेरे लड़कों का अपने ही ढंग से पालन-पोषण करना। खुद मुझसे मिलने को अधीर हो गए। मुझे तार दिया। मैंने जवाब में तार से ही 'आइए' लिख भेजा। पर हमारा मिलन नहीं बदा था। उनकी उनके पुत्रों-सम्बन्धी इच्छा भी पूरी नहीं हुई। भाई ने देश में ही शरीर छोड़ा। लड़कों पर उनके पूर्व जीवन का असर

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

पड़ चुका था। वे बदल न सके। मैं उन्हें अपने पास खींच न सका। इसमें उनका दोष नहीं है। स्वभाव को कौन पलट सकता है? बलवान संस्कार को कौन मिटा सकता है? हमारा यह मानना मिथ्या है कि जैसे-जैसे हममें परिवर्तन या विकास होता जाए वैसे-वैसे हमारे आश्रितों या संगी-साथियों में भी होना चाहिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां-बाप बनने वालों की जिम्मेदारी कैसी भयानक है, इसका कुछ अंदाजा इस दृष्टांत से हो सकता है।

6 : निरामिषाहार पर बलिदान

जीवन में त्याग और सादगी तथा धर्म-जागृति बढ़ने के साथ-साथ निरामिषाहार और उसके प्रचार का शौक बढ़ता गया। प्रचार का काम मैं एक ही तरह से करना जान पाया हूं; आचार से और आचार के साथ जिज्ञासुओं से बातचीत करके।

जोहान्सबर्ग में एक निरामिषाहारी भोजनालय था। एक जर्मन, जो कूने की जल चिकित्सा को मानने वाला था, उसे चलाता था। मैंने वहां जाना शुरू किया और जितने अंग्रेज मित्रों को वहां ले जा सकता था, ले जाता था। मैंने देखा कि यह भोजनालय अधिक दिन नहीं चल सकता। उसे पैसे की तंगी तो बनी ही रहती थी। मैंने जितनी उचित जान पड़ी उतनी मदद उसकी की। कुछ पैसे खोये भी, अंत में वह बंद हो गया। थियोसोफिस्टों में बहुतेरे निरामिषाहारी होते हैं। कुछ पूरे कुछ अधूरे। इस मंडल में एक साहसी महिला थी। उसने बड़े पैमाने पर एक निरामिषाहारी भोजनालय खोला। यह बहन कला रसिक थी, खर्राच खूब थी और हिसाब-किताब अधिक नहीं समझती थी। उसकी मित्र-मंडली खासी थी। पहले तो उसका काम छोटे पैमाने पर शुरू हुआ, पर उसने उसे बढ़ाने और बड़ा स्थान लेने का निश्चय किया। उसमें उसने मेरी मदद मांगी। उस समय मुझे उसके हिसाब वगैरा की कुछ खबर न थी। मैंने समझा कि उसका हिसाब ठीक होगा। मेरे पास पैसे का सुभीता था। बहुतेरे मुवक्किलों के रुपए मेरे पास जमा रहते थे। उनमें से एक से पूछकर उसके रुपयों में से लगभग एक हजार पौंड दे दिए। यह मुवक्किल विशाल हृदय और विश्वासी था। वह पहले गिरमिट में आया हुआ था। उसने कहा-"भाई! आपका दिल चाहे तो पैसे दे दो। मैं कुछ ना जानूं। मैं तो आप ही को जानता हूं।" उसका नाम बद्री था। उसने सत्याग्रह में बहुत बड़ा हिस्सा लिया था। जेल भी काटी थी। इतनी सम्पत्ति पाकर मैंने उसके रुपए उधार दिए। दो-तीन महीने में ही मुझे मालूम हो गया कि ये रुपए वापस नहीं मिलने के। इतनी बड़ी रकम डुबा देने की शक्ति मुझमें नहीं थी। मेरे पास दूसरे काम थे, जिनमें इस पैसे को लगा सकता था। पैसा वापस नहीं आया, पर विश्वासी बद्री का पैसा कैसे जा सकता था? उसने तो मुझी को जाना था। यह रकम मैंने भर दी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक मुवक्किल दोस्त से मैंने इस लेन-देन की बात कही। उसने मुझे मीठा उलाहना देकर सावधान किया-"भाई, (दक्षिण अफ्रीका में मैं 'महात्मा' नहीं बना था, 'बापू' भी नहीं हुआ था, मुवक्किल दोस्त मुझे 'भाई' कहकर ही पुकारते थे।) यह काम आपका नहीं है। हम तो आपके विश्वास पर चलने वाले हैं। यह पैसा आपको वापस नहीं मिलने वाला है। बद्री को तो आप बचा लेंगे और अपना डुबोवेंगे; पर इस प्रकार सुधार के कामों में सब मुवक्किलों के पैसे देने लग जाइएगा तो मुवक्किल मर जाएंगे और भिखमंगे बनकर घर बैठेंगे। इससे आपके सार्वजनिक काम को धक्का लगेगा।"

सौभाग्य से यह मित्र अभी जिन्दा है। दक्षिण अफ्रीका में और अन्यत्र उनसे बढ़कर साफ आदमी मुझे दूसरा नहीं मिला। किसी के बारे में मन में शंका उपजी और उन्हें मालूम हुआ कि वह मिथ्या है, तो तुरंत उससे माफी मांगकर अपना दिल साफ कर लेते हैं। मुझे इस मुवक्किल की चेतावनी ठीक जान पड़ी। बद्री का पैसा तो मैंने चुका दिया, पर एक हजार पौंड अगर मैंने उस वक्त और खो दिए होते तो उसे चुकाने की ताकत मुझमें बिल्कुल नहीं थी। उसके लिए तो मुझे कर्ज करना पड़ता और यह काम तो मैंने अपनी जिन्दगी भर में कभी नहीं किया। वह मुझे सख्त नापसंद रहा है। मैंने समझा कि सुधार करने के लिए भी अपनी शक्ति से बाहर जाना मुनासिब नहीं। मैंने यह भी देखा कि इस प्रकार उधार लेने-देने में मैंने गीता के तटस्थ निष्काम कर्म के मुख्य पाठ का अनादर किया था। यह भूल मेरे लिए दीपस्तम्भ-सी हो गई।

निरामिषाहार के प्रचार के लिए ऐसा बलिदान करना मेरी कल्पना के बाहर था। मेरे लिए यह जबरदस्ती का पुण्य बन गया।

7 : मिट्टी और पानी के प्रयोग

ज्यों-ज्यों मेरे जीवन में सादगी बढ़ती गई त्यों-त्यों रोगों के लिए दवा लेने की, पहले से जो अरुचि थी वह बढ़ती गई। जब मैं डरबन में वकालत करता था, तब डॉक्टर करता था, तब डॉक्टर प्राणजीवनदास मेहता मुझे देखने आए थे। उस समय मुझे कमजोरी रहती थी और कभी-कभी सूजन भी हो जाती थी। उन्होंने इसका इलाज किया और उससे मुझे आराम हो गया। इसके बाद देश लौटने तक कोई कहने लायक बीमारी हुई हो, इसकी याद मुझे नहीं है।

पर जोहान्सबर्ग में मुझे कब्ज रहता था और जब-तब सिरदर्द भी हो जाता था। दस्त की कोई दवा लेकर तबीयत को सम्भाले रहता था। खाने-पीने में परहेज तो सदा ही रखता था, पर उससे मैं पूर्णतया व्याधि-मुक्त नहीं हुआ। मन बराबर कहा करता था कि विरेचनों से मुक्ति मिल जाए तो अच्छा हो।

इसी समय मैं मैनचेस्टर में 'नो ब्रेकफास्ट एसोसिएशन' (कलेवा-त्याग-संघ)

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

की स्थापना का प्रचार पढ़ा। लेखक की दलील थी कि अंग्रेज बहुत बार और बहुत खाते हैं। रात को बारह बजे तक खाते रहते हैं और फिर डॉक्टर के यहां भटकते फिरते हैं। इस उपाधि से छूटना हो तो सवेरे का नाश्ता–'ब्रेकफास्ट' छोड़ देना चाहिए। मैंने देखा कि यह दलील यद्यपि मुझ पर पूरी तरह नहीं लगती, फिर भी अंशतः लागू होती है। मैं तीन वक्त पेट भर कर खाता था और दोपहर को चाय भी पीता था। मैं कभी अल्पाहारी नहीं था। निरामिषाहार में और मसालों के बिना जो-जो स्वाद लिए जा सकते थे, लेता था। छह-सात बजे से पहले शायद ही उठता था। इससे मैंने सोचा कि मैं भी सवेरे का खाना छोड़ दूं तो सिर के दर्द से जरूर छुटकारा पा जाऊं। मैंने सवेरे का नाश्ता छोड़ दिया। थोड़े दिन खला तो जरूर, पर सिर का दर्द तो चला ही गया। इससे मैंने यह नतीजा निकाला कि मेरी खुराक जरूरत से ज्यादा थी।

पर कब्ज की शिकायत इस परिवर्तन से नहीं गई। कूने के कटिस्नान का इलाज करने से थोड़ा आराम मिला, पर जितना चाहिए उतना नहीं। इसी बीच उस जर्मन होटल वाले ने या किसी दूसरे दोस्त ने मुझे जुस्ट की 'रिटर्न टू नेचर' (प्रकृति की ओर लौटो) नामक पुस्तक दी। उसमें मैंने मिट्टी के उपचार के बारे में पढ़ा। सूखे और हरे फल मनुष्य की कुदरती खुराक हैं, इस बात का भी इस लेखक ने जोरों से समर्थन किया है। केवल फलाहार का प्रयोग तो मैंने इस वक्त नहीं किया; पर मिट्टी का इलाज तुरंत शुरू कर दिया। उसका मुझ पर आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ। उपचार इस प्रकार था–साफ, खेत की लाल या काली मिट्टी लेकर उसमें अंदाज से पानी मिलाकर, साफ पतले गीले कपड़े में लपेटकर पेट पर रखी और उस पर पट्टी बांध दी। यह पुलटिस रात को सोते वक्त बांधता और सवेरे या रात को जब नींद खुलती खोल देता। इससे मेरा कब्ज जाता रहा। ये मिट्टी के उपचार मैंने उसके बाद अपने और अनेक साथियों पर किए और मुझे स्मरण है कि शायद ही वे किसी पर निष्फल गए हों।

देश में आने के बाद मैं ऐसे उपचारों के विषय में आत्मविश्वास खो बैठा हूं। प्रयोग करने का, एक जगह जमकर बैठने का, मुझे मौका भी नहीं मिला, फिर भी मिट्टी के और पानी के प्रयोग के विषय में मेरी जो श्रद्धा शुरू में थी, लगभग वही आज भी है। आज भी मर्यादा के अंदर रहकर मिट्टी के उपचार खुद अपने ऊपर तो करता ही हूं और अपने साथियों को भी काम पड़ने पर मैं उसकी सलाह देता हूं। जिन्दगी में दो सख्त बीमारियां भोग चुका हूं, फिर भी मानता हूं कि मनुष्यों को दवा लेने की शायद ही जरूरत हो। पथ्य और पानी, मिट्टी इत्यादि के घरेलू उपचारों से हजार में से नौ सौ निन्यानवे रोगी चंगे हो सकते हैं।

क्षण-क्षण में वैद्य, हकीमों और डॉक्टरों के यहां दौड़ने और शरीर में अनेक जड़, छाल, पत्ते और रसायन ठूंसने से मनुष्य अपनी जिन्दगी छोटी कर लेता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इतना ही नहीं, अपने मन पर उसका काबू नहीं रह जाता। इससे वह मनुष्यत्व खो बैठता है और शरीर का गुलाम बन जाता है।

रोग शय्या पर पड़ा हुआ मैं लिख रहा हूं। इस कारण इन विचारों की कोई अवगणना न करें। अपनी बीमारी का कारण मैं जानता हूं। अपने ही दोषों के कारण मैं बीमार पड़ा हूं, इसका मुझे पूरा-पूरा ज्ञान और भान है, और यह भान होने से मैंने धीरज नहीं खोया है। इस बीमारी को मैंने ईश्वर का अनुग्रह माना है और अनेक दवाइयां करने के लालच से दूर रहा हूं। मैं यह भी जानता हूं कि अपने हठ से डॉक्टर मित्रों को मैं परेशान कर देता हूं, पर वे उदारभाव से मेरे हठ को सहन करते हैं और मेरा त्याग नहीं करते हैं।

पर मुझे अपनी आज की स्थिति के वर्णन को बढ़ाना उचित नहीं। इसलिए हम सन् 1904-05 की तरफ फिर आ जाएं।

पर आगे बढ़ने के पहले पाठक को थोड़ा सावधान कर देने की जरूरत है। यह पढ़कर जो जुस्ट की किताब खरीदें, वह उसकी हर बात को वेदवाक्य न मानें। सभी रचनाओं में लेखक की दृष्टि अधिकतर एकांगी होती है। पर हर बात कम-से-कम सात दृष्टियों से देखी जा सकती है और उन-उन दृष्टियों से वह बात सच्ची होती है। पर सब दृष्टियां एक ही समय में और एक ही मौके पर सही नहीं हुआ करतीं। इसके सिवा बहुतेरी किताबों में बिक्री का और नाम के लालच का दोष भी होता है। अतः जो भाई उक्त पुस्तक को पढ़ें वह विवेकपूर्वक पढ़ें और कोई प्रयोग करना हो तो किसी अनुभवी की सलाह लेकर करें अथवा धीरजपूर्वक ऐसी चीज का थोड़ा अभ्यास करके प्रयोग आरम्भ करें।

8 : एक सावधानी

प्रवाह पतित कथा के प्रसंग को अभी अगले प्रकरण तक स्थगित रखना पड़ेगा।

पिछले प्रकारण में मिट्टी के प्रयोगों के विषय में मैं जो कुछ लिख चुका हूं वैसा ही मेरा खुराक का प्रयोग था। अतः इस विषय में इस समय यहां कुछ लिख डालना उचित जान पड़ता है और कितनी ही बातें प्रसंगानुसार आएंगी।

खुराक के मेरे प्रयोगों और तद्विषयक विचारों का विस्तार इस प्रकरण में नहीं हो सकता। इस विषय में मैंने 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान' नामक पुस्तक में, जिसे मैंने दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपीनियन' के लिए लिखा था, विस्तार से लिखा है। मेरी छोटी-छोटी पुस्तकों में यह पुस्तक पश्चिम में और यहां भी, सबसे अधिक प्रसिद्ध हुई है। इसका कारण मैं आज तक नहीं समझ पाया। यह पुस्तक सिर्फ 'इंडियन ओपीनियन' के पाठकों के लिए लिखी गई थी, पर उसके आधार पर बहुतेरे भाई-बहनों ने अपने जीवन में फेर-फार किए हैं और मेरे साथ पत्र-व्यवहार भी किया है। इससे उसके बारे में यहां कुछ लिखना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आवश्यक हो गया है। कारण यह कि यद्यपि उसमें लिखे हुए अपने विचारों में फेर-फार करने की आवश्यकता मुझे नहीं जान पड़ी, तथापि अपने आचार में मैंने महत्त्व के फेरफार किए हैं, यह उस उसे पुस्तक के सब पाठक नहीं जानते। उन्हें इसे तुरंत जान लेना जरूरी है।

दूसरी चीजों की तरह यह पुस्तक भी मैंने केवल धर्मभावना से लिखी है और आज भी मेरे हर काम में यही हेतु होता है। इस कारण उसमें के कितने ही विचारों पर मैं आज अमल नहीं कर सकता हूं, इसका मुझे खेद है और लज्जा है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि मुनष्य बालक रूप में माता का जो दूध पीता है उसके सिवा दूसरे दूध की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य की खुराक वनपक्व फलों के सिवा-हरे-सूखे दोनों तरह के-दूसरी नहीं है। बादाम आदि मगजों और अंगूर (दाख) आदि फलों से उसके शरीर और दिमाग को पूर्ण पोषण मिलता है। ऐसी खुराक पर जो रह सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्यादि आत्मसंयम बहुत आसान हो जाता है। मैंने और मेरे साथियों ने 'जैसा अन्न वैसा मन' अर्थात्, मनुष्य जैसा खाता है वैसा हो जाता है, इस कहावत में बहुत तथ्य पाया है।

इन विचारों का विस्तारपूर्वक समर्थन मेरी आरोग्य विषयक पुस्तक में किया गया है।

पर मेरे नसीब में हिन्दुस्तान में अपने प्रयोगों को पूर्णता तक पहुंचाना नहीं बदा था। खेड़ा जिले में रंगरूट-भरती काक काम करते हुए अपनी गलती से मैं मरण-सेज पर पड़ गया। दूध बिना जीने के लिए मैंने बहुत हाथ-पैर मारे। जिन वैद्य, डॉक्टरों और रसायनशास्त्रियों से परिचय था, उनकी मदद मांगी। किसी ने मूंग का पांनी, किसी ने महुए का तेल, किसी ने बादाम का दूध सुझाया। इन सब चीजों का प्रयोग करने में मैंने शरीर को निचोड़ डाला, पर खाट न छूटी।

वैद्यों ने मुझे चरक इत्यादि से प्रमाण दिए कि रोग दूर करने के लिए खाद्याखाद्य की बाधा नहीं होती और मांस भी खाया जा सकता है। ये वैद्य ऐसे न थे कि मुझे दुग्ध-त्याग पर दृढ़ रहने में मदद कर सकें और डॉक्टरों से जहां 'बीफ टी' (गोमांस की चाय) और ब्रांडी ग्राह्य हो, वहां दूध के त्याग में मदद कैसे मिलती? गाय-भैंस का दूध तो ले नहीं सकता था। यह मेरा व्रत था। व्रत का हेतु तो दूध मात्र का त्याग था। पर व्रत लेते समय मेरे सामने गोमाता और भैंस-माता ही थीं। इससे और जीने की आशा से मैंने मन को ज्यों-त्यों फुसला लिया। व्रत के अक्षर का पालन किया और बकरी का दूध लेने का निश्चय किया। मेरे व्रत की आत्मा का हनन हो गया, यह बात मैंने बकरी माता का दूध लेते समय भी जान ली।

पर मुझे 'रौलट ऐक्ट' के खिलाफ लड़ना है-यह मोह मुझे छोड़ता नहीं था। इससे जीने की भी इच्छा रही और जिसे मैं अपने जीवन का महान प्रयोग मानता हूं, वह रुक गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाने-पीने के साथ आत्मा का सम्बन्ध नहीं है। वह न खाता है, न पीता है। जो पेट में जाता है वह नहीं, बल्कि जो वचन अंदर से निकलते हैं वे हानि-लाभ करते हैं इत्यादि दलीलों से मैं परिचित हूं। इनमें तथ्यांश है; पर बहस में उतरे बिना यहां मैं अपना दृढ़ निश्चय ही बताए देता हूं कि जो आदमी ईश्वर से डरकर चलना चाहता है, जो ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता है, ऐसे साधक और मुमुक्षु के लिए अपनी खुराक का चुनाव-त्याग और स्वीकार-उतना ही आवश्यक है कि जितना विचार और वाणी का चुनाव-त्याग और स्वीकार।

पर जिस विषय में मैं खुद गिर पड़ा उस विषय में दूसरों को मेरे सहारे चलने की सलाह मैं नहीं दे सकता। इतना ही नहीं, मैं उन्हें रोकूंगा। इससे आरोग्यविषयक उक्त पुस्तक के सहारे प्रयोग करने वाले सब भाई-बहनों को मैं सावधान कर देना चाहता हूं। दूध का त्याग सर्वांश में लाभदायक जान पड़े अथवा अनुभवी वैद्य-डॉक्टर उसे छोड़ने की सलाह दें तभी उसको छोड़ें। केवल मेरी पुस्तक पढ़कर वे दूध का त्याग न करें। यहां का मेरा अनुभव अब तक तो मुझे यही बतलाता है कि जिसकी जठराग्नि मंद हो गई है और जिसने खाट पकड़ ली है उसके लिए दूध जैसी हल्की, और पोषक खुराक है ही नहीं। इसलिए इस पुस्तक के पाठकों से मेरी विनती और सिफारिश है कि दूध की मर्यादा जो इस पुस्तक में बतलाई गई है उस पर जिद न रखें।

इस प्रकरण को पढ़ने वाले कोई वैद्य, डॉक्टर, हकीम या दूसरे अनुभवी सज्जन दूध के बदले में वैसी ही, पोषक होते हुए भी सुपाच्य वनस्पति अपने अध्ययन पर नहीं, बल्कि अनुभव के आधार पर, जानते हों तो मुझे बतलाकर मुझ पर एहसान करें।

9 : जबर्दस्त मुकाबला

अब एशियाई अधिकारियों को देखें। एशियाई अधिकारियों का सबसे बड़ा अड्डा जोहान्सबर्ग था। मैं देखता था कि इस अड्डे में हिंदियों, चीनियों वगैरा का रक्षण नहीं बल्कि भक्षण होता था। मेरे पास रोज शिकायतें आतीं-"हकदार दाखिल नहीं हो पाते और बिना हक वाले सौ-सौ पौंड देकर चले आ रहे हैं। इसका इलाज आप नहीं करेंगे तो कौन करेगा?" मैं भी यही अनुभव कर रहा था; अगर यह सड़ांध न गई तो मेरा ट्रांसवाल में बसना बेकार ही है।

मैं सबूत इकट्ठे करने लगा। जब मेरे पास काफी सबूत जमा हो गए तब मैं पुलिस-कमिश्नर के पास पहुंचा। जान पड़ा कि उसमें दया और न्याय है। मेरी बात को यों ही टाल देने के बजाए उसने धीरज से सुना और सबूत पेश करने को कहा। गवाहों के बयान खुद लिए। उसे इत्मीनान हो गया। पर जैसे मैं जानता था वैसे वह भी जानता था कि दक्षिण अफ्रीका में गोरे पंचों से गोरे अपराधी को

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दंड दिलवाना मुश्किल काम है। उसने कहा- "तो भी हमें कोशिश तो करनी ही चाहिए। ऐसे अपराधी जूरी के हाथ से छूट जाएंगे इस डर से उन्हें न पकड़वाना उचित नहीं है। इसलिए मैं तो उन्हें पकड़वाऊंगा ही। मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूं कि भरसक कसर नहीं रखूंगा।" मुझे तो इत्मीनान था ही। अन्य अधिकारियों पर भी शक तो था, लेकिन उनके खिलाफ मेरे पास कच्चे सबूत थे। दो के बारे में बिल्कुल शक न था। इससे दो पर वारंट निकले।

मेरा आना-जाना ऐसा नहीं था, जो छिप सके। मैं करीब-करीब रोज पुलिस-कमिश्नर के यहां जाता हूं, इसे कितने ही लोग देखते थे। इन दो अफसरों के छोटे-छोटे जासूस तो थे ही, वे मेरे दफ्तर के आस-पास मंडराते रहते और मेरी आवाजाही की खबर उक्त अधिकारियों को पहुंचाते थे। यहां इतना कह देना चाहता हूं कि उक्त अधिकारियों की ज्यादतियां इतनी बढ़ गई थीं कि उन्हें जासूस नहीं मिल पाते थे। हिन्दुस्तानियों और चीनियों की भी मुझे मदद न होती तो ये अधिकारी न पकड़े जाते।

इन दो में से एक अधिकारी भागा। पुलिस-कमिश्नर को भी खेद हुआ। वकालत के पेशे से मुझे नफरत हो गई। बुद्धि का उपयोग अपराध को छिपाने में होता देखकर मुझे बुद्धि ही खलने लगी।

दोनों अपराधियों का अपराध इतना मशहूर हो चुका था कि छूट जाने पर भी सरकार उन्हें रख न सकी। दोनों बरखास्त हो गए और एशियाई अड्डा कुछ साफ हो गया। हिन्दुस्तानी भाइयों को भी धीरज बंधा और हिम्मत भी बढ़ी।

मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी। मेरी वकालत भी चमकी। हिन्दुस्तानी भाइयों के सैकड़ों पौंड हर महीने रिश्वत में ही जाते थे, उसमें बहुत-कुछ बचत हुई। यह तो नहीं कह सकता कि सब बच गया। बेईमान तो अब भी चरते-खाते थे, पर यह कह सकते हैं कि जो ईमानदार थे अब वे अपना ईमान सलामत रख सकते थे।

ये अधिकारी इतने अधम थे, फिर भी मैं कह सकता हूं कि उनके खिलाफ वैयक्तिक दुर्भाव मेरे मन में तनिक भी न था। मेरा यह स्वभाव वे जानते थे और जब उन्हें उनकी दीन दशा में मदद करने का मौका आया तो मैंने उनकी मदद भी की। जोहान्सबर्ग की म्युनिसिपैलिटी में मेरा विरोध न हो तो उन्हें नौकरी मिल सकती थी। उनका एक मित्र मुझसे मिला और मैंने उन्हें नौकरी दिलाने में सहायता देना कबूल कर लिया। उन्हें नौकरी मिल भी गई।

इस व्यवहार का असर यह हुआ कि जिन गोरों से मेरा साबिका पड़ा वे मेरी ओर से निर्भय होने लगे। और यद्यपि उनके विभागों के विरुद्ध मुझे बहुत बार लड़ना पड़ता, तीखे शब्द कहने पड़ते, फिर भी मेरे साथ वे मधुर सम्बन्ध रखते थे। यह बर्ताव मेरे स्वभाव का एक अंग है, इसका उस वक्त मुझे ठीक पता नहीं था। ऐसे बर्ताव में सत्याग्रह का मूल विद्यमान है। यह अहिंसा का अंग विशेष है, यह मैं बाद को समझने लगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मनुष्य और उसका कार्य ये दो भिन्न वस्तुएं हैं अच्छे काम के प्रति आदर और बुरे काम के प्रति तिरस्कार होना ही चाहिए। पर अच्छे-बुरे काम करने वाले के प्रति सदा आदर अथवा दया होनी चाहिएं। यह बात समझने में आसान है, फिर भी इस पर अमल कम-से-कम होता है। इसी से इस जगत में जहर फैलता रहता है।

ऐसी अहिंसा सत्य की खोज की मूलरूप है। मैं प्रतिक्षण अनुभव करता हूं कि जब तक वह हाथ में नहीं आती तब तक सत्य दूर ही है। तंत्र की व्यवस्था के विरुद्ध झगड़ा शोभा देता है, पर तंत्री से लड़ना अपने आपसे लड़ना जैसा है; क्योंकि सभी एक ही कूंची से रचे गए हैं। एक ही ब्रह्मा की संतान हैं। तंत्री में तो अनन्त शक्ति विद्यमान है। तंत्री का अनादर-तिरस्कार करने में तो शक्तियों का अनादर होता है और वैसा होने में तंत्री को और साथ ही जगत को नुकसान ही पहुंचता है।

10 : एक पुण्यस्मरण और प्रायश्चित्त

मेरे जीवन में ऐसे संयोग आते ही रहे हैं जिनके द्वारा अनेक धर्मवालों के और अनेक जातिवालों से मेरा बहुत निकट का परिचय हो सका। इन सबके अनुभवों के आधार पर कहा जा सकता है कि अपने और पराए, देशी और परदेशी, गोरे और काले, हिन्दू और मुसलमान या ईसाई, पारसी या यहूदी में भेद नहीं जाना। कह सकता हूं कि मेरा हृदय इस भेदभाव को समझ ही न सका। इस चीज को अपने विषय में मैं गुण नहीं मानता; क्योंकि जैसे अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि यमों की साधना का प्रयत्न करने का और वह प्रयत्न आज भी जारी होने का मुझे पूरा भान है, वैसे इस प्रकार के आभास का, मैंने कोई विशेष प्रयत्न किया हो, इसकी याद मुझे नहीं है।

जब मैं डरबन में वकालत करता था, तब बहुत बार मेरे मुंशी मेरे साथ रहते थे। उनमें हिन्दू और ईसाई थे और प्रांत के हिसाब से कहें तो गुजराती और मद्रासी थे। उनके बारे में मेरे मन में कभी भेदभाव उपजा हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है। उन्हें मैं अपने कुटुम्ब का आदमी समझता था और पत्नी की ओर से इसमें कोई विघ्न आता था तो उससे लड़ पड़ता था। एक मुंशी ईसाई था। उसके माता-पिता पंचम वर्ण के थे। मेरे घर की बनावट पश्चिमी ढंग की थी। उसके कमरे में नाबदान नहीं थे-मेरी राय में होने भी नहीं चाहिए। इसं कारण हर कमरे में नाबदान की बजाए पेशाब के लिए खास बर्तन रख दिए गए थे। उन्हें उठाने का काम नौकर का नहीं था, बल्कि हम घर के मालिक और मालकिन का था। जो मुंशी अपने को घर का आदमी समझने लगते वे तो अपना बर्तन खुद उठाते ही थे। यह पंचम कुल में पैदा हुआ मुंशी नया था। उसका बर्तन हमें ही उठाना चाहिए था और बर्तन तो कस्तूरबाई उठाती थी। पर इसमें उसकी समझ में हद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हो गई थी। हममें झगड़ा हुआ। मेरा उठाना उससे देखा न जाता था और खुद उठाना भी जब्र गुजरता था। आंखों से मोती की बूंद टपकती, हाथ में बर्तन लिए मुझे लाल-लाल आंखों से उलाहना देती, सीढ़ियों से उतरती कस्तूरबाई की तस्वीर मैं आज भी खींच सकता हूं।

पर मैं तो जितना प्रेमी उतना ही जानलेवा पति था। मैं अपने को उसका शिक्षक भी मानता था और उससे अपने अंधप्रेम के वश होकर अच्छी तरह सताता था।

इस प्रकार सिर्फ उसके बर्तन उठा ले जाने से मुझे संतोष न हुआ। वह हँसते-हँसते चेहरे से ले जाए तभी मुझे संतोष होता। अतः मैंने दो शब्द ऊंचे स्वर से कहे-"यह कलह मेरे घर में नहीं चल सकता।" मैं बड़बड़ा उठा।

यह वचन कस्तूरबाई के कलेजे में तीर की तरह चुभ गया। वह भड़क उठी-"तो अपना घर अपने पास रखो। मैं जाती हूं।"

मैं तो ईश्वर को भूल गया था। दया का लेश भी मेरे दिल में न रह गया था। मैंने हाथ पकड़ा। सीढ़ी के सामने ही बाहर निकलने का दरवाजा था। मैं उस असहाय अबला को पकड़कर दरवाजे तक खींच ले गया। दरवाजा आधा खोला। कस्तूरबाई की आंखों में गंगा-जमुना बह रही थी। वह बोली:

"तुमको तो शर्म नहीं है; मुझको है। जरा तो शरमाओ। मैं बाहर निकलकर कहां जाऊं? यहां मां-बाप भी नहीं हैं कि उनके यहां चली जाऊं। मैं औरत की जात ठहरी, इसलिए मुझे तुम्हारी धौंस सहनी ही होगी। अब शरमाओ और दरवाजा बंद करो। कोई देखेगा तो दोनों के मुंह पर कालिख लगेगी।"

मैंने चेहरा तो लाल रखा, लेकिन दिल में शरमाया जरूर। दरवाजा बंद कर दिया। अगर पत्नी मुझे नहीं छोड़ सकती थी तो मैं भी उसे छोड़कर कहां जाने वाला था? हममें झगड़े तो बहुत हुए हैं; पर नतीजा सदा अच्छा ही निकला है। पत्नी ने अपनी अद्‌भुत सहनशक्ति से विजय पाई है।

यह वर्णन आज मैं तटस्थ भाव से कह सकता हूँ। कारण, यह घटना हमारे बीते युग की है। आज मैं मोहांध पति नहीं हूं, शिक्षक नहीं हूं। चाहे तो आज कस्तूरबाई मुझे धमका सकती हैं। हम आज अनुभवी मित्र हैं। एक-दूसरे के प्रति निर्विकार होकर साथ रहते हैं। कस्तूरबाई आज मेरी बीमारी में किसी बदले की इच्छा किए बिना चाकरी करने वाली सेविका हैं।

उपर्युक्त घटना 1898 ई. की है। उस समय ब्रह्मचर्य के पालन के बारे में मैं कुछ भी न जानता था। यह समय ऐसा था कि जब पत्नी केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दुःख की साथी है, इसका मुझे स्पष्ट भान नहीं था। मैं जानता हूं कि मैं उस वक्त यह मानकर चलता था कि वह विषय-भोग का भाजन है, पति की आज्ञा, चाहे जो हो तो भी, उसे बजा लाने को वह सिरजी गई है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
1900 के सत्य के मेरे विचारों में गम्भीर परिवर्तन हुआ, जिसका परिणाम 1906 में प्रगट हुआ। पर इस परिणाम की चर्चा यथास्थान की जाएगी। यहां तो इतना ही बता देना काफी है कि ज्यों-ज्यों मैं निर्विकार होता गया त्यों-त्यों मेरा गृहजीवन शांत, निर्मल और सुखी होता गया और होता जा रहा है।

इस पुण्य स्मरण में से किसी को यह नहीं मान लेना चाहिए कि हम आदर्श दंपति हैं या मेरी धर्मपत्नी में कोई भी दोष नहीं है अथवा हमारे आदर्श अब बिल्कुल एक हैं। कस्तूरबाई का खुद कोई स्वतंत्र आदर्श है या नहीं, यह वह बेचारी खुद भी न जानती होगी। यह सम्भव है कि मेरे बहुतेरे आचरण उसे आज भी न रुचते हों। इसके बारे में हम कभी चर्चा नहीं करते, करने में कोई लाभ भी नहीं है। उसे न उसके मां-बाप ने शिक्षा दी और न जब समय था तब मैं दे पाया; पर उसमें एक गुण बड़ी मात्रा में है, जो अन्य बहुतेरी हिन्दू स्त्रियों में भी अल्पाधिक मात्रा में होता है। मन से हो या बेमन से, ज्ञान से हो या अज्ञान से, मेरे पीछे चलने में उसने अपने जीवन की सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बिताने के मेरे प्रयत्न में मुझे कभी रोका नहीं। इससे मुझे यह लगा कि यद्यपि हमारी बुद्धि शक्ति में बड़ा अंतर है, फिर भी मेरा मन कहता है कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

11 : अंग्रेजों से गाढ़ परिचय

इस प्रकरण को लिखते हुए ऐसा प्रसंग आया है जब मुझे पाठकों को बतला देना चाहिए कि सत्य के प्रयोगों की यह कथा किस तरह लिखी जा रही है।

यह कथा लिखने का आरम्भ करते समय मेरे पास इसकी कोई योजना तैयार नहीं थी। अपने पास कोई किताब, रोजनामचा या दूसरे कागजपत्र रखकर मैं ये प्रकरण नहीं लिखता हूं। कह सकता हूं कि लिखने के दिन जैसे-जैसे मुझे अंतर्यामी प्रेरणा करता है वैसे-वैसे लिखता हूं। जो क्रिया मुझमें चलती है, उस अंतर्यामी की प्रेरणा कह सकते हैं या नहीं यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं जानता। पर बहुत बरसों से मैंने जो बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे माने जाने वाले काम किए हैं, उनकी परीक्षा करने पर वे अंतर्यामी की प्रेरणा से हुए हैं, यह कहना मुझे अनुचित नहीं जान पड़ा।

अंतर्यामी को मैंने देखा नहीं है, जाना भी नहीं है। जगत की ईश्वर विषयक श्रद्धा को मैंने अपना लिया। यह श्रद्धा किसी प्रकार मिटाई नहीं जा सकती, इससे उसे श्रद्धा रूप में देखना छोड़कर अनुभवरूप में ही देखने लगा हूं। पर उसे अनुभव रूप कहना भी सत्य पर एक प्रकार का प्रहार है। अतः शायद यही कहना अधिक उचित होगा कि उसे शुद्ध रूप में पाठकों के सामने रख सकूं, ऐसे शब्द ही मेरे पास नहीं हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मेरा यह विश्वास है कि इस अदृष्ट अंतर्यामी के वश होकर ही यह कथा मैं लिख रहा हूं।

पिछला प्रकरण जब मैंने शुरू किया तब उसका शीर्षक 'अंग्रेजों का परिचय' रखा था। पर प्रकरण लिखते हुए मेरी समझ में आया कि इन परिचयों की चर्चा करने के पहले मुझे यह 'पुण्य-स्मरण' लिखना चाहिए, जो मैंने लिखा है। उसके लिखे जाने के बाद पहले का शीर्षक बदलना पड़ा।

अब यह प्रकरण लिखते हुए फिर नया धर्मसंकट पैदा हुआ है। अंग्रेजों का परिचय देते हुए क्या कहना और क्या न कहना यह महत्त्व का प्रश्न हो गया है। प्रस्तुत बात न कही जाए तो सत्य को बट्टा लगता है। पर इस कथा का लिखना ही शायद आवश्यक न हो। ऐसी दशा में प्रस्तुत-अप्रस्तुत के झगड़े का फैसला यकायक करना कठिन हो जाता है।

इतिहास के रूप में आत्मकथा मात्र की अपूर्णता और उसकी कठिनाइयों के विषय में मैंने पहले जो-कुछ पढ़ा है उसका अर्थ आज मैं समझ रहा हूं। इतना तो मैं जानता हूं कि सत्य के प्रयोगों की इस आत्मकथा में, जितना मुझे याद है, उतना सब तो मैं नहीं लिख रहा हूं। सत्य को दरसाने के निमित्त मुझे कितना लिखना चाहिए, यह किसे मालूम है? अथवा एकतरफा अधूरे सबूत का मूल्य न्यायमंदिर में क्या आंका जाएगा? लिखे हुए प्रकरणों पर कोई ठाला-बैठा आदमी मुझसे जिरह करने बैठे और फिर अगर वह आलोचक की दृष्टि से छानबीन करे तो कितनी 'पोलें' प्रकट करके जगत को हँसाए और गर्व से फूलकर कुप्पा बने। इस दृष्टि से विचारते हुए एक बार यही मन में आता है, कि क्या ज्यादा अच्छा न होगा कि फिलहाल इन प्रकरणों को लिखना ही बंद कर दिया जाए? पर शुरू किए हुए काम का अनीतिमय होना जब तक स्पष्ट दिखाई न दे तब तक उसे नहीं छोड़ना चाहिए, इस न्याय से अंत में यही निश्चय किया कि जब तक अंतर्यामी न रोके तब तक ये प्रकरण लिखता जाऊं।

यह कथा आलोचकों को संतुष्ट करने के लिए नहीं लिखी जा रही है। सत्य के प्रयोगों में से यह भी एक प्रयोग ही है। फिर यह दृष्टि तो है ही कि साथियों को उससे कुछ आश्वासन मिले। इसका आरम्भ ही उनके संतोष के खातिर है। स्वामी आनंद और जयरामदास मेरे पीछे न पड़ते तो यह शुरूआत शायद न हुई होती। अतः इसके लिखने में जो दोष होता होगा तो उसमें वे हिस्सेदार हैं।

अब प्रकरण के मूल विषय पर आना चाहिए। जैसे मैंने हिन्दी मुंशियों को और अन्य लोगों को घर में कुटुम्ब की भांति रखा था, वैसे ही अंग्रेजों को भी रखने लग गया था। मेरा यह व्यवहार मेरे साथ रहने वाले सब लोगों को पसंद नहीं था। पर मैंने हठ करके उन्हें रखा। सबको रखने में सदा बुद्धिमानी ही की, यह तो नहीं कह सकता। कितने ही सम्बन्धों में कटु अनुभव भी हुए, पर वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अनुभव तो देशी-परदेशी दोनों के बारे में हुए। नए अनुभवों के लिए मुझे पछतावा नहीं हुआ। कड़वे अनुभवों के होते हुए और मित्रों को अड़चन पड़ती है, कष्ट सहना पड़ता है, यह जानते हुए भी, मैंने अपनी आदत बदली नहीं; और मित्रों ने उसे उदारतापूर्वक सहन किया। नए-नए आदमियों के साथ जोड़े हुए सम्बन्ध जब मित्रों को कष्टदायक हुए तब उनका दोष दिखाने में मैं हिचका नहीं। मेरा विश्वास है कि जो आस्तिक मनुष्य में, जिसे अपने अंतर में बसने वाले ईश्वर को सबमें देखना है, सबके साथ अलिप्त होकर रहने की शक्ति होनी चाहिए और वह शक्ति जब-जब बिना ढूंढ़े, ऐसे अवसर आएं, तब-तब उससे दूर न भागते हुए, केवल नए-नए सम्बन्धों में पड़कर और उनमें पड़ते हुए भी राग-द्वेष रहित रहकर ही बढ़ाई जा सकती है।

अतः जब बोअर-ब्रिटिश-युद्ध आरम्भ हुआ तब मेरा घर भरा रहने पर भी मैंने जोहान्सबर्ग से आए हुए दो अंग्रेजों को टिकाया। दोनों थियोसोफिस्ट थे। उनमें से एक का नाम किचन था, जिसकी चर्चा हमें आगे भी करनी होगी। इन मित्रों के सहवास में भी धर्मपत्नी को तो रुलाना ही पड़ा था। मेरे लिए रोने के प्रसंग तो उसके नसीब में कितने ही बदे थे। इतने निकट का सम्बन्ध जोड़कर, किसी भी परदे के बगैर अंग्रेजों को घर में रखने का यह मेरा पहला अनुभव था। इंग्लैंड में मैं उनके घरों में जरूर रहा था। तब मैं उनकी रहन-सहन को अपनाकर रहा था और वह रहना करीब-करीब होटल में रहने के बराबर था। यहां उससे उलटा था। ये मित्र कुटुम्बी-जन बन गए। उन्होंने बहुत अंशों में भारतीय रहन-सहन का अनुसरण किया। घर में बाहरी साज-सामान यद्यपि अंग्रेजी ढंग का था, फिर भी भीतर का रहन-सहन और खान-पान इत्यादि मुख्यतः हिन्दुस्तानी था। मुझे उनके रखने में कुछ कठिनाइयां उपस्थित होने की याद हैं। फिर भी यह जरूर कह सकता हूं कि वे दोनों व्यक्ति घर के और आदमियों के साथ घुल-मिल गए थे। जोहान्सबर्ग में मेरे ये सम्बन्ध डरबन से अधिक आगे गए।

12 : अंग्रेजों से परिचय

जोहान्सबर्ग में मेरे पास एक बार चार हिन्दुस्तानी मुंशी हो गए थे। उन्हें मुंशी कहना चाहिए या बेटा यह नहीं कह सकता; पर इनमें भी मेरा काम पूरा नहीं पड़ता था। टाइप किए बिना काम चल ही न सकता था। टाइपिंग का कुछ ज्ञान था तो सिर्फ मुझे था। इन चार युवकों में से दो को टाइप करना सिखाया, पर अंग्रेजी का ज्ञान कच्चा होने की वजह से टाइप का काम कभी अच्छा न हो सका। फिर इन्हीं में से मुझे हिसाब रखने वाला भी तैयार करना था। नेटाल से अपनी पसंद का कोई आदमी बुला नहीं सकता था; क्योंकि बिना परवाने के कोई हिन्दुस्तानी ट्रांसवाल में दाखिल नहीं हो सकता था और अपनी आसानी के लिए अधिकारियों की कृपा-याचना करने को मैं तैयार न था।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं परेशान हो उठा। काम इतना बढ़ गया कि चाहे जितनी मेहनत करूं, फिर भी वकालत का और सार्वजनिक काम दोनों को पूरा न कर पाता था। अंग्रेज कारकून, फिर वह स्त्री हो या पुरुष, मिले तो रखने में मुझे कोई इनकार नहीं था, पर 'काले आदमी के यहां गोरा नौकरी करेगा?' यह शंका मेरे मन में थी, पर मैंने प्रयत्न करने का निश्चय किया। टाइपराइटिंग एजेंटों से मेरी थोड़ी जान-पहचान थी। उनके पास गया और उनसे कहा कि टाइप करने वाली कोई बहन या भाई मिल सके, जिसे 'काले' आदमी के यहां नौकरी करने में उज्र न हो तो ढूंढ़ दीजिए। दक्षिण अफ्रीका में शॉर्टहैंड का या टाइप का काम करने वाली बहुत करके स्त्रियां ही होती हैं। एजेंट ने मुझे ऐसा टाइपिस्ट दिलाने की कोशिश करने का वचन दिया। उसे मिस डिक नाम की एक स्काच कुमारी मिली। वह हाल में ही स्काटलैंड से आई थी। अच्छी नौकरी जहां कहीं मिले करने में उसे उज्र नहीं था। उसे तो तुरंत काम चाहिए था। उक्त एजेंट ने उसे मेरे पास भेजा। उसे देखते ही मेरी आंख उस पर जम गईं।

मैंने उससे पूछा-"तुम्हें हिन्दुस्तानी के यहां काम करने में कोई अड़चन तो नहीं है?"

उसने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया-"बिल्कुल नहीं।"

"तुम्हें वेतन क्या चाहिए?"

उसने जवाब दिया-"साढ़े सत्रह पौंड ज्यादा तो न होंगे?"

"तुमसे जितने काम की उम्मीद मैं करता हूं उतना कर दोगी तो मैं उसे जरा भी ज्यादा नहीं मानता। कब से काम शुरू कर सकोगी?"

"आप चाहें तो अभी से।"

मैं बहुत खुश हुआ और उस बहन को उसी समय अपने सामने बैठाकर पत्र लिखवाना शुरू कर दिया।

इसने मेरे क्लर्क का नहीं, बल्कि मैं यह मानता हूं कि सगी बेटा का या बहन का पद तुरंत ही और अनायास ले लिया। मुझे उससे कभी कड़ी आवाज में कुछ कहना नहीं पड़ा। शायद ही उसके काम में गलती निकालनी पड़ी हो। हजारों पौंड का लेन-देन भी एक वक्त उसके हाथ में था और बहीखाता भी वह रखने लगी थी। उसने तो मेरा विश्वास संपूर्ण रूप से प्राप्त कर ही लिया था, पर मैंने जो उसकी गुह्यतम भावनाओं को जानने योग्य विश्वास सम्पादन कर लिया, यह मेरे नजदीक बड़ी बात थी। उसने अपना साथी चुनने में मेरी राय मांगी। कन्यादान करने का सौभाग्य भी मुझे ही प्राप्त हुआ। मिस डिक जब मिसेज मेकडॉनल्ड हुईं तब मुझसे तो पृथक होना ही चाहिए था, पर ब्याह के बाद भी काम की भीड़ होने पर मैं जब चाहता उनसे मदद ले लिया करता था।

पर दफ्तर में हर वक्त एक स्थाई शॉर्टहैंड राइटर की जरूरत तो थी ही। वह भी मिल गई। इस बहन का नाम मिस श्लेशिन था। उसे मेरे पास लाने वाले मि.

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
केलनबैक थे, जिनका परिचय पाठक आगे चलकर पाएंगे। यह बहन एक हाईस्कूल में अध्यापिका का काम करती थीं। मेरे पास जब आईं तो उसकी उम्र सत्रह साल की रही होगी। उसकी कुछ विचित्रताओं से मैं और मि. केलनबैक हार जाते थे। वह कोई नौकरी करने के खयाल से नहीं आई थी। उसे तो अनुभव प्राप्त करना था। उसके अंदर कहीं राग-द्वेष की बू-बास नहीं थी। उंसे किसी की परवाह भी नहीं थी। चाहे जिसका अपमान करते हुए नहीं डरती थी और अपने मन में जिसके बारे में जो विचार आए उसे कहने में संकोच न करती थी। इस स्वभाव के कारण कभी-कभी वह मुझे कठिनाई में डाल देती थी; पर उसका निष्कपट स्वभाव सब कठिनाइयां दूर कर देता था। उसका अंग्रेजी का ज्ञान मैं सदा अपने से ऊंचा मानता था और इसलिए उसकी वफादारी पर मुझे पूरा विश्वास भी था। इससे उसके टाइप किए हुए बहुतेरे कागजों पर मैं दुहराए बिना दस्तखत कर दिया करता था।

उसकी त्यागवृत्ति की सीमा नहीं थी। उसने मुझसे बहुत दिनों तक प्रतिमास छह पौंड ही लिए और दस पौंड से ज्यादा लेने से तो वह अंत तक साफ इनकार करती रही। मैं जो ज्यादा लेने को कहता तो वह मुझे धमकाती और कहती, "मैं कोई तनख्वाह के लिए नहीं हूं। मुझे तो आपके साथ इस तरह का यह काम करना अच्छा लगता है और आपके आदर्श मुझे रुचते हैं, इसलिए रहती हूं।"

मुझसे उसने आवश्यकता होने पर 40 पौंड लिए थे, पर उधार कहकर। पिछले साल सारी रकम उसने लौटा दी।

उसकी त्यागवृत्ति जैसी तीव्र थी वैसी ही उसकी हिम्मत थी। स्फटिक मणि के समान पवित्रता और वीरता में क्षत्रियों को भी लजाने वाली जिन बहनों से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, मैं मानता हूं कि यह बहन भी उनमें से एक है। आज तो वह पूरी प्रौढ़ कुमारिका है। आज की उसकी मानसिक स्थिति की मुझे पूरी जानकारी नहीं है; पर मेरे अनुभवों से इस लड़की का अनुभव मेरे लिए सदा पुण्य-स्मरण रहेगा, इससे जो मैं जानता हूं उसे न लिखूं तो मैं सत्य के द्रोह का दोषी बनता हूं।

काम करने में उसके लिए रात-दिन बराबर थे। आधी रात को अकेली चाहे जहां जाना हो, चली जाती थी और मैं उसके साथ किसी को भेजने को कहता तो मुझ पर नाराज होती। हजारों उम्र वाले हिन्दुस्तानी भी उसे आदर की दृष्टि से देखते थे और उसकी बात मानते थे। जब हम सब जेल में थे, कोई जिम्मेदार पुरुष शायद ही बाहर रहा हो, तब वह अकेली सारे आन्दोलनों को सम्भाल रही थी। लाखों का हिसाब उसके हाथ में था। सारा पत्र-व्यवहार उसके हाथ में और 'इंडियन ओपीनियन' भी उसके हाथ में। यह हालत थी, पर उसे थकान न आई।

मिस श्लेशिन के विषय में लिखते हुए मेरी कलम थकती नहीं; पर गोखले के प्रमाणपत्र का उल्लेख करके मैं यह प्रकरण समाप्त करता हूं। गोखले ने मेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सब साथियों से परिचय किया था। उस परिचय में उन्हें बहुतों के विषय में बड़ा संतोष हुआ था। उन्हें सबके चरित्र का मूल्यांकन आंकने का बड़ा शौक था। मेरे सब भारतीय और यूरोपियन साथियों में मिस श्लेशिन को उन्होंने प्रधान पद दिया था। "इतना त्याग, इतनी पवित्रता, इतनी निर्भयता और इतनी कुशलता मैंने थोड़ों में ही देखी है। मेरी नजर में मिस श्लेशिन तुम्हारे साथियों में प्रथम पद की अधिकारिणी है।"

13 : 'इंडियन ओपीनियन'

अभी दूसरे यूरोपियनों के निकट परिचय देने बाकी हैं, लेकिन उसके पहले दो-तीन जरूरी बातें लिख देना आवश्यक है।

एक परिचय तो अभी दे दूं। मिस डिक को नियुक्त कर लेने से ही मेरा काम पूरा नहीं होने वाला था। मि. रीच के बारे में मैं पहले लिख चुका हूं। उनके साथ मेरा अच्छा परिचय था। वह व्यापारी फर्म में मैनेजर थे। वहां से छोड़कर मैंने अपने नीचे आर्टिकल क्लर्क होने की सलाह दी। वह उन्हें जंच गई और मेरे दफ्तर में भर्ती हो गए। मेरे काम का बोझ हल्का हो गया।

इसी अरसे में श्री मदनजीत ने 'इंडियन ओपीनियन' नाम का अखबार निकालने का इरादा किया। मेरी सलाह और सहायता मांगी। छापाखाना तो वह चला ही रहे थे। पत्र निकालने के विचार से मैं सहमत था। इस पत्र का जन्म 1904 ई. में हुआ। मनसुखलाल नाजर सम्पादक बने, पर सम्पादन का असली बोझ मुझ पर ही पड़ा। मेरे नसीब में बहुत करके दूर से ही अखबार का सम्पादन करना लिखा है।

मनसुखलाल नाजर सम्पादन नहीं कर सकते हों सो बात नहीं थी। देश में तो वह बहुत अखबारों के लिए लिखा करते थे; पर दक्षिण अफ्रीका के अटपटे प्रश्नों पर मेरी उपस्थिति में स्वतंत्र लेख लिखने की हिम्मत उन्होंने न की। अतः जिन-जिन विषयों पर लिखना होता उन पर लिख भेजने का बोझ मुझ पर ही डाल देते थे।

यह पत्र साप्ताहिक था। आज भी वैसा ही है। पहले तो वह गुजराती, हिन्दी, तमिल और अंग्रेजी में निकलता था, पर मैंने देखा कि तमिल और हिन्दी विभाग तो नाम के ही थे, उनके द्वारा कौम की कोई सेवा नहीं होती। उन्हें कायम रखने में मुझे असत्य का आभास हुआ। इसलिए उन विभागों को बंद कर दिया। उससे मुझे शांति मिली।

इस अखबार में मुझे कुछ पैसे लगाने पड़ेंगे, यह मैंने नहीं सोचा था। पर कुछ ही दिनों में मैंने देखा कि मैं पैसे नहीं देता तो अखबार न चलेगा। अखबार का मैं सम्पादक नहीं था, फिर भी मैं ही उसके लेखों के लिए जिम्मेदार था, यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बात हिन्दुस्तानी और गोरे दोनों ही जान गए थे। अखबार न निकला होता तो कोई बात नहीं थी; पर निकलने के बाद बंद होने में मेरे खयाल से कौम की बदनामी होती और कौम का नुकसान भी होता।

मैं उसमें पैसे लगाता गया और आखिर में तो कह सकता हूं कि जो कुछ बचता था वह सब उसी में चला जाता था। ऐसा समय मुझे याद है जब मुझे हर महीने 75 पौंड भेजने पड़ते थे।

पर इतने वर्षों बाद मुझे लगता है कि इस अखबार ने कौम की अच्छी सेवा की है। उससे पैसा पैदा करने का इरादा तो किसी का शुरू से ही नहीं था।

यह पत्र जब तक मेरे हाथ में था तब तक इसमें जो फेर-फार हुए वह मेरे जीवन में होने वाले परिवर्तनों के सूचक थे। जैसे आज 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' मेरे जीवन के कुछ अंश का निचोड़ हैं वैसे ही 'इंडियन ओपीनियन' भी था। उसमें मैं हर हफ्ते अपनी आत्मा उड़ेलता और मैं जिसे सत्याग्रह समझता था उसे समझाने का प्रयत्न करता था। जेल के वक्त को बाद देकर दस बरस तक के अर्थात् 1914 तक के 'इंडियन ओपीनियन' का शायद ही कोई अंक होगा, जिसमें मैंने कुछ लिखा न हो। उसमें एक भी शब्द मैंने बिना विचारे, बिना तौले लिखा हो या महज किसी को खुश ही करने के लिए लिखा हो या जान-बूझकर अतिशयोक्ति की हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। मेरे लिए यह अखबार संयम की शिक्षा बन गया था, मित्रों के लिए मेरे विचारों का वाहन हो गया था। आलोचकों को इसमें आलोचना के लिए बहुत कम मसाला मिलता था। मैं जानता हूं कि इसके लेख आलोचकों को अपनी कलम पर अंकुश रखने को मजबूर करते थे। इस अखबार की लिए बिना सत्याग्रह की लड़ाई नहीं चल सकती थी। पाठक वर्ग इस अखबार को अपना मानते थे और उसमें सत्याग्रह-संग्राम और दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की हालत की सच्ची तस्वीर पाते थे।

इस अखबर से रंग-बिरंगे मनुष्य-स्वभाव को पहचानने का मुझे बहुत मौका मिला। सम्पादक और ग्राहक के बीच निकट और स्वच्छ सम्बन्ध पैदा करना ही हमारा उद्देश्य होने के कारण मेरे सामने दिल खोलकर रखने वालों के पत्रों का ढेर लग जाता था। उसमें तीखे, कड़वे, मीठे, तरह-तरह के लेख मेरे पास आते थे। उन्हें पढ़ना, विचारना, उनमें से विचारों का सार निकालकर जवाब देना-यह मेरे लिए अच्छी शिक्षा हो गई। मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मैं उसके द्वारा कौम में होने वाली बातों और विचारों को ही सुन रहा हूं। सम्पादक की जिम्मेदारी मैं अच्छी तरह समझने लगा और मुझे कौम के आदमियों पर जो अधिकार मिला उससे भविष्य में होने वाली लड़ाई शक्य और शोभायमुक्त हुई और उसमें बल आया।

'इंडियन ओपीनियन' के पहले महीने की कारगुजारी से ही मैंने जान लिया कि समाचार-पत्र सेवा-भाव से ही चलाए जाने चाहिए। समाचार-पत्र में बड़ी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
शक्ति है; पर जैसे निरंकुश पानी का बहाव गांव के गांव डुबा देता है और फसल बरबाद कर देता है वैसे ही लेखनी का निरंकुश प्रवाह विनाश करता है। यह अंकुश बाहर से आता है तो वह निरंकुशता से ज्यादा जहरीला साबित होता है। भीतर का अंकुश ही लाभदायक हो सकता है।

यदि यह विचार-सरणि सही हो तो इस पर दुनिया के कितने अखबार टिकेंगे? पर निकम्मों को बन्द कौन कर सकता है? कौन किसे निकम्मा माने? काम के और निकम्मे साथ-साथ चलते ही रहेंगे। मनुष्य उनमें से अपने लिए चुनाव कर सकता है।

14 : 'कुली लोकेशन' या भंगी-बस्ती?

हिन्दुस्तान में हमारी बड़ी-से-बड़ी समाज-सेवा करने वाले ढड़, भंगी वगैरा, जो अस्पृश्य माने जाते हैं वे गांव से बाहर अलग रखे जाते हैं। गुजराती में उनके मुहल्ले, टोले को ढेड़वाड़ा कहते हैं और उसका नाम लेते घिनाते हैं। इसी तरह ईसाई यूरोप में एक जमाने में यहूदी अछूत माने जाते थे और उनके लिए जो 'ढेड़वाड़ा' बसाया जाता था उसे 'घेटो' कहते थे। वह नाम अमंगलसूचक माना जाता था। इसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका में हम हिन्दुस्तानी वहां के भंगी बन गए। एंड्रयूज के आत्मबलिदान और शास्त्री जी की जादू की छड़ी से हमारी शुद्धि होगी और उसके फलस्वरूप हम भंगी से सभ्य समझे जाएंगे या नहीं, यह अभी देखना है।

हिन्दुओं की भांति यहूदी अपने को ईश्वर के लाडले बेटे और दूसरों को हेय मानते थे और उस पर अपराध का फल उन्होंने विचित्र और अघटित रूप से पाया। लगभग उसी तरह हिन्दुओं ने भी अपने को संस्कृत या आर्य मानकर अपने ही एक अंग को प्राकृत, अनार्य या ढेड़ माना है। उसके पाप का फल विचित्र रूप से, चाहे अघटित रीति से हो, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि उपनिवेशों में वह भोग रहे हैं और मैं जानता हूं कि उसमें उनके पड़ोसी मुसलमान, पारसी भी, जो उन्हीं के रंग के और देश के हैं, सन गए हैं।

जोहान्सबर्ग के कुली लोकेशन को इस प्रकरण का विषय बनाने का मतलब अब पाठकों की समझ में कुछ आ गया होगा। हम दक्षिण अफ्रीका में 'कुली' नाम से मशहूर हैं। 'कुली' शब्द का अर्थ अपने यहां तो सिर्फ मजदूर किया जाता है। पर दक्षिण अफ्रीका में इस शब्द का जो अर्थ किया जाता है वह भंगी, चमार इत्यादि तिरस्कारसूचक शब्दों से ही व्यक्त किया जा सकता है। दक्षिण अफ्रीका में जो स्थान कुलियों के रहने के लिए अलग किए गए हैं वे 'कुली लोकेशन' कहलाते हैं। ऐसा एक लोकेशन जोहान्सबर्ग में था और अन्यत्र सब जगहों में जो 'लोकेशन' रखे गए थे और आज भी हैं, वहां हिन्दुस्तानियों को कोई मालिकाना हक नहीं था। पर इस जोहान्सबर्ग के 'लोकेशन' में जमीन का निन्यानबे साल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का पट्टा दिया गया था। इसमें हिन्दुस्तानी ठसाठस भरे हुए थे। आबादी बढ़ती जाती, पर 'लोकेशन' बढ़ने वाला नहीं था। उसके पाखाने ज्यों-त्यों साफ होते जरूर, पर इसके सिवा और कुछ भी अधिक देख-रेख म्युनिसिपैलिटी की ओर से नहीं होती थी। वहां सड़क पर लालटेन तो होती ही क्यों? इस प्रकार जहां लोगों के पाखानों वगैरा की सफाई के सम्बन्ध में भी किसी को परवाह नहीं थी, वहां दूसरी सफाई का तो पूछना ही क्या? जो हिन्दुस्तानी वहां बसते थे, वे कोई नगर-सुधार, आरोग्य इत्यादि के नियमों से परिचित सुशिक्षित आदर्श भारतीय नहीं थे कि उन्हें म्युनिसिपैलिटी की मदद की या उनकी रहन-सहन पर उसकी देखरेख की जरूरत न हो। जंगल में मंगल कर सकने वाले, धूल में से धान उपजाने वाले हिन्दुस्तानी वहां जाकर बसे होते तो वहां का इतिहास कुछ और ही होता। दुनिया में कहीं भी इस तरह हजारों-लाखों की तादाद में लोग दूसरे देशों में आबाद होते नहीं पाए जाते। आमतौर से तो लोग धन और धंधे के लिए परदेश की तकलीफें झेलते हैं। हिन्दुस्तान से तो अधिकांश में अपढ़, गरीब और दीन-दुःखी मजदूर ही वहां गए थे। उन्हें तो पग-पग पर रक्षा की जरूरत थी। उनके पीछे जो व्यापारी और अन्य स्वतंत्र भारतीय गए, वे तो मुट्ठी भर थे।

इस प्रकार सफाई की रक्षा करने वाले विभाग की अक्षम्य लापरवाही से और भारतीय प्रवासियों के अज्ञान से लोकेशन की स्थिति आरोग्य की दृष्टि से बहुत खराब थी। उसे सुधारने की मुनासिब कोशिश म्युनिसिपैलिटी ने जरा भी न की; बल्कि अपने ही दोष से पैदा हुई खराबी को निमित्त बनाकर उसने उक्त लोकेशन का नाश करने का निश्चय किया और उस जमीन पर कब्जा कर लेने का अधिकार वहां की कौंसिल से प्राप्त कर लिया। मैं जब जोहान्सबर्ग में जाकर बसा तब वहां की स्थिति यही थी।

बसने वाले अपनी जमीन के मालिक थे, अतः उन्हें कुछ हरजाना तो मिलना ही चाहिए। हरजाने की रकम तय करने को खास अदालत बैठी थी। म्युनिसिपैलिटी जो रकम देना चाहती थी उसे यदि मकान-मालिक के स्वीकार न करने की स्थिति में उक्त अदालत जो हरजाना तय करती वह लेना पड़ता। अगर म्युनिसिपैलिटी द्वारा दी जाने वाली रकम में अदालत ज्यादा हरजाना दिलवाती तो उज्रदार के वकील का खर्च म्युनिसिपैलिटी को देना पड़ता था।

इनमें से अधिकांश दावों में मकान मालिकों ने मुझे वकील बनाया। इनसे पैसा पैदा करने की मेरी इच्छा नहीं थी। मैंने उनसे कह दिया था-"जो आप जीतेंगे तो जो कुछ खर्च म्युनिसिपैलिटी की ओर से मिल जाएगा उसी से मैं संतोष कर लूंगा। आप हारें या जीतें, मुझे पट्टे पीछे दस पौंड दे देना काफी होगा। मैंने उन्हें बतला दिया कि इसमें से भी आधी रकम तो गरीबों के लिए अस्पताल बनाने या ऐसी ही किसी दूसरे सार्वजनिक काम के लिए अलग रखने का मेरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इरादा है। स्वभावतः इससे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। लगभग उत्तर दावों में से एक में ही हार हुई। अतः मेहनताने की रकम मोटी हो गई। पर 'इंडियन ओपीनियन' की मांग तो इस वक्त मेरे सिर पर सवार ही थी। अंतः मेरा खयाल है कि उसमें से लगभग 1600 पौंड का चेक तो उसी में चला गया।

इन दावों में अपनी धारणा के अनुसार मैंने अच्छी मेहनत की थी। मुवक्किलों की तो मेरे पास भीड़ ही लगी रहती थी। इनमें से लगभग सभी उत्तर के बिहार इत्यादि से और दक्षिण के तमिल, तेलुगू प्रदेश से पहले गिरमिट में आए हुए भारतीय थे और जो पीछे मुक्त होकर स्वतंत्र व्यवसाय करने लगे थे।

इन लोगों ने अपने विशेष कष्टों को दूर करने के लिए स्वतंत्र भारतीय व्यापारी वर्ग के मंडल से अलग एक मंडल की स्थापना की थी। उसमें कुछ बहुत सच्चे दिल के, उदार भावना वाले और चरित्रवान भारतीय भी थे। उनके अध्यक्ष का नाम श्री जयरामसिंह था और अध्यक्ष न होते हुए भी अध्यक्ष के समान ही दूसरे सज्जन थे श्री बद्री। दोनों का स्वर्गवास हो चुका है। दोनों से मुझे बड़ी मदद मिली थी। श्री बद्री से तो मेरा बहुत काम पड़ा था और उन्होंने सत्याग्रह में प्रमुख भाग लिया था। इन और ऐसे ही दूसरे भाइयों के जरिए मेरा उत्तर-दक्षिण के बहुसंख्यक भारतीयों से बहुत निकट का संबंध जुड़ा और मैं उनका वकील ही नहीं, बल्कि भाई बनकर रहा और उनके तीनों प्रकार के दुःखों में मैं हिस्सेदार बना। सेठ अब्दुल्ला ने मुझे 'गांधी' कहने से इनकार किया और 'साहब' तो मुझे कहता और मानता ही कौन? उन्होंने अतिशय और प्रिय नाम ढूंढ़ निकाला। मुझे 'भाई' कहकर पुकारने लगे। वह नाम दक्षिण अफ्रीका में अन्त तक रहा। पर इन गिरमिट मुक्त हिंदियों के मुझे 'भाई' कहकर बुलाने में मेरे लिए खास मिठास थी।

15 : महामारी-1

इस लोकेशन की मालिकी लेने के साथ ही म्युनिसिपैलिटी ने हिन्दुस्तानियों को वहां से खदेड़ा नहीं। उन्हें दूसरी अनुकूल जगह देने की बात तो थी ही। वह जगह म्युनिसिपैलिटी ने तय नहीं की थी। इससे हिन्दुस्तानी उसी गंदे लोकेशन में रह गए। दो फेरफार हुए। हिन्दुस्तानी अब मालिक न रहकर नगर-सुधार-विभाग के किराएदार हो गए। इससे गंदगी और बढ़ गई। पहले जब हिन्दुस्तानी मालिक माने जाते थे तब वे खुशी से न सही तो डर से ही कुछ-न-कुछ सफाई रखते थे। अब सुधार-विभाग को किसका डर? मकान में किराएदार बढ़े और उसी के साथ गंदगी और अव्यवस्था बढ़ी।

यों यह दशा चल रही थी। भारतीयों के मन उत्तेजित थे। इतने में यकायक काला प्लेग फूट निकला। यह महामारी प्राणघातक थी। यह फेफड़े का प्लेग था। उसकी गिलटी साधारण प्लेग से अधिक भयानक समझी जाती थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सौभाग्य से महामारी का कारण लोकेशन नहीं था। उसका कारण थी जोहान्सबर्ग के आस-पास की सोने की खानों में की एक खान। वहां मुख्यतः हब्शी मजदूर थे। उनकी सफाई की जिम्मेदारी तो केवल गोरे मालिकों के सिर थी। इस खान के काम में कुछ हिन्दुस्तानी भी लगे हुए थे। उनमें से तेईस को यकायक छूत लगी और वे एक शाम को भयानक महामारी के शिकार होकर लोकेशन में अपने डेरे पर आए।

इस समय भाई मदनजीत 'इंडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने और सालाना चन्दा वसूल करने आए थे। वह लोकेशन में घूमते थे। उनमें भरपूर निर्भयता थी। इन बीमारों पर उनकी नजर पड़ी और उनका हृदय धधकने लगा। उन्होंने मुझे पैंसिल से लिखकर एक चिट भेजी। उसका आशय था:

"यहां यकायक काला प्लेग फूट पड़ा है। आपको फौरन आकर कुछ करना चाहिए। नहीं तो परिणाम भयंकर होगा। तुरन्त आइए।"

मदनजीत ने एक खाली पड़े मकान पर निर्भयतापूर्वक कब्जा कर लिया और उसी में इन बीमारों को रखा था। मैं अपनी साइकिल पर लोकेशन पहुंचा। वहां से टाउन क्लर्क को हॉल भेजा और किस परिस्थिति में मकान पर कब्जा किया गया था, यह बता दिया।

डॉक्टर विलियम गाडफ्रे जोहान्सबर्ग में डॉक्टरी करते थे। समाचार पाते ही वह दौड़े आए और बीमारों के डॉक्टर और नर्स दोनों बन गए। पर तेईस रोगियों को हम तीनों संभाल लें, यह मुमकिन न था।

अनुभव के आधार पर मेरा यह विश्वास हो गया है कि नीयत अच्छी हो तो संकट के मुकाबले के लिए सेवक और साधन मिल ही जाते हैं। मेरे दफ्तर में कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिन्दुस्तानी थे। अन्तिम दो के नाम इस समय मुझे याद नहीं हैं। कल्याणदास को उनके बाप ने मुझे सौंप दिया था। उनके जैसे परोपकारी और सिर्फ आज्ञा पालन जानने वाले सेवक मुझे थोड़े ही मिले होंगे। कल्याणदास सौभाग्य से उस समय ब्रह्मचारी थे। अतः उन्हें चाहे जैसी जोखिम का काम सौंपते मुझे कभी संकोच नहीं होता था। दूसरे सज्जन माणिकलाल मुझे जोहान्सबर्ग में ही मिले थे। मेरा खयाल है कि वह भी कुंवारे थे। इन चारों को-इन्हें मुंशी कहिए, साथी कहिए या बेटा कहिए-मैंने होमने का निश्चय किया। कल्याणदास से तो पूछना ही क्या था। दूसरे पूछते ही तैयार हो गए। "जहां आप वहां हम"-यह उनका संक्षिप्त और मधुर उत्तर था।

मि. रीच का परिवार बड़ा था। वह खुद तो कूदने को तैयार थे, पर मैंने उन्हें रोका। उन्हें इस जोखिम में डालने को मैं हरगिज तैयार न था। मेरी हिम्मत ही न होती थी, लेकिन उन्होंने बाहर का सारा काम उठा लिया।

शुश्रूषा की यह रात भयानक थी। मैं बहुत बीमारों की शुश्रूषा कर चुका था।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर प्लेग के मरीज की तीमारदारी करने का मौका मुझे कभी नहीं मिला था। डॉक्टर गाडफ्रे की हिम्मत ने हमें निडर बना दिया। रोगियों की सेवा अधिक नहीं करनी चाहिए। उन्हें दवा देना, तसल्ली देना, पथ्य-पानी देना और उनका पाखाना वगैरा साफ करने के सिवा ज्यादा काम नहीं था।

चारों युवकों की जी-तोड़ मेहनत और निर्भयता देखकर मेरे हर्ष की सीमा न रही।

डॉक्टर गाडफ्रे की ओर मदनजीत की हिम्मत भी समझ में आ सकती थी। पर इन युवकों की? रात ज्यों-त्यों बीती। मुझे जहां तक याद है, उस रात को हमने एक भी रोगी को खोया नहीं।

परन्तु यह प्रसंग जितना ही करुणाजनक है उतना ही मनोरंजक और मेरी दृष्टि में धार्मिक भी है।

16 : महामारी-2

इस प्रकार एकाएक मकान का ताला तोड़कर बीमारों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए टाउन-क्लर्क ने हमारा उपकार माना और सच्चे दिल से कबूल किया, "ऐसी हालत का एकाएक सामना और प्रबन्ध करने की सहूलियत हमारे पास नहीं। आपको जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, आप अवश्य कहिएगा; टाउन-कौंसिल अपने बस-भर जरूर आपकी सहायता करेगी।" परन्तु वहां की म्युनिसिपैलिटी उचित प्रबन्ध करने के लिए सावधान हो चुकी थी और उसने बीमारों का प्रबन्ध करने में अपनी तरफ से विलम्ब न होने दिया।

दूसरे दिन एक खाली गोदाम हमारे हवाले किया गया और कहा गया कि उसमें सब बीमार रखे जाएं। उसे साफ करने की जिम्मेदारी म्युनिसिपैलिटी ने न ली। मकान बड़ा मैला और गंदा था। हम लोगों ने खुद भिड़कर उसे साफ किया। उदारचेता भारतीयों की सहायता से चारपाई इत्यादि मिल गई और उस समय काम चलाने के लिए एक खासा अस्पताल बन गया। म्युनिसिपैलिटी ने एक नर्स-परिचारिका-भेजी और उसके साथ बरांडी की बोतल और बीमारों के लिए अन्य आवश्यक चीजें दी। डॉक्टर गाडफ्रे ज्यों-के-त्यों तैनात रहे।

नर्स को हम शायद ही कहीं रोगियों को छूने देते थे। उसे खुद तो छूने से परहेज न था, वह भी थी भली मानुस। किन्तु हमारी कोशिश यह रही कि जहां तक हो वह खतरे में न पड़े। तजबीज यह हुई थी कि बीमारों को समय-समय पर बरांडी पिलाई जाए। हमसे भी नर्स कहती कि बीमारी से अपने को बचाने के लिए आप लोग भी थोड़ी-थोड़ी बरांडी पिया करो। वह खुद तो पीती ही थी। पर मेरा मन गवाही नहीं देता था कि बीमारों को भी बरांडी पिलाई जाए। तीन बीमार ऐसे थे जो बिना बरांडी के रहने को तैयार थे। डॉ. गाडफ्रे की इजाजत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
से मैंने उन पर मिट्टी के प्रयोग किए। छाती में जहां-जहां दर्द होता था तहां-तहां मैंने मिट्टी की पट्टी बंधवाई। इनमें से दो बच गए और शेष सब चल बसे। बीस रोगी तो इस गोदाम में ही मर गए।

म्युनिसिपैलिटी की दूसरी तैयारियां चल रही थी। जोहान्सबर्ग से सात मील पर छुतहे रोगियों का अस्पताल था। वहां खेमा खड़ा करके इन तीन रोगियों को ले गए। प्लेग के और रोगियों को भी वहां ले जाने का इंतजाम किया गया। हमने इस काम से छुट्टी पाई। थोड़े ही दिनों में हमें मालूम हुआ कि उक्त भली नर्स को प्लेग हो गया और उसकी मृत्यु हो गई। पूर्वोक्त रोगियों का बचना और हमारा रोग से बचे रहना किस कारण से हुआ, यह कोई कह नहीं सकता। पर मिट्टी के उपचार पर मेरी श्रद्धा और औषधरूप में भी शराब के उपयोग से मेरी अश्रद्धा बढ़ गई। मैं जानता हूं कि यह श्रद्धा और अश्रद्धा दोनों बेबुनियाद मानी जाएगी। लेकिन मुझ पर उस वक्त पड़ी हुई छाप को, जो अब तक चलती आ रही है, मैं मिटा नहीं सकता और इसीलिए इस प्रसंग में उसका उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूं।

यह महामारी फूटने के बाद फौरन ही मैंने अखबारों में म्युनिसिपैलिटी के लोकेशन को अपने हाथ में लेने के बाद की बढ़ी हुई लापरवाही और महामारी के लिए उसकी जिम्मेदारी पर एक कड़ा पत्र लिखा था। उस पत्र ने मुझे मि. हेनरी पोलक से मिलाया और वह पत्र स्वर्गीय जोसेफ डोक से परिचय का एक साधन बन गया था।

पिछले प्रकरणों में मैं बतला आया हूं कि मैं भोजन करने एक निरामिष भोजनगृह में जाया करता था। वहां मेरा मि. अलबर्ट वेस्ट से परिचय हुआ। हम बराबर शाम को इस गृह में मिलते और खाकर साथ घूमने जाते। वेस्ट एक छोटे प्रेस में हिस्सेदार थे। उन्होंने अखबारों में महामारी के बारे में मेरा पत्र पढ़ा और मुझे भोजन के समय होटल में न पाकर वह घबराये।

मैंने और मेरे साथी सेवकों ने प्लेग के दिनों में खुराक घटा दी थी। बहुत दिनों से मेरा यह नियम हो गया था कि प्लेग-महामारी के प्रकोप के समय पेट में बोझा जितना कम रहे उतना अच्छा। अतः मैंने शाम का खाना बन्द कर दिया था और दोपहर को दूसरे खाने वालों को हर तरह के खतरे से दूर रखने के ख्याल से मैं ऐसे वक्त जाकर खा आता था, जब कोई आया न होता था। भोजनगृह के मालिक से तो मेरा गहरा परिचय था। उसको मैंने बतला दिया था कि मैं प्लेग के मरीजों की तीमारदारी में लगा हूं, इसलिए दूसरों का स्पर्श कम-से-कम रखना चाहता हूं।

यों मुझे भोजनगृह में न पाकर दूसरे या तीसरे ही दिन सवेरे के समय, जब मैं बाहर निकलने की तैयारी कर ही रहा था, मि. वेस्ट ने पहुंचकर मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया। ज्योंही दरवाजा खोला, वेस्ट बोले:

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपको भोजनगृह में न पाकर मैं तो घबराया कि कहीं आपको तो कुछ नहीं हो गया। यह सोचकर आया हूं कि इस वक्त तो आप मिल ही जाएंगे। मुझसे किसी मदद की जरूरत हो तो अवश्य कहियेगा। मैं रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के लिए भी तैयार हूं। आप जानते ही हैं कि मुझ पर अपना पेट भरने के सिवा और कोई जिम्मेदारी नहीं है।"

मैंने वेस्ट को धन्यवाद दिया। मुझे याद नहीं है कि मैंने सोचने में मिनट भी लगाया हो। मैंने कहा-"आपको मैं नर्स के रूप में तो नहीं लूंगा। और बीमार न निकलें तो हमारा काम एक-दो दिन में ही खत्म हो जाएगा। पर एक काम जरूर है।"

"सो क्या?"

"आप डरबन जाकर 'इंडियन ओपीनियन' प्रेस का प्रबंध अपने हाथ में ले लेंगे? मदनजीत तो फिलहाल यहां काम में फंसे हुए हैं। वहां किसी का जाना जरूरी है। आप चले जाएं तो मैं उधर की चिन्ता से बिलकुल छूट जाऊं।"

वेस्ट ने जवाब दिया-"मेरे पास अपना प्रेस है। यह तो आपको मालूम ही है। बहुत करके तो मैं जाने को तैयार हो जाऊंगा। अन्तिम उत्तर आपको शाम को दूं तो ठीक होगा न? घूमने चल सकें तो बातें हो जाएगी।"

मुझे प्रसन्नता हुई। उसी दिन शाम को कुछ बातचीत हुई। वेस्ट को हर महीने दस पौंड वेतन और छापेखाने में बचत होने पर उसका एक हिस्सा देने की बात तय पाई। वेस्ट तनख्वाह के लिए जाने वाले आदमी नहीं थे। इसलिए उसका सवाल उनके सामने नहीं था। दूसरे ही दिन रात की डाकगाड़ी से वेस्ट अपना लहना मुझे सौंपकर डरबन को रवाना हो गए। तब से दक्षिण अफ्रीका छोड़ने तक वह मेरे सुख-दुःख के साथी रहे। मैंने श्री वेस्ट को सदा, विलायत के एक परगने के लाउथ नामक गांव के एक कृषक कुटुम्ब में जन्में हुए, स्कूल की साधारण शिक्षा पाये हुए, अपने श्रम से अनुभव की पाठशाला में शिक्षित और गढ़े हुए, संयमी, शुद्ध ईश्वर-भीरु, हिम्मतवाले और परोपकारी अंग्रेज के रूप में जाना है। उनका और उनके कुटुम्ब का अधिक परिचय अभी अगले प्रकरणों में आने वाला है।

17 : लोकेशन की होली

यद्यपि बीमारों की सेवा-शुश्रूषा में से मैं और मेरे साथी छुट्टी पा गए थे, तो भी प्लेग के कारण उपस्थित हुए कर्त्तव्य सिर पर सवार ही थे।

लोकेशन की स्थिति के सम्बन्ध में म्युनिसिपैलिटी भले ही लापरवाह हो, पर गोरे नगर-निवासियों के आरोग्य के विषय में तो चौबीसों घंटे जागृत थी। उनके आरोग्य की रक्षा के लिए पैसा खर्च करने में उसने कोई कमी नहीं की थी और इस मौके पर महामारी को आगे फैलने से रोकने के लिए तो उसने पानी की तरह पैसा बहाया। मैंने म्युनिसिपैलिटी के हिंदुस्तानियों के प्रति तो बहुत दोष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
देखे थे। फिर भी गोरों के लिए उसे जो चिंता थी उसकी सराहना किए बिना नहीं रह सका और उसके इस शुभ प्रयत्न में मुझसे जितनी मदद हो सकी उतनी मैंने की। मैं जानता हूं कि वह मदद मैंने न की होती तो म्युनिसिपैलिटी को कठिनाई पड़ती और शायद वह गोलियों की बौछार का सहारा लेती, लेते न हिचकती और अपना निश्चय पूरा करती।

पर वैसा होने नहीं पाया। हिन्दुस्तानियों के बर्ताव से म्युनिसिपैलिटी के अधिकारी प्रसन्न हुए और उसके बाद का बहुत-सा काम आसान हो गया। म्युनिसिपैलिटी की मांगे पूरी कराने के काम में हिंदुस्तानियों पर मेरा जितना असर था, उस सबसे मैंने काम लिया। वह सब करना हिंदुस्तानियों के लिए था बड़ा मुश्किल, पर एक ने भी मेरी बात टाली हो, यह मुझे याद नहीं आता।

लोकेशन के चारों ओर पहरा पड़ने लगा। उसमें से बिना इजाजत के न कोई बाहर जा सकता था, न अंदर आ सकता था। मेरे साथियों को और मुझे बिना रोक-टोक के अंदर जाने का परवाना दे दिया गया था। म्युनिसिपैलिटी का विचार था कि लोकेशन के सब निवासियों को तीन सप्ताह तक जोहान्सबर्ग से तेरह मील दूर खुले मैदान में तम्बू डालकर रखे और लोकेशन को जला दे। तंबुओं के होने पर भी नया गांव बसाने में, वहां खाने-पीने वगैरा का इंतजाम करने में कुछ वक्त लगना तो जरूरी था ही। तब तक के लिए पहरे का इंतजाम था।

लोग बहुत घबराये। पर मैं उनकी पीठ पर था, इससे उन्हें तसल्ली थी। इनमें से बहुतेरे गरीब थे, जो अपना पैसा अपने घर में गाड़कर रखते थे। अब उसे निकालना पड़ा। उन्हें बैंक नहीं मिलता था। बैंक को वे जानते भी न थे। मैं उनका बैंक बन गया। मेरे पास पैसे का ढेर लग गया। ऐसे वक्त में मैं इसमें कोई कमीशन तो ले ही न सकता था। ज्यों-त्यों करके काम निबटाया। अपने बैंक के मैनेजर से मेरा अच्छा परिचय था। मैंने उनसे कहा कि मुझे आपके यहां ज्यादा पैसे रखने होंगे। बैंक ताम्बे और चांदी के सिक्के ज्यादा लेने को तैयार नहीं था और दूसरे, यह भी मुमकिन था कि प्लेग के स्थान में से आए हुए पैसे को छूने, गिनने में बैंक-कर्मचारी इनकार करते। मैनेजर ने मुझे सब सुभीता कर दिया। पैसा जंतुनाशक पानी में धोकर बैंक में रखने का निश्चय हुआ। मुझे याद है कि इस प्रकार साठ हजार पौंड बैंक में जमा किये गए। मेरे जिन मुवक्किलों के पास ज्यादा पैसा था, अपने ऐसे मुवक्किलों को मैंने मियादी खाते के हिसाब में उसे जमा करने की सलाह दी। उन मुवक्किलों के नाम से बहुत-सा रुपया जमा हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि उनमें से कितनों को बैंक में रुपये रखने की आदत लग गई।

लोकेशन-निवासियों को क्लिपस्प्रुट नाम के फार्म में, जो जोहान्सबर्ग के पास है, स्पेशल ट्रेन में ले गए। यहां उन्हें सीधा-पानी म्युनिसिपैलिटी ने अपने खर्च से मुहैया किया। इन तम्बुओं के गांव का दृश्य सिपाहियों की छावनी का-सा था। लोगों को इस तरह रहने की आदत नहीं थी। इससे उन्हें मानसिक

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कष्ट हुआ। सब कुछ नया-नया सा लगा, पर कोई खास तकलीफ नहीं उठानी पड़ी। मैं रोज बाइसिकिल पर एक चक्कर लगा आता था। तीन हफ्ते इस तरह खुली हवा में रहने की वजह से लोगों के स्वास्थ्य में जरूर सुधार हुआ और मन का कष्ट तो सिर्फ पहले चौबीस घंटे का ही था। फिर तो वे मौज से रहने लगे। मैं जब जाता, उन्हें भजन, कीर्तन और खेल-कूद में ही लगा हुआ पाता।

जहां तक मुझे याद है जिस दिन लोकेशन खाली हुआ उसी के दूसरे दिन वह जला दिया गया। एक भी चीज उसमें से बचा लेने का लोभ म्युनिसिपैलिटी ने नहीं किया। इसी बीच में और इन्हीं वजहों से म्युनिसिपैलिटी ने अपने मारकेट का लकड़ी का सारा सामान भी जलवा दिया और कोई दस हजार पौंड का नुकसान मत्थे लिया। मार्केट में मरे चूहे पाए गए थे, इसलिए यह उग्र उपाय किया गया। ज्यादा खर्च तो हुआ, पर परिणाम यह हुआ कि बीमारी आगे नहीं बढ़ने पाई। नगर भयमुक्त हो गया।

18 : एक पुस्तक का जादूभरा असर

इस प्लेग ने गरीब हिंदुस्तानियों पर मेरा काबू, मेरा रोजगार और मेरी जिम्मेदारी बढ़ा दी। इसके सिवा यूरोपियनों से मेरा बढ़ता हुआ परिचय भी इतना गहरा होता गया कि उससे भी मेरी नैतिक जिम्मेदारी बढ़ने लगी।

जैसे वेस्ट से मेरा परिचय निरामिषाहारी भोजनगृह में हुआ वैसे ही पोलक से भी हुआ। एक दिन मैं जिस मेज पर खा रहा था, उससे दूर की मेज पर एक नवयुवक भोजन कर रहा था। उसने मुझसे मिलने की इच्छा से अपना नाम भेजा। मैंने उसे अपनी मेज पर बुला लिया। वह आया।

"मैं 'क्रिटिक' का उप-सम्पादक हूं। आपका प्लेग-सम्बन्धी लेख पढ़ने के बाद से मिलने की मेरी बड़ी इच्छा थी। आज वह पूरी हुई।"

मि. पोलक के निष्कपट भाव के कारण मैं उनकी ओर आकृष्ट हुआ। उसी रात को हम दोनों एक-दूसरे से परिचित हो गए और जीवन-विषयक हमारे विचारों में हमें बहुत साम्य दिखाई दिया। सादा जीवन उन्हें पसंद था। जिस बात को बुद्धि स्वीकार कर ले उस पर अमल करने की उनकी शक्ति आश्चर्यजनक जान पड़ी। अपने जीवन में कुछ परिवर्तन तो उन्होंने एक बारगी कर डाले।

'इंडियन ओपीनियन' का खर्च बढ़ता जा रहा था। वेस्ट की पहली रिपोर्ट मुझे चौंका देने वाली थी। उन्होंने लिखा-"आपने जितना बताया था उतना नफा इस काम में नहीं है, मैं तो घाटा पाता हूं। हिसाब-किताब अव्यवस्थित है। लहना बहुत है, पर उसका सिर-पैर समझ में नहीं आता। बहुत उलट-फेर करना होगा। पर इस रिपोर्ट से आप घबरायें नहीं। जितनी व्यवस्था मुझसे हो सकती है, करूंगा। नफा न होने की वजह से मैं काम को छोड़ दूं, यह नहीं हो सकता है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नफा न देखकर काम छोड़ना चाहते तो वेस्ट छोड़ सकते थे और मैं इसके लिए उन्हें कोई दोष नहीं दे सकता था। इतना ही नहीं, बिना जांचे 'यह नफे का काम है' कहने का दोष मुझ पर लगाने का उन्हें हक था। फिर भी उन्होंने मुझे कभी एक कड़वी बात तक न सुनाई। पर मैं समझता हूं कि इस नई जानकारी से वेस्ट की नजरों में मैं झट विश्वास कर लेने वाला लगने लगा हूंगा। मदनजीत के अंदाजे की जांच किए बिना उनके कथन के आधार पर मैंने वेस्ट से नफे की बात कही थी। अब मैं सोचता हूं कि सार्वजनिक काम करने वालों को ऐसा विश्वास न रखकर, जिसकी उन्होंने खुद जांच की हो, वही बात कहनी चाहिए। सत्य के पुजारी को तो बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। किसी के मन पर पूरे निश्चय के बिना जितना चाहिए उससे अधिक असर डालना भी सत्य को धुंधला करने वाली बात है। मुझे कहते दुःख होता है कि इस बात को जानते हुए भी जल्दी विश्वास करके काम लेने की अपनी प्रकृति को मैं पूरी तरह नहीं सुधार सका हूं। इसमें मैं सामर्थ्य से बाहर काम करने का लोभ देखता हूं। इस लोभ के कारण मुझे तकलीफ उठानी पड़ी है और उससे भी ज्यादा मेरे साथियों को परेशानी उठानी पड़ती है।

वेस्ट का इस तरह का पत्र पाकर मैं नेटाल के लिए रवाना हुआ । पोलक तो मेरी सब बातें जान ही गये थे। मुझे स्टेशन पहुंचाने आए और एक किताब मेरे हाथ में देकर बोले-"यह किताब रास्ते में पढ़ने लायक है, पढ़ जाइयेगा। आपको पसन्द आएगी" पुस्तक का नाम था-'अंटु दिस लास्ट'। रस्किन की किताब थी।

इस पुस्तक को हाथ में लेकर मैं छोड़ ही न सका। उसने मुझे पकड़ लिया। जोहान्सबर्ग से नेटाल तक चौबीस घंटे का रास्ता था। ट्रेन शाम को डरबन पहुंचती थी। पहुंचने को बाद सारी रात नींद नहीं आई। पुस्तक में प्रकट किए हुए विचारों को अमल में लाने का इरादा किया।

इसके पहले रस्किन की एक भी पुस्तक मैंने नहीं पढ़ी थी। विद्याभ्यास के दिनों में पाठ्य पुस्तकों के अलावा मेरी दूसरी बाहरी पढ़ाई नहीं के बराबर ही समझनी चाहिए। कर्मभूमि में प्रवेश करने के बाद वक्त बहुत कम बचता है। अतः आज तक भी, कहा जा सकता है, कि मेरा पुस्तकीय ज्ञान बहुत ही थोड़ा है। मैं मानता हूं कि इस अनायास या विश्वास होकर किए गए संयम से मुझे नुकसान नहीं हुआ। पर यह कह सकता हूं कि जो थोड़ी किताबें मैंने पढ़ी हैं उनका उलथा किया और वह 'सर्वोदय'[1] के नाम से छपा है

---

1. इसका हिन्दी अनुवाद सस्ता साहित्य मण्डल से 'सर्वोदय' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मुझमें गहराई से भरी हुई थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किन के इस ग्रंथ रत्न में देखा और इसके कारण उसने मेरे हृदय पर अपना साम्राज्य जमा लिया और उसमें प्रकट किये हुए विचारों पर मुझ से अमल कराया। हममें जो भली भावनाएं सुप्त हों, उन्हें जगाने की शक्ति जिसमें हो, वह कवि है। सब कवियों का सब एक-सा असर नहीं होता; क्योंकि सबमें सब भली भावनाएं समान मात्रा में नहीं होती हैं।

'सर्वोदय' के सिद्धान्त मैंने समझे :

1. सबके भले में अपना भला समाया हुआ है
2. वकील और हज्जाम दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का हक सबको बराबर है।
3. सदा, मेहनत-मशक्कत का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली चीज मैं जानता था। दूसरी की मैं झलक पा रहा था। तीसरी को मैंने सोचा ही नहीं था। पहली में पिछली दोनों बातें समाई हुई हैं। यह मुझे 'सर्वोदय' ने दीपक की भांति स्पष्ट दिखा दिया। सवेरा हुआ और मैं उस पर अमल करने के प्रयत्न में लग गया।

19 : फिनिक्स की स्थापना

सवेरे, पहले तो मैंने वेस्ट से बातें कीं। 'सर्वोदय' का मुझ पर जो असर हुआ था, वह उन्हें कह सुनाया और सुझाया कि 'इंडियन ओपीनियन' को किसी खेत पर ले चलें। वहां सब एक समान भोजन-व्ययमात्र लें। सब अपने लिए खेती करें और बाकी वक्त में 'इंडियन ओपीनियन' का काम करें। वेस्ट ने यह सुझाव मान लिया। हर एक का खाने-पीने का खर्च कम-से-कम तीन पौंड कूता गया। इसमें गोरे-काले का भेद नहीं रखा गया था।

पर प्रेस में तो कुल दस के करीब कर्मचारी थे। एक सवाल यह था कि जंगल में बसाना सबको अनुकूल होगा या नहीं और दूसरा सवाल यह था कि सब एक बराबर खाने-पहनने भर को ही पैसे लेने को तैयार होंगे या नहीं। हम दोनों ने तो यह निश्चय किया कि जो इस योजना में शामिल न हो सकें, वे अपना वेतन लें। धीरे-धीरे सब संस्थावासी बन जाएं, यह आदर्श सामने रहे।

इस दृष्टि से मैंने कर्मचारियों से बात करना शुरू किया। मदनजीत के गले तो वह नहीं उतरी। उन्हें डर लगा कि जिस चीज में उन्होंने अपनी जान लड़ा दी थी, वह मेरी बेवकूफी से महीने भर में मिट्टी में मिल जाएगी; 'इंडियन ओपीनियन' न चलेगा। प्रैस भी नहीं चलेगा और काम करने वाले भाग जाएंगे।

मेरे भतीजे छगनलाल गांधी इस छापेखाने में काम करते थे। उनसे भी मैंने वेस्ट के साथ ही बातें की थीं। उन पर कुटुम्ब का भार था। पर बचपन से ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उन्होंने मेरी आज्ञा के नीचे रहकर शिक्षा ग्रहण करना और काम करना पसन्द किया था। मुझ पर उनका बहुत विश्वास था। अतः बिना दलील किए वह तो शामिल हो गए और आज तक मेरे साथ ही हैं।

तीसरे गोविन्द सामी नाम के मशीन मैन थे। वह भी शामिल हो गए। और कर्मचारी यद्यपि संस्थावासी नहीं हुए, पर मैं प्रैस को जहां ले जाऊं वहां जाना उन्होंने कबूल कर लिया।

मुझे जहां तक याद है, इस प्रकार कर्मचारियों से बातचीत करने में दो दिन से अधिक नहीं लगे। तुरन्त ही मैंने अखबार में डरबन के नजदीक किसी भी स्टेशन के पास जमीन के टुकड़े के लिए विज्ञापन दिया। जवाब में फिनिक्स की जमीन की बात आई। मैं और वेस्ट उसे देखने गए। सात दिनों के अन्दर 20 एकड़ जमीन ली। उसमें एक नन्हां-सा पानी का झरना था, नारंगी और आम के कुछ पेड़ थे। उससे सटा हुआ ही 80 एकड़ का दूसरा एक टुकड़ा था। उसमें फल वाले पेड़ अधिक थे और एक झोंपड़ा था। उसे भी कुछ दिनों बाद खरीदा। दोनों को मिलाकर 1000 पौंड दिए।

सेठ पारसी रुस्तमजी तो मेरे ऐसे सब साहस वाले कामों में हाथ बंटाते थे। उन्हें मेरी यह योजना पसंद आई। एक बड़े गोदाम की टिन की चादरें वगैरा उनके पास पड़ी थीं, वे उन्होंने मुफ्त में दे दीं। उनसे इमारत बनवाना शुरू कर दिया। कुछ हिन्दुस्तानी बढ़ई और थवई मेरे साथ लड़ाई में शामिल हुए थे, उनमें से कई मिल गए। उनकी मदद से कारखाना बनना शुरू हो गया। एक महीने में मकान तैयार हुआ। वह 75 फुट लम्बा और 50 फुट चौड़ा था। वेस्ट इत्यादि जान की जोखिम उठाकर थवइयों-बढ़इयों के साथ रह गए।

फिनिक्स में घास बहुत थी। आबादी बिल्कुल न थी। इससे सांपों का उपद्रव था और यही खतरा था। पहले तो सभी तम्बू तानकर रहे।

मकान का मुख्य भाग तैयार हो जाने पर हम एक हफ्ते में बहुत-कुछ सामान बैलगाड़ियों से फिनिक्स ले गए। डरबन और फिनिक्स में तेरह मील की दूरी थी। स्टेशन से फिनिक्स 2 मील दूर था। सिर्फ एक ही हफ्ते 'इंडियन ओपीनियन' को मर्क्युरी प्रैस में छपाना पड़ा।

मेरे साथ जो मेरे रिश्तेदार वगैरा आए थे और व्यापार में लग गए थे उन्हें अपने मत में मिलाने और फिनिक्स में दाखिल कराने की कोशिश मैंने शुरू की। ये सब तो रुपए कमाने की गरज से दक्षिण अफ्रीका आए थे। उन्हें समझाने का काम कठिन था, पर कुछ समझ गए। ऐसों में से आज मगनलाल गांधी का नाम मैं चुनकर खासतौर से लेता हूं। कारण यह कि जिन दूसरों ने समझा, वे तो कुछ दिन फिनिक्स में रहकर द्रव्यसंचय में लग गए। पर मगनलाल गांधी, जो अपना धंधा समेटकर मेरे साथ आए तो तब से रह ही गए। वह अपने बुद्धि-बल,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
त्याग-शक्ति और अनन्य भक्ति से मेरे आत्मिक प्रयोगों के मेरे मूल साथियों में आज प्रधान पद पर आसीन हैं और स्वयं शिक्षित कारीगर के रूप में तो उनमें, मेरी दृष्टि से, उनका स्थान बेजोड़ है।

इस प्रकार सन् 1904 में फिनिक्स की स्थापना हुई और कष्ट-कठिनाइयां झेलते हुए भी फिनिक्स-संस्था और 'इंडियन ओपीनियन' दोनों अभी जीवित हैं। पर इस संस्था की शुरू की मुसीबतें और उसमें हुई सफलताएं, विफलताएं जानने समझने लायक हैं। उन पर दूसरे प्रकरण में विचार करूंगा।

20 : पहली रात

फिनिक्स में 'इंडियन ओपीनियन' का पहला अंक निकालना आसान साबित नहीं हुआ। दो सावधानियां मुझे न सूझी होतीं तो अंक एक सप्ताह बन्द रहता या देर से निकलता। इस संस्था में इंजन से चलने वाली मशीनें लगाने का मेरा इरादा कम ही था। सोचा था कि जहां खेती भी हाथों से करनी है, वहां प्रैस भी हाथों से चलने वाली मशीनों से ही चलाया जा सके तो अच्छा है। पर उस समय ऐसा जान पड़ा कि यह सध न सकेगा। इससे वहां ऑयल इंजन ले गए थे। पर मैंने वेस्ट से कहा कि अगर यह ऑयल इंजन दगा दे जाए तो उस वक्त के लिए दूसरा कोई काम चलाऊ साधन भी रहना अच्छा होगा। इससे उन्होंने हाथ से चलाने वाला एक चक्र रखा था और उससे छपाई-मशीन चलाने का उपाय कर लिया था। फिर हमारे अखबार का आकार दैनिक पत्र के समान था। बड़ी मशीन बिगड़ जाए तो उसे तुरन्त ठीक करा लेने का सुभीता यहां नहीं था। इससे भी अखबार बन्द होता। इस कठिनाई से बचने के लिए आकार बदलकर साधारण साप्ताहिक के बराबर कर दिया गया, जिसमें अड़चन के समय ट्रेडिल पर भी पैर से कुछ पन्ने निकाले जा सकें।

शुरू के दिनों में 'इंडियन ओपीनियन' के प्रकाशन-दिवस की पहली रात को सबका थोड़ा-बहुत रतजगा हो जाता था। कागज भांजने के काम में छोटे-बड़े सब लग जाते थे और काम रात को दस-बारह बजे पूरा होता था, पर पहली रात तो मुश्किल से भूलेगी। फर्मा मशीन पर कस दिया गया, पर इंजन चलने से इनकार करने लगा। इंजन बिठाने और चलाने के लिए एक इंजीनियर बुलाया गया। उसने और वेस्ट ने भरपूर मेहनत की, पर इंजन नहीं चला। सब चिन्तित हो गए। अन्त में वेस्ट निराश होकर डबडबाई आंखों से मेरे पास आए और बोले: "अब इंजन आज तो नहीं चलेगा और इस सप्ताह हम लोग वक्त पर अखबार न निकाल सकेंगे।"

"यही होगा तो हम लाचार हैं। आंसू बहाने की कोई वजह नहीं। अब भी कोई कोशिश बाकी हो तो कर देखनी चाहिए। अच्छा, आपका उस हाथ वाले चक्र का क्या हुआ?" यह कहकर मैंने आश्वासन दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेस्ट बोले–"इस चक्र को चलाने वाले हमारे पास आदमी कहां हैं? हम लोग जितने आदमी हैं, उतने से यह चक्र नहीं चल सकता। उसे चलाने को बारी-बारी से चार आदमी चाहिए। हम सब तो थक चुके हैं।"

बढ़ईखाने का काम अभी खत्म नहीं हुआ था। इससे बढ़ई अभी गए नहीं थे। वे छापेखाने में ही सो रहे थे। उनकी ओर इशारा करके मैंने कहा–"पर ये सब मिस्त्री तो हैं, इनसे काम की मदद क्यों न लें? और आज रातभर हम सब अखंड जागरण करेंगे। मुझे लगता है कि इतना करना बाकी रह गया है।"

"मिस्त्रियों को उठाने की और उनकी मदद मांगने की मेरी हिम्मत नहीं है और हमारे थके हुए आदमियों को भी कहा कैसे जाए?"

"यह काम मेरा है।" मैंने कहा।

"तो सम्भव है कि हम काम कर ले जाएं।"

मैंने मिस्त्रियों को जगाया और उनकी मदद मांगी। मुझे उनकी मनुहार नहीं करनी पड़ी। वे बोले–"ऐसे आड़े वक्त हम आपके काम न आएं तो हम इन्सान कैसे? आप आराम कीजिए, हम चक्र चला लेंगे। हमें इसमें ज्यादा मेहनत नहीं पड़ेगी।"

छापेखाने के आदमी तो तैयार ही थे।

वेस्ट की खुशी का पार न रहा। उन्होंने काम में लगे-लगे भजन गाना शुरू किया। चक्र चलाने में मिस्त्रियों का हाथ बंटाया; और लोग भी बारी-बारी से खड़े होने लगे। काम निकलने लगा। सवेरे करीब सात का वक्त होगा। मैंने देखा कि काम अभी काफी बाकी है। वेस्ट से मैंने कहा–"क्यों अब इंजीनियर को जगा सकते हैं? दिन के उजाले में फिर मेहनत करें तो शायद इंजन चल जाए और हमारा काम वक्त से पूरा हो जाए।"

वेस्ट में इंजीनियर को उठाया। वह तुरन्त उठकर इंजन की कोठरी में पैठा। शुरू करते ही इंजन चलने लगा। प्रैस खुशी के नारों से गूंज उठा। "यह कैसे हो गया? रात को इतनी-इतनी मेहनत की गई तब भी नहीं चला! और अब इस तरह चलाते ही चलने लगा, मानो कुछ हुआ ही न हो।"

वेस्ट या इंजीनियर ने जवाब दिया–"इसका जवाब देना मुश्किल है। मशीनों को भी मानो हमारी तरह आराम की जरूरत होती है। कभी-कभी उनको इस तरह व्यवहार करते देखा जाता है।"

मैंने तो माना कि इस इंजन का न चलना हम सबकी परीक्षा थी और उसका ऐन मौके पर चलना शुद्ध श्रम का शुभ फल था।

अखबार समय से स्टेशन पहुंच गया और सब निश्चिंत हुए। इस आग्रह का नतीजा यह हुआ कि अखबार की नियमितता की छाप पड़ गई और फिनिक्स में मेहनत का वायुमंडल बन गया। इस संस्था में ऐसा भी एक वक्त आया, जब इंजन चलाना जान-बूझकर बंद कर दिया गया और दृढ़तापूर्वक चक्र से ही काम चलाया गया। मेरी समझ में फिनिक्स का यह ऊंचे-से-ऊंचा नैतिक काल था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21 : पोलक कूद पड़े

फिनिक्स-जैसी संस्था की स्थापना के बाद मैं स्वयं उसमें थोड़े ही दिन बस सका, इसका मुझे सदा दुःख ही रहा है। इसकी स्थापना के समय मेरी कल्पना यह थी कि मैं भी वहीं बसूंगा, अपनी आजीविका उसी से करूंगा। धीरे-धीरे वकालत छोड़ दूंगा, फिनिक्स में रहकर जो सेवा हो सकेगी वह करूंगा और फिनिक्स की सफलता को ही सेवा मानूंगा। पर इन विचारों पर सोचे हुए रूप में तो अमल न हो पाया। मैंने अपने अनुभव में बहुत बार यह देखा है कि हमने चाहा कुछ और हुआ कुछ और ही। पर साथ-साथ मैंने यह भी अनुभव किया है कि जहां सत्य की ही साधना और उपासना हो, वहां हमारा सोचा-चाहा परिणाम भले ही न हो, पर जो अनसोचा परिणाम होता है, वह भी अनिष्ट नहीं होता और कितनी ही बार तो सोचे हुए परिणाम से अधिक अच्छा होता है। फिनिक्स में जो अनसोचे परिणाम सामने आए और फिनिक्स ने जो अनसोचा रूप पकड़ा वे अनिष्ट नहीं थे, इतना मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं। सोचे परिणाम से बढ़कर कहे जा सकते हैं या नहीं इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता।

हम सब शारीरिक श्रम से निर्वाह करेंगे, इस विचार से छापेखाने के आस-पास प्रत्येक संस्थावासी के लिए तीन-तीन एकड़ जमीन के टुकड़े किए गए। इनमें से एक टुकड़ा मेरे लिए भी नापा गया। उन सब पर हमने, सबकी इच्छा के विरुद्ध, टीन के घर बनाए। इच्छा तो किसान को फबने वाले घास, मिट्टी या कच्ची ईंटों की दीवार का झोंपड़ा बनाने की थी वह न हो सका। उसमें ज्यादा पैसा, ज्यादा वक्त लग रहा था। सब झटपट घरबारी हो जाने और काम में जुट जाने को आतुर थे।

'इंडियन ओपीनियन' के सम्पादक तो मनसुखलाल नाजर ही माने जाते थे। वह इस योजना में शामिल नहीं हुए थे। उनका डेरा डरबन में ही था। डरबन में 'इंडियन ओपीनियन' की एक छोटी-सी शाखा भी थी।

कम्पोज करने के लिए यद्यपि तनख्वाहदार आदमी थे, फिर भी दृष्टि यह थी कि अखबार की छपाई में कम्पोजिंग का काम, जो ज्यादा-से-ज्यादा वक्त लेता है, पर आसान है, सब संस्थावासी सीख लें और करें। इसलिए न जानने वाले उसे सीखने को तैयार हो गए। मैं इस काम में आखिर तक सबसे पीछे रहा और मगनलाल गांधी सबसे आगे निकल गये।

मेरी सदा यह धारणा रही है कि उन्हें खुद भी अपने में विद्यमान शक्ति की खबर नहीं थी। छापेखाने का काम कभी किया नहीं था, फिर भी कुशल कम्पोजिटर बन गए और गति में भी अच्छी प्रगति की। इतना ही नहीं, कुछ समय में छापेखाने के सब कामों पर अच्छा काबू पाकर मुझे चकित कर दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह काम अभी ठिकाने तो नहीं पहुंचा था। मकान भी तैयार नहीं हुए थे। इतने में इस नये रचे हुए कुटुम्ब को छोड़कर मैं जोहान्सबर्ग भागा। मेरी स्थिति ऐसी नहीं थी कि वहां का काम ज्यादा दिनों तक छोड़ सकूं।

जोहान्सबर्ग पहुंचने पर पोलक से इस बड़े परिवर्तन की चर्चा की। अपनी दी हुई पुस्तक का यह परिणाम देखकर उनके आनंद का पार न रहा। उन्होंने उत्साद भरे गद्‌गद् हृदय से पूछा–"तो मैं भी इसमें किसी तरह हिस्सा ले सकता हूं?"

मैंने कहा–"अवश्य ले सकते हैं। चाहे तो आप इस योजना में शामिल भी हो सकते हैं।"

पोलक ने जवाब दिया–"मुझे भरती करें तो मैं तैयार ही हूं।" इस दृढ़ता से मैं मुग्ध हो गया। पोलक ने 'क्रिटिक' से अपने को मुक्त करने के लिए मालिक को एक महीने का नोटिस दिया और मियाद खत्म होने पर फिनिक्स पहुंच गए। अपनी मिलनसारी से उन्होंने सबके मन हर लिये और हमारे कुटुम्बी से बनकर रहने लगे। सादगी उनकी रग-रग में थी। इससे फिनिक्स का जीवन उन्हें जरा भी नया-सा या मुश्किल न लगकर स्वाभाविक और रूचिकर लगा।

पर मैं ही उन्हें वहां अधिक दिन तक नहीं रख सका। मि. रीच ने कानून की पढ़ाई विलायत में पूरी करने का निश्चय किया। अकेले दम मैं सारे दफ्तर का भार उठाने में असमर्थ था। इससे मैंने पोलक को दफ्तर में रहने और वकील बनने की सलाह दी। मेरा इरादा यह था कि उनके वकील हो जाने के बाद अंत को हम दोनों फिनिक्स में ही पहुंच जायेंगे।

मेरी ये सारी कल्पनाएं झूठी साबित हुईं। पर पोलक के स्वभाव में कुछ ऐसी सरलता थी कि जिस पर उनका विश्वास जम जाता उसके साथ दलील न करके उसके मतानुकूल होने की कोशिश करते थे। पोलक ने मुझे लिखा–"मुझे तो यह जीवन ही भाता है। मैं यहां सुखी हूं और इस संस्था को हम विकसित कर सकेंगे। पर अगर आप यह मानते हों कि मेरे वहां आने से हमारे आदर्श शीघ्र सफल होंगे तो मैं आने को तैयार हूं।" मैंने इस पत्र का स्वागत किया। पोलक फिनिक्स छोड़कर जोहान्सबर्ग आए और मेरे दफ्तर में वकालत के काम में मेरे सहायक के रूप में शामिल हो गए।

इन्हीं दिनों एक स्काच थियॉसोफिस्ट से, जिसे मैं कानून की परीक्षा के लिए तैयार होने में मदद देता था, मैंने पोलक का अनुकरण करने का अनुरोध किया और वह भी शामिल हो गया। इसका नाम मेकिन टायर था।

इस प्रकार फिनिक्स के आदर्श को झटपट प्राप्त कर लेने के नेक इरादे से मैं उसके विरुद्ध जीवन में अधिकाधिक गहराई में जाता जान पड़ा और जो ईश्वरीय संकेत कुछ और ही न होता तो सादे जीवन के बहाने बिछाये हुए मोहजाल में मैं स्वयं ही फंस जाता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जिसकी हममें से किसी को कल्पना न थी उस रीति से मेरी और मेरे आदर्श की रक्षा कैसे हुई इस प्रसंग पर पहुंचने के पहले कुछ प्रकरण और लिखने होंगे।

22 : 'जाको राखे साइयां'

फिलहाल जल्दी देश जाने की या वहां जाकर स्थिर होने की उम्मीद मैंने छोड़ दी थी। मैं तो पत्नी को एक बरस की तसल्ली देकर दक्षिण-अफ्रीका वापस आया था। बरस तो बीत गया और मेरा वापस जाना दूर चला गया, इससे बाल-बच्चों को बुलाने का निश्चय किया।

बच्चे आये। उनमें मेरा तीसरा लड़का रामदास भी थी। वह राह में स्टीमर के कप्तान से खूब हिल गया था। उसके साथ खेलने में उसका हाथ टूट गया था। कप्तान ने उसकी बड़ी सम्भाल रखी थी। डॉक्टर ने हड्डी बैठा दी थी और जब वह जोहान्सबर्ग पहुंचा तो उसका हाथ लकड़ी की पटरियों के बीच में बंधकर रूमाल की गर्दन-झोली में लटका हुआ था। स्टीमर के डॉक्टर की सलाह थी कि जख्म को किसी डॉक्टर से ठीक करा लिया जाए।

पर मेरा यह समय तो जोर-शोर से मिट्टी के प्रयोग करने का था। मेरे जिन मुवक्किलों को मेरी नीमहकीमी पर विश्वास था, उनसे भी मैं मिट्टी और पानी के प्रयोग कराता था। रामदास के लिए और क्या होता? उसकी उम्र आठ साल की थी। मैंने उससे पूछा-"तेरे जख्म की पट्टी वगैरा कर दूं तो घबराएगा तो नहीं?" रामदास ने हँसकर मुझे इजाजत दी। यद्यपि इस उम्र में उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं हो सकता था, फिर भी डॉक्टरी और नीमहकीमी का भेद तो वही भली-भांति जानता था। उसे मेरे प्रयोगों का पता था और मुझ पर विश्वास था, इससे वह निर्भय रहा।

कांपते-कांपते मैंने उसकी पट्टी खोली, जख्म को साफ किया और साफ मिट्टी की पुलटिस रखकर जैसे पहले बंधी थी वैसे पट्टी बांध दी। इस प्रकार रोज मैं खुद जख्म साफ करता था और मिट्टी रखता था। महीने भर में जख्म बिलकुल भर गया। किसी दिन कोई अड़चन नहीं पड़ी और रोज-बरोज जख्म भरता गया।

स्टीमर के डॉक्टर ने यह कहलाया था कि डॉक्टरी मरहमपट्टी से भी इतना वक्त तो लगेगा ही।

इन घरेलू इलाजों पर मेरा विश्वास और उन्हें आजमाने की मेरी हिम्मत बढ़ गई। इसके बाद मैंने प्रयोगों का क्षेत्र खूब बढ़ाया। घाव, बुखार, अजीर्ण, पीलिया इत्यादि रोगों के लिए मिट्टी के, पानी के और उपवास के प्रयोग छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभी पर किये और अधिकांश सफल हुए। फिर भी जो हिम्मत मुझमें दक्षिण अफ्रीका में थी, वह यहां नहीं रह गई और अनुभव से यह भी देखा है कि इन प्रयोगों में जोखिम भी है ही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इन प्रयोगों के वर्णन का हेतु अपने प्रयोगों की सफलता सिद्ध करना नहीं है। किसी भी प्रयोग के सर्वांश में सफल होने का दावा नहीं किया जा सकता। डॉक्टर भी ऐसा दावा नहीं कर सकते; पर कहने का मतलब इतना ही है कि जिसे नये अपरिचित प्रयोग करने हों उसे अपने से ही आरम्भ करना चाहिए। ऐसा होने पर सत्य शीघ्र प्रकट होता है और वैसे प्रयोग करने वाले को ईश्वर उबार लेता है।

मिट्टी के प्रयोगों में जो खतरे थे, वैसे ही खतरे यूरोपियनों से निकट सम्पर्क स्थापित करने में थे। भेद केवल प्रकार का था, पर इन खतरों का मुझे खुद तो ख्याल तक नहीं आया।

पोलक को मेरे साथ ही रहने का न्यौता दिया और हम सगे भाई की भांति रहने लगे। पोलक ने जिस बहन से ब्याह किया उसके साथ उनकी मित्रता कई बरस से थी। पर मुझे याद है कि पोलक कुछ पैसे इकट्ठा हो जाने की राह देख रहे थे। रस्किन का उनका अध्ययन मेरी अपेक्षा बहुत अधिक था। पर पश्चिम के वातावरण में रस्किन के विचारों पर पूरा-पूरा अमल करने की बात वह न सोच सकते थे। मैंने दलील दी-"जिससे हृदय की गांठ जुड़ गई उसका वियोग केवल द्रव्य के अभाव में सहते रहना अनुचित है। आपके हिसाब से तो कोई गरीब ब्याहा ही नहीं जा सकता। फिर अब तो आप मेरे साथ रहते हैं। अतः घर खर्च का सवाल नहीं है। मुझे तो यही इष्ट लगता है कि आप जल्दी ही ब्याह कर लें।"

मुझे पोलक के साथ कभी दो बार दलील नहीं करनी पड़ी। उन्होंने तुरंत मेरी दलील को मान लिया। भावी मिसेस पोलक तो विलायत में थी। उनके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ। वह राजी हुईं और कुछ ही महीनों में ब्याह के लिए जोहान्सबर्ग आ पहुंची।

ब्याह में खर्च तो कुछ भी नहीं किया गया। ब्याह के कोई खास कपड़े तक नहीं थे। इन्हें धर्म विधि की आवश्यकता भी नहीं थी। मिसेस पोलक जन्म की ईसाई और पोलक यहूदी थे। दोनों के बीच जो सामान्य धर्म था, वह था-नीतिधर्म।

पर इस विवाह का एक रोचक प्रसंग लिख दूं। ट्रांसवाल में गोरों के ब्याह की रजिस्टरी करने वाला अधिकारी काले आदमियों के ब्याह की रजिस्टरी नहीं करता। इस विवाह में शहबाला तो मैं था। ढूंढ़ने से हमें कोई गोरा मित्र मिल जाता, लेकिन पोलक को यह बरदाश्त नहीं था। इससे हम तीनों आदमी अधिकारी के यहां हाजिर हुए। मैं जिसमें शहबाला रहूं, उस विवाह में उभय पक्ष के गोरे ही होने का अधिकारी को कैसे विश्वास हो? उसने जांच के लिए रजिस्टरी मुल्तवी रखनी चाही। अगले दिन नेटाल का त्यौहार था। ब्याह का सारा साज-सामान किये हुए स्त्री-पुरूष के ब्याह की रजिस्टरी तिथि इस तरह बदल दी जाए, यह सबको असह्य लगा। बड़े मजिस्ट्रेट को मैं जानता था। वह इस विभाग के प्रधान थे। मैं इस दम्पती को लेकर उनके सामने हाजिर हुआ। वह हँसे और मुझे पत्र लिख दिया। यों ब्याह की रजिस्टरी हो गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अब तक कुछ गोरे पुरूष हमारे साथ रहे थे और उनसे थोड़ा-बहुत परिचय भी था ही। अब एक बिना परिचय की अंग्रेज बहन कुटुम्ब में दाखिल हुई। मुझे खुद तो किसी दिन कोई टंटा-बखेड़ा होने की याद नहीं है, पर जहां अनेक जाति और अनेक स्वभाव के हिंदुस्तानियों के आवा-जाही रहती हो, जहां मेरी पत्नी को ऐसे अनुभव अल्प ही थे, वहां हो सकता है उन दोनों (श्री और श्रीमती पोलक) को कभी उद्वेग का प्रसंग आया हो। पर एक ही जाति के कुटुम्ब में ऐसे प्रसंग जितने आ सकते हैं, उनकी अपेक्षा इस विजातीय कुटुम्ब में ज्यादा तो नहीं ही आये। बल्कि जिनके आने का मुझे स्मरण है वे भी नगण्य ही कहे जायेंगे। सजातीय-विजातीय की भावना हमारे मन की तरंगे हैं। हम सब एक कुटुम्ब ही हैं।

वेस्ट की ब्याह भी यहीं मना लूं। जीवन के इस काल में ब्रह्मचर्य सम्बन्धी मेरे विचार पक्के नहीं हुए थे। इससे मेरा पेशा कुंवारे मित्रों को ब्याह देने का था। वेस्ट जब अपने माता-पिता को देखने विलायत जाने लगा तो मैंने उन्हें सलाह दी कि विवाह करके ही लौटें। फिनिक्स अब सबका घर बन गया था और सब किसान बन बैठे थे। इससे विवाह या वंशवृद्धि डरावनी बात नहीं थी।

वेस्ट लेस्टर की एक सुंदर कुमारिका को ब्याह लाये। इस बहन का परिवार लेस्टर में जूतों का जो बड़ा कारोबार चलता है। उसमें काम करता था। मिसेज वेस्ट ने भी कुछ समय जूतों के कारखाने में बिताया था। उसे मैंने 'सुंदर' कहा है; क्योंकि उसके गुणों का मैं पुजारी हूं और सच्चा सौंदर्य तो गुण में ही होता है। वेस्ट अपनी सास को भी साथ लाये थे। यह भली वृद्धा अभी जीती हैं। अपने उद्यम और अपने हँसमुख स्वभाव से वह हम सबको सदा लजाया करती।

मैंने जैसे इन गोरे मित्रों का ब्याह करवाया वैसे हिंदुस्तानी मित्रों को अपने बाल-बच्चों को बुलाने के लिए उत्साहित किया। इससे फिनिक्स एक छोटा-सा गांव बन गया और वहां पांच-छः हिन्दी परिवार बसने लगे और फलने-फूलने लगे।

23 : घर में फेर-फार और बालशिक्षा

डरबन में बसाये घर में फेर-फार तो किया ही था। खरचा भारी था, फिर भी झुकाव सादगी की ओर था। पर जोहान्सबर्ग में 'सर्वोदय' के विचारों ने ज्यादा फेर-फार कराये।

बैरिस्टर के घर में जितनी सादगी मुमकिन थी उतनी तो दाखिल कर ही दी, फिर भी कुछ साज-सामान के बिना निबाह मुश्किल था। असली सादगी तो मन की बढ़ी। हर एक काम अपने हाथ से करने का शौक था और लड़कों को भी शामिल करना शुरू किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बाजार की रोटी लेने के बजाय घर में बिना खमीर की, कूने के बताये प्रकार की रोटी हाथ से बनानी शुरू की। इसमें मिल का आटा काम में नहीं लाया जाता। मैंने यह भी देखा कि मिल का पिसा आटा काम में लाने की अपेक्षा हाथ का पिसा काम में लाने में सादगी, आरोग्य तथा पैसे- तीनों की अधिक रक्षा होती थी। अतः हाथ से चलाने की एक चक्की सात पौंड में खरीदी। इसका पाट भारी था। उसे दो आदमी आसानी से चला लेते थे। एक से मुश्किल से चलती थी। इस चक्की के चलाने में पोलक, मैं और लड़के खासतौर से लगते थे। कभी-कभी कस्तूरबाई भी लगतीं, यद्यपि उनका वह वक्त भोजन बनाने के लिए नियत था। मिसेज पोलक आईं तो वह भी उसमें शामिल होने लगीं। यह कसरत बच्चों के लिए बड़ी अच्छी साबित हुई। उनसे यह या कोई काम मैंने जबरदस्ती कभी नहीं कराया, वह अपने आप ही खेल समझकर पाट चलाने आ जाते। थकने पर छोड़ देने की उन्हें इजाजत थी, पर न जाने क्यों, इन बालकों ने या दूसरों ने, जिनका परिचय हमें आगे मिलेगा, मेरा तो सदा खूब ही काम किया है। नटखट लड़के भी मेरे पल्ले पड़े हैं, पर अधिकांश सौंपा हुआ काम चाव से करते थे। अब 'थक गया' कहने वाले इस जमाने के थोड़े ही लड़के मुझे याद हैं।

घर साफ-सुथरा रखने के लिए एक नौकर था। वह कुटुम्बी बनकर रहता था और उसके काम में लड़के पूरा हाथ बंटाते थे। पाखाने कमाने तो म्युनिसिपैलिटी का नौकर आता था, पर पाखाने की कोठरी की सफाई, कदमचे धोने वगैरह का काम नौकर से नहीं लिया जाता था, वैसी आशा भी नहीं रखी जाती थी। यह काम हम खुद करते थे और इसमें भी बालकों को शिक्षा मिलती थी। नतीजा यह हुआ कि शुरू से ही मेरे एक भी लड़के को पाखाना साफ करने की घिन नहीं रह गई, और आरोग्य के साधारण नियम भी वे अनायास सीख गये। जोहान्सबर्ग में तो शायद ही कोई बीमार पड़ता था, पर ऐसा मौका आ जाता तो सेवा-काम में लड़के तो लगते ही थे और वे यह काम खुशी से करते थे।

यह तो नहीं कहूंगा कि उनके अक्षरज्ञान के बारे में मैंने लापरवाही की, पर उसे होमने में संकोच नहीं किया और इस त्रुटि के लिए मेरे लड़कों को मुझ से शिकायत होने का कारण रह गया है। उन्होंने कितनी ही बार अपना असंतोष भी प्रकट किया है। मैं यह मानता हूं कि इसमें कुछ अंशो में मुझे अपना कसूर मान लेना चाहिए। उन्हें अक्षरज्ञान देने की बहुत इच्छा थी, प्रयत्न भी करता था। पर इस काम में सदा कुछ-न-कुछ विघ्न आ पड़ता था। उनके लिए घर पर दूसरी शिक्षा का प्रबंध नहीं किया था। इससे उन्हें अपने साथ पैदल दफ्तर ले जाता था। दफ्तर अढ़ाई मील था; अतः सुबह-शाम कम-से-कम पांच मील की कसरत उनकी और मेरी हो जाती थी। रास्ता चलते कुछ सिखाने की कोशिश करता, पर वह भी तब जब मेरे साथ और कोई चलने वाला न होता था। दफ्तर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में वे मुवक्किलों और मुंशियों से मिलते-जुलते, कुछ पढ़ने को दिया जाता तो पढ़ते, इधर-उधर घूमते, बाजार से मामूली सौदा-सुलुफ लाते। सबसे बड़े हरिलाल के सिवाय सब लड़के इसी तरह पले। हरिलाल देश में रह गया था। उन्हें अक्षरज्ञान देने के लिए मैं एक घंटा भी नियमित रूप से बचा सका होता तो मैं मानता हूं कि मैं उन्हें आदर्श शिक्षा दे पाता। यह आग्रह मैंने नहीं रखा, इसका दुःख मुझे और उन्हें रह गया है। सबसे बड़े लड़के ने अपना विलाप बहुत बार मेरे सामने और जनसमाज में भी प्रकट किया है। औरों ने हृदय उदारतावश इस दोष को अनिवार्य समझकर दरगुजर कर दिया है। इस कमी के लिए मुझे पछतावा नहीं है, या है तो इतना ही कि मैं आदर्श पिता नहीं सिद्ध हुआ। मैं मानता हूं कि मैंने उनके अक्षरज्ञान का होम भी-भले ही वह अज्ञान से हुआ हो-सद्भाव से मानी हुई सेवा के अर्थ किया है। यह कह सकता हूं कि उनके चरित्र गठन के लिए जो कुछ करना उचित था वह करने में मैंने त्रुटि नहीं की और मैं मानता हूं कि हर मां-बाप का यह फर्ज है। मेरी पक्की धारणा है कि मेरी मेहनत के बावजूद मेरे उन बालकों के चरित्र में जहां कोई खामी दिखाई दी है, वह हम दम्पती की खामियों का प्रतिबिम्ब है। बच्चों को मां-बाप की सूरत-शक्ल की विरासत जैसे मिलती है वैसे उनके गुण-दोषों की विरासत भी जरूर मिलती हैं। उसमें आस-पास के वातावरण के कारण अनेक प्रकार की कमोबेशी जरूर हो जाती है; पर असली पूंजी तो वही होती है जो उन्हें बाप-दादों की ओर से मिली होती है। मैंने देखा कि ऐसे दोष की विरासत से कुछ लड़के अपने-आपको बचा लेते हैं। यह आत्मा का मूल स्वभाव है, उसकी बलिहारी है।

पोलक में और मुझमें इन बच्चों की अंग्रेजी तालीम को लेकर कई बार गरम बहस हुई है। मैंने शुरू से ही माना है कि जो हिंदुस्तानी मां-बाप अपने बच्चों से बचपन से ही अंग्रेजी बोलवाने लगते हैं वे उनका और देश का द्रोह करते हैं। मैंने यह भी माना है कि इससे बालक अपने देश की धार्मिक और सामाजिक विरासत से वंचित रहते हैं और उतने अंश में देश की और जगत की सेवा करने के कम योग्य बनते हैं। इस विश्वास के कारण मैं सदा जान-बूझकर बच्चों के साथ गुजराती में ही बोलता था। पोलक को यह अच्छा न लगता था। उनकी दलील थी कि मैं बच्चों का भविष्य बिगाड़ता हूं। वह मुझे आग्रह और प्रेम से समझाते कि अंग्रजी-जैसी व्यापक भाषा बालक बचपन से सीख ले तो दुनिया में चलने वाली जिंदगी की दौड़ में एक बड़ा डग सहज ही पार कर जाय। यह दलील मुझे नहीं जंची। मुझे आज याद नहीं है कि अंत में मेरा जवाब उनके गले उतरा या वह मेरा हठ देखकर चुप ही रहे। इस बहस को लगभग बीस साल हो चुके हैं। फिर भी, मेरे ये विचार, जो मैंने उस वक्त कायम किये थे, वही, अनुभव के सहारे अधिक दृढ़ हुए हैं, और यद्यपि मेरे पुत्र अक्षरज्ञान के कच्चे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रह गये हैं, फिर भी मातृभाषा का सामान्य ज्ञान जो वे अनायास पा सके, इससे उनका और देश का लाभ ही हुआ है और आज वे परदेशी-जैसे नहीं हो गये हैं। वे द्विभाषी तो अनायास हो गये; क्योंकि बड़े अंग्रेज मित्र-मंडल के साथ मिलने-जुलने से और जहां अंग्रेजी अधिक बोली जाती थी ऐसे देश में रहने से अंग्रेजी बोलना और मामूली तौर से लिखना तो उन्हें आ ही गया।

24 : जूलू-बलवा

घर बसाने के बाद स्थिर होकर बैठना मेरे नसीब में बदा ही न था। जोहान्सबर्ग में थोड़ा स्थिर हुआ ही था कि उसी समय एक अकल्पित घटना घटित हुई। नेटाल में जूलू-बलवा होने की खबर पढ़ी। मुझे जूलू लोगों से कुछ दुश्मनी नहीं थी। उन्होंने एक भी हिंदुस्तानी का नुकसान नहीं किया था। 'बलवा' कहने के औचित्य में भी मुझे शंका थी; पर अंग्रेजी सल्तनत को उस समय मैं जगत का कल्याण करने वाला साम्राज्य मानता था। मेरी वफादारी हृदय से थी। उस सल्तनत का क्षय मैं नहीं चाहता था। अतः बल प्रयोग विषयक नीति-अनीति का विचार, जो कदम मैं उठाने जा रहा था, उससे मुझे रोक नहीं सकता था। नेटाल पर संकट आने पर रक्षा के लिए स्वयंसेवकों की सेना थी और संकट के समय उसमें क़ामभर को भरती भी होती थी। मैंने पढ़ा कि स्वयंसेवकों की सेना इस बलवे को शांत करने को निकल पड़ी है।

मैं अपने आपको नेटालवासी मानता था और नेटाल के साथ मेरा निकट सम्बन्ध तो था ही। इससे मैंने गवर्नर को पत्र लिखा कि आवश्यकता हो तो घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने वाली हिंदुस्तानियों की टुकड़ी लेकर मैं सेवा के लिए जाने को तैयार हूं। गवर्नर का तुरंत ही 'हां' में जवाब आया। मैंने अनुकूल उत्तर की और इतनी जल्दी जवाब पा जाने की उम्मीद नहीं की थी। फिर भी यह पत्र लिखने के पहले मैंने अपना प्रबंध तो कर ही लिया था। यह तै किया था कि अगर गवर्नर की ओर से स्वीकृति आ जाय तो जोहान्सबर्ग का घर तोड़ दिया जाए, मि. पोलक अलग छोटा घर लेकर रहें और कस्तूरबाई फिनिक्स जाकर रहें। इस योजना में कस्तूरबाई की पूर्ण सम्मति प्राप्त हुई। मुझे याद नहीं आता कि मेरे ऐसे कामों में उसकी ओर से कभी बाधा पड़ी हो। गवर्नर का जवाब आने पर मैंने मकान मालिक को घर खाली करने के बारे में एक महीने का बाकायदा नोटिस दी। कुछ सामान फिनिक्स गया, कुछ मि. पोलक के पास रहा।

डरबन पहुंचते ही मैंने आदमियों की मांग की। बड़ी टुकड़ी की जरूरत नहीं थी। हम चौबीस जन तैयार हुए। उसमें मुझे छोड़कर चार गुजराती थे। बाकी मद्रास इलाके के गिरमिट मुक्त हिंदुस्तानी थे और एक पठान था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हमारे आत्मसम्मान की रक्षा और काम के अधिक सुभीते के होने के खयाल से, और ऐसा रिवाज होने की वजह से भी, चीफ मेडिकल आफिसर ने मुझे 'सारजेंट मेजर' का अस्थायी पद दिया और मेरी पसंद के अन्य तीन सज्जनों को 'सारजंट' का और 'कारपोरल' का पद दिया। वर्दी भी सरकार की ओर से मिली। कहना चाहिए कि इस टुकड़ी ने छह हफ्तें लगातार सेवा की।

'बलवे' के मुकाम पर पहुंचकर मैंने देखा कि बलवा कहलाने लायक तो कोई बात नहीं है। कोई मुकाबला करता हुआ भी नजर नहीं आता था। बलवा मानने का कारण यह था कि एक जूलू सरदार ने जूलू लोगों पर लगाया गया नया कर न देने की उन्हें सलाह दी थी और कर की वसूली के लिए गए हुए एक सारजंट को उसने कत्ल कर दिया था। जो हो, मेरा हृदय तो जूलू लोगों की ही ओर था और सदर मुकाम पर पहुंचने पर जब हमारे हिस्से में खासतौर से जूलू जख्मियों की शुश्रूषा करने का ही काम आया तो मैं बहुत खुश हुआ। मेडिकल आफिसर ने हमारा स्वागत किया। उसने कहा, "कोई गोरा इन जख्मियों की शुश्रूषा करने को तैयार नहीं होता। मैं अकेला कहां तक कर सकता हूं? उनके घाव सड़ रहे हैं। अब आप लोगों का आ जाना तो मैं इन निर्दोष प्राणियों पर प्रभु की कृपा ही मानता हूं।" यह कहकर उसने हमें पट्टियां, जंतुनाशक पानी वगैरह दिया और जूलू जख्मियों के पास ले गया। जख्मी हमें देखकर खुश हो गए। गोरे सिपाही जालियों में से झांक-झांककर हमें घाव साफ करने से रोकने की कोशिश करते थे। हमारे न मानने से चिढ़ते थे और जूलुओं के बारे में ऐसे गंदे शब्दों का इस्तेमाल करते थे कि कान के कीड़े झड़ जायं।

धीरे-धीरे इन सिपाहियों से भी मेरा परिचय हुआ और उन्होंने मुझे रोकना छोड़ दिया। इस सेना में 1896 में मेरा घोर विरोध करने वाले कर्नल स्पार्क्स और कर्नल वायली थे। वे मेरे इस काम से चकित हो गये। मुझे खासतौर से बुलाकर कृतज्ञता प्रकट की। मुझे जनरल मेकेंजी के पास भी ले गये और उनसे परिचय कराया।

पाठक यह न समझें कि इनमें से कोई पेशेवर सिपाही था। कर्नल वायली नामी वकील थे। कर्नल स्पार्क्स कसाईखाने के मशहूर मालिक थे। जनरल मेकेंजी नेटाल के प्रसिद्ध किसान थे। ये सब स्वयंसेवक थे और स्वयंसेवक के रूप में उन्होंने सैनिक शिक्षा और अनुभव प्राप्त किया था।

जिन जख्मियों की शुश्रूषा का काम हमें सौंपा गया था, वे लड़ाई में घायल हुए थे, यह मानने की गलती कोई न करे। इनमें एक हिस्सा संदेह में पकड़े हुए कैदियों का था। उन्हें जनरल ने कोड़े लगाने की सजा दी थी। कोड़े की चोट इलाज ने होने से पक गई थी। दूसरा हिस्सा उन जूलुओं का था जो दोस्त समझे जाते थे। इन मित्रों ने मित्रतासूचक चिह्न भी धारण कर रखे थे। फिर भी सिपाहियों ने भूल से उन्हें घायल कर दिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके सिवा खुद मुझे तो गोरे सिपाहियों के लिए भी दवा देने का काम सौंपा गया था। डॉक्टर बूथ के छोटे-से अस्पताल में इस काम की एक बरस तालीम ली थी, इससे मेरे लिए यह आसान काम था। इस काम ने बहुतेरे गोरों के साथ मेरा परिचय करा दिया। पर लड़ाई में लगी सेना एक जगह बैठी नहीं रहती। जहां से संकट का समाचार आये, वहां दौड़ जाती है। बहुतेरे तो घुड़सवार थे ही हमारा शिविर सदर मुकाम से उठा और हमें भी उसके पीछे-पीछे अपनी डोली कंधे पर धरे चलना पड़ा। दो-तीन मौके तो ऐसे आये कि दिन-दिन भर में चालीस मील की मंजिल तय करनी पड़ी। यहां भी हमें तो बस प्रभु का ही काम मिला था। जो जूलू मित्र भूल से घायल हुए थे, उन्हें डोलियों में उठाकर छावनी में पहुंचाना और वहां उनकी सेवा-शुश्रूषा करनी थी।

25 : हृदय-मंथन

'जूलू-विद्रोह' में मुझे अनेक अनुभव हुए और विचारों का बहुत मसाला मिला। बोअर-युद्ध में लड़ाई की भंयकरता मुझे इतनी प्रतीत नहीं हुई थी जितनी यहां हुई। यहां लड़ाई नहीं, बल्कि आदमियों का शिकार हो रहा था। सिर्फ मुझे ही नहीं, कई अंग्रेजों को भी, जिनसे मेरी बातें होतीं ऐसा ही जान पड़ा। सुबह-ही-सुबह जाकर मानों गांवों में पटाखे छोड़ते हों, इस तरह उनकी बंदूकों की आवाज हम दूर रहने वालों के कानों पर पड़तीं। इन आवाजों को सुनना और इनमें रहना मुझे बहुत अखरा, पर मैं यह कड़वा घूंट पी गया और मुझे जो काम मिला था वह तो केवल जूलू लोगों की सेवा का ही था। मैंने देखा कि अगर हम शामिल न हुए होते तो दूसरा कोई यह सेवा न करता। इस बात से मैंने अपनी अंतरात्मा को शांत किया।

यहां आबादी बहुत कम थी। पहाड़ों और घाटियों में सीधे-सादे, भले और जंगली माने जाने वाले जूलुओं के गुंबजदार झोपड़ों के सिवा और कुछ न था। इससे दृश्य भव्य लगता था। ऐसे प्रदेश में जहां मीलों तक बस्ती न हो, जब हमें किसी घायल को लेकर या खाली चलना होता तो मैं विचारमग्न हो जाता था।

यहां मेरे ब्रह्मचर्य विषयक विचार परिपक्व हुए। अपने साथियों से भी मैंने इसकी कुछ चर्चा की। ईश्वर दर्शन के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य वस्तु है यह तो मुझे अभी प्रत्यक्ष नहीं हुआ था, पर सेवा के लिए इसकी आवश्यकता मेरे सामने स्पष्ट हो गई। मुझे दिखाई दिया कि इस प्रकार की सेवा तो मेरे हिस्से ज्यादा-ज्यादा आएगी और अगर मैं भोग-विलास में, बच्चे पैदा करने और पालन में लगा रहूं तो मुझसे पूरी सेवा नहीं बन सकती। दो घोड़ों की सवारी कैसे हो सकती है। यदि पत्नी के पेट में बच्चा हो तो मैं निश्चिंत चित्त से इस सेवा-कार्य में नहीं कूद सकता था। बिना ब्रह्मचर्य का पालन किये कुनबा बढ़ाना समाज के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अभ्युदय के लिए किये जाने वाले मनुष्य के प्रयत्न की विरोधी वस्तु बन जाती है विवाहित होकर भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय तो कुटुम्ब-सेवा समाज-सेवा की विरोधी नहीं होती, मैं ऐसी विचार-तरंगों में बहने लगा और व्रत लेने को कुछ अधीर भी हो गया। इन विचारों से मुझे एक तरह का आनंद मिला और मेरा उत्साह बढ़ा। कल्पना ने सेवा का क्षेत्र बहुत विशाल कर दिया।

ये विचार मैं मन में गढ़ ही रहा था और शरीर को कस रहा था कि इतने में कोई यह अफवाह लाया कि बलवा शांत हो रहा है, अब हमें छुट्टी मिल जाएगी। दूसरे दिन हमें घर जाने की इजाजत मिली। फिर कुछ ही दिनों में सब अपने-अपने घर चले गए। इसके कुछ ही दिनों बाद गवर्नर ने इस सेवा के लिए मेरे नाम कृतज्ञता ज्ञापन विशेष पत्र भेजा।

फिनिक्स पहुंचकर मैंने ब्रह्मचर्य की बात बड़े रस से छगनलाल, मगनलाल, वेस्ट इत्यादि के सामने रखी। सबकों यह बात पसंद आई। सबने उसकी आवश्यकता स्वीकार की। पालन की महान कठिनाई सबके ध्यान में आई। कितनों ने प्रयत्न करने का साहस भी किया और मेरी समझ में कुछ उसमें सफल भी हुए।

मैंने व्रत लिया कि अब से जन्मभर ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। इस व्रत का महत्त्व और उसकी कठिनाई उस वक्त पूरे तौर से मेरे ध्यान में नहीं आ पाई थी। उसकी कठिनाई का अनुभव तो अब तक किया करता हूं। उसका महत्त्व दिनों-दिन अधिकाधिक सामने आता है। ब्रह्मचर्य से रहित जीवन मुझे शुष्क और पशु जीवन-सा लगता है। पशु स्वभावतः निरंकुश है। मनुष्य का मनुष्यत्व स्वेच्छा से अंकुश में रहने में है। धर्म ग्रंथों में पाई जाने वाली ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में पहले अतिशयोक्ति जान पड़ती थी, पर अब तो यह दिनों-दिन अधिक स्पष्ट होता जाता है कि वह उचित है और अनुभवपूर्वक लिखी गई है।

ऐसा परिणाम ला सकने वाला ब्रह्मचर्य सरल नहीं है, वह केवल शारीरिक वस्तु नहीं है। शारीरिक अंकुश से ब्रह्मचर्य का आरम्भ होता है, पर शुद्ध ब्रह्मचर्य में तो विचार की मलिनता भी नहीं होनी चाहिए। पूर्ण ब्रह्मचारी के मन में स्वप्न में भी विकारयुक्त विचार नहीं आते और जब तक ऐसे विकारी विचार स्वप्नों में आते हों तब तक ब्रह्मचर्य को अति अपूर्ण मानना चाहिए।

मुझे कायिक ब्रह्मचर्य के पालन में महाकष्ट उठाना पड़ा है। आज कह सकता हूं कि उसके बारे में मैं निर्भय हो गया हूं, पर अपने विचारों पर जो विजय मिलनी चाहिए, वह मुझे नहीं मिली। मुझे अपने प्रयत्नों में कमी नहीं दिखाई देती। पर कहां से और कैसे हमारे अनचाहे विचार हम पर चढ़ाई करते हैं, यह मैं अब तक नहीं जान पाया हूं। विचारों को भी रोकने की कुंजी आदमी के पास है, इस विषय में मेरे मन में शंका नहीं है। पर आज तो मैं इस निर्णय पर पहुंच गया हूं कि हर एक को यह कुंजी तलाश करनी है। महापुरूषों के दिए हुए अनुभव हमारे लिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मार्गदर्शक हैं। वे सम्पूर्ण नहीं हैं। सम्पूर्णता केवल प्रभु का प्रसाद है और इसी से भक्त अपनी तपश्चर्या द्वारा पुनीत किये हुए और हमें पावन करने वाले रामनामादि मंत्र हमें दे गये है। संपूर्ण ईश्वरार्पण के बिना विचारों पर सम्पूर्ण विजय नहीं मिल सकती। यह वचन सभी धर्म-पुस्तकों में मैंने पढ़ा है, और उसकी सत्यता का अनुभव मुझे इस ब्रह्मचर्य के सूक्ष्मतम पालन के प्रयत्न में हो रहा है।

मेरे इस महाप्रयास का थोड़ा-घना इतिहास अगले प्रकरणों में आएगा। प्रस्तुत प्रकरण की पूर्ति में तो इतना ही और कहना है कि अपने उत्साह में मुझे पहले तो व्रत का पालन आसान लगा। व्रत लेते ही मैंने एक परिवर्तन कर लिया कि पत्नी से सह-शय्या अथवा एकांत मिलन का त्याग कर दिया। इस प्रकार जिस ब्रह्मचर्य का इच्छा या अनिच्छा से 1900 ई. से मैं पालन करता आया हूं, उसके व्रत का आरम्भ 1906 ई. के मध्य में हुआ।

26 : सत्याग्रह की उत्पत्ति

जोहान्सबर्ग में मेरे लिए एक ऐसी घटना का बनाव बन रहा था, जिससे यह सोचा जा सकता है कि इस तरह की जो आत्मशुद्धि मैंने की, वह मानो सत्याग्रह के लिए ही हुई हो। आज मैं पाता हूं कि ब्रह्मचर्य-व्रत लेने तक की मेरे जीवन की मुख्य घटनावली मुझे अप्रत्यक्ष रूप में उसी के लिए तैयार कर रही थी।

'सत्याग्रह' शब्द से पहले उस वस्तु की उत्पत्ति हुई। उत्पत्ति के समय तो यह क्या है, मैं खुद भी नहीं समझ सका था। उसे गुजराती में 'पैसिव रेजिस्टेन्स' इस अंग्रेजी नाम से सब समझने लगे। जब गोरों की एक सभा में मैंने देखा कि पैसिव रेजिस्टेन्स का तो संकुचित अर्थ किया जाता है, वह निर्बलों का ही हथियार माना जाता है, उसमें द्वेष की गुंजाइश है और उसका अंतिम स्वरूप हिंसा में प्रकट हो सकता है, मुझे उसका विरोध करना पड़ा और हिंदुस्तानियों के संग्राम का सच्चा स्वरूप समझना पड़ा। तब हिंदुस्तानियों को अपने संग्राम का परिचय देने के लिए नए शब्द की योजना करनी पड़ी।

पर वैसा स्वतंत्र शब्द मुझे किसी तरह सूझ नहीं रहा था। अतः उसके लिए नाममात्र का इनाम रखकर 'इंडियन ओपीनियन' के पाठकों में इसकी प्रतियोगिता कराई। इस प्रतियोगिता के फलस्वरूप मगनलाल गांधी ने सत्-आग्रह की संधि करके 'सदाग्रह' शब्द बनाकर भेजा। इनाम उन्हें मिला, पर 'सदाग्रह' शब्द को अधिक स्पष्ट करने के खयाल से मैंने 'य' अक्षर और बढ़ाकर 'सत्याग्रह' शब्द बनाया और गुजराती में यह लड़ाई इस नाम से अभिहित होने लगी।

कहना चाहिए कि इस संग्राम का इतिहास मेरे दक्षिण अफ्रीका के जीवन का और विशेषतः मेरे सत्य के प्रयोग का इतिहास है। इस इतिहास का अधिकांश मैंने यरवडा के जेल में लिख डाला था और बाकी बाहर आने के बाद पूरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
किया। वह सारा 'नवजीवन' में छप चुका है और बाद को 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' नाम से पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुका है।[1]

उसका अंग्रजी उलथा श्री बालजी गोविंदजी देसाई 'करेंट घाट' के लिए कर रहे हैं। पर अब उसे जल्दी अंग्रेजी में पुस्तकाकार निकलवाने की तजबीज मैं कर रहा हूं, कि जिसमें मेरे दक्षिण अफ्रीका के बड़े-से-बड़े प्रयोगों को जो समझना चाहते हों उन्हें वह मिल सके। गुजराती पाठकों में जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास नहीं पढ़ा है, उनसे मैं उसे पढ़ जाने की सिफारिश करता हूं। उक्त इतिहास में आ जाने वाले मुख्य कथा भाग को छोड़कर, बाकी के दक्षिण अफ्रीका के मेरे जीवन के जो थोड़े व्यक्तिगत प्रसंग बच गए होंगे, उन्हीं को आगे के कुछ प्रकरणों में देने का मेरा विचार है और इनके पूर्ण होते ही हिंदुस्तान के प्रयोगों का परिचय पाठकों को कराना चाहता हूं। अतः प्रयोगों के प्रसंगों का सिलसिला बनाए रखने की इच्छा रखने वाले को दक्षिण अफ्रीका के इतिहास के ये प्रकरण अब अपने सामने रखने होंगे।

27 : खुराक के अधिक प्रयोग

मन, वचन, काया से ब्रह्मचर्य का पालन कैसे हो, एक चिंता तो यह थी, और दूसरी चिंता यह कि सत्याग्रह के युद्ध के लिए अधिक-से-अधिक समय कैसे बचे और अधिक शुद्धि कैसे हो। इन दोनों चिंताओं ने मुझे खुराक में अधिक संयम और विशेष परिवर्तन करने की प्रेरणा की। इसके सिवा पहले जो परिवर्तन मैं खासतौर से आरोग्य की दृष्टि से करता था वे अब धार्मिक दृष्टि से होने लगे।

इनमें उपवास और अल्पाहार ने अधिक स्थान लिया। विषय वासना वाले में स्वाद-लोलुपता भी काफी होती है। यही दशा मेरी भी थी। जननेंद्रिय और स्वादेंद्रिय पर अधिकार प्राप्त करने में मुझे बड़ी-बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ी हैं, और आज भी उन दोनों पर पूर्ण विजय का दावा मैं नहीं कर सकता। मैंने अपने आपको अत्याचारी माना है। मित्रों ने जिसे मेरा संयम माना है उसे मैंने स्वयं कभी संयम माना ही नहीं। अपने आप पर जितना अंकुश रखना मैंने सीखा है उतना भी न रख सका होता तो मैं पशु से भी गया-बीता होता और कभी का नष्ट हो गया होता। कहना चाहिए कि अपनी त्रुटियों का मुझे पूरा पता होने के कारण मैंने उन्हें दूर करने की जबरदस्त कोशिश की है और इसी से मैं इतने सालों तक इस शरीर को टिका पाया हूं और उससे कुछ काम ले सका हूं।

---

1. हिंदी में यह सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली से, 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' नाम से प्रकाशित हुआ है। पुस्तक इस आत्म-कथा के आकार-प्रकार की है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इस ज्ञान के कारण और ऐसा संग अनायास पा जाने से, मैंने एकादशी को फलाहार अथवा उपवास आरम्भ किया। जन्माष्टमी इत्यादि दूसरे व्रत भी रखने लगा, पर संयम की दृष्टि से फलाहार और अन्नाहार में मैंने बहुत अंतर नहीं पाया। अनाज में जो मजा हम लेते हैं वही फलाहार में भी मिल जाता है, और आदत पड़ने पर तो मैंने देखा कि उनमें और ज्यादा मजा मिलता है। इस कारण व्रत के दिन पूरे उपवास या एक वक्त खाने को अधिक महत्व देने लगा। इसके सिवा प्रायश्चित आदि का कोई निमित्त निकल आता तो उस निमित्त से भी एक वक्त का उपवास कर डालता था।

इसमें से मैंने यह भी अनुभव किया कि शरीर अधिक स्वच्छ होने से स्वाद बढ़ा, भूख अधिक अच्छी हुई और मैंने देखा कि उपवासादि जितने संयम के साधन हैं उतने ही वे भोग के साधन भी हो सकते हैं। इस ज्ञान के बाद उसके समर्थन में ऐसे ही मेरे और दूसरों के भी अनुभव हुए हैं। मुझे तो यद्यपि शरीर को ज्यादा अच्छा और कसा हुआ बनाना था फिर भी अब मुख्य हेतु तो संयम-साधन स्वादजन्य ही था, अतः आहार की वस्तुओं और उसकी मात्रा में फेरफार करने लगा। पर रसास्वादन तो छाया की तरह पीछे लगा ही रहता। किसी वस्तु को छोड़कर उसकी जगह जो दूसरी चीज लेता उसमें से नया ही और ज्यादा मजा मिलने लगता।

मेरे इन प्रयोगों में कुछ साथी भी थे। इनमें हरमन केलनबैक मुख्य थे। उनका परिचय 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास' में दे चुका हूं, इसलिए फिर इन प्रकरणों में देने की जरूरत नहीं समझता। उन्होंने मेरे प्रत्येक उपवास में, एकाशन व्रत में और दूसरे परिवर्तन में मेरा साथ दिया था। लड़ाई जोरों पर होने के वक्त में तो मैं उन्हीं के मकान में रहता था। हम दोनों अपने परिवर्तनों की चर्चा करते थे और नये परिवर्तनों में पुराने से अधिक स्वाद लेते थे। उन दिनों तो ये सम्वाद मधुर भी लगते थे। उसमें कुछ अनुचित न जान पड़ता, पर अनुभव ने बतलाया कि ऐसे रसों में डूबे रहना भी अयोग्य था। यानी मनुष्य को मजे के लिए नहीं, बल्कि शरीर-निर्वाह के लिए ही खाना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय जब केवल शरीर के और शरीर द्वारा आत्मा के दर्शन के लिए ही काम करती है तब उसमें के रस शून्यवत हो जाते हैं और तभी यह कहा जा सकता है कि वह स्वाभाविक रीति से कार्य कर रही है।

ऐसी स्वाभाविकता की प्राप्ति के लिए जितने भी प्रयोग किये जाएं, कम ही हैं। ऐसा करते हुए अनेक शरीरों की आहुति देनी पड़ जाए तो उसे भी हमें अल्प मानना चाहिए। आज तो बहाव उलटा है। नाशवान शरीर की शोभा और उसकी उम्र बढ़ाने को हम अनेक प्राणियों का बलिदान करते हैं। पर उससे शरीर और आत्मा दोनों का हनन होता है। एक रोग को मिटाने में, इंद्रियों के भोग भोगने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में लगकर हम अनेक नए रोग उपजा लेते हैं, भाग भागने की शक्ति भी अंत में खो बैठते हैं और हमारी आंखों के सामने चलती हुई इस क्रिया की ओर से आंखें मूंद लेते हैं।

खुराक के जिन प्रयोगों के वर्णन में कुछ समय लेना चाहता हूं, उनका अर्थ पाठक समझ लें, इस दृष्टि से उनका उद्देश्य और उनके पीछे रही विचारधारा को प्रस्तुत कर देना आवश्यक था।

28 : पत्नी की दृढ़ता

कस्तूरबाई पर बीमारी के तीन हमले हुए और तीनों में से वह केवल घरेलू इलाजों से बच गई। उनमें पहला हमला तब हुआ जब सत्याग्रह का युद्ध जारी था। उसे बारम्बार रक्तस्राव हुआ करता। एक डॉक्टर मित्र ने नश्तर लगाने की सलाह दी थी। बड़ी आना-कानी के बाद पत्नी ने नश्तर लगवाना कबूल किया। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डॉक्टर ने बिना क्लोरोफार्म के नश्तर लगाया। नश्तर के समय पीड़ा बहुत हो रही थी, पर जिस धीरज से कस्तूरबाई ने इसे सहन किया, इससे मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। शस्त्र-क्रिया निर्विघ्न पूरी हुई। डॉक्टर और उनकी पत्नी ने कस्तूरबाई की अच्छी सेवा-टहल की।

यह सब डरबन में हुआ था। दो या तीन दिनों के बाद डॉक्टर ने मुझे निश्चिंत होकर जोहान्सबर्ग जाने की इजाजत दे दी। मैं चला गया। कई दिन बाद खबर मिली कि कस्तूरबाई के शरीर में ताकत बिलकुल नहीं आ रही है और वह बिछौने से उठ-बैठ भी नहीं सकतीं। एक बार बेहोश भी हो गई थीं। डॉक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाई को शराब या मांस दवा में या खाने में नहीं दिया जा सकता। डॉक्टर ने मुझे जोहान्सबर्ग टेलीफोन किया- "आपकी पत्नी को मैं मांस का शोरबा या 'बीफ टी' देने की जरूरत समझता हूं। कृपा करके आज्ञा दें।"

मैंने जवाब दिया- "मैं यह इजाजत नहीं दे सकता। लेकिन कस्तूरबाई स्वतंत्र हैं। वह पूछने लायक हालत में हों तो पूछिए और वह लेना चाहें तो बेशक दीजिये।"

"मैं बीमार को ऐसे मामलों में नहीं पूछा करता। आपका खुद यहां आना जरूरी है। मैं जो पसंद करूं उसे खिलाने की स्वतंत्रता आप मुझे न देंगे तो आपकी स्त्री के लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूं।"

मैंने उसी दिन डरबन की ट्रेन पकड़ी। डरबन पहुंचा। डॉक्टर ने बतलाया, "मैंने तो शोरबा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था!"

मैंने कहा, "डॉक्टर साहब! मैं इसे दगा समझता हूं।"

डॉक्टर ने दृढ़ता से उत्तर दिया, "दवा करते समय मैं दगा-वगा नहीं समझता। हम डॉक्टर लोग ऐसे मौकों पर बीमार को या उसके सम्बन्धियों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
धोखा देना पुण्य मानते हैं। हमारा धर्म तो चाहे जिस उपाय से बीमार को बचा लेना है।"

मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं शांत रहा। डॉक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नी का मुझ पर उपकार था, पर उक्त व्यवहार सहने को मैं तैयार नहीं था।

"डॉक्टर साहब" अब साफ बता दीजिए कि आप क्या करना चाहते हैं? अपनी पत्नी को मैं कदापि उसकी इच्छा के बिना मांस नहीं देने दूंगा, और उसके न लेने से उसकी मृत्यु होती हो तो वह सहन करने को तैयार हूं।

डॉक्टर बोले, "आपकी फिलासफी तो मेरे घर नहीं चल सकती। मैं आपसे कहे देता हूं कि अपनी पत्नी को मेरे घर जब तक रहने दीजियेगा तब तक मैं उसे जरूर मांस या जो कुछ देना जरूरी समझूंगा, दूंगा। आपको यह मंजूर न हो तो अपनी पत्नी को ले जाइए। मैं अपने ही घर में जान-बूझकर अपने हाथ से उसे नहीं मरने दूंगा।"

"तो क्या आपका यह कहना है कि मैं अपनी पत्नी को अभी ले जाऊं?"

"मैं कहां कहता हूं कि ले जाइए? मैं तो कहता हूं कि मुझ पर किसी प्रकार का बंधन न लगाइए। तब हम दोनों रोगी की जितनी सेवा-टहल हमसे बनेगी उतनी करेंगे और आप इत्मीनान से जाइए। जो यह सीधी-सी बात आप न समझ सकते हों तो मझे विवश होकर कहना होगा कि अपनी पत्नी को मेरे घर से ले जाइए।"

मेरा खयाल है कि उस समय मेरा एक लड़का मेरे साथ था, उससे मैंने पूछा। उसने कहा, "आपकी बात मुझे ठीक लगती है। माँ को मांस तो नहीं दिया जा सकता।"

फिर मैं कस्तूरबाई के पास गया। वह बहुत कमजोर हो रही थी। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुःखदायी था। पर धर्म समझकर मैंने उसे संक्षेप में उपर्युक्त बातें कह सुनाईं। उसने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया, "मुझ मांस का शोरबा नहीं लेना है। मानुसतन बार-बार नहीं मिलता। अच्छा है, आपकी गोद में मैं मर जाऊं, पर मुझसे यह देह भ्रष्ट नहीं की जाएगी।"

मैंने, जितना समझाया जा सकता था, समझाया और कहा, "तुम मेरे विचारों के अनुसार चलने को मजबूर नहीं हो।" हमारे परिचित कुछ हिन्दू दवा के निमित्त मांस और मद्य ग्रहण करते थे, यह भी सुनाया। पर वह टस-से-मस न हुई, और बोली- "मुझे यहां से ले चलिए।"

मैं बहुत खुश हुआ। ले जाते कुछ घबराहट हुई, पर निश्चय कर लिया। डॉक्टर को पत्नी का निश्चय सुनाया। वह खीझकर बोले:

"आप तो कसाई पति जान पड़ते हो। ऐसी बीमारी की हालत में उस बेचारी से ऐसी बात करते आपको शर्म भी न आई? मैं आपको बतलाता हूं कि आपकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्त्री यहां से ले जाने लायक नहीं है। उसका शरीर जरा भी हचका सहन करने लायक नहीं है। उसकी जान रास्ते में ही निकल जाय तो मुझे कोई अचरज न होगा। फिर भी अगर आप अपना हठ न छोड़ें और न मानें तो आप खुद मुख्तार हैं। मैं अगर उसे शोरबा न दे सकूं तो अपने घर में एक रात रखने की भी जोखिम मैं नहीं उठा सकता।"

रिमझिम-रिमझिम मेंह बरस रहा था। स्टेशन दूर था। डरबन से फिनिक्स तक रेल से और फिनिक्स से लगभग अढ़ाई मील पैदल जाना था। जोखिम भरपूर थी; पर मैंने भगवान का भरोसा किया। फिनिक्स एक आदमी पहले से भेज दिया। फिनिक्स में हमारे पास 'हमक' था। 'हमक' कहते हैं जालीदार कपड़ों का झोला या पालना। उसके सिर बांस से बांध दिये जायं तो बीमार उसमें आराम से झूलता रह सकता है। मैंने वेस्ट से कहलाया कि यह हमक, एक बोतल गरम दूध और एक बोतल गरम पानी और छः आदमी साथ लेकर स्टेशन पर आ जाएं।

दूसरी ट्रेन आने का समय होने पर मैंने रिक्शा मंगवाया और उसमें, इस भयंकर स्थिति में, पत्नी को लेकर चल दिया।

पत्नी को मुझे हिम्मत नहीं दिलानी थी, उसी ने मुझे हिम्मत दिलाकर कहा, "कुछ होगा नहीं, आप चिंता न कीजिए।"

इस ठठरी में वजन तो कुछ रहा ही नहीं था। खाया कुछ जाता न था। ट्रेन में डब्बे तक पहुंचने के लिए स्टेशन के लम्बे प्लेटफार्म पर दूर तक पैदल जाना था। वहां रिक्शा जा नहीं सकता था। मैं उसे उठाकर डब्बे तक ले गया। फिनिक्स में तो वह झोला आ गया था। उससे हम रोगिणी को आराम से ले गए। वहां सिर्फ जल-चिकित्सा से धीरे-धीरे शरीर भरने लगा।

फिनिक्स में पहुंचने के दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी पधारे। उन्होंने मेरे 'हठ' की बात सुनी और तरस खाकर हम दोनों को समझाने आए। जहां तक मुझे याद है, मणिलाल और रामदास भी जब स्वामी आए तब मौजूद थे। स्वामीजी ने मांसाहार की निर्दोषता पर लैक्चर देना शुरू किया। मनुस्मृति के श्लोकों का प्रमाण दिया। पत्नी के सामने इस तरह का सम्वाद मुझे नहीं भाया, पर शिष्टता के लिहाज से मैंने उसे चलने दिया। मुझे मांसाहार के पक्ष में मनुस्मृति के प्रमाण की आवश्यकता न थी। उसके श्लोकों का मुझे पता था। उन्हें प्रक्षिप्त मानने वाले लोग भी हैं, यह भी मैं जानता था। पर वे प्रक्षिप्त न हों तो भी निरामिषाहार के सम्बन्ध में मेरे विचार स्वतंत्र रूप से गढ़े जा चुके थे। कस्तूरबाई की श्रद्धा काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्र के प्रमाणों को क्या जानती? उसके लिए बाप-दादों की रूढ़ि ही धर्म था। लड़कों को बाप के धर्म पर विश्वास था, इससे वे स्वामीजी से मजाक करते थे। अंत में कस्तूरबाई ने यह कहकर वह सम्वाद बंद किया- "स्वामी जी, आप चाहे जो कहिए, लेकिन मुझे मांस खाकर अच्छा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नहीं होना है। अब आप मेरा सिर न पचाइए तो आपकी दया होगी, बाकी बातें आपको लड़कों के बाप से बाद को करनी हों तो कर लीजिएगा। मैंने अपना निश्चय आपको बतला दिया।"

29 : घर में सत्याग्रह

पहला जेल का अनुभव मुझे 1908 में हुआ। उस समय मैंने देखा कि जेल में जो अनेक नियम कैदियों से मनवाए जाते थे, उन नियमों का पालन संयमी अथवा ब्रह्मचारी को स्वेच्छा से करना चाहिए।[1] जैसे कैदी का सूर्यास्त से पहले पांच बजे तक भोजन कर लेना, हिंदुस्तानी और हब्शी कैदियों को चाय या कहवा न मिलना, नमक खाना हो तो अलग से लेना। स्वाद के लिए तो कुछ खाने की जरूरत ही नहीं। जब मैंने जेल के डॉक्टर से हिंदुस्तानियों के लिए पिसे मसाले की मांग की और नमक रसोई में पकने के वक्त ही डालने को कहा तब वह बोले, "यहां आप लोग जबान का मजा लेने नहीं आए हैं। आरोग्य की दृष्टि से मसालों की कोई जरूरत नहीं। आरोग्य-दृष्टि से नमक ऊपर से लीजिए या पकते वक्त रसोई में डालिए, दोनों एक ही बात हैं।"

वहां तो बड़ी कोशिशों के बाद हम अंत में जरूरी फेर-फार करा पाए लेकिन शुद्ध संयम की दृष्टि से देखें तो दोनों प्रतिबंध अच्छे ही थे। ऐसा प्रतिबंध बरबस लगाया जाए तो नहीं फलता है, पर स्वेच्छा से पालन किया जाए तो वह प्रतिबंध बहुत उपयोगी हो जाता है। इसलिए जेल से निकलने के बाद ये परिवर्तन मैंने तुरंत कर डाले। जहां तक हो सके, चाय लेना बंद कर दिया और शाम को जल्दी खाने की आदत डाली, जो आज स्वाभाविक हो गई है।

पर एक ऐसा प्रसंग बन आया जिससे मुझे नमक भी छोड़ देना पड़ा और यह नियम लगभग दस बरस तक तो अखंड रूप से टिका। अन्नाहार सम्बन्धी कई किताबों में मैंने पढ़ा था कि आदमी के लिए नमक खाना जरूरी नहीं, और न खाने वालों को तंदरुस्ती की दृष्टि से लाभ ही होता है। ब्रह्मचारियों को उससे लाभ होता है, यह तो मैं सोचता ही था। जिसका शरीर कमजोर हो, उसे दाल नहीं खानी चाहिए, यह भी मैंने पढ़ा और अनुभव किया था। पर मैं उसे तुरंत छोड़ न सका था। दोनों चीजें मुझे प्रिय थीं।

पहले नश्तर के बाद यद्यपि कस्तूरबाई का रक्त स्राव कुछ दिनों के लिए बंद हो गया था, पर पीछे वह फिर शुरू हो गया और अब किसी तरह बंद न होता था। निरी जलचिकित्सा व्यर्थ सिद्ध हुई। पत्नी को यद्यपि मेरे उपचारों पर अधिक

---

1. 'मेरे जेल के अनुभव' भी पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं। ये मूल गुजराती में लिखे गए थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आस्था नहीं थी, पर उससे नफरत भी नहीं थी। दूसरा इलाज करने का आग्रह नहीं था। इसलिए मेरे अन्य उपचारों में सफलता नहीं मिली तो मैंने नमक और दाल छोड़ने की सलाह दी। मैंने बहुत मनाया-समझाया। अपने कथन की पुष्टि में पोथियों से प्रमाण भी पढ़कर सुनाए, फिर भी वह मानती न थी। अंत में उसने कहा- "दाल और नमक छोड़ने को तो कोई आपको कहे तो आप भी न छोड़ेंगे।"

मुझे दुःख हुआ और साथ ही हर्ष भी। अपने प्रेम का परिचय देने का मुझे मौका मिल गया। उस हर्ष में मैंने तुरंत कहा- "तुम गलत समझ रही हो। मुझे रोग हो और वैद्य इस चीज या दूसरी चीज को छोड़ने को कहे तो मैं जरूर छोड़ दूंगा। पर लो, मैं तो एक साल के लिए दाल और नमक दोनों छोड़ता हूं। तुम छोड़ो या न छोड़ो यह अलग बात है।"

पत्नी को बड़ा पछतावा हुआ। वह बोल उठी-"मुझे क्षमा कीजिए। आपका स्वभाव जानते हुए भी बात की रौ में मेरे मुंह से निकल गया। अब मैं तो दाल और नमक न खाऊंगी। पर आप तो अपनी प्रतिज्ञा वापस ले लीजिए। यह तो मेरी बड़ी सजा हो जाएगी।"

मैंने कहा- "तुम दाल और नमक छोड़ दोगी तब तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ ही होगा; पर की हुई प्रतिज्ञा को वापस ले लेना मुझसे नहीं हो सकता। मुझे तो लाभ ही होगा। आदमी चाहे किसी निमित्त से संयम का पालन करे, उससे उसकी भलाई ही होती है। अतः तुम मुझे दबाओ मत। फिर मेरे लिए अपनी परीक्षा भी हो जाएगी और उन दोनों चीजों के छोड़ने का जो निश्चय तुमने किया है उस पर कायम रहने में तुम्हें मदद मिलेगी।" इसके बाद मुझे मनाने की जरूरत तो रही ही नहीं। "आप तो बड़े हठी हैं। किसी का कहा-सुना मानते ही नहीं", कहकर और थोड़ा आंसू बहाकर शांत हो गई।

इसे मैं सत्याग्रह का नाम देना चाहता हूं और उसे अपने जीवन के मधुर स्मरणों में से एक मानता हूं।

इसके बाद तो कस्तूरबाई की तबीयत जल्दी-जल्दी सम्भलती गई। इसमें नमक और दाल का त्याग पूर्णतः या अंशतः कारण था अथवा उस त्याग से होने वाले खुराक के छोटे-मोटे दूसरे फेर-फार कारणरूप थे या उसके बाद की दूसरे नियमों के पालन कराने में मेरी खबरदारी निमित्त थी या उपर्युक्त प्रसंग से उत्पन्न हुआ मानसिक उल्लास निमित्त था-यह मैं नहीं कह सकता। पर कस्तूरबाई का गला हुआ शरीर फिर पनपने लगा, रक्तस्राव बंद हो गया और 'वैद्यराज' के रूप में मेरी साख कुछ बढ़ गई।

खुद मेरे ऊपर तो इन दोनों त्यागों का असर अच्छा ही हुआ। त्याग के बाद नमक या दाल की इच्छा तक न रही। बरस जाते देर न लगी। इंद्रियों की शांति अधिक अनुभव करने लगा और संयम की ओर मन अधिकाधिक दौड़ने लगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कह सकता हूं कि बरस बीत जाने पर भी दाल और नमक का त्याग देश लौटने तक चला। सिर्फ एक ही बार विलायत में सन् 1914 में नमक और दाल खाई थी, पर उसकी कहानी और देश में लौटने पर दोनों फिर कैसे ग्रहण किए गए, यह पीछे सुनाऊंगा।

नमक और दाल छोड़ने के प्रयोग मैंने दूसरे साथियों पर भी काफी किए हैं और दक्षिण अफ्रीका में तो उसका फल अच्छा ही हुआ था। आयुर्वेद की दृष्टि से दोनों वस्तुओं के त्याग के बारे में दो मत हो सकते हैं, पर संयम की दृष्टि से तो दोनों वस्तुओं के त्याग में लाभ ही है, इस विषय में मुझे तनिक भी शंका नहीं है। भोगी और संयमी का आहार और उसका मार्ग भिन्न होना चाहिए। ब्रह्मचर्य के पालन की इच्छा करने वाला भोगी का जीवन बिताकर ब्रह्मचर्य को कठिन और कितनी ही बार लगभग अशक्य बना देता है।

30 : संयम की ओर

खुराक के कितने ही परिवर्तन कस्तूरबाई की बीमारी के निमित्त हुए थे, यह पिछले प्रकरण में कह आया हूं। पर अब तो दिनोंदिन ब्रह्मचर्य की दृष्टि से उसमें फेर-फार होते गए।

उसमें प्रथम परिवर्तन दूध छोड़ने का हुआ। दूध इन्द्रिय विकार पैदा करने वाली वस्तु है यह बात पहले मैंने रायचंदभाई से समझी थी। अन्नाहार पर अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ने से उस विचार में वृद्धि हुई। पर जब तक ब्रह्मचर्य का व्रत नही लिया तब तक दूध छोड़ने का पक्का इरादा न कर पाया। शरीर-निर्वाह के लिए दूध की आवश्यकता नहीं है यह तो मैं कभी का समझने लग गया था। पर यह झट से छूटने वाली चीज नहीं थी। इंद्रिय-दमन के लिए दूध छोड़ना जरूरी है, यह मैं अधिकाधिक समझ रहा था। इतने में गाय-भैंसों पर ग्वालों की ओर से होने वाले कसाईपने के विषय में कुछ साहित्य मेरे पास कलकत्ते से आया। इस साहित्य का मुझ पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा। मैंने उसके बारे में केलनबैक से चर्चा की।

यद्यपि मि. केलनबैक का परिचय मैं सत्याग्रह के इतिहास में करा चुका हूं और पिछले एक प्रकरण में भी उनकी कुछ चर्चा कर आया हूं, पर यहां दो शब्द और कहने की जरूरत है। उनसे मेरा मिलन अनायास ही हुआ था। मि. खान के ये दोस्त थे और उन्होंने देखा कि उनमें भीतर-भीतर वैराग्यवृत्ति भरी है। मेरा खयाल है कि इसलिए उन्होंने मुझे उनका परिचय कराया था। जब परिचय हुआ तब उनके शौकों और खर्चीलेपन से मैं भड़क गया था। पर पहली ही मुलाकात में उन्होंने मुझसे धर्म के विषय में प्रश्न किए। उसमें बुद्ध भगवान के त्याग की बात अनायास आ गई। इस प्रसंग के बाद हमारा परिचय बढ़ता गया और वह इस हद तक पहुंच गया कि उनके मन में यह निश्चय हो गया कि जो बात मैं करूं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वह उन्हें करनी ही चाहिए। वह अकेले आदमी थे। अपनी अकेली जान पर ही घर-भाड़े के सिवा लगभग 1200 रु. हर महीने खर्च करते थे। इस जीवन से अन्त में इतनी सादगी पर उतर आए कि उनका मासिक खर्च 120 रु. पर आ गया। मेरे घरबार उठा देने की पहली जेल के बाद हम दोनों साथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनों का जीवन पहले की तुलना में कठोर था।

जब हम इस तरह साथ रहते थे उसी वक्त दूध के सम्बन्ध में उपर्युक्त चर्चा हुई। मि. केलनबैक ने कहा-"दूध के दोषों के विषय में तो हम अक्सर बातें करते रहते हैं, तो हम दूध छोड़ क्यों न दें? इसकी जरूरत तो है नहीं। मुझे उनके इस विचार से सानन्दाश्चर्य हुआ। मैंने उनकी सलाह का स्वागत किया और हम दोनों ने टाल्सटाय फार्म में उसी क्षण दूध का त्याग कर दिया। यह योग सन् 1912 में बना।

इतने त्याग से शांति नहीं हुई। केवल फलों पर रहने की आजमाइश करने का निश्चय भी दूध छोड़ने के बाद थोड़े ही अरसे में कर लिया। फलाहार में भी जो सस्ते-से-सस्ता फल मिले उसी पर गुजर करने का इरादा था। गरीब-से-गरीब आदमी जिस तरह का जीवन बिताता है, वही जीवन बिताने की हम दोनों की आकांक्षा थी। फलाहार की सुविधाओं का भी हमने खूब अनुभव किया। फलाहार में अधिकांश में चूल्हा जलाने की तो जरूरत नहीं होती थी। कच्ची मूंगफली, केले, खजूर, नीबू और जैतून का तेल-यही हमारी साधारण खुराक बन गई थी।

ब्रह्मचर्य-पालन के इच्छुकों को यहां एक चेतावनी देने की आवश्यकता है। यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्य के साथ खुराक और उपवास का नजदीकी रिश्ता बतलाया है, फिर भी यह पक्की बात है कि उसका मुख्य आधार मन के ऊपर है। मैला मन उपवास से शुद्ध नहीं होता। खुराक उस पर असर नहीं करती। मन का मैल विचार से, भगवान के ध्यान से और अंत में भगवान के प्रसाद से ही जाता है। पर मन का शरीर के साथ निकट सम्बन्ध है और विकारी मन विकारी खुराक खोजता है। विकारी मन तरह-तरह के स्वाद और भोग ढूंढ़ता है। और फिर उस खुराक और भोग का असर मन पर होता है। इससे और उतने अंश में खुराक पर अंकुश रखने की और निराहार की आवश्यकता अवश्य उत्पन्न होती है।

विकारी मन शरीर और इंद्रियों पर काबू पाने के बजाए उनके वश होकर काम करता है। इससे भी शरीर को शुद्ध और कम-से-कम विकार उत्पन्न करने वाले आहार की, मर्यादा की और मौके-मौके से निराहार की-उपवास की आवश्यकता रहती है। अतः जो यह कहते हैं कि संयमी को खुराक की मर्यादा की या उपवास की जरूरत नहीं है वे उतने ही भ्रम में हैं, जितने कि खुराक और निराहार को सर्वस्व मान लेने वाले। मेरा अनुभव तो मुझे यह सिखलाता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि जिसका मन संयम की ओर जा रहा है उसके लिए खुराक की मर्यादा और निराहार बहुत मददगार है। इनकी मदद के बिना मन की निर्विकारता असम्भव जान पड़ती है।

31 : उपवास

दूध और अन्न छोड़कर जब फलाहार का प्रयोग शुरू किया, तभी संयम के हेतु से उपवास भी आरम्भ किए। इसमें भी मि. केलनबैक शामिल हुए। पहले जो उपवास करता था उसमें केवल आरोग्य की दृष्टि रहती थी। देह-दमन के लिए उपवास की आवश्यकता तो एक मित्र की प्रेरणा से समझ में आई। वैष्णव-कुटुम्ब में जन्म हुआ था और माता कठिन व्रतों का पालन करने वाली थी, इससे एकादशी वगैरा व्रत देश में रखे थे, पर वह देखा-देखी या माता-पिता को खुश करने के खयाल से रखता था। ऐसे व्रतों से कोई लाभ होता है, यह उस वक्त नहीं समझ पाया था। मानता भी न था। पर उक्त मित्र को व्रत रखते देखकर और अपने ब्रह्मचर्य-व्रत को सहारा देने के लिए मैंने उनका अनुकरण आरम्भ किया और एकादशी के दिन उपवास करना तै किया। साधारणतः लोग एकादशी के दिन दूध और फल खाकर मान लेते हैं कि हमने एकादशी का व्रत रख लिया। पर फलाहार का उपवास तो अब मैं रोज ही करने लग गया था। अतः मैंने केवल पानी की छूट रखकर पूरा उपवास शुरू किया।

उपवास के प्रयोग प्रारम्भ करते समय सावन का महीना था। उस समय रमजान और सावन एक साथ पड़े थे। गांधी-कुटुम्ब में वैष्णव-व्रतों के साथ शैव-व्रत भी रखे जाते थे। हमारे घरवाले जैसे वैष्णव देवालयों में जाते थे वैसे शिवालयों में भी जाते थे। सावन महीने का प्रदोष कुटुम्ब में कोई-न-कोई तो हर साल जरूर रखता था। इसलिए इस सावन मास के व्रत रखने का मैंने विचार किया।

इस महत्त्व के प्रयोग का प्रारम्भ टाल्सटाय-आश्रम में हुआ। वहां सत्याग्रही कैदियों के कुटुम्ब को इकट्ठे करके मैं और केलनबैक रहते थे। इनमें लड़के और नवयुवक भी थे; उनके लिए पाठशाला चलती थी। नवयुवकों में चार-पांच मुसलमान थे। उन्हें इस्लाम के नियम-पालन में मैं मदद करता था और बढ़ावा देता था। नमाज वगैरा का सुभीता कर देता था। आश्रम में पारसी और ईसाई भी थे। इन सबको अपने-अपने धर्म के अनुसार चलने में प्रोत्साहन देने का नियम था। अतः इन मुसलमान नवयुवकों को रोजा रखने में मैंने प्रोत्साहन दिया। मुझे तो प्रदोष रखना ही था, पर हिन्दुओं, पारसियों और ईसाइयों को भी मैंने मुसलमान युवकों का साथ देने की सलाह दी। मैंने उन्हें यह समझाया कि संयम में सबका साथ देना अच्छा है। अनेक आश्रमवासियों ने मेरी बात मान ली। हिन्दू और पारसी, मुसलमान साथियों का सोलह आना अनुकरण तो नहीं करते थे, करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की जरूरत भी नहीं थी। मुसलमान सूरज डूबने की राह देखते थे, पर दूसरे लोग कुछ पहले खा लेते थे, जिससे मुसलमानों को वह परोस सकें और उनके लिए खास चीजें तैयार कर दें। इसके सिवा मुसलमान जो सहरी[1] खाते थे उसमें दूसरों को शामिल होने की जरूरत नहीं थी और मुसलमान दिन में पानी भी न पीते थे, दूसरों को पानी पीने की छूट थी।

इस प्रयोग का एक फल यह हुआ कि उपवास और एक ही वक्त का भोजन का महत्त्व सब समझने लगे। परस्पर के प्रति प्रेम और उदार भावना की वृद्धि हुई। आश्रम में अन्नाहार का नियम था। इस नियम का स्वीकार मेरी भावना का खयाल रखकर हुआ था, यह बात मुझे यहां कृतज्ञतापूर्वक कबूल कर लेनी चाहिए। रोजे के दिनों में मुसलमानों को मांस का त्याग मुश्किल मालूम हुआ होगा, पर नवयुवकों में से किसी ने मुझे इसकी खबर न होने दी। वे अन्नाहार आनंद और मौज के साथ करते थे। हिन्दू लड़के कुछ लज्जतदार चीजें भी, जो आश्रम-जीवन के अयोग्य न होतीं, उनके लिए बना देते थे।

अपने उपवास के वर्णन में यह विषयांतर मैंने जान-बूझकर किया है; क्योंकि इस मधुर प्रसंग के वर्णन के लिए मैं दूसरा स्थल नहीं पा सकता था। इस विषयांतर द्वारा मैंने अपनी एक वृत्ति भी बतला दी। जहां मेरा मन कहता है कि मैं यह अच्छी बात कर रहा हूं, उसमें मैं अपने साथियों को सदा सम्मिलित कर लेने की कोशिश करता हूं। यह उपवास और एक जून भोजन के प्रयोग नई चीज थे, पर प्रदोष और रमजान के बहाने मैंने सबको उसमें खींच लिया।

यों आश्रम में संयम का वातावरण अपने-आप बढ़ गया। दूसरे उपवासों और एकाशन में भी आश्रमवासी सम्मिलित होने लगे और मेरा खयाल है कि इसका नतीजा अच्छा ही निकला। संयम का असर सबके हृदय पर कितना हुआ और सबकी विषयवासनाओं को रोकने में उपवासादि ने कितना कार्य किया, यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। पर मेरा यह अनुभव है कि मुझ पर तो आरोग्य और विषयवासना दोनों की दृष्टि से बहुत अच्छा असर हुआ। फिर भी मैं जानता हूं कि उपवासादि का ऐसा असर सभी पर होना अनिवार्य नियम नहीं है। विषयवासना को रोकने में इंद्रिय दमन की इच्छा से किए हुए उपवास का ही प्रभाव होता है। कुछ मित्रों का अनुभव यह भी है कि उपवास के अंत में विषयेच्छा और स्वाद तीव्र हो जाते हैं। यानी उपवास-काल में विषयवासना को रोकने और स्वाद को जीतने की सतत भावना हो तभी उसका शुभ फल होता है। बिना हेतु और बिना मन के किए हुए शारीरिक उपवास का स्वतंत्र परिणाम विषयवासना के दमन के रूप में प्रकट होगा, यह मानना निरा भ्रम है। गीताजी के दूसरे अध्याय का यह श्लोक यहां बहुत विचारणीय है:

---

1. एक बार भोजन।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

उपवासी के विषय (उपवासकाल में) शांत हो जाते हैं, उसका रस नहीं जाता है। इसका तो ईश्वर-दर्शन से ही ईश्वर-प्रसाद से ही शमन होता है।

मतलब यह कि, उपवासादि संयमी के मार्ग में एक साधन के रूप में आवश्यक हैं, पर वही सब-कुछ नहीं है। अगर शरीर के उपवास के साथ मन का उपवास न हो तो वह दम्भ में परिणत हो जाता है और हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

32 : गुरुजी

द.अ. के सत्याग्रह के इतिहास में जो बात न आ सकी या थोड़े ही अंश में आ पाई वही इन प्रकरणों में आ रही है। पाठक इतना याद रख लें तो इन प्रकरणों का पारस्परिक सम्बन्ध उनकी समझ में आ जाएगा।

टाल्सटाय-आश्रम में लड़के और लड़कियों के लिए शिक्षा का कुछ प्रबंध करना आवश्यक था। मेरे साथ हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई नवयुवक थे; और थोड़ी हिन्दू लड़कियां भी थीं। खास शिक्षक रखना अशक्य था और मुझे अनावश्यक भी लगता था। अशक्य इसलिए था कि हिन्दुस्तानी शिक्षकों का तोड़ा था और कोई मिलता भी तो मोटी तनख्वाह के बिना डरबन से 21 मील दूर कौन आता? मेरे पास पैसों की बहुतायत न थी। बाहर से शिक्षक बुलाना मुझे भी अनावश्यक जान पड़ा; क्योंकि वर्तमान शिक्षा-पद्धति मुझे पसंद न थी। ठीक पद्धति का अनुभव करके तो मैंने नहीं देखा था। इतना समझता था कि आदर्श स्थिति में सच्ची शिक्षा तो माँ-बाप के हाथों के नीचे ही हो सकती है। उस स्थिति में बाहरी मदद कम-से-कम होनी चाहिए। मैंने सोचा कि टाल्सटाय-आश्रम एक कुटुम्ब है और उसमें मैं पितारूप हूं, इसलिए मुझे यथाशक्ति इन नवयुवकों के निर्माण की जिम्मेदारी उठानी चाहिए।

इस कल्पना में अनेक दोष तो थे ही। नवयुवक मेरे पास जन्म से नहीं थे, हर एक भिन्न-भिन्न वातावरण में पला था। सब एक धर्म के भी न थे। ऐसी स्थिति के लड़के और लड़कियों में मैं पिता बनकर भी कैसे न्याय दे सकता हूं।

पर मैंने हृदय की शिक्षा को अर्थात् चरित्र के विकास को सदा प्रथम पद दिया है और उसका परिचय चाहे जिस उम्र में और जितने प्रकार के वातावरण में पले हुए लड़के और लड़कियों का अल्पाधिक परिणाम में कराया जा सकता है। यह सोचकर इन लड़कों और लड़कियों के साथ मैं रात-दिन पिता रूप से रहता था। चरित्र को मैंने उनकी शिक्षा का आधाररूप माना था। बुनियाद मजबूत हो तो और बातें लड़के अवकाश मिलने पर दूसरों की सहायता लेकर या अपने आप सीख ले सकते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
फिर भी मैं समझता था कि अक्षरज्ञान थोड़ा-बहुत तो देना ही चाहिए। इसलिए क्लास खोले और उनमें मि. केलनबैक और प्रागजी देसाई की मदद ली।

शारीरिक शिक्षा की भी आवश्यकता समझता था। यह शिक्षा उन्हें अनायास मिल रही थी।

आश्रम में तो नौकर थे नहीं। पाखाना साफ करने से लगाकर रसोई तक के सब काम आश्रमवासियों को ही करने होते थे। फलों के बहुत पेड़ थे। नई बोआई करनी ही थी। मि. केलनबैक को खेती का शौक था, स्वयं सरकारी आदर्श बागों में जाकर कुछ दिनों सीख आए थे। रोज एक खास वक्त पर, छोटे-बड़े सब को, जो रसोई के काम में न लगे हों, बाग में काम करना ही पड़ता था। इनमें बालकों का बड़ा भाग था। बड़े-बड़े गड्ढे खोदना, पेड़ काटना, बोझा ढोना वगैरा कामों में उनके शरीर अच्छी तरह गठ जाते थे। इन कामों में उन्हें आनन्द आता था और इसमें उन्हें दूसरी कसरत या खेल की जरूरत न रह जाती थी। काम करने में कभी-कभी कुछ और कई बार सब विद्यार्थी नखरे करते थे, आलस्य करते थे। अक्सर इन बातों की ओर से मैं आंख मूंद लेता था। कितनी ही बार उनसे सख्ती से काम लेता था। यह भी देखता था कि जब सख्ती करता था तब वे घबराते थे। तथापि मुझे याद नहीं है कि लड़कों ने सख्ती का कभी विरोध किया हो। जब-जब सख्ती करता था तब-तब उन्हें समझाता था और उन्हीं से कबूल करवाता था कि काम के वक्त खेलना अच्छी आदत नहीं है। उस वक्त तो समझ जाते थे, दूसरे ही क्षण भूल जाते थे। यों गाड़ी चलती रहती थी। पर उनके शरीर कसते जाते थे।

आश्रम में बीमारी शायद ही आती थी। यह कहना चाहिए कि इसमें हवा-पानी का तथा अच्छे और नियमित आहार का भी बड़ा हाथ था। मैं शारीरिक शिक्षा के सिलसिले में ही शारीरिक पेशे की शिक्षा को भी शामिल कर लेता हूं। यह इरादा था कि सबको कोई एक उपयोगी धंधा सिखाना चाहिए। इसमें मि. केलनबैक ट्रेपिस्ट मठ में चप्पल बनाना सीख आए। उनसे मैंने सीखा और मैंने उन लड़कों को, जो यह धंधा सीखने को तैयार हुए सिखाया। मि. केलनबैक को बढ़ई के काम की भी थोड़ी जानकारी थी और आश्रम में यह काम जानने वाला एक और साथी था। इससे वह काम भी थोड़ा-थोड़ा सिखलाया जाता था। खाना पकाना तो लगभग सब लड़के सीख गए।

ये सब काम लड़कों के लिए नए थे। उन्होंने तो स्वप्न में भी काम सीखने की बात न सोची होगी। जो कुछ शिक्षा भारतीय बालक दक्षिण अफ्रीका में पाते थे वह केवल प्राथमिक अक्षरज्ञान की ही होती थी। टाल्सटाय-आश्रम में शुरू से यह रिवाज रखा गया था कि जो काम हम शिक्षक खुद न करें वह लड़कों से न करावें, और हमेशा उनके साथ-साथ वही काम करने वाला एक शिक्षक रहता था, इससे बालकों ने चाव से सीखा।

चरित्र और अक्षरज्ञान के बारे में इसके बाद लिखा जाएगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

33 : अक्षर-ज्ञान

पिछले प्रकरण में मैंने बतलाया कि शारीरिक शिक्षा और उसके सिलसिले में कुछ हाथ की कारीगरी सिखाने का काम टाल्सटाय-आश्रम में किस तरह शुरू किया गया। यद्यपि काम मैं इस तरह नहीं कर सका कि मुझे उससे संतोष हो, फिर भी उसमें थोड़ी-बहुत सफलता मिली थी। पर अक्षर-ज्ञान देना कठिन लगा। मेरे पास उसकी सफलता के लिए सामग्री नहीं थी। मेरे पास उतना समय नहीं था, जितना मैं देना चाहता था। उतना ज्ञान भी नहीं था। सारे दिन शारीरिक काम करने के बाद मैं थक जाता था और जिस समय जरा आराम लेने की तबीयत चाहती थी, वही वक्त क्लास लेने का होता था। इससे मैं ताजा होने के बजाए जबरदस्ती जाग्रत रह पाता था। सवेरे का वक्त खेती और घर के काम में जाता था और दोपहर को खाना खाने के बाद तुरंत पाठशाला चलती थी। इसके सिवा दूसरा कोई वक्त अनुकूल न होता था।

अक्षर-ज्ञान के लिए ज्यादा-से-ज्यादा तीन घंटे रखे गए थे। इसके सिवा क्लास में हिन्दी, तमिल, गुजराती और उर्दू सिखानी होती थी। शिक्षा प्रायः बालक को उसकी मातृभाषा के द्वारा ही देने का आग्रह था। अंग्रेजी भी सबको सिखाई जाती थी। इसके सिवा गुजराती हिन्दू-बालकों को थोड़ी संस्कृत का और सबको थोड़ी हिन्दी का ज्ञान करा देना, इतिहास, भूगोल और अंकगणित सबको सिखाना-यह हमारा शिक्षाक्रम था। तमिल और उर्दू पढ़ाने का काम मेरे जिम्मे था।

मेरा तमिल का ज्ञान तो स्टीमरों में और जेल में जितना मिला था, उतना ही था। उसमें भी पोपकृत उत्तम 'तमिल स्वयं शिक्षक' से आगे मैं न बढ़ पाया था। उर्दू लिपि का ज्ञान वही था, जो जहाज पर पा सका था और खास फारसी-अरबी शब्दों का परिचय उतना ही था जितना मुसलमान दोस्तों की सोहबत से हासिल हो गया था, संस्कृत, जो हाईस्कूल में सीख पाया था। गुजराती भी स्कूली ही थी।

इतनी ही पूंजी से मुझे काम चलाना था और इसमें जो मददगार थे वे मुझसे भी कम जानने वाले थे। पर देश की भाषाओं पर का मेरा प्रेम, अपनी शिक्षण-शक्ति पर मेरी श्रद्धा, विद्यार्थियों का अज्ञान और उससे भी बढ़कर उनकी उदारता मुझे मेरे काम में सहायक सिद्ध हुए।

तमिल विद्यार्थी दक्षिण अफ्रीका में ही जन्मे हुए थे, इससे तमिल बहुत थोड़ी जानते थे। उन्हें लिपि तो बिल्कुल न आती थी। अतः मुझे लिपि सिखानी पड़ती थी और व्याकरण के मूल तत्त्व वह आसान था। विद्यार्थी जानते थे कि तमिल बोलने में तो वे मुझे सहज ही हरा सकते थे और जब केवल तमिल जानने वाले मुझसे मिलने आते तब वे मेरे दुभाषिए का काम करते थे। यों मेरी गाड़ी चली; क्योंकि विद्यार्थियों के सामने अपना अज्ञान ढांकने की मैंने कभी कोशिश ही नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की। सब चीजों में जैसा मैं था वैसा ही मुझे वे जान गए थे। इसमें अक्षरज्ञान की भारी न्यूनता होते हुए भी मैंने उनका प्रेम और आदर कभी नहीं गंवाया।

मुसलमान बालकों को उर्दू सिखाना इसकी बनिस्बत अधिक आसान था। वे लिपि जानते थे। उनमें पढ़ने का शौक बढ़ाना और उनके अक्षर सुधारना ही मेरा काम था।

मुख्यतः सभी लड़के निरक्षर और पाठशाला में नहीं पढ़े हुए थे। सिखाते-सिखाते मैंने देखा कि मुझे उन्हें सिखाना कम ही था। उनका आलस्य छुड़ाना, उन्हें अपने-आप पढ़ते रहने की आदत डलवाना और उनकी पढ़ाई की खबरदारी रखना-खास काम यही था। मैं इतने से ही संतोष कर लेता था। इसी से भिन्न-भिन्न उम्र के भिन्न-भिन्न विषयों वाले विद्यार्थियों को एक ही कमरे में बिठाकर काम ले सकता था।

पाठ्यपुस्तकों के लिए समय-समय पर शोर सुनाई देता है, मुझे उनकी जरूरत कभी न पड़ी। जो पुस्तकें थीं उनका भी बहुत उपयोग करने का मुझे स्मरण नहीं है। हर एक लड़के को ज्यादा किताबें देना मुझे जरूरी नहीं दिखाई दिया। मेरी समझ में विद्यार्थी की पाठ्यपुस्तक शिक्षक ही होता है। शिक्षकों ने पाठ्यपुस्तकों में से जो सिखाया था, उसमें से थोड़ा ही मुझे याद है। जिन्होंने जबानी सिखाया था, उसकी याद आज भी बनी है। बालक आंख से जितना ग्रहण करता है, उसकी अपेक्षा कान से सुना हुआ थोड़े परिश्रम से और बहुत ज्यादा ग्रहण कर सकता है। मुझे याद नहीं है कि बालकों से मैंने एक किताब भी पूरी पढ़वाई हो।

पर अनेक पुस्तकों में से जो कुछ मैंने हजम किया था वह उन्हें अपनी भाषा में सुना गया और मैं समझता हूं कि यह उन्हें आज भी याद होगा। पढ़वाया हुआ याद रखने में उन्हें कष्ट होता था। मैं जो उन्हें सुनाता था वे उसी क्षण मुझे सुना देते थे। पढ़ने में उन्हें परेशानी होती थी। सुनने में, जब मैं खुद थकान से या अन्य कारणों से ढीला और नीरस होता तब वे रस लेते थे और सुनाते थे। उनके अंदर उठे हुए प्रश्नों को सुलझाने में उनकी ग्रहण-शक्ति का अंदाजा मिल जाता था।

34 : आत्मिक शिक्षा

विद्यार्थियों के शरीर और मन के शिक्षण की अपेक्षा उनकी आत्मा को शिक्षित करने में मुझे बहुत अधिक श्रम करना पड़ा। आत्मा का विकास कराने में मैंने धर्म की पोथियों का सहारा कम लिया था। मैं मानता था कि विद्यार्थियों को अपने-अपने धर्म के मूल तत्त्व जानने चाहिए और अपनी धर्मपुस्तकों का साधारण ज्ञान उन्हें होना चाहिए। उन्हें यह ज्ञान मिल जाए, इसके लिए मैंने यथाशक्ति सुभीता कर दिया था, पर उसे मैं बुद्धि के विकास का अंग मानता हूं। आत्मशिक्षण शिक्षा का एक स्वतंत्र विषय है, यह बात मैंने टॉल्सटाय-आश्रम के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बालकों को शिक्षा आरम्भ करने के पहले ही समझ ली थी। आत्मा का विकास करने का अर्थ है चरित्र का गठन, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना। आत्मज्ञान प्राप्त करना। यह ज्ञान प्राप्त करने में बालकों को बड़ी मदद की जरूरत है और यह मैं मानता था कि उनके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है और हानिकारक भी हो सकता है।

यह वहम सुना है कि आत्मज्ञान चौथे आश्रम में मिलता है। पर यह सार्वजनिक अनुभव है कि जो चौथे आश्रम तक इस अमूल्य वस्तु को मुल्तवी रखते हैं, वे आत्मज्ञान नहीं पाते, बल्कि बुढ़ापा और दूसरा दयाजनक बचपन पाकर 'भुविभारभूता' होकर जीते हैं। ये विचार मैं इस भाषा में सन् 1911-12 में शायद प्रकट न करता, पर उस समय मेरे ऐसे विचार थे, इसका मुझे पूरा स्मरण है।

आत्मिक शिक्षा कैसे दी जाए? बालकों से भजन गवाता था, नीति की पुस्तकें पढ़कर सुनाता था। पर उससे संतोष न होता था। ज्यों-ज्यों उनसे सम्पर्क बढ़ता गया त्यों-त्यों मैंने देखा कि यह ज्ञान पोथियों द्वारा तो नहीं दिया जा सकता। शरीर की शिक्षा शरीर की कसरत से दी जा सकती है, दी जानी चाहिए। बुद्धि की बुद्धि की कसरत से, वैसे ही आत्मा की आत्मा की कसरत से। आत्मा की कसरत शिक्षक के आचरण से ही मिल सकती है। अतः युवकों की उपस्थिति हो या न हो, शिक्षक को सावधान रहना ही चाहिए। लंका में बैठा हुआ शिक्षक अपने आचरण से अपने शिष्यों की आत्मा को हिला सकता है। मैं झूठ बोलता रहूं और अपने शिष्यों को सच्चा बनाने की कोशिश करूं तो वह बेकार जाएगी। डरपोक शिक्षक शिष्यों को वीरता नहीं सिखा सकता। व्यभिचारी शिक्षक शिष्यों को संयम सिखा सकता है? मैंने देखा कि मुझे अपने साथ रहने वाले लड़के और लड़कियों के सामने पदार्थ पाठरूप होकर रहना चाहिए। इससे मेरे शिष्य मेरे शिक्षक बन गए। अपने लिए नहीं तो उनके लिंए मुझे भला होकर रहना चाहिए, यह मैंने समझा और कहना चाहिए कि टॉल्सटाय-आश्रम का मेरा अधिकार संयम इन युवकों और युवतियों का एहसानमंद है। आश्रम में एक युवक था, जो बड़ा ऊधम मचाता था, झूठ बोलता था, दूसरों से लड़ता था। एक दिन उसने बड़ा ही तूफान उठाया। मैं घबराया। विद्यार्थियों को कभी दंड नहीं देता था। उस दिन मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैं उसके पास गया। समझाने से वह किसी तरह समझता न था। मुझे छलने की भी उसने कोशिश की। मैंने अपने पास पड़ा रूल उठाया और उसकी बांह पर जमा दिया। मारते समय मैं कांप रहा था। यह उसने देखा होगा। ऐसा अनुभव किसी विद्यार्थी को मेरी ओर से पहले कभी न हुआ था। विद्यार्थी रो पड़ा। मुझसे माफी मांगी। उसे रूल लगा और तकलीफ हुई, इससे वह नहीं रोया। वह मुकाबला करना चाहता तो मुझसे निबटने भर की ताकत उसमें थी। उसकी उम्र सत्रह साल की रही होगी। गठन मजबूत था। पर मेरे रूल मारने में उसने मेरी पीड़ा का अनुभव किया। इस संयोग के बाद वह कभी मेरे खिलाफ न गया। पर मुझे यह रूल मारने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का पछतावा आज तक बना है। मुझे भय है कि मैंने उसे मारकर अपनी आत्मा का नहीं बल्कि अपनी पशुता का दर्शन कराया था।

बालकों को मार-पीटकर सिखाने के खिलाफ मैं सदा से रहा हूं। एक ही मौका मुझे याद है जब मैंने अपने लड़कों में से एक को मारा था। रूल मारने में मैंने उचित किया या नहीं इसका निर्णय मैं आज तक न कर पाया। इस दंड के औचित्य में मुझे शंका है, क्योंकि उसमें क्रोध भरा हुआ था और दंड देने का भाव था। उसमें केवल मेरे दुःख का ही प्रदर्शन होता तो मैं इस दंड को उचित मानता। पर उसके भीतर जो भावना थी, वह मिली-जुली थी। इस प्रसंग के बाद तो मैंने विद्यार्थियों को सुधारने की अधिक अच्छी रीति सीख ली। इस कला का उपयोग मैंने उक्त प्रसंग पर किया होता तो क्या फल होता, यह मैं नहीं कह सकता। यह प्रसंग उक्त युवक तो फौरन भूल गया। उसमें बहुत सुधार हो गया, यह तो मैं नहीं कह सकता; पर इस प्रसंग ने मुझे विद्यार्थी के प्रति शिक्षक के धर्म के सम्बन्ध में अधिक जागरूक बना दिया। इसके बाद युवकों से ऐसे ही दोष हुए, पर मैंने दंडनीति से काम न लिया। यों दूसरों को आत्मज्ञान देने के प्रयत्न में मैं स्वयं आत्मा के गुण को अधिक समझने लगा।

35 : भले-बुरे का मिश्रण

टॉलस्टॉय-आश्रम में मि. केलनबैक ने मेरे सामने एक सवाल उठाया। उनके उपस्थित करने के पहले मैंने उस पर विचार नहीं किया था। आश्रम में कुछ लड़के बड़े उपद्रवी और खराब थे। कई आवारा भी थे। उन्हीं के साथ मेरे तीन लड़के थे और भी उन्हीं की तरह पाले हुए लड़के थे, पर मि. केलनबैक का ध्यान तो इसी ओर था कि उक्त आवारा और मेरे लड़के किस तरह साथ रह सकते हैं? एक दिन वह बोल पड़े-"आपकी यह रीति मुझे तनिकं भी नहीं सुहाती। इन लड़कों के साथ आपके लड़कों के मिलने का नतीजा तो एक ही हो सकता है-इन आवारा लड़कों की सोहबत का असर उन पर पड़ेगा और फिर वे बिगड़े बिना कैसे रह सकते हैं?"

मैं क्षणभर सोच-विचार में पड़ा या नहीं, यह तो मुझे आज याद नहीं आता, पर मेरा जवाब मुझे याद है। मैंने कहा-"अपने लड़कों और इन आवारा लड़कों के बीच मैं भेद कैसे कर सकता हूं? उस समय दोनों के लिए मैं एक-सा जिम्मेदार हूं। ये युवक मेरे बुलाने से आए हैं। मैं इन्हें खर्च दे दूं तो आज ही ये फिर जोहान्सबर्ग लौटकर जैसे रहते थे वैसे रहने लगेंगे। यहां आने में उन्होंने मुझ पर कुछ मेहरबानी की है यह भी वे और उनके माता-पिता मानते हों तो कोई अचरज नहीं है। यहां आकर वे कुछ दिक्कतें ही उठा रहे हैं, यह तो मैं और आप दोनों देखते हैं। पर मेरा धर्म स्पष्ट है। मुझे उन्हें यहीं रखना चाहिए। अतः मेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लड़कों को भी उनके साथ ही रहना है। फिर क्या मैं आज से ही अपने लड़कों को यह भेदभाव सिखाऊं कि वह दूसरों से ऊंचे हैं? यह विचार उनके दिमाग में डालना ही उन्हें गलत रास्ते पर ले जाना होगा। इस स्थिति में रहने से वे गढ़े जाएंगे, भले-बुरे की पहचान खुद करना सीखेंगे। हम यह क्यों न मानें कि उनमें अगर सचमुच गुण होगा तो उन्हीं की छूत उनके साथियों को लगेगी। जो हो, पर मुझे तो उन्हें यहां रखना है और यदि इसमें कोई जोखिम हो ही तो उसे उठाना फर्ज है।" मि. केलनबैक ने सिर हिलाया।

प्रयोग का परिणाम बुरा हुआ यह तो नहीं कह सकते। मैं नहीं मानता कि इससे मेरे लड़कों को कोई हानि हुई हो। लाभ होता मैं जरूर देख सका। उनमें बड़प्पन की भावना थोड़ी-बहुत रही होगी तो वह बिल्कुल चली गई। वे सबके साथ मिलना सीख गए। वे तप गए।

इस और ऐसे दूसरे अनुभवों से मुझे यह जान पड़ा है कि माता-पिता की देखरेख ठीक-ठीक हो तो अपने भले-बुरे लड़कों के साथ रहने और पढ़ने से भलों को कोई नुकसान नहीं होता। अपने लड़कों को संदूक में बंद कर रखने से वे शुद्ध ही रहें और बाहर निकालने से नापाक हो जाते हैं, कोई ऐसा नियम नहीं है। हां, यह जरूर है कि जहां अनेक प्रकार के लड़के-लड़कियां साथ रहते और पढ़ते हों वहां माँ-बाप की और शिक्षक की कड़ी परीक्षा होती है, उन्हें खबरदार रहना पड़ता है।

36 : प्रायश्चित्त रूप में उपवास

लड़के और लड़कियों को ईमानदारी से पालने और शिक्षा देने में कितनी और कैसी कठिनाइयां हैं, इसका अनुभव दिन-दिन बढ़ता गया। शिक्षक और संरक्षक के रूप में उनके हृदय में प्रवेश करना था, उनके सुख-दुःख में शामिल होना था, उनकी जीवन-गुत्थियां सुलझानी थीं, उनकी उभरती जवानी की तरंगों को सही रास्ते पर लगाना था।

कुछ जेल वालों के छूट जाने पर टॉल्सटाय-आश्रम में थोड़े ही आदमी रह गए। ये विशेषत: फिनिक्स के रहने वाले थे। इससे आश्रम को फिनिक्स ले गया। फिनिक्स में मेरी कड़ी परीक्षा हुई। टॉल्सटाय-आश्रम में बचे हुए आश्रमवासियों को फिनिक्स पहुंचाकर मैं जोहान्सबर्ग गया। जोहान्सबर्ग थोड़े दिन रहा होऊंगा; वहीं मुझे दो व्यक्तियों के भयंकर पतन का समाचार मिला। सत्याग्रह के महान संग्राम में कहीं फिलता-सी दिखाई देने पर मुझे चोट न लगती थी, पर इस घटना ने मुझ पर वज्र-सा गिरा दिया। मेरा दिल चोट खा गया। मैंने उसी दिन फिनिक्स की गाड़ी पकड़ी। मि. केलनबैक ने साथ जाने का आग्रह किया। वह मेरी दयनीय स्थिति समझ गए थे। उन्होंने मुझे अकेले जाने देने से साफ इनकार कर दिया। पतन की खबर मुझे उन्हीं के द्वारा मिली थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रास्ते में मैंने अपना धर्म समझ लिया या यों कहूं कि ऐसा मान लिया। मैंने सोचा कि अपनी रक्षा में रहने वालों के पतन के लिए संरक्षक या शिक्षक कुछ अंश में तो जिम्मेदार होते ही हैं। इस घटना में अपनी जिम्मेदारी मुझे साफ दिखाई दी। मेरी पत्नी मुझे चेतावनी दे चुकी थी, पर स्वभावतः विश्वासी होने के कारण मैंने उसकी चेतावनी की उपेक्षा की। फिर मुझे यह भी दिखाई दिया कि मैं इस पतन के लिए प्रायश्चित्त करूं तभी जो पतित हुए हैं वे मेरा दुःख समझ सकेंगे और इससे उन्हें अपने दोष का ज्ञान होगा और उसकी गम्भीरता को समझ पाएंगे। इससे मैंने सात दिन के उपवास और साढ़े चार महीने एकाशन करने का व्रत लिया। मि. केलनबैक ने मुझे रोकने का प्रयत्न किया, पर वह निष्फल रहा। अंत में प्रायश्चित्त का औचित्य माना और उन्होंने भी मेरे साथ वही व्रत रखने का निश्चय किया। उनके निर्मल प्रेम को मैं रोक न सका। यह निश्चय करते ही मेरा जी हल्का हो गया, शांत हो गया, दोषियों पर आया हुआ गुस्सा उतर गया और उन पर केवल दया रह गई।

इस प्रकार केवल ट्रेन में ही मन हल्का करके मैं फिनिक्स पहुंचा। जांच करके जितना कुछ जानना था जान लिया। यद्यपि मेरे उपवास से सबको कष्ट तो हुआ, पर इससे वातावरण शुद्ध हो गया। पाप करने की भयंकरता सबको मालूम हो गई और विद्यार्थियों तथा मेरे बीच का सम्बन्ध दृढ़ और सरल हो गया।

संयोग से ही कुछ समय बाद मुझे चौदह दिनों का उपवास करना पड़ा था। मैं मानता हूं कि उसका परिणाम धारणा से भी अधिक अच्छा हुआ था।

इस बात से मैं यह सिद्ध करना नहीं चाहता कि शिष्यों के हर कसूर के लिए शिक्षकों को सदा उपवासादि करने ही चाहिए। पर मैं यह मानता हूं कि कुछ मौकों पर ऐसे प्रायश्चित्त रूप उपवास के लिए अवश्य है। पर उसके लिए विवेक और अधिकार होना चाहिए। जहां शिक्षक-शिष्य में शुद्ध प्रेम सम्बन्ध नहीं हैं, जहां शिक्षक को अपने शिष्य के दोष से सच्ची चोट नहीं लगी है, जहां शिष्य को शिक्षक के प्रति आदर नहीं है; वहां उपवास निरर्थक है और शायद नुकसान भी करे। पर ऐसे उपवास और एकाशन के औचित्य के विषय में भले ही शंका हो, पर शिक्षक शिष्य के दोषों के लिए थोड़े-बहुत अंशों में जिम्मेदार है, इसमें मुझे तनिक भी शंका नहीं।

ये सात उपवास और साढ़े चार महीने का एकाशन व्रत हममें से किसी को कठिन नहीं गुजरा। उस बीच मेरा कोई भी काम बंद या मंदा नहीं हुआ। उस काल में मैं केवल फलाहार पर ही रहा। चौदह उपवास का अंतिम भाग मुझे काफी कठिन लगा था, तब तक राम नाम का चमत्कार मैं पूरी तरह नहीं समझ पाया था, अतः दुःख सहन करने की शक्ति कम थीं उपवास के बीच चाहे जैसे हो, पानी खूब पीना चाहिए, इस बाह्य काल का मुझे ज्ञान नहीं था। इस कारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भी ये उपवास कठिन गुजरे। इसके पहले के उपवास सुख-शांति से बीते थे, इससे चौदह दिनों के उपवास के समय लापरवाह हो गया था। पहले उपवास में बराबर कूने का कटिस्नान लेता था। चौदह दिनों के उपवास में दो या तीन दिन के बाद वह बंद कर दिया। पानी का स्वाद ही अच्छा न लगता था और पीने पर मतली आती थी, इससे पानी बहुत ही कम पीता था। इस कारण गला सूख गया, कमजोर हो गया, और आखिरी दिनों में केवल धीमी आवाज से ही बोल पाता था। इतने पर भी लिखने का जरूरी काम अंतिम दिन तक कर सका था और रामायण इत्यादि अंत तक सुनता था। किसी प्रश्न के सम्बन्ध में सलाह-मशविरा देने का आवश्यक कार्य भी कर सकता था।

37 : गोखले से मिलने

दक्षिण अफ्रीका के अनेक स्मरण अब छोड़ देने पड़ रहे हैं। सन् 1914 ई. में सत्याग्रह-संग्राम का अंत होने पर गोखले की इच्छा से मुझे इंग्लैंड होकर देश जाना था। इसलिए जुलाई में कस्तूरबाई, केलनबैक और मैं-हम तीन जनें विलायत के लिए रवाना हुए। सत्याग्रह की लड़ाई के दिनों में मैंने रेल के तीसरे दर्जे में सफर करना शुरू कर दिया था, इससे जहाज में भी तीसरे दर्जे का टिकट कटाया। पर इस तीसरे दर्जे में और अपने यहां के तीसरे दर्जे में बड़ा फर्क है। अपने यहां सोने-बैठने की जगह भी मुश्किल से मिलती। सफाई का तो जिक्र ही क्या! जहाज के तीसरे दर्जे में जगह मुनासिब थी और सफाई भी माकूल रखी जाती थी। कोई हमें तंग न करे, इस खयाल से एक पाखाने पर ताला लगाकर कुंजी हमें सौंप दी गई थी और हम तीनों के फलाहारी होने की वजह से हमें सूखे मेवे और ताजा फल भी देने की आज्ञा स्टीमर के खजांची को दे दी गई थी। साधारणतः तीसरे दर्जे से मुसाफिरों को फल कम ही मिलते हैं, सूखा मेवा बिल्कुल नहीं मिलता। इन सुभीतों की वजह से हमने समुद्र के अठारह दिन बड़ी शांति से बिताए।

इस यात्रा के कुछ स्मरण विशेष रूप से जानने योग्य हैं। मि. केलनबैक को दूरबीन का बड़ा शौक था। एक-दो कीमती दूरबीनें उनके पास थीं। उनके विषय में हममें रोज बातचीत हुआ करती। मैं उन्हें समझाने की कोशिश करता कि हमारे आदर्श के, और हम जिस सादगी पर पहुंचना चाहते हैं, उनके यह अनुकूल नहीं है। एक दिन हममें इस प्रश्न का तीव्र वाद-विवाद हुआ। हम दोनों अपनी केबिन की खिड़की के पास खड़े थे।

मैंने कहा-"हममें यह तकरार होती रहे इससे क्या यह अधिक अच्छा नहीं है कि इस दूरबीन को समुद्र में फेंक दें और उसकी बात ही न करें?"

मि. केलनबैक ने तुरंत जवाब दिया-"जरूर इस गलतफहमी पैदा करने वाली चीज को फेंक दीजिए।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा– मैं फेंकता हूं?"

उन्होंने उतनी ही शीघ्रता से कहा–"मैं सचमुच कहता हूं, जरूर फेंक दीजिए।"

मैंने दूरबीन फेंक दी। करीब सात पौंड की थी, पर उसकी कीमत उसके दामों में नहीं, बल्कि मि. केलनबैक का उस पर जो मोह था उसमें थी। फिर भी मि. केलनबैक ने उसके लिए कभी दुःख नहीं किया। उनके और मेरे बीच के ऐसे अनुभव अनेक हुआ करते थे। उनमें से मैंने यह एक नमूने के तौर पर पाठकों के सामने रखा है।

हमारे आपस के सम्बन्ध में हमें रोज कुछ नया सीखने को मिलता था; क्योंकि दोनों सत्य का अनुसरण करके ही चलने की कोशिश करते थे। सत्य का अनुगमन करने से क्रोध, स्वार्थ, द्वेष इत्यादि का सहज ही शमन हो जाता था। शमन न हो तो सत्य की प्राप्ति न हो पाती। राग-द्वेष से भरा हुआ मनुष्य सरल भले ही हो जाए, वाणी का सत्य भले ही पाले, पर उसे शुद्ध सत्य नहीं मिल सकता। शुद्ध सत्य की खोज करना राग-द्वेषादि के द्वंद्व से सर्वथा मुक्ति पाना है।

हमने जब यात्रा शुरू की थी तो मुझे उपवास पूरा किए अधिक समय नहीं बीता था। मुझमें पूरी ताकत नहीं आ पाई थी। स्टीमर में मैं रोज डेंक पर चलने का व्यायाम करके काफी खाने और खाए हुए को पचाने की कोशिश करता था। इससे मेरी पिंडलियों में ज्यादा दर्द होने लगा। विलायत पहुंचने पर मेरा दर्द कम न होकर और बढ़ गया। विलायत में डॉक्टर जीवराज मेहता से परिचय हो गया था। उनको उपवास और दर्द का इतिहास बतलाने पर बोले–"अगर आप कुछ दिनों बिल्कुल आराम न लेंगे तो पैर हमेशा के लिए बेकार हो जाने का डर है।" इस समय मुझे मालूम हुआ कि लम्बा उपवास करने वालों खोई हुई ताकत झट से पा लेने को या बहुत खाने का लोभ नहीं रखना चाहिए। उपवास करने की अपेक्षा उसे उतारने में अधिक सावधान रहना पड़ता है और शायद उसमें संयम भी अधिक करना पड़ता है।

मदीना में हमें खबर मिली कि महायुद्ध छिड़ने में बस अब कुछ घंटों की ही देर है। इंग्लैंड की खाड़ी में पहुंचकर लड़ाई छिड़ जाने का समाचार मिला और हमें रोका गया। जगह-जगह समुद्र में सुरंगें बिछा दी गई थीं। उनसे बचाकर हमें साउदेम्पटन पहुंचाने में एक-दो दिन की देर हो गई। युद्ध की घोषणा चौथी अगस्त को हुई। हम छठी को विलायत पहुंचे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

38 : लड़ाई में हिस्सा

विलायत पहुंचे तो पता चला कि गोखले तो पेरिस में फंस गए हैं। पेरिस से आवागमन का सम्बन्ध टूट गया है और यह पता नहीं कि वह कब आएंगे। गोखले स्वास्थ्य-सुधार के लिए फ्रांस गए थे जहां लड़ाई की वजह से अटक गए। उनसे मिले बिना मुझे देश जाना नहीं था और वह कब आ सकेंगे यह कोई नहीं कह सकता था।

इस बीच मैं क्या करूं? लड़ाई में मेरा फर्ज क्या है? मेरे जेल के साथी और सत्याग्रही सोराबजी अडजनिया विलायत में ही बैरिस्टरी पढ़ रहे थे। अच्छे-से-अच्छे सत्याग्रही की हैसियत से वह बैरिस्टरी की तालीम के लिए इंग्लैंड भेजे गए थे कि वहां से लौटकर दक्षिण अफ्रीका में मेरी जगह लें। उनका खर्च डॉक्टर प्राण जीवनदास मेहता देते थे। उनके साथ और उनके जरिए डॉक्टर जीवराज मेहता इत्यादि से, जो विलायत में पढ़ रहे थे, मशविरा किया। विलायत में रहने वाले हिन्दुस्तानियों की एक बैठक की और उनके सामने अपने विचार रखे। मेरे मन ने कहा कि विलायत में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को लड़ाई में अपना हिस्सा देना चाहिए। अंग्रेज विद्यार्थी लड़ाई में सेवा करने का अपना निश्चय प्रकट कर चुके थे। हिन्दुस्तानी उनसे पीछे क्यों रहें? इन दलीलों के ख़िलाफ इस सभा में बहुत-सी दलीलें दी गईं। हमारी और अंग्रेजों की स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर है। एक गुलाम और दूसरा मालिक। ऐसी स्थिति में गुलाम मालिक की विपत्ति में स्वेच्छा से मदद कैसे कर सकता है? गुलामी से छुटकारा पाने के इच्छुक गुलाम का क्या धर्म नहीं है कि मालिक की विपत्ति का उपयोग अपनी मुक्ति के लिए करे? यह दलील उस समय मेरे गले कैसे उतरती? मैं दोनों की स्थिति का भेद समझता था, पर मुझे अपनी दशा शुद्ध गुलामी की नहीं लगती थी। मुझे तो यह जान पड़ता था कि अंग्रेजी राज्य पद्धति में जो दोष हैं उनकी उपेक्षा अंग्रेजी अधिकारियों में दोष अधिक हैं। वह दोष हम प्रेम से दूर कर सकते हैं। अगर अंग्रेजों के द्वारा और उनकी मदद से हम अपनी स्थिति सुधारना चाहते हैं तो हमें उनकी विपत्ति में मदद करके अपनी दशा सुधारनी चाहिए। राज्य-पद्धति सदोष होने पर भी मुझे जैसे वह आज असह्य लगती है वैसे उस समय नहीं लगती थी। पर जैसे पद्धति पर से मेरा विश्वास आज उठ गया है और इससे मैं आज अंग्रेजों की मदद नहीं कर सकता, वैसे जिनका विश्वास अंग्रेजी पद्धति पर से ही नहीं, बल्कि अंग्रेज अधिकारियों पर से भी उठ चुका था, वे मदद के लिए कैसे तैयार होते?

उन्होंने इस वक्त पूजा की मांग दृढ़ता से सामने रखने और शासन-व्यवस्था में सुधार करा लेने का आग्रह करने का अवसर देखा। मैंने अंग्रेजों की इस विपत्ति को अपनी मांग पेश करने का अवसर नहीं माना। लड़ाई के समय हक मांगना मुल्तवी रखने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के संयम में सभ्यता और दीर्घदृष्टि देखी। इससे मैं अपनी सलाह पर अड़ा रहा और सूचित किया कि जिन्हें भरती में नाम लिखाना हो वे लिखाएं। नाम अच्छी तादाद में आए। उनमें लगभग सब प्रांतों और सब धर्मों के लोगों के नाम थे।

लॉर्ड क्रू को इस विषय में पत्र लिखा और लिख दिया कि हिन्दुस्तानियों की मांग मंजूर होने पर घायल सिपाहियों की सेवा करने की तालीम लेना जरूरी हो तो हम उसके लिए तैयार हैं। कुछ मशवरों के बाद लार्ड क्रू ने हिन्दुस्तानियों की मांग मंजूर कर ली और आड़े वक्त में साम्राज्य की मदद करने को तैयार होने के लिए कृतज्ञता प्रकट की।

नाम देने वालों ने प्रसिद्ध डॉक्टर केंटली की देखरेख में घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने की प्राथमिक तालीम लेना आरम्भ किया। छह हफ्ते का छोटा-सा क्रम था, पर उसमें घायलों को प्राथमिक उपचार देने की सारी क्रियाएं सिखा दी जाती थीं। हम लगभग 80 आदमी इस विशेष वर्ग में शामिल हुए। छह हफ्ते के बाद परीक्षा ली गई। उसमें एक ही आदमी फेल हुआ। जो पास हुए उनके लिए सरकार की ओर से कवायद वगैरा सिखाने का प्रबंध हुआ। कर्नल बेकर को यह कवायद कराने का काम सौंपा गया और वह इस टुकड़ी के नायक बना दिए गए।

इस समय विलायत का दृश्य देखने लायक था। लोग घबरा नहीं रहे थे, बल्कि सब लड़ाई में यथाशक्ति मदद करने में लग गए थे। तगड़े शरीर वाले युवक तो युद्ध-शिक्षा लेने में जुट गए। पर अशक्त, बूढ़े, स्त्रियां आदि क्या करें? उनके लिए भी, चाहें तो काम निकल ही सकता था। वे लड़ाई में घायल होने वालों के लिए कपड़ा वगैरा सीने-काटने के काम में लगीं। वहां स्त्रियों का 'लाइसियम' नामक क्लब है। उसकी सदस्याओं ने युद्ध-विभाग के लिए आवश्यक कपड़ों में से जितना हो सके उतना तैयार कर देने का भार लिया। सरोजिनी देवी भी इस क्लब की सदस्या थीं। उन्होंने इस काम में पूरा हिस्सा लिया। मेरा उनके साथ यह पहला ही परिचय था। उन्होंने ब्योंते हुए कपड़ों का मेरे पास ढेर लगा दिया और जितने सिल सकें उतनी सी-सिलाकर उनके हवाले कर देने को कहा। मैंने उनकी इच्छा का स्वागत किया और घायलों की सेवा की शिक्षाकाल में जितना कुछ हो सका तैयार करा के उन्हें दे दिया।

39 : धर्म की समस्या

युद्ध में काम करने के लिए, हम कुछ लोगों ने इकट्ठे होकर सरकार को अपने नाम दिए हैं, यह खबर दक्षिण अफ्रीका पहुंचते ही तुरन्त मेरे नाम वहां से दो तार आए। उसमें एक पोलक का था। उसमें पूछा गया था-"आपका यह काम क्या आपके अहिंसा के सिद्धांत के विरुद्ध नहीं है?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ऐसे तार की मुझे कुछ उम्मीद तो थी ही, क्योंकि इस विषय पर मैंने 'हिन्द स्वराज्य' में चर्चा की थी और दक्षिण अफ्रीका में मित्रों के साथ तो इसकी चर्चा बराबर होती ही रहती थी। युद्ध की अनीति हम सभी मानते थे। अपने ऊपर हमला करने वालों पर जब मुकदमा चलाने को मैं तैयार नहीं था, तो जब दो राज्यों में युद्ध होता हो, उसके गुण-दोष का हमें पता न हो तो उसमें मैं कैसे शामिल हो सकता हूं? यद्यपि बोअर-युद्ध में मेरा हिस्सा लेना मित्रों को मालूम था, तथापि उन्होंने मान लिया था कि उसके बाद मेरे विचारों में परिवर्तन हुआ होगा।

वास्तव में जिस विचार सरणि के वशवर्ती होकर मैं बोअर-युद्ध में शामिल हुआ था उसी का अनुसरण मैंने इस बार भी किया था। युद्ध में शामिल होना अहिंसा के साथ मेल नहीं खाता, यह मैं साफ देख रहा था, पर कर्त्तव्य का बोध सदा दीपक के प्रकाश की भांति स्पष्ट नहीं होता। सत्य के पुजारी को बहुत बार गोते खाने पड़ते हैं।

अहिंसा व्यापक वस्तु है। हिंसा की होली की लपेट में आए हुए हम पामर प्राणी हैं। 'जीवहिं जीव अधार' गलत बात नहीं है। मनुष्य क्षणभर में भी बाह्य हिंसा के बिना नहीं जी सकता। खाते-पीते, उठते-बैठते, सब कर्मों में इच्छा से हो या अनिच्छा से कुछ-न-कुछ हिंसा वह करता ही रहता है। उस हिंसा से निकलने का उसका महाप्रयास हो, उसकी भावना में केवल अनुकम्पा हो, वह छोटे-से-छोटे प्राणी का भी नाश न चाहे और यथाशक्ति उसे बचाने की कोशिश करे, तो वह अहिंसा का पुजारी है। उसकी प्रवृत्ति में निरंतर संयम की वृद्धि होगी, उसमें निरंतर करुणा बढ़ती जाएगी, पर कोई देहधारी बाह्य हिंसा से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता।

इसके सिवा अहिंसा में ही अद्वैत भावना समाई हुई है, और यदि प्राणी मात्र में अभेद है तो एक के पाप का असर दूसरे के ऊपर होना लाजिमी ही है। इस वजह से भी मनुष्य हिंसा से नितांत अछूता नहीं रह सकता। समाज में रहने वाला मनुष्य समाज की हिंसा में बिना चाहे भी साझी बनता है। जब दो राष्ट्रों के बीच युद्ध हो तब अहिंसा को मानने वाले व्यक्ति का धर्म उस युद्ध को रोकना है। जो उस धर्म का पालन न कर सके, जिसमें विरोध करने की शक्ति न हो, जिसे विरोध करने का अधिकार प्राप्त न हो, वह युद्ध-कार्य में शामिल हो जाए और शामिल होते हुए भी, उसे चाहिए कि उसमें से अपने-आपको, अपने देश को और वैसे ही जगत को उबारने की दिल से कोशिश करता रहे।

मुझे अंग्रेजी राज्य के जरिए अपनी अर्थात् अपने देश की जनता की स्थिति सुधारनी थी। मैं इंग्लैंड में बैठा हुआ ब्रिटिश जंगी बेड़े के द्वारा सुरक्षित था। उस बल का इस प्रकार उपयोग करके मैं उसमें विद्यमान हिंसकता में सीधे-सीधे हिस्सेदार होता था। इसलिए अगर आखिर में मुझे उस राज्य के साथ व्यवहार रखना हो, उस राज्य के झंडे के नीचे रहना हो तो या तो मुझे युद्ध का खुले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तौर पर विरोध करके जब तक उस राज्य की युद्धनीति न बदले तब तक उसका सत्याग्रह शास्त्र के अनुसार बहिष्कार करना चाहिए अथवा उसके तोड़ने योग्य कानूनों का सविनय भंग करके जेल का रास्ता लेना चाहिए या मुझे उसके युद्ध-कार्य में योग देकर उसका विरोध करने की शक्ति और अधिकार प्राप्त करना चाहिए। यह शक्ति मुझमें नहीं थी। अतः मैंने माना कि मेरे सामने एक ही रास्ता-युद्ध में शरीक होने का रह गया है। मैंने बंदूकधारी और उसकी मदद करने वाले के बीच हिंसा की दृष्टि से अंतर नहीं पाया। जो आदमी डाकू दल में उसकी आवश्यक सेवा करने, उसका बोझ उठाने, जब वह डाका डालता हो तब उसका पहरा देने और वह घायल हो जाए तो उसकी सेवा-टहल करने का काम करता है, वह डाके के लिए डाकू के बराबर ही जिम्मेदार है। इस दृष्टि से विचार करने पर सेना में केवल घायलों की सेवा-टहल करने वाला भी युद्ध के दोषों से मुक्त नहीं रह सकता।

ये बातें पोलक का तार आने के पहले ही मैं सोच चुका था। उनका तार आने पर मैंने उसकी चर्चा कुछ मित्रों में की। युद्ध में शामिल होना मैंने धर्म माना और आज भी उसका विचार करता हूं तो मुझे ऊपर की विचारधारा में कोई दोष नहीं दिखाई देता। ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में उस समय मेरे जो विचार थे उनका अनुसरण करते हुए मैंने युद्ध कार्य में योग दिया, उसका मुझे पछतावा भी नहीं है।

मैं जानता हूं कि अपने उपर्युक्त विचारों का औचित्य मैं उस समय भी सब मित्रों के निकट सिद्ध नहीं कर पाया था। प्रश्न सूक्ष्म है। उसमें मतभेद की गुंजाइश है। इसलिए अहिंसा धर्म को मानने वालों और सूक्ष्म रीति से उसका पालन करने वालों के सामने यथासम्भव स्पष्टता से मैंने अपना मत रखा है। सत्य के आग्रही को चाहिए कि रूढ़ि से चिपककर ही कोई काम न करे और अपने विचार से हठपूर्वक न चिपटे। उसमें दोष होने की सम्भावना सदा माने और उस दोष का ज्ञान जब हो जाए तब चाहे जितनी बड़ी जोखिम हो, उसे उठाकर भी उसे स्वीकार करे और प्रायश्चित्त भी करे।

40 : खिलौना-सत्याग्रह

इस प्रकार धर्म समझकर मैं युद्ध में पड़ा तो जरूर, पर मेरे भाग्य में उसमें सीधे भाग लेना नहीं लिखा था। यही नहीं, बल्कि ऐसे नाजुक वक्त में सत्याग्रह करने तक की नौबत आ गई।

हमारे नाम मंजूर होकर दर्ज हो जाने पर हमें पूरा कवायद सिखाने को एक अधिकारी के नियुक्त किए जाने की बात का मैं उल्लेख कर चुका हूं। हम सबकी धारणा यह थी कि यह अफसर युद्ध की तालीम देने भर को हमारा नायक है। दूसरी सब बातों में टुकड़ी का नायक मैं हूं। अपने साथियों के प्रति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जिम्मेदारी मेरी थी और उनकी मेरे प्रति; यानी हम लोगों का खयाल था कि उक्त अफसर को सब काम मेरी मारफत लेना चाहिए। पर जैसे पूत के पांव पालने में दिखाई दे जाते हैं, वैसे ही उस अफसर की नजर हमें पहले ही दिन से कुछ और मालूम हुई। सोहराबजी बड़े होशियार थे। उन्होंने मुझे चेताया-"भाई, देखना! जान पड़ता है यह आदमी अपनी नवाबी चलाना चाहता है। हमें उसका हुक्म नहीं चाहिए। हम उसे शिक्षक मानते हैं, पर ये तो नवयुवक आए हैं वे भी, मैं देखता हूं, हम पर हुकूमत चलाने आए हैं।" ये युवक ऑक्सफोर्ड के विद्यार्थी थे और तालीम के लिए आए थे और उन्हें बड़े अफसर ने हमारे नायब अफसर के रूप में नियुक्त कर दिया था। सोहराबजी ने जो बात कहीं वह मेरी निगाह में भी आ चुकी थी। मैंने सोहराब को सांत्वना दी और बेफिक्र रहने को कहा। पर सोहराबजी झट मानने वाले आदमी नहीं थे।

वह हँसते हुए बोले-"आप सीधे हैं। ये लोग मीठी-मीठी बातें करके आपको ठगेंगे और जब आपको होश होगा, तब आप कहेंगे-"चलो, सत्याग्रह करो और फिर आप हमें हैरान करेंगे।"

मैंने जवाब दिया-"मेरा साथ करके हैरानी के सिवा आपने कभी और कुछ भी पाया है? और सत्याग्रही तो ठगे जाने को ही तो पैदा होता है न? इसलिए भले ही ये साहब मुझे खुशी से ठग लें। आपसे मैंने हजारों बार कहा है कि अन्त में ठगने वाला ही ठगाता है।"

सोहराबजी खिलखिलाकर हँस पड़े। "अच्छी बात है, तो ठगाते रहिए। किसी दिन सत्याग्रह में मरिएगा और अपने साथ हम-जैसों को भी ले डूबिएगा।"

स्वर्गीय मिस हाव हाउस के शब्द मुझे याद आ रहे हैं, जो असहयोग आन्दोलन के अवसर पर उन्होंने मुझे लिखे थे। "आपको सत्य के लिए किसी दिन फांसी पर चढ़ना पड़े तो मुझे अचरज न होगा। भगवान आपको सीधे ही रास्ते ले जाएं और आपकी रक्षा करें।"

सोहराबजी के साथ ये बातें उक्त अफसर के गद्दीशीन होने के बाद के आरम्भकाल में हुई थीं। आरम्भ और अन्त के बीच का अन्तर थोड़े ही दिनों का था। पर इस बीच मुझे पसली की सूजन की गहरी शिकायत पैदा हो गई। चौदह दिन के उपवास के बाद मेरा शरीर ठीक तौर से पनप नहीं पाया था; पर कवायदों में मैं डटकर हिस्सा लेने लगा था और अक्सर घर से कवायद के स्थान तक पैदल जाता था। दो मील का फासला तो जरूर ही था। इसका नतीजा यह हुआ कि अन्त में मुझे खाट पकड़नी पड़ी।

इस दशा में मुझे औरों के साथ कैंप में जाना पड़ा था। दूसरे लोग वहां रहते और मैं शाम को घर वापस लौट आता। यहीं सत्याग्रह का प्रसंग उपस्थित हो गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अफसर ने अपनी शान दिखाना शुरू किया। उसने साफ बता दिया कि वह हर बात में हमारा अफसर है। अपनी अफसरी के दो-चार पदार्थ-पाठ भी उसने हमें पढ़ा दिए। सोहराबजी मेरे पास पहुंचे। वह यह नवाबी बरदाश्त करने को तैयार न थे। उन्होंने कहा-"सब हुक्म आपकी मारफत ही मिलने चाहिए। अभी तो हम लोग शिक्षण-शिविर में हैं और हर मामले में बेहूदा हुक्म निकला करते हैं। उन युवकों में और हममें अनेक बातों में भेद रखा जा रहा है। यह सब सह्य नहीं है। इसकी सफाई तुरन्त हो जानी चाहिए, अन्यथा हमारे काम में बाधा पड़ जाएगी। ये सब विद्यार्थी और अन्य लोग जो इस काम में शामिल हुए हैं, एक भी बेहूदा हुक्म बरदाशत करने को तैयार नहीं है। आत्मसम्मान की रक्षा के लिए उठाए हुए काम में अपमान ही सहन करना पड़े, यह नहीं हो सकता।"

मैं अफसर के पास गया। मेरे पास आई सब शिकायतें उसे सुनाईं। उसने एक पत्र में सब शिकायतें लिखकर देने को कहा और साथ-साथ अपने अधिकार की बात भी कही। उसने कहा-"शिकायत आपकी मारफत नहीं होनी चाहिए। वह नायब अफसरों की मारफत सीधे मेरे पास आनी चाहिए।"

मैंने जवाब में कहा-"मुझे अधिकार नहीं चाहिए। सैनिक रीति से मैं तो साधारण सिपाही ही कहा जाऊंगा, पर हमारी टुकड़ी के नायब की हैसियत से आपको मुझे उनके प्रतिनिधि रूप में स्वीकार करना चाहिए।" मैंने अपने पास आई हुई शिकायतें भी बताईं-" उप-नायक हमारी टुकड़ी से पूछे बिना बना दिए गए हैं और उनके विषय में बड़ा असंतोष फैला हुआ है। अतः वे हटा दिए जाएं और टुकड़ी को अपना अफसर चुनने का अधिकार दिया जाए।"

यह बात उसके गले नहीं उतरी। उसने मुझे बताया कि इन उप-नायकों को टुकड़ी चुने यह बात ही सैनिक नियम के विरुद्ध है और ये हटा दिए जाएं तो आज्ञापालन का नामोनिशान भी नहीं रह जाएगा।

हमने सभा की। सत्याग्रह के गम्भीर परिणाम सामने रखे। लगभग सबने सत्याग्रह की शपथ ली। हमारी सभा ने यह प्रस्ताव किया कि यदि वर्तमान नायक न हटाए जाएंगे और टुकड़ी को नया नायक चुनने न दिया जाएगा तो हमारी टुकड़ी कवायद में और कैंप में जाना बन्द कर देगी।

मैंने अफसर को एक पत्र लिखकर अपना घोर असंतोष प्रकट किया और जताया कि मुझे अधिकार नहीं भोगना है, मुझे तो सेवा करनी है। मैंने उसे यह भी बतलाया कि बोअर-युद्ध में मैंने कोई अधिकार नहीं लिया था, फिर भी कर्नल गेलवे और हमारी टुकड़ी के बीच कभी किसी तकरार की नौबत नहीं आई, और वह मेरी टुकड़ी की इच्छा मेरी मारफत जानकर ही सब बातें करते थे। पत्र के साथ अपनी टुकड़ी के पास किए हुए प्रस्ताव की नकल भी भेज दी।

अफसर पर इसका कोई असर न हुआ। उसे तो लगा कि हमारी टुकड़ी ने सभा करके प्रस्ताव किया यही सैनिक नियम का गम्भीर भंग था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसके बाद मैंने भारत-मंत्री को एक पत्र लिखकर सारी हकीकत जता दी और अपनी सभा का प्रस्ताव भेजा।

भारत-मंत्री ने जवाब में मुझे सूचित किया कि दक्षिण अफ्रीका की स्थिति भिन्न थी। यहां तो टुकड़ी के बड़े अफसर को उप-नायक चुनने का हक है, फिर भी भविष्य में वह अफसर आपकी सिफारिश का ध्यान रखेगा।

इसके बाद तो हमारा पत्र-व्यवहार बहुत हुआ, पर वे सारे कटु अनुभव देकर मैं इस प्रकरण को बढ़ाना नहीं चाहता। पर इतना कहे बिना तो नहीं रहा जा सकता कि जो अनुभव हमें रोज हिन्दुस्तान में होते रहते हैं, वे वैसे ही थे।

अफसर ने धमकी से, जोड़-तोड़ से हममें फूट डाली। कुछ शपथ ले चुकने पर भी छलया बल के वश में आ गए। इतने में नेटली अस्पताल में अनसोची संख्या में घायल सिपाही आ पहुंचे और उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए हमारी सारी टुकड़ी की जरूरत हुई। अफसर जिन्हें खींच सका था वे तो नेटली गए, पर दूसरे नहीं गए। यह इंडिया ऑफिस को अच्छा नहीं लगा। मैं तो खाट पर था, पर टुकड़ी के लोगों से मिलता रहता था। मि. राबर्ट्स से मेरी अच्छी जान-पहचान हो गई थी। वह मुझसे मिलने आए और जो बाकी बचे थे उन्हें भेजने का आग्रह किया। उनका सुझाव था कि वे अलग टुकड़ी के रूप में जाएं। नेटली अस्पताल में तो टुकड़ी को वहां के मुखिया के अधीन रहना होगा। इसलिए मानहानि नहीं होगी। सरकार को उनके जाने से संतोष होगा और भारी संख्या में आए हुए घायलों की सेवा-शुश्रूषा होगी। मेरे साथियों को और मुझे यह सलाह पसंद आई और बचे हुए विद्यार्थी भी नेटली गए। एक मैं ही हाथ मलता हुआ बिस्तरे पर पड़ा रहा।

41 : गोखले की उदारता

विलायत में मुझे पसली का वरम होने की बात लिख चुका हूं। इस रोग के समय गोखले विलायत आ चुके थे। उनके पास मैं और केलनबैक हमेशा जाया करते थे। बहुत करके लड़ाई की ही चर्चा होती। जर्मनी का भूगोल केलनबैक की जबान पर था और उन्होंने यूरोप की यात्रा भी खूब की थी। इससे गोखले को नक्शा खींचकर युद्ध के मुख्य स्थान बताया करते। मेरी बीमारी भी चर्चा का एक विषय बन गई। मेरे खुराक के प्रयोग तो चल ही रहे थे। उस वक्त मेरी खुराक मूंगफली, कच्चे और पके फल, जैतून का तेल, टमाटर और अंगूर वगैरा थी। दूध-अनाज, दाल आदि बिल्कुल न लेता था। मेरी तीमारदारी जीवराज मेहता करते थे। उन्होंने दूध पीने और अनाज खाने का जबरदस्त आग्रह किया। वह इस बात पर जोर देते थे कि आरोग्य की रक्षा के लिए डॉक्टर जो कहे वह लेना चाहिए।

गोखले के आग्रह को टालना मेरे लिए कठिन बात थी। उन्होंने जब बहुत जोर दिया तब मैंने सोचने के लिए चौबीस घंटे की मुहलत मांगी। मैं और

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
केलनबैक घर आए। रास्ते में, मेरा कर्त्तव्य क्या है इस विषय में, उनसे चर्चा की। मेरे प्रयोग में वह साथी थे। उन्हें ये प्रयोग भाते भी थे, पर मुझे उनका रुख यह दिखाई दिया कि अपने स्वास्थ्य की खातिर मैं उसे छोड़ दूं तो अच्छा है। उनकी यह वृत्ति मैंने समझ ली; अब अपने अन्तर्नाद को सुनना-समझना था।

सारी रात विचार में बिताई। जो मैं सारे प्रयोग छोड़ दूं तो मेरे किए हुए समस्त विचार धूल में मिले जा रहे हैं। उन विचारों में मुझे कहीं भूल न दिखाई देती थी। अब खयाल यह था कि कहां तक गोखले के प्रेम के अधीन होना धर्म है अथवा शरीर रक्षा के लिए ऐसे प्रयोगों का कहां तक त्याग कर्त्तव्य है। इससे मैंने निश्चय किया कि इन प्रयोगों में से जो प्रयोग केवल धर्म की दृष्टि से किया जा रहा हो उस पर तो जमे रहना और बाकी सब बातों में डॉक्टर की आज्ञा का पालन करना चाहिए। दूध के त्याग में धर्म-भावना मुख्य थी। कलकत्ते में गाय-भैंस पर फूंके के जो जूल्म होते थे वे मेरे सामने थी। इससे दूध के त्याग पर दृढ़ रहने का निश्चय करके मैं सवेरे उठा। इतने निश्चय से मेरा मन बहुत हल्का हो गया। गोखले का डर था, पर यह विश्वास था कि वह मेरे निश्चय का आदर करेंगे।

शाम को नेशनल लिबरल क्लब में हम उनसे मिलने गए। उन्होंने तुरन्त सवाल किया-"क्यों डॉक्टर का कहना मानने का निश्चय कर लिया?"

मैंने धीरे-से जवाब दिया-"मैं सब करूंगा, पर एक बात का आग्रह आप न करें। दूध और दूध की बनी हुई चीज अथवा मांस मैं नहीं लूंगा। मेरा मन कहता है कि उन्हें न लेने में शरीर चला जाए तो उसे जाने देना धर्म है।"

गोखले ने पूछा-"यह आपका अन्तिम निर्णय है?"

मैंने जवाब दिया-"मैं समझता हूं कि मैं दूसरा जवाब नहीं दे सकता। मैं जानता हूं कि आपको इससे दुःख होगा। पर मुझे क्षमा कीजिएगा।"

गोखले ने कुछ दुःख से, पर बड़े प्रेम से कहा-"आपका निश्चय मुझे पसंद नहीं है। इसमें मैं धर्म नहीं देखता, पर अब मैं आग्रह नहीं करूंगा।" यह कहकर जीवराज मेहता की ओर मुड़कर उन्होंने कहा-"अब गांधी को तंग न कीजिएगा। वह जो कुछ कहते हैं उसके अन्दर रहकर आप जो दे सकते हों दीजिएगा।"

डॉक्टर ने नाखुशी जाहिर की, लेकिन लाचार हो गए। मुझे मूंग का पानी लेने की सलाह दी। उससे हींग का बघार देने को कहा। मैंने इसे मंजूर कर लिया। एक-दो दिन यह खुराक ली। उससे मेरी तकलीफ बढ़ी। मुझे वह मुआफिक नहीं आई। इससे मैं फिर फलाहार पर आया। डॉक्टर ने बाहरी उपचार तो किए ही। उससे थोड़ा आराम मिलता था, पर मेरे बंधनों से वह बहुत घबराते थे। इस बीच गोखले लन्दन का अक्तूबर-नवम्बर का कुहरा सहन न कर सकने के कारण देश जाने को रवाना हो गए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

42. दर्द के लिए क्या किया?

पसली का दर्द मिट नहीं रहा था, इससे मैं घबराया। औषधोपचार से नहीं, बल्कि खुराक के फेर-फार और कुछ बाहरी उपचार से दर्द जाना ही चाहिए, इतना जानता था।

सन् 1890 में अन्नाहारी और खुराक के मारफत बीमारियों का इलाज करने वाले डॉक्टर एलिन्सन से मैं मिला था। उन्हें मैंने बुलाया। वह आए। उन्हें शरीर दिखाया और दूध के बारे में अपनी आपत्ति की बात कही। उन्होंने मुझे तुरंत ढांढस दिया और कहा-"दूध की कोई आवश्यकता नहीं है, और मुझे तुम्हें कुछ दिनों तक बिना किसी चिकनाई के ही रखना है।" फिर पहले तो मुझे सिर्फ रूखी रोटी और कच्चे साग और फल बतलाए। कच्ची तरकारियों में मूली, प्याज और इसी तरह के कंद तथा हरी तरकारियां और फलों में खासतौर से नारंगी लेने को कहा। ये तरकारियां कद्दूकस पर घसकर या चटनी बनाकर खानी थी। इस तरह कोई तीन दिन चला। पर कच्चे साग बहुत मुआफिक नहीं पड़े। मेरा शरीर ऐसा न था कि इस प्रयोग की पूरी परीक्षा कर सकूं, और ऐसी श्रद्धा भी न थी। इसके सिवा उन्होंने चौबीसों घंटे खिड़कियां खुली रखने, रोज गुनगुने पानी से नहाने, दर्द वाले भाग पर तेल मालिश करने और पाव-आध घंटा खुली हवा में घूमने की सलाह दी। यह सब मुझे रुचा। घर में फ्रेंच तरीके की खिड़कियां थीं। उन्हें पूरा खोल देने से बारिश का पानी अन्दर आता था। ऊपरी रोशनदान खुलने वाला नहीं था। इससे उसका पूरा शीशा तुड़वाकर उससे चौबीसों घंटे हवा आने का सुभीता कर लिया। फ्रेंच खिड़कियां इतनी खुली रखता कि बौछार न आए।

यह सब करने से तबीयत कुछ सुधरी। बिल्कुल अच्छी तो नहीं हुई। कभी-कभी लेडी सिसिलिया राबर्ट्स मुझे देखने आती थीं। उनसे अच्छा परिचय था। उनकी मुझे दूध पिलाने की प्रबल इच्छा थी। वह मैं लेता न था, इससे दूध के गुण रखने वाले पदार्थों की उन्होंने तलाश की। उनके किसी मित्र ने उन्हें माल्टेड मिल्क बताया और अनजान में कह दिया कि इसमें दूध का स्पर्श तक नहीं होता। यह रासायनिक प्रयोग से तैयार की हुई दूध के गुणवाली बुकनी है। मैं जान गया था कि लेडी राबर्ट्स को मेरी धर्म भावना के प्रति बड़ा आदर था। इसमें मैंने उस बुकनी को पानी में मिलाकर पिया। मुझे उसमें, दूध का स्वाद आया। मैंने 'पानी पी घर पूछने वाली' कहावत की। बोतल पर का चिट पढ़ने पर मालूम हुआ कि यह तो दूध से ही बनाई हुई चीज है। इसलिए एक ही बार पीने पर उसे छोड़ना पड़ा। लेडी राबर्ट्स को सूचित किया और लिखा कि आप तनिक भी फिक्र न करें। वह जल्दी-जल्दी मेरे यहां आईं और खेद प्रकट किया। उनके मित्र ने बोतल पर का लेबल पढ़ा ही न था। मैंने इस भली बहन को आश्वासन दिया और इसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लिए उनसे माफी माँगी कि उनकी कष्ट करके लाई हुई चीज का मैं उपयोग न कर सका। यह भी जता दिया कि अनजान में मैंने बुकनी ले ली है, इसके लिए मुझे कोई पछतावा नहीं है, न प्रायश्चित्त की जरूरत है।

लेडी राबर्ट्स के साथ के जो और मधुर स्मरण हैं उन्हें मैं छोड़ देना चाहता हूं। ऐसे स्मरण बहुत हैं, जिनका महान आश्रय अनेक विपत्तियों और विरोधों में मुझे मिल सका है। श्रद्धालु ऐसे मधुर स्मरणों में यह पाता है कि ईश्वर दुःख रूपी कड़वी दवा देता है तो उसके साथ मैत्री के मीठे अनुपान भी जरूर देता है।

डॉक्टर एलिन्सन जब दूसरी बार देखने आए तो उन्होंने अधिक स्वतंत्रता दी और चिकनाई के लिए सूखे मेवे अर्थात् मूंगफली आदि की गिरी का मक्खन या जैतून का तेल लेने को कहा। कच्चे साग न रुचें तो उन्हें पकाकर भात के साथ खाने की सलाह दी। यह सुधार मुझे बहुत अनुकूल पड़ा।

पर दर्द जड़ से न गया। सावधानी की जरूरत तो थी ही। खाट न छोड़ सका। डॉक्टर मेहता समय-समय पर आकर देख ही जाया करते थे। "मेरा इलाज कीजिए तो अभी अच्छा कर दूं", यह तो सदा उनकी जबान पर रहता था। यह सब हो रहा था कि इतने में एक दिन मि. राबर्ट्स आ पहुंचे और उन्होंने देश जाने का आग्रह किया। "इस हालत में आप नेटली कदापि न जा सकेंगे। कड़ी सर्दी तो अभी आगे पड़ेगी। मेरा तो आपसे विशेष अनुरोध है कि आप अब देश जाएं और वहां अच्छे हों। तब तक लड़ाई चलती रही तो मदद करने के बहुत मौके आपको मिलेंगे। अन्यथा आपने यहां जो किया है उसे मैं कम नहीं मानता।"

मैंने यह सलाह मान ली और देश जाने की तैयारी की।

43 : रवाना

मि. केलनबैक हिन्दुस्तान जाने के निश्चय से मेरे साथ निकले थे। विलायत में हम साथ ही रहते थे। पर लड़ाई की वजह से जर्मनों पर कड़ी नजर रखी जाती थी; अतः केलनबैक के साथ आ सकने के सम्बन्ध में हम सबको संदेह था। उनके लिए पासपोर्ट पाने की मैंने बड़ी कोशिश की। मि. राबर्ट्स स्वयं उनके लिए पासपोर्ट दिला देने को तैयार थे। उन्होंने सारी बातें तार से वाइसराय को सूचित कीं, पर लार्ड हार्डिंग का सीधा और दो-टूक जवाब आया-"हमें खेद है, इस समय ऐसी कोई जोखिम उठाने को हम तैयार नहीं हैं।" हम सबने इस जवाब का औचित्य समझा। केलनबैक के वियोग का दुःख मुझे तो हुआ ही, पर मैंने देखा कि उन्हें मुझसे भी अधिक हुआ है। वह हिन्दुस्तान आ पाते तो आज एक सुंदर किसान और बुनकर का सादा जीवन बिताते होते। अब वह दक्षिण अफ्रीका में अपना असली जीवन बिता रहे हैं और गृहनिर्माणकला-सम्बन्धी व्यवसाय धड़ल्ले से चला रहे हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने तीसरे दरजे का टिकट लेने की कोशिश की, पर पी. एंड ओ. के जहाज में तीसरे दरजे का टिकट न मिलता था, इससे दूसरे दरजे का लेना पड़ा। दक्षिण अफ्रीका के साथ बांधकर लाया हुआ कुछ फलाहार का सामान, जो जहाज में न मिल सकता था, साथ ले लिया था और चीजें तो जहाज में मिल जाती थीं।

डॉ. मेहता ने शरीर को मीड्स प्लास्टर की पट्टी से बांध दिया था और उसे बंधे रहने देने की सिफारिश की थी। मैंने दो दिन तो उसे बरदाश्त किया, पर आगे न सह सका। इसलिए थोड़ी मेहनत से उसे उतार दिया और नहाने-धोने लगा। खाने में तो खासतौर से मेवे और ताजे फल ही लेने लगा। तबीयत दिन-दिन सुधरती गई और स्वेज नहर में पहुंचते-पहुंचते तो बहुत अच्छी हो गई। शरीर निर्बल था, फिर भी मेरा डर चला गया और मैं धीरे-धीरे रोज थोड़ी कसरत बढ़ाता गया। मुझे जान पड़ा कि शुभ परिवर्तन केवल शुद्ध और शीतोष्ण पन का प्रसाद है।

पिछले अनुभव का कारण हो या चाहे जिस कारण से, पर अंग्रेज यात्रियों में और हम लोगों में मैंने जो फर्क यहां पाया वह दक्षिण अफ्रीका से आते हुए भी न पाया था। वहां भी फर्क तो था, पर यहां कुछ और ही तरीका दिखाई दिया। किसी-किसी अंग्रेज के साथ बातें होतीं, लेकिन वह 'साहब सलामत' भर को ही। हृदय की भेंट नहीं हुई। स्टीमर में और दक्षिण अफ्रीका में हृदय की भेंट हो पाई थी। इस भेद का कारण मैंने यही समझा कि इन जहाजों पर अंग्रेजों के मन में 'मैं शासक हूं' और हिन्दुस्तानियों के मन में 'मैं पराधीन हूं' की भावना जाने-अनजाने काम कर रही थी।

ऐसे वातावरण में से जल्दी निकलने और देश पहुंचने को मैं उतावला हो रहा था। अदन पहुंचने पर कुछ घर पहुंच जाने का-सा आभास हुआ। अदनवालों के साथ हमारा समुचित सम्बन्ध दक्षिण अफ्रीका में जुड़ गया था; क्योंकि भाई कैकोबाद कावसजी दीनशा डरबन हो आए थे और उनसे तथा उनकी पत्नी से मेरा अच्छा परिचय हो चुका था। थोड़े ही दिनों में हम बम्बई पहुंचे। जिस देश में 1905 में ही लौटने की आशा रखता था, वहां दस बरस बाद पहुंच पाने पर मुझे बड़ा आनंद हुआ। बम्बई में गोखले ने स्वागत इत्यादि का आयोजन कर रखा था। उनकी तबीयत नाजुक थी, फिर भी बम्बई में गोखले ने स्वागत इत्यादि का आयोजन कर रखा था। उनकी तबीयत नाजुक थी, फिर भी वे बम्बई आ गए थे। उनसे भेंट करने, उनके जीवन में समाकर, अपने ऊपर से प्यार उतार डालने की हविस से मैं बम्बई पहुंचा था, पर विधाता ने मेरे लिए दूसरा ही कुछ सोच रखा था।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

44 : वकालत के कुछ संस्मरण

हिन्दुस्तान में आने के बाद मेरा जीवन कैसे प्रवाहित हुआ इस वर्णन आरम्भ करने के पहले दक्षिण अफ्रीका के जीवन के जिन भागों को मैंने जानबूझकर छोड़ दिया था, उनका कुछ अंश यहां दे देना जरूरी मालूम होता है। कुछ वकील दोस्तों ने वकालत के दिनों के और वकील के रूप में हुए अनुभवों के संस्मरण सुनाने की मांग की है। ये स्मरण इतने अधिक हैं कि उन्हें सुनाने बैठूं तो उन्हीं की एक किताब बन जाए, ऐसे वर्णन मेरी निश्चित की हुई मर्यादा से बाहर पड़ते हैं। पर कुछ को, जिनका सम्बन्ध सत्य से है, देना शायद अनुचित न होगा।

जहां तक मुझे याद है, मैं यह तो बता चुका हूं कि वकालत के पेशे में मैंने कभी झूठ से काम नहीं लिया और मेरी वकालत का बड़ा भाग केवल सेवा के लिए ही अर्पित था और उसके लिए जेब खर्च के सिवा मैं कुछ न लेता था। कितनी ही बार वह भी छोड़ देता था। मैंने मान रखा था कि इतनी प्रतिज्ञा इस विभाग के लिए काफी है, पर मित्रों की मांग उससे आगे जाती है। वे मानते हैं कि यदि मैं सत्य के पालन के प्रसंगों का जैसा-तैसा भी वर्णन दे दूं तो वकीलों को उसमें से कुछ जानने लायक मिल जाएगा।

मैं विद्यार्थी-अवस्था में भी सुनता था कि वकालत के पेशे में झूठ बोले बिना नहीं चल सकता। मुझे तो झूठ बोलकर न तो पद लेना था और न पैसा। इसलिए इन बातों का असर मुझ पर न पड़ता था।

दक्षिण अफ्रीका में इसकी परीक्षा तो बहुत बार हुई थी। मैं जानता था कि प्रतिपक्षी के गवाह सिखाए हुए हैं और मैं तनिक भी मुवक्किल या गवाह को झूठ बोलने को उत्साहित कर दूं तो मुवक्किल का मुकदमा डिग्री हो जाएगा। पर मैंने सदा इस लोभ को दूर रखा। ऐसे एक ही मौके की मुझे याद है जब मुवक्किल का मुकदमा जीतने के बाद मुझे यह शक हुआ कि मुवक्किल ने मुझे धोखा दिया है। मेरे अन्तर में भी सदा यही रहता था कि यदि मुवक्किल का मुकदमा सच्चा हो तो वह जीत जाएं और झूठा हो तो हार जाए। मेहनताना लेने में मैंने हार-जीत पर मेहनताने की दर कभी ठहराई हो, उसकी याद मुझे नहीं है। मुवक्किल हारे चाहे जीते, मैं तो सदा मेहनताना ही मांगता था और जीत होने पर भी उसी की आशा रखता था। मुवक्किल से पहले ही कह देता था-"झूठा केस हो तो मेरे पास मत आना। गवाह को सिखाने-पढ़ाने की तो मुझसे उम्मीद ही न रखना।" अन्त में मेरी साख तो ऐसी हो गई कि झूठे मुकदमे मेरे पास आते ही न थे। ऐसे मुवक्किल भी मेरे पास थे जो अपने सच्चे मामले तो मेरे पास लाते थे और जिनमें जरा भी खोट-खराबी होती उन्हें दूसरे वकील के पास ले जाते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक अवसर ऐसा आया, जब मेरी बड़ी कड़ी परीक्षा हुई। मेरे अच्छे-से-अच्छे मुवक्किलों में से एक का यह मुकदमा था। उसमें बहीखाते की बड़ी उलझनें थीं। मुकदमा बड़ा लम्बा चला था। उसके कुछ-कुछ हिस्से अनेक अदालतों में गए थे। अन्त में अदालत के चुने हुए हिसाब जानने वाले पंचों को उसका हिसाबी हिस्सा सौंपा गया था। पंच के फैसले में मेरे मुवक्किल की पूरी जीत थी, पर उसके हिसाब में एक छोटी किन्तु गम्भीर भूल रह गई थी। जमाखर्च की रकम पंच के दृष्टिकोण से इधर की उधर ले ली गई थी। प्रतिपक्षी ने पंच का यह फैसला रद्द करने की दरख्वास्त दी। मुवक्किल की ओर से मैं छोटा (जूनियर) वकील था। बड़े वकील ने पंच की भूल देखी थी, पर उनका मत था कि पंच की भूल कबूल करना मुवक्किल का फर्ज नहीं है। उनकी पक्की राय थी कि अपने प्रतिपक्षी की किसी बात को कबूल करने के लिए कोई वकील मजबूर नहीं है। मैंने कहा, "इस मुकदमे में जो भूल है, वह स्वीकार की जानी चाहिए।"

बड़े वकील ने कहा, "ऐसा होने पर इस बात का पूरा डर है कि अदालत सारे फैसले को ही रद्द कर दे और ऐसी जोखिम में मुवक्किल को कोई होशियार वकील नहीं डालेगा। मैं तो यह जोखिम उठाने को कभी तैयार नहीं हो सकता। मुकदमा फिर चलाना पड़े तो मुवक्किल कितने खर्च में पड़ेगा और कौन कह सकता है कि आखिरी नतीजा क्या होगा?"

इस बातचीत के समय मुवक्किल उपस्थित था। मैंने कहा-"मैं तो समझता हूं कि मुवक्किल को और हमें दोनों को यह जोखिम तो उठानी ही चाहिए और हमारे स्वीकार न करने पर भी अदालत भूल भरे फैसले को भूल मालूम होने पर बहाल रखेगी, इसी का क्या भरोसा है? और भूल सुधारने में मुवक्किल को नुकसान उठाना भी पड़े तो क्या हर्ज होगा?"

बड़े वकील ने कहा-"लेकिन हम गलती मानें तब न?"

मैंने जवाब दिया-"हमारे भूल स्वीकार न करने पर भी अदालत भूल न पकड़ेगी या विरोधी पक्ष भी पता नहीं लगाएगा, इसका भी क्या भरोसा है?"

बड़े वकील ने दृढ़ता से पूछा-"तो इस मुकदमे में आप बहस करेंगे? भूल कबूल करने की शर्त पर मैं उसमें हाजिर रहने को तैयार नहीं।"

मैंने नम्रतापूर्वक कहा-"यदि आप न खड़े होंगे और मुवक्किल चाहे तो मैं खड़ा होने को तैयार हूं। जो भूल कबूल न की जाए तो मैं समझता हूं मुझसे इस मुकदमे में काम होना असम्भव है।"

इतना कहकर मैंने मुवक्किल की ओर देखा। मुवक्किल जरा उलझन में पड़ा। मुकदमे में मैं तो शुरूआत से ही था। मुवक्किल का विश्वास मुझ पर पूरा था। मेरे स्वभाव से भी पूरी तरह से वाकिफ था। उसने कहा-"ठीक है, तब आप ही अदालत में पैरवी करेंगे। भूल कबूल कर लें। हारना नसीब में होगा तो हार जाएंगे। सच्चे का रखवाला तो राम है न?" मुझे खुशी हुई। मैंने दूसरे जवाब की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

उम्मीद ही न रखी थी। बड़े वकील ने मुझे फिर चेताया और मेरे 'हठ' के लिए मुझ पर तरस खाया और धन्यवाद भी दिया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदालत में क्या हुआ, यह आगे बताया जाएगा।

45 : चालाकी?

अपनी सलाह के औचित्य के विषय में मुझे तनिक भी शंका नहीं थी, पर उस मुकदमे की पूरी पैरवी करने की अपनी योग्यता के सम्बन्धों में बहुत शंका थी। ऐसे जोखिम वाले मामले में बड़ी अदालत में मेरा बहस करना मुझे बहुत जोखिम भरा लगा। इससे मन में कांपते-कांपते मैं न्यायाधीश के समाने उपस्थित हुआ। ज्योंही उक्त भूल की बात निकली कि एक न्यायाधीश बोल उठे-"यह चालाकी नहीं कहलाएगी?"

मैं जल-भुन गया। जहां चालाकी की गंध तक नहीं थी वहां चालाकी का शक होना। असह्य लगा। मैंने मन में सोचा-"जहां पहले से ही जज का खयाल बिगड़ा हुआ है, वहां वह मुश्किल मुकदमा कैसे जीता जा सकता है?"

अपने गुस्से को दबाया और शांत होकर जवाब दिया-"मुझे आश्चर्य होता है कि आप पूरी बात सुनने के पहले ही चालाकी का इलजाम लगाते हैं!"

जज ने कहा-"मैं इलजाम नहीं लगाता। केवल शंका करता हूं।"

मैंने जवाब दिया-"आपकी शंका ही मुझे आरोप रूप लगती है। मैं अपनी हकीकत समझा लूं और फिर शंका की गुंजाइश हो तो आप जरूर शंका करें।"

जज ने शांत होकर कहा-"मुझे खेद है कि मैंने आपको बीच में ही रोका। आप अपनी बात समझाकर कहिए।"

मेरे पास पुष्टिकरण के लिए पूरा-पूरा मसाला था। शुरू में ही शंका पैदा हुई और जज का ध्यान मैं अपनी दलील की ओर खींच सका, इससे मुझमें हिम्मत आ गई और मैंने मामला ब्यौरेवार समझा दिया। जजों ने उसे धैर्यपूर्वक सुना और वे समझ गए कि भूल अनवधानता वश ही हुई है और बड़े परिश्रम से तैयार किया हुआ हिसाब रद्द करना मुनासिब न मालूम हुआ।

प्रतिपक्षी के वकील को तो विश्वास ही था कि भूल स्वीकार लेने के बाद उन्हें ज्यादा बहस करने की जरूरत नहीं रह जाती; पर जज ऐसी स्पष्ट और सुधर सकने वाली भूल को लेकर पंच का फैसला रद्द करने को बिलकुल तैयार न थे। प्रतिपक्षी वकील ने बहुत माथापच्ची की, पर जिस जज को शंका पैदा हुई थी वही मेरे हिमायती बन बैठे।

जज बोले-"मि. गांधी ने गलती कबूल न की होती तो आप क्या करते?"

"जिस हिसाब-विशेषज्ञ को हमने नियुक्त किया है उससे अधिक होशियार या ईमानदार विशेषज्ञ हम कहां से लाएं?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमें मानना चाहिए कि आप अपने मुकदमे को अच्छी तरह समझते हैं। किसी भी हिसाब के अनुभवी से जो गलती हो सकती है उसके अलावा कोई दूसरी गलती अगर आप न बता सकें तो कायदे की एक मामूल-सी गलती के लिए दोनों पक्षों को नये सिरे से खर्च में डालने को अदालत तैयार नहीं हो सकती। और अगर आप कहें कि यही अदालत यह मुकदमा नये सिरे से सुने तो यह मुमकिन न होगा।"

इस और इस तरह की दूसरी दलीलों से प्रतिपक्षी के वकील को शांत करके भूल सुधार कराकर फिर फैसला देने का हुक्म पंचों को देकर अदालत ने उस सुधरे हुए फैसले को बहाल रखा।

मेरे हर्ष की सीमा न रही। मुवक्किल और बड़े वकील खुश हुए और वकालत के काम में भी सत्य की रक्षा करते हुए काम हो सकता है, मेरी यह धारणा दृढ़ हो गई।

पर पाठकों को यह बात याद रखनी चाहिए कि पेशे के लिए की हुई वकालत-मात्र के मूल में जो दोष विद्यमान है उसे यह सत्य की रक्षा ढांक नहीं सकती।

46. मुवक्किल साथी हो गये

नेटाल और ट्रांसवाल की वकालत में यह फर्क था कि नेटाल में एडवोकेट और एटर्नी का भेद होने पर भी, दोनों सब अदालतों में समान रूप से वकालत कर सकते थे और ट्रांसवाल में बम्बई का सा भेद था। वहां मुवक्किल सम्बन्धी सारा व्यवहार एडवोकेट-एटर्नी की मारफत ही कर सकता है। नेटाल में मैंने एडवोकेट की सनद ली थी, ट्रांसवाल में एटर्नी की। एडवोकेट रहकर हिन्दुस्तानियों के साथ मेरा सीधा सम्बन्ध नहीं हो सकता था और गोरे एटर्नी मुझे मुकदमे दें, ऐसा वातावरण दक्षिण अफ्रीका में नहीं था।

ट्रांसवाल में इस तरह वकालत करते हुए मैजिस्ट्रेट के इजलास पर बहुत बार मैं जा सकता था। ऐसा करते हुए एक अवसर तो ऐसा आया कि जब विचाराधीन मुकदमे में मैंने देखा कि मेरे मुवक्किल ने तो मुझे ठगा था। उसका मुकदमा झूठा था। वह कटघरे में खड़ा कांप रहा था मानो गिर पड़ता हो। इससे मैंने मैजिस्ट्रेट को मुवक्किल के खिलाफ फैसला देने को कहा और बैठ गया। प्रतिपक्षी का वकील दंग रह गया। मैजिस्ट्रेट खुश हुआ। मुवक्किल को मैंने उलाहना दिया। उसे पता था कि मैं झूठे मुकदमे नहीं लेता। उसने यह बात कबूल की और मैं मानता हूं कि मैंने खिलाफ फैसला मांगा, इसके लिए वह नाराज नहीं हुआ। जो हो, पर मेरे बर्ताव का बुरा असर मेरे धंधे पर नहीं हुआ और अदालत में मेरा काम आसान हो गया। मैंने यह भी देखा कि मेरी इस सत्यपूजा से वकील-बंधुओं में मेरी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रतिष्ठा बढ़ गई थी और विचित्र संयोगों के होते हुए भी उनमें से कितनों की प्रीति में सम्पादन कर सका था।

वकालत करते हुए मैंने यह एक आदत भी डाल ली थी कि अपना अज्ञान मैं न मुवक्किल से छिपाता था, न वकील से। जहां-जहां मैं समझ न पाता वहां-वहां मुवक्किल को दूसरे वकील के पास जाने को कहता या वह मुझे रखे तो अधिक अनुभवी वकील से सलाह लेकर काम करने को कहता था। इस सरल व्यवहार के कारण मुवक्किलों का मैं असीम प्रेम और विश्वास प्राप्त कर सका था। बड़े वकील के पास जाने से जो फीस देनी पड़ती उसके पैसे भी वे खुशी से देते थे।

इस विश्वास और प्रेम का पूरा-पूरा लाभ मुझे सार्वजनिक काम में मिला। पिछले प्रकरणों में मैं बता चुका हूं कि दक्षिण अफ्रीका में वकालत करने का हेतु केवल लोकसेवा था। इस सेवा के लिए भी मुझे लोगों का विश्वास सम्पादन करने की आवश्यकता थी। उदार हृदय के भारतीयों ने पैसा लेकर की हुई वकालत को भी सेवारूप माना और मैंने जब उन्हें उनके हकों के लिए जेल के कष्ट उठाने की सलाह दी तो उनमें से बहुतेरों ने उस सलाह का स्वीकार ज्ञानपूर्वक करने की बजाय मेरे ऊपर उनकी जो श्रद्धा और प्रेम था उसके दबाव में पड़कर किया था।

यह लिखते हुए वकालत के ऐसे अनेक मधुर स्मरण मेरी कलम पर आ रहे हैं। सैकड़ों मुवक्किल न रहकर दोस्त हो गये थे। सार्वजनिक सेवा में मेरे सच्चे साथी बन गए थे और मेरे कठिन जीवन को उन्होंने सरस बना दिया था।

47 : मुवक्किल जेल से कैसे बचा?

पारसी रुस्तमजी के नाम से तो इन प्रकरणों के पाठक भली-भांति परिचित हैं। वह एक ही समय में मेरे मुवक्किल और सार्वजनिक काम में साथी बने अथवा उनके बारे में यह भी कहा जा सकता है कि वह पहले साथी बने और फिर मुवक्किल। उनका विश्वास मैंने इस सीमा तक प्राप्त किया था कि अपनी निजी और घरेलू बातों में भी वह मेरी सलाह लेते और उसका अनुसरण करते थे। उन्हें बीमारी होती तो भी मेरी सलाह की जरूरत जान पड़ती और हमारी रहन-सहन में बड़ा फरक होने पर भी वह अपने आप पर मेरे ही इलाज आजमाते थे।

इन साथी पर एक बार भारी विपत्ति आ पड़ी। यद्यपि अपने व्यापार की बहुत-सी बातें मुझसे किया करते थे, फिर भी एक बात उन्होंने मुझसे छिपा रखी थी। पारसी रुस्तमजी जकात (चुंगी) की चोरी किया करते थे। वह बम्बई-कलकत्ते से माल मंगाया करते थे। इसी के सिलसिले में यह चोरी चलती थी। सब अधिकारियों से उनका अच्छा मेलजोल था, इससे कोई उन पर शक नहीं करता था। जो बीजक वह पेश करते उसी पर चुंगी ले ली जाती। ऐसे भी अधिकारी रहे होंगे कि जो उनकी चोरी की ओर से आंखें बंद भी कर लेते होंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर अखा भगत की वाणी कहीं गलत हो सकती है?

काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरी नुं धन।[1]

पारसी रुस्तमजी की चोरी पकड़ी गई। दौड़े मेरे पास आए। आंखों से आंसू बह रहे थे और वह कह रहे थे-"भाई! मैंने आपसे कपट किया है। मेरा पाप आज प्रकट हो गया। मैंने जकात की चोरी की है। अब मेरे भाग्य में तो जेल ही है। और मैं तो बरबाद होने वाला हूं। इस आफत से तो आप ही मुझे बचा सकते हैं। मैंने आपसे कुछ भी नहीं छिपाया। पर व्यापार की चोरी की बात आपसे क्या कहनी है, यह सोचकर मैंने यह चोरी छिपा रखी है। अब पछताता हूं।"

मैंने धीरज देकर कहा-"मेरा तरीका तो आप जानते हैं। छुड़वाना न छुड़वाना तो खुदा के हाथ है। अपराध स्वीकृत करके छुड़ाया जा सके तभी मैं छुड़वा सकता हूं।"

इन भले पारसी का चेहरा उतर गया।

रुस्तमजी सेठ बोले-"लेकिन मैंने आपके सामने कबूल कर लिया, इतना काफी नहीं है,"

मैंने धीरे-से जवाब दिया-"आपने अपराध तो सरकार का किया और कबूलते हैं मेरे सामने, तो इससे क्या होता है?"

पारसी रुस्तम जी ने कहा-"मुझे अंत में करना तो है वही, जो आप कहते हैं, पर मेरे पुराने वकील हैं उनकी सलाह तो लीजियेगा न, वह मेरे मित्र है?"

जांच से मालूम हुआ कि चोरी बहुत दिनों से चलती थी। पकड़ी गई चोरी तो थोड़ी ही थी। पुराने वकील के पास हम लोग गये। उन्होंने केस की जांच की। वकील ने कहा-"यह मामला जूरी के सामने जाएगा। यहां के जूरी हिन्दुस्तानी को कहां छोड़ने वाले हैं, पर मैं आशा तो नहीं छोड़ता।"

इस वकील से मेरा अधिक परिचय नहीं था। पारसी रुस्तमजी ने जवाब दिया-"आपको धन्यवाद देता हूं, पर इस मामले में मुझे मि. गांधी की सलाह के अनुसार चलना है। वह मुझे ज्यादा जानते हैं। आप इन्हें जो सलाह जरूरी हो देते रहियेगा।"

इस मामले को यों निबटाकर हम रुस्तमजी सेठ की दुकान पर गए। मैंने समझाया कि मैं इस मामले को अदालत में ले जाने लायक नहीं मानता। मुकदमा चलाना न चलाना जकात के अफसर के हाथ में है। उसे भी सरकार के मुख्य वकील की सलाह के अनुसार चलना होगा। मैं दोनों से मिलने को तैयार हूं। पर मुझे तो जिस चोरी के बारे में वे नहीं जानते उसको भी स्वीकार करना पड़ेगा। मैं सोचता हूं कि जो दंड वे ठहराए उसे कबूल कर लेना चाहिए। बहुत करके

1. कच्चा पारा खाना और चोरी का धन खाना एक-सा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तो वह मान जाएगा। पर शायद न माने तो जेल के लिए तैयार रहना होगा। मेरा तो मत है कि लज्जा जेल में नहीं है, बल्कि चोरी करने में है। लज्जा का काम तो हो चुका। जेल जाना पड़े तो उसे प्रायश्चित समझिएगा। सच्चा प्रायश्चित तो अब आगे जकात की चोरी न करने की प्रतिज्ञा में है।

रुस्तमजी सेठ इन बातों को ठीक तौर से समझ गए, यह मैं नहीं कह सकता। वह बहादुर आदमी थे, पर इस वक्त हिम्मत हार गए थे। उनकी इज्जत जाने का वक्त आ गया था और उन्हें यह भी डर था कि कहीं उनकी अपनी मेहनत से बनाई हुई इमारत ढह न जाए।

वह बोले–"मैं आपसे कह चुका हूं कि मेरी गर्दन आपके हाथ में है। आपको जैसा करना हो वैसा कीजिए।"

मैंने इस मामले में अपनी सारी विनय की शक्ति लगा दी। मैं अधिकारी से मिला। सारी चोरी की बात निर्भय होकर उससे कह दी। सब कागज–पत्र दिखा देने को कहा और पारसी रुस्तमजी के पश्चात्ताप की बात भी कही। अफसर ने कहा–"मुझे यह वृद्ध पारसी भला लगता है। उसने बेवकूफी तो की है, पर मेरा फर्ज तो आप जानते हैं। मुझे तो बड़े वकील जैसा कहेंगे वैसा करना है। अतः अपनी समझाने की शक्ति का उपयोग आपको उनके सामने करना है।"

मैंने कहा–"पारसी रुस्तमजी को अदालत में घसीटने पर जोर न दिया जाए तो मुझे संतोष हो जाएगा।"

इस अधिकारी से अभय–दान प्राप्त करके मैंने सरकारी वकील से पत्र–व्यवहार आरम्भ किया। उनसे मिला। मुझे कहना चाहिए कि मेरी सत्यप्रियता उनकी निगाह में आ गई। मैंने उनके सामने सिद्ध कर दिया कि मैं कुछ छिपा नहीं रहा हूं।

इसमें या किसी दूसरे मामले में उनसे साबिका पड़ने पर उन्होंने मुझे प्रमाणपत्र दिया था–"मैं देखता हूं कि आप 'ना' में जवाब तो लेने वाले ही नहीं हैं।"

रुस्तमजी पर मुकदमा नहीं चला। उनकी कबूल की हुई जकात की चोरी के दूने रुपये लेकर मुकदमा उठा लेने का हुक्म निकल गया।

रुस्तमजी ने अपनी जकात–चोरी की कहानी लिखकर शीशे में मढ़वा ली और दफ्तर में टांगकर अपने वारिसों और साथी व्यापारियों को चेतावनी दी।

रुस्तमजी सेठ के व्यापारी मित्रों ने मुझे चेताया–"यह सच्चा वैराग्य नहीं है, श्मशान–वैराग्य है।"

इसमें कितनी सच्चाई थी, यह मैं नहीं जानता, यह बात भी मैंने रुस्तमजी सेठ से कही थी। उनका जवाब यह था–"आपको धोखा देकर मैं कहां जाऊंगा?"

●

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचवाँ भाग

1 पहला अनुभव

मेरे देश में अपने के पहले फिनिक्स से जो लोग वापस आने वाले थे वे आ पहुंचे थे। हिसाब से तो मैं उनसे पहले पहुंचने वाला था, लेकिन लड़ाई की वजह से मैं लंदन में रुक गया था। इसलिए मेरे सामने यह एक सवाल था कि फिनिक्स वासियों को कहां रखूंगा। मेरे मन में यह था कि सब साथ ही रह सकें और फिनिक्स-आश्रम का जीवन बिता सकें तो अच्छा है। किसी आश्रम-संचालक को मैं जानता न था कि उन्हें वहां जाने को लिख सकूं। इससे मैंने उन्हें लिखा कि वे एंड्रयूज से मिलें और वह जैसी सलाह दें वैसा करें।

वे पहले कांगड़ी गुरुकुल मे रखे गए, जहां स्वर्गीय श्रद्धानंदजी ने उन्हें अपने बच्चों की भांति रखा। इसके बाद वे शांतिनिकेतन में रखे गये। वहां कविवर और अनके समाज ने उन पर इसी प्रकार प्रेम बरसाया। इन दो स्थानों में उन्हें जो अनुभव मिला वह उनके लिए और मेरे लिए भी बहुत उपयोगी साबित हुआ।

कविवर, श्रद्धानंदजी और श्री सुशील रुद्र को मैं एंड्रयूज की 'त्रिमूर्ति' मानता था। दक्षिण अफ्रीका में वह (एंड्रयूज) इन तीनों की सराहना करते थकते ही न थे। हमारे दक्षिण अफ्रीका के स्नेह-सम्मेलन को अनेक स्मरणों में यह तो मेरी आंखों के सामने फिरा ही करता हैं कि इन तीन महापुरुषों के नाम सदा उनके हृदय में और होंठ पर रहते थे। सुशील रुद्र के पास भी एंड्रयूज ने मेरे बच्चों को रखा था। रुद्र के पास आश्रम नहीं था, अपना घर ही था। पर उस घर का कब्जा उन्होंने मेरे इस कुटुम्ब को सौंप दिया था। उनके लड़के-लड़की इनके साथ एक ही दिन में ऐसे मिलजुल गये कि उन्हें फिनिक्स भूल गया।

मैं जब बम्बई बंदर पर उतरा तभी मुझे खबर मिली कि उस समय यह कुटुम्ब शांतिनिकेतन में था। अतः गोखले से मिलकर मैं वहां जाने को अधीर हो गया था।

बम्बई में अभिनंदन स्वीकार करने में ही मुझे एक छोटा-सा सत्याग्रह करना पड़ गया। मि. पेटिट के यहां मेरे स्वागत में जलसा किया गया था। वहां तो मेरी हिम्मत गुजराती में जवाब देने की न हुई। इस महल में और आंखों में चकाचौंध पैदा करने वाले वैभव में गिरमिटियों के सहवास में रहा हुआ मैं अपने मन में देहाती-सा लगा। आज की मेरी पोशाक की तुलना में उस समय पहना हुआ कुरता, साफा वगैरा अपेक्षाकृत सुधरा हुआ पहनावा कहा जायेगा, फिर भी मैं सजे-बजे समाज में अलग-सा लग रहा था। पर ज्यों-त्यों वहां तो मैंने अपना काम निभाया और फिरोजशाह मेहता की गोद में आश्रय लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसके बाद गुजराती भाई जलसा किये बिना कब मानने वाले थे। स्व. उत्तमलाल त्रिवेदी ने इसका आयोजन किया था। इस उत्सव का कुछ कार्यक्रम मैंने पहले से जान लिया था। मि. जिन्ना भी गुजराती होने के नाते उसमें उपस्थित थे। वह अध्यक्ष थे या प्रधान वक्ता, यह मैं भूल गया हूं। पर उन्होंने अपना संक्षिप्त और मधुर भाषण अंग्रेजी में किया। मेरी धुंधली स्मृति के अनुसार अन्य भाषण भी बहुत करके अंग्रेजी मे ही हुए। अब मेरे बोलने की बारी आई तो मैंने उत्तर गुजराती में ही दिया और गुजराती तथा हिंदुस्तानी के प्रति अपना पक्षपात मैंने थोड़े शब्दों में प्रकट करके, गुजरातियों की सभा में अंग्रेजी के उपयोग के प्रति अपना नम्र विरोध दिखाया। मेरे मन में ऐसा करने में हिचक तो थी ही। मुझे शंका हो रही थी कि लम्बी मुद्दत की गैरहाजिरी के बाद परदेश से लौटा हुआ अनुभवहीन आदमी चलते प्रवाह के विरुद्ध जाए, इसमें कहीं अविवेक तो नहीं है। पर गुजरती में उत्तर देने की हिम्मत की, इसका किसी ने उलटा अर्थ नहीं लगया और सबने मेरा विरोध सहन कर लिया, यह देखकर मझे खुशी हुई। इस सभा के अनुभव से मैंने यह नतीजा निकाला कि अपने नए जान पड़ने वाले दूसरे विचारों को जनता के सामने रखने मे मुझे अड़चन नहीं पड़ेगी।

इस प्रकार बम्बई में दो-एक दिन रहा और आरम्भिक अनुभव लेकर मैं गोखले की आज्ञा से पूना गया।

2 : गोखले के साथ पूना में

मेरे बम्बई पहुंचते ही गोखले ने मुझे खबर दी-"गवर्नर तुमसे मिलना चाहते हैं और अच्छा हो कि पूना आने के पहले तुम उनसे मिलते जाओ।" अतः मैं उनसे मिलने गया। साधारण बातें करने के बाद उन्होंने कहा-"आपसे मैं एक वचन मांगता हूं। मैं यह चाहता हूं कि सरकार के बारे में आपको कुछ करना हो तो उसके पहले आप मुझसे मिल लें और बातें कर लें।"

मैंने जवाब दिया-"यह वचन देना मेरे लिए बहुत आसान है, क्योंकि सत्याग्रह की हैसियत से मेरा यह नियम ही है कि किसी के खिलाफ कोई कदम उठाना हो तो पहले तो उसका दृष्टिबिंदु उसी से समझ लूं, और उसके जितना अनुकूल होना सम्भव हो उतना हो जाऊं। दक्षिण अफ्रीका में इस नियम का मैंने सदा पालन किया है, और यहां भी वैसे ही करने वाला हूं।"

लॉर्ड विलिंग्डन ने धन्यवाद दिया और कहा-"जब मिलना हो तब आप मुझसे तुरंत मिल सकेंगे और आप देखेंगे कि सरकार जान-बूझकर कोई बुरी बात करना नहीं चाहती।"

मैंने जवाब दिया-"यही विश्वास तो मेरा सहारा है।" मैं पूना पहुंचा। वहां के सब संस्मरण देने में मैं असमर्थ हूं। गोखले नें और भारत-सेवक-समिति के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सदस्यों ने मुझे अपने प्रेम से सराबोर कर दिया। जहां तक मुझे याद है, सब सदस्यों को उन्होंने पूना बुलवाया था। सबके साथ अनेक विषयों पर दिल खोलकर मेरी बातें हुई। गोखले की तीव्र इच्छा थी कि मैं भी सोसायटी में शामिल हो जाऊं। मेरी इच्छा तो थी ही। पर सदस्यों को ऐसा जान पड़ा कि सोसायटी के आदर्श और उसके काम करने का ढंग मुझसे भिन्न था। इसलिए मुझे सदस्य होना चाहिए या नहीं, इस विषय में उन्हें शंका थी। गोखले का खयाल था कि मुझमें अपने आदर्श पर दृढ़ रहने का जितना आग्रह है उतना ही दूसरों के आदर्श को निभा लेने का और उनके साथ मिल जाने का स्वभाव है। उन्होंने कहा–"हमारे सदस्य अभी तुम्हारे इस निभाने वाले स्वभाव को पहचान नहीं पाये हैं। वे अपने आदर्श पर अविचल रहने वाले, स्वतंत्र और पक्के विचार वाले हैं। मैं उम्मीद तो रखता ही हूं कि वे तुम्हें स्वीकार करेंगे। पर स्वीकार न करें तो यह न समझना कि उनका तुम्हारे प्रति कम प्रेम या आदर है। इस प्रेम को अखंडित रखने के लिए ही वे कोई जोखिम उठाते डरते हैं। पर तुम सोसायटी के नियमित सदस्य बनो या न बनो, मैं तो तुम्हें सदस्य ही मानूंगा।"

मैंने अपना विचार उन्हें बता दिया था। सोसायटी का सदस्य बनूं या न बनूं, मुझे एक आश्रम स्थापित करके उसमें फिनिक्स के साथियों को लेकर बैठ जाना था। गुजराती होने के नाते गुजरात के द्वारा सेवा करने की मेरे पास अधिक पूंजी होनी चाहिए, इस खयाल से गुजरात में कहीं स्थिर होने की मेरी इच्छा थी। गोखले को यह विचार पसंद आया। इसमें उन्होंने कहा:

"आप यह जरूर करें। सदस्यों के साथ बातचीत का नतीजा चाहे जो हो, पर आपको आश्रम के लिए पैसा मुझसे ही लेना है। उसे मैं अपना ही आश्रम मानूंगा।"

मेरा हृदय फूल उठा। पैसा इकट्ठा करने के झंझट से मुझे मुक्ति मिली, यह सोचकर मैं तो बहुत खुश हुआ और अब मुझे अपनी जिम्मेदारी पर नहीं चलना पड़ेगा, बल्कि हर कठिनाई में मेरे लिए एक रहनुमा होना, इस विश्वास से जान पड़ा मानो मेरे सिर से बोझ उतर गया हो।

गोखले ने स्व. डॉक्टर देव को बुलाकर कह दिया–"गांधी का खाता अपने यहां खोल लो और उन्हें उनके आश्रम के लिए और उनके सार्वजनिक कामों के लिए जितने रुपये जरूरी हो आप देते रहें।"

अब मैं पूना छोड़कर शांतिनिकेतन जाने की तैयारी कर रहा था। अंतिम रात को गोखले ने अपने खास दोस्तों की मुझे पंसद आने लायक पार्टी की। उसमें जो चीजें मैं खाता था वही यानी सुखे और ताजे फल ही उन्होंने मंगवाए थे। पार्टी उनके कमरे से चंद कदम के फासले पर थी। उसमें भी आने लायक उनकी हालत नहीं थी। पर उनका प्रेम उन्हें कैसे पड़ा रहने देता? उन्होंने आने का आग्रह किया। आये तो जरूर, पर उन्हें मूंर्च्छा आ गई और वापस जाना पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ऐसा उन्हें जब-तब हो जाया करता था। इससे उन्होंने यह संदेश भेजा कि हमें पार्टी तो जारी रखनी ही है। पार्टी के मानी थे सोसायटी के आश्रम में मेहमान-घर के पास के आंगन में जाजम बिछाकर बैठना। मूंगफली, खजूर वगैरा खाना और प्रेमभरी चर्चा करना और एक-दसरे के हृदय को अधिक जानना।

पर यह मूर्च्छा मेरे जीवन के लिए साधारण अनुभव होने वाली नहीं थी।

3 : धमकी?

अपने बड़े भाई की विधवा पत्नी और अन्य कुटुम्बियों से मिलने को बम्बई से राजकोट और पोरबन्दर जाना था। वहां गया। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह संग्राम के सिलसिले में मैंने अपना पहनावा, गिरमिटिये मजदूर के ढंग का, जितना हो सकता था, उतना कर लिया था। विलायत में भी घर में यही पोशाक पहनता था। देश में आकर अपना काठियावाड़ का पहनावा रखना था। वह दक्षिण अफ्रीका में मेरे पास था। इससे बम्बई में मैं इस पहनावे में उतर सका था। वह पहनावा था-कुरता, अंगरखा, धोती और सफेद साफा। यह सब देशी मिल के ही कपड़े के बने हुए थे। बम्बई से काठियावाड़ तीसरे दरजे में ही जाना था। उसमें साफा और अंगरखा मुझे जंजालरूप लगे। इससे कुरता, धोती और आठ-दस आने की काश्मीरी टोपी रखी। ऐसी पोशाक पहनने वाला गरीब ही समझा जाता था। इन दिनों वीरम गांव और बढ़वाण में प्लेग को कारण तीसरे दरजे के यात्रियों की जांच होती थी। मुझे थोड़ा ज्वर था। जांच करने वाले अधिकारी ने हाथ देखा तो उसे गरम लगा, इसलिए मुझे राजकोट में डॉक्टर से मिलने की आज्ञा दी और नाम दर्ज कर लिया।

बम्बई से किसी ने तार से सूचना भेजी होगी, इसलिए बढ़वाण स्टेशन पर वहां के प्रसिद्ध प्रजासेवक दरजी मोतीलाल मुझसे मिले थे। उन्होंने मुझसे वीरगांव की चुंगी-जांच की और उससे होने वाले कष्टों की चर्चा की। ज्वर की तकलीफ के कारण मेरी बातें करने की इच्छा कम ही थी। मैंने उन्हें थोड़े में ही जवाब दिया:

"आप जेल जाने को तैयार हैं?"

बिना विचारे उत्साह में जवाब देने वाले अनेक युवकों की भांति ही मैंने मोतीलाल को समझा था। पर उन्होंने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया:

"हम जरूर जेल में जायेंगे, पर आपको हमें रास्ता दिखाना होगा। काठियावाड़ी की हैसियत से आप पर हमारा पहला हक है। आज तो हम आपको नहीं रोक सकते, पर लौटते हुए आपको बढ़वाण उतरना होगा। यहां के युवकों का काम और उत्साह देखकर आप खुश होंगे। हमे अपनी सेना में आप जब चाहें भरती कर सकते हैं।"

मोतीलाल पर मेरी नजर गड़ी। उनके अन्य साथियों ने उनकी तारीफ करते हुए कहा:

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"यह भाई हैं तो दरजी। अपने पेशे में कुशल हैं। इससे रोज एक घंटा काम करके हर महीने करीब 15 रुपया अपने खर्चभर को कमा लेते हैं और बाकी का सारा समय लोकसेवा में लगाते हैं और हम सब पढ़े-लिखें को रास्ता दिखाते और लजवाते हैं।"

बाद को मुझे भाई मोतीलाल को नज़दीक से जानने को मौका मिला और मैंने देखा कि उनकी उपर्युक्त प्रशंसा में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं थी। सत्याग्रह-आश्रम स्थापित होने पर वह हर महीने कुछ दिन तो वहां रह ही जाते। लड़कों को सीना सिखाते और आश्रम का सिलाई का काम भी कर जाते। वीरमगांव की बात तो मुझे रोज सुनाते। मुसाफिरों को कहां जो तकलीफें उठानी पड़ती थीं वे उनके लिए असह्य थीं। इन मोतीलाल को भरी जवानी में बीमारी उठा लें गई और बढ़वाण उनके बिना सूना हो गया।

राजकोट पहुंचने पर दूसरे दिन सवेरे में पूर्वोक्त आज्ञा के अनुसार अस्पताल में हाजिर हुआ। वहां तो मैं अजनबी नहीं था। डॉक्टर शरमाये और उक्त जांच करने वाले कर्मचारी पर गुस्सा होने लगे। मुझे क्रोध का कोई कारण न दिखाई दिया। उस कर्मचारी ने तो अपने कर्त्तव्य का पालन मात्र किया था। वह मुझे पहचानता नहीं था और पहचानता हो तो भी जो हुक्म दिया गया था उसकी तामील करना उसका फर्ज था । पर सुपरिचित होने को कारण राजकोट में जांच कराने जाने को बजाय लोग घर आकर जांच करने लगे।

तीसरे दरजे के मुसाफिरों की ऐसी बातों के लिए जांच होना जरूरी है। बड़े समझे जाने वाले आदमी भी तीसरे दरजे में यात्रा करें तो उन्हें गरीबों पर लगने वाले नियमों का स्वेच्छा से पालन करना चाहिए और अधिकारियों को भी पक्षपात न करना चाहिए। पर मेरा अनुभव यह है कि अधिकारी तीसरे दरजे के मुसाफिरों को आदमी समझने के बजाय जानवर समझते हैं। तू के सिवा उनके लिए दूसरा सम्बोधन नहीं होता। तीसरे दरजे का मुसाफिर न सामने जवाब दे सकता है, न बहस कर सकता है। उसे इस तरह व्यवहार करना पड़ता है मानो वह अधिकारी का चाकर ही हो। उसे अधिकारी पीट देता है, उसे लूटता है, उसकी ट्रेन छुड़वा देता है, उसे टिकट देने में हैरान करता है, यह सब मैंने खुद अनुभव किया है। और इस वस्तुस्थिति में सुधार तभी मुमकिन है। जब कुछ पढ़े-लिखे और पैसे वाले गरीबों-सरीखे बनें और तीसरे दरजे में यात्रा करके गरीब यात्री को न मिलने वाली एक भी सुविधा न लें और उन्हें दूर कराएं।

काठियावाड़ में मैं जहां-जहां गया वहां-वहां वीरमागांव में चुंगी की जांच के सिलसिले में होने वाली परेशानियों की शिकायत सुनी।

अतः अब मैंने लार्ड विलिंग्डन के दिये हुए निमंत्रण का तुरंत उपयोग किया। इस सम्बंध में जितने कागज-पत्र मिले सब पढ़ गया। मैंने शिकायतों में बहुत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तथ्य पाया। इस विषय में बम्बई सरकार से मैंने पत्र-व्यवहार शुरू किया। सेक्रेटरी से मिला। लार्ड विलिंग्डन से भी मिला। उन्होंने खेद प्रकट किया, पर दिल्ली की ढिलाई की शिकायत की।

सेक्रेटरी ने कहा–"हमारे ही हाथ की बात होती तो हमने यह जकात कभी की उठा दी होती। आप भारत सरकार के पास जाएं।"

मैंने भारत-सरकार से लिखा-पढ़ी शुरू की, पर पत्र की पहुंच के सिवा कोई जवाब न मिला। जब मुझे लार्ड चेम्सफोर्ड से मिलने का अवसर मिला तब, अर्थात लगभग दो बरस बाद, सुनवाई हुई। लार्ड चेम्सफोर्ड से जब मैंने बात की तो उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया। उन्हें वीरमगांव के बारे में कुछ मालूम न था। मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनकर उसी वक्त टेलीफोन करके वीरमगांव के कागज मंगाए। यदि मेरे बयान के विरुद्ध अधिकारियों को काई एतराज न हुआ तो चुंगी रद्द कर देने का वचन दिया। इस मुलाकात के बाद कुछ ही दिनों में जकात उठ जाने की खबर मैंने अखबार में पढ़ी।

मैंने इस जीत को सत्याग्रह की नींव माना, क्योंकि वीरमगांव के सम्बन्ध में बातें करते हुए बम्बई-सरकार के सेक्रेटरी ने मुझसे कहा था कि मैंने इस विषय में बगसरा में जो भाषण किया था उसकी नकल उनके पास है। उसमें सत्याग्रह के उल्लेख पर उन्होंने नाराजगी भी जाहिर की। उन्होंने पूछा:

"आप इसे धमकी नहीं मानते? और कोई शक्तिशाली सरकार कहीं धमकियों से डरा करती है?"

मैंने जवाब दिया:

"यह धमकी नहीं है यह लोकशिक्षा है। लोगों को अपने दुःख दूर कराने के सब वास्तविक उपायों का बताना मुझ जैसों का धर्म है। जो जनता स्वतंत्रता चाहती है उसके पास अपनी रक्षा का अंतिम उपाय होना चाहिए। साधारणतः ऐसे उपाय हिंसात्मक होते हैं। सत्याग्रह शुद्ध अहिंसक शस्त्र है। उसका उपयोग और उसकी मार्यादा बताना मैं अपना धर्म मानता हूं। अंग्रेज सरकार शक्तिमान है, इस विषय में मुझे शक नहीं है। पर सत्याग्रह सर्वोपरि शस्त्र है, इस विषय में भी मुझे शंका नहीं है।"

चतुर सेक्रेटरी ने सिर हिलाया और बोला–"अच्छा, देखेंगे।"

4: शांतिनिकेतन

राजकोट से मैं शांतिनिकेतन गया। वहां के अध्यापकों और विद्यार्थियों ने मुझे अपने प्रेम से नहला दिया। स्वागत की विधी में सादगी, कला और प्रेम का सुंदर मिश्रण था। वहीं काकासाहब कालेलकर से मेरी पहली मुलाकात हुई।

कालेलकर 'काकासाहब' क्यों कहलाते थे? इसका तो उस समय मुझे पता न था। पीछे मालूम हुआ कि केशवराव देशपांडे, जो विलायत में मेरे समकालीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
थे और जिनसे मेरा वहां अच्छा परिचय हो गया था, बड़ौदा राज्य में 'गंगानाथ विद्यालय' चलाते थे। उनकी अनेक भावनाओं में एक यह भी थी कि विद्यालय में कौटुम्बिक भवाना होनी चाहिए। इससे सब अध्यापकों को नाम बांटे गये थे। उनमें कालेलकर ने 'काका' (चाचा) नाम पाया, फड़के 'मामा' हुए, हरिहर शर्मा 'अन्ना' हुए तथा औरों को भी उनके योग्य नाम मिले। काका के साथी के रूप में आनंदानंद (स्वामी) और मामा के मित्र में पटवर्धन (आप्पा) आगे चलकर इस कुटुम्ब में शामिल हुए। इस कुटुम्ब के उपर्युक्त पांचों एक-एक करके मेरे साथी हुए। देशपांडे 'साहब' नाम से प्रसिद्ध हुए। 'साहब' का विद्यालय बंद होने के बाद यह कुटुम्ब बिखर गया, पर इन लोगों ने अपना आध्यात्मिक सम्बन्ध न छोड़ा। काकासाहब भिन्न-भिन्न अनुभव प्राप्त करने लगे और उन अनुभवों के लिए ही इन दिनों शांतिनिकेतन में रहते थे। उसी मंडल के एक दूसरे चिंतामणि शास्त्री वहां रहते थे। ये दोनों संस्कृत की शिक्षा देने का काम करते थे।

शांतिनिकेतन में मेरे मंडल को अलग डेरा दिया गया था। यहां मगनलाल गांधी उस मंडल की देखरेख कर रहे थे। और फिनिक्स-आश्रम के सब नियमों का सूक्ष्मता से पालन करते-कराते थे मैंने देखा कि उन्होंने शांतिनिकेतन में अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग की बदौलत अपनी सुवास फैला दी थी। यहां एंड्रूयूज तो थे ही। पियर्सन थे। जगदानंदबाबू, नेपालबाबू, संतोषबाबू, क्षितिमोहनबाबू, नगेनबाबू, शरदबाबू और कलीबाबू से भी हमारा अच्छा हेल-मेल हो गया था।

अपने स्वभाव के अनुसार मैं विद्यार्थियों और शिक्षकों के साथ मिल गया और शारीरिक श्रम के विषय में चर्चा करने लगा मैंने सोचा, तनखाहदार रसोइया रखने के बदले अगर शिक्षक और विद्यार्थी अपने भोजन खुद बना लें तो अच्छा हो, भोजनालय पर आरोग्य और नीति की दृष्टि से शिक्षक वर्ग का अधिकार स्थापित हो जाए और विद्यार्थी स्वाश्रय और स्वयंपाक का पदार्थ-पाठ पाएं। यह बात मैंने शिक्षकों के सामने रखी। एक-दो शिक्षकों ने सिर हिलाया। कुछ को यह प्रयोग बहुत पसंद आया और लड़कों को तो नई चीज, चाहे जो हो, भाती ही है। इससे यह भी रुची। प्रयोग शुरू हुआ। यह बात कविवर के सामने रखने पर उन्होंने अपना मत दिया कि अगर शिक्षकगण अनुकूल हों तो मुझे तो यह प्रयोग जरुर पसंद होगा। उन्होंने विद्यार्थियों से कहा-"इसमें स्वराज्य की कुंजी है।"

पियर्सन ने प्रयोग को सफल करने में जी-जान से मेहनत की। उन्हें वह बहुत रुचा। एक मंडली साग काटने वाली बनी, दूसरी अनाज साफ करने वाली। रसोईघर के आस-पास ठीक तरह से सफाई रखने में नगेनबाबू वगैरा लगे। उन लोगों को फावड़ा लेकर काम करते देखकर मेरा हृदय हर्ष से भर गया।

पर यह मेहनत का काम ऐसा न था कि सवा सौ लड़के और शिक्षक भी, एकबारगी बरदाशत कर लें। इससे रोज बहस होती। कुछ लोग थके। पर पियर्सन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
क्यों थकने लगे? वह तो मुस्कराता हुए रसोई के किसी-न-किसी काम में लगे ही रहते थे। बड़े-बड़े बरतनों का मांजना तो इन्हीं का काम था। बरतन मांजने वाली टुकड़ी की थकावट दूर करने को कुछ विद्यार्थी वहां सितार बजाते थे। हर एक काम को विद्यार्थियों ने पूरे उत्साह से उठा लिया। और सारा शांतिनिकेतन मधुमक्खियों के छत्ते की तरह गूंजने लगा।

इस प्रकार के फेरफार एक बार आरम्भ होकर फिर रुकते नहीं। फिनिक्स भोजनालय स्वाश्रयी था। यही नहीं, बल्कि उसमें रसोई बहुत सादी भी थी। मसालों का त्याग था। इससे भाप से भात, दाल, साग और गेहूं की चीजें भी पका ली जाती थीं।

पर अंत में कुछ कारणों को लेकर यह प्रयोग बंद हो गया। मैं मानता हूं कि इस जगदविख्यात संस्थान ने यह प्रयोग थोड़े दिनों के लिए भी चलाकर कुछ गंवाया नहीं और उसे प्राप्त कुछ अनुभव उसके लिए उपयोगी सिद्ध हुए।

मेरा इरादा शांतिनिकेतन में कुछ दिन रहने का था, पर विधाता मुझे जबर्दस्ती घसीट ले गए। मैं मुश्किल से एक सप्ताह रहा होऊंगा कि पूना से गोखले के देहावसान का तार मिला। शांतिनिकेतन शोक में डूब गया। मेरे पास सब मातमपुरसी करने आए। मंदिर में विशेष सभा हुई। यह गम्भीर दृश्य अपूर्व था। मैं उसी दिन पूना के लिए रवाना हुआ। साथ पत्नी को और मगनलाल को लिया। बाकी सब लोग शांतिनिकेतन में रहे।

एंड्रयूज बर्दवान तक मेरे साथ आए। उन्होंने मूझसे पूछा, "क्या आपको ऐसा लग रहा है कि आपको हिंदुस्तान में सत्याग्रह करना पड़ेगा? और लगता हो तो कब तक, इसकी कुछ कल्पना होती है?"

मैंने उत्तर दिया, "इसका जवाब देना कठिन है। मुझे एक साल तक कुछ करना ही नहीं है। गोखले ने मुझसे वचन लिया है कि मैं एक साल तक भ्रमण करता रहूं, किसी सार्वजनिक प्रश्न पर राय न कायम करूं और न उसे प्रकट करूं। इस वचन का मैं अक्षरशः पालन करना चाहता हूं। उसके बाद किसी प्रश्न पर मेरा बोलना जरूरी होगा तभी बोलूंगा। अतः पांच साल तक सत्याग्रह करने का अवसर आता मुझे नहीं दिखाई देता।"

यहां इतना बता देना उचित होगा कि 'हिन्द स्वाराज्य' में मैंने जो विचार दरसाए हैं, उनका गोखले मजाक उड़ाया करते थे और कहते थे, "एक साल हिंदुस्तान में रहकर देख लोगे तो तुम्हारे सब विचार अपने आप ठिकाने आ जाएंगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5 : तीसरे दरजे की दुर्दशा

बर्दवान पहुंचकर हमें तीसरे दरजे का टिकट लेना था। उसे लेने में कठिनाई पड़ी। "तीसरे दरजे के मुसाफिर को टिकट पहले से नहीं दिया जाता", यह जवाब मिला। मैं स्टेशनमास्टर के पास गया। मुझे उनके पास कौन जाने देता? किसी ने दया करके स्टेशानमास्टर को दिखा दिया। वहां पहुंचा। उनसे भी वही जवाब मिला। खिड़की खुली तो टिकट लेने गया। पर टिकट आसानी से मिलने वाला न था। मजबूत मुसाफिर एक के बाद एक घुसते जाते और मुझ-जैसों को पीछे ढकेलते जाते। अंत में टिकट मिला।

गाड़ी आई। वहां भी जो मजबूत थे वे घुस गये। बैठे हुओं में और चढ़ने वालों में द्वंद्व मच रहा था। धक्कमधक्का चल रहा था। इसमें मैं हिस्सा लेने में असमर्थ था। हम तीनों इधर-से-उधर दौड़ रहे थे। सब जगह एक ही जवाब मिलता था-"यहां जगह नहीं है।" मैं गार्ड के पास गया। वह बोला, "जगह मिले तो बैठो, नहीं तो दूसरी में जाना।"

मैंने नम्रता से कहा, "पर मुझे जरूरी काम है।" यह सुनने के लिए गार्ड के पास वक्त नहीं था। मैं निरुपाय हो गया। मगनलाल से जहां जगह मिले बैठ जाने को कहा। पत्नी को लेकर मैं तीसरे दर्जे के टिकट से इंटर में घुसा। गार्ड ने मुझे उसमें जाते देखा था।

आसनसोल स्टेशन पर गार्ड ज्यादा किराये के पैसे लेने पहुंचा। मैने कहा, "मुझे जगह बताना अपाका फर्ज था। जगह न मिलने की वजह से मैं बैठ गया। मुझे आप तीसरे दर्जे में जगह दिलाएं तो मैं उसमें जाने को तैयार हूं।"

गार्डसाहब बोले, "मुझसे बहस करन की जरूरत नहीं है। मेरे पास जगह नहीं है। पैसे न देने हो तो गाड़ी से उतरना पड़ेगा।"

मुझे तो किसी तरह पूना पहुंचना था। गार्ड के साथ लड़ने की मेरी हिम्मत नहीं थी। मैंने पैसे चुका दिये। उसने ठेठ पूना तक का इंटर का भाड़ा लिया। मुझे यह अन्याय अखरा।

सवेरे मुगलसराय पहुंचा। मगनलाल ने तीसरे दरजे में जगह कर ली थी। मुगलसराय में मैं भी तीसरे दरजे में गया। टिकट-कलेक्टर से मैंने सारी कैफियत सुना दी। उससे अपनी बात का प्रमाण पत्र मांगा। उसने देने से इनकार किया। मैंने अधिक किराया वापस मिलने के लिए रेलवे के बड़े साहब को पत्र लिखा।

"प्रमाणपत्र के बिना फाजिल किराया लौटाने का हमारे यहां रिवाज नहीं है, पर आपके मामले में हम लौटाये दे रहे हैं। बर्दवान से मुगलसराय तक का डेवढ़े का किराया वापस नहीं मिल सकता।" इस आशय का जवाब मिला।

इसके बाद के मेरे तीसरे दरजे की यात्रा के अनुभव तो इतने हैं कि उनकी एक पोथी बन जाय; पर उनमें से कुछ की चर्चा प्रसंगानुरोध से कर देने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अतिरिक्त इन प्रकरणों में वे नहीं समा सकते। शारीरिक असमर्थता के कारण मेरा तीसरे दर्जे का सफर बंद हो गया, यह बात मुझे सदा खटकती है और खटकती रहेगी। तीसरे दरजे के सफर में रेल के अधिकारियों की नवादी की जिल्लत तो जरूर है, लेकिन तीसरे दरजे में बैठने वाले कुछ मुसाफिरों का उजड्डपन, उनकी गंदगी, उनकी स्वार्थ बुद्धि और उनका अज्ञान भी साधारण नहीं होता। खेद तो यह है कि कितनी ही बार मुसाफिर यह जानते भी नहीं कि वे अशिष्टता कर रहे हैं। हम सुधरे हुओं ने इनकी परवा नहीं की।

थके-मांदे कल्याण जंक्शन पहुंचे। नहाने की तैयारी की। मगनलाल ने और मैंने स्टेशन के पंप से पानी लेकर स्नान किया। पर पत्नी के लिए कोई उपाय सोच रहा था कि इतने में भारत-सेवक-समिति के भाई कौल ने पहचाना। वह भी पूना जा रहे थे। उन्होंने पत्नी को सेकिंड क्लास के स्नानागार में स्नान कराने ले जाने की बात कही। इस सौजन्य के स्वीकार में मुझे संकोच हुआ। पत्नी को सेकिंड क्लास के स्नानागार के कमरे को काम में लाने का अधिकार नहीं था, इसका मुझे ज्ञान था। पर मैंने इस कमरे में उसे नहाने देने के अनौचित्य की ओर से आंखें मूंद लीं। सत्य के पुजारी को यह भी शोभा नहीं देता। पत्नी को वहां जाने का कोई आग्रह नहीं था। पर पति के मोहरूप सुवर्ण पात्र ने सत्य को ढंक लिया।

6: मेरा प्रयत्न

पूना पहुंचकर और उत्तर क्रिया आदि से निवृत होकर हम सब इस विचार में लगे कि सोसायटी कैसे चलाई जाय और मैं उसमें शामिल होऊं या नहीं? मेरे ऊपर भारी बोझ आ पड़ा गोखले के जीते-जी मुझे सोसायटी में दाखिल होने का प्रयत्न करने की आवश्यकता न थी। भारतवर्ष के तूफानी समुद्र में कूदते हुए मुझे एक कर्णधार की आवश्यकता थी और गोखले-सरीखे कर्णधार के नीचे मैं सुरक्षित था।

अब मुझे लगा कि मुझे सोसायटी में दाखिल होन के लिए सतत प्रयत्न करना चाहिए। मुझे यह भी जान पड़ा कि गोखले की आत्मा यही चाहती है। मैंने बिना संकोच के और दृढ़तापूर्वक यह प्रयत्न आरम्भ किया। इस समय सोसायटी के लगभग सभी सदस्य पूना में मौजूद थे। मैने उन्हें समझाना-बुझाना और मेरे विषय में उन्हें जो डर था उसे दूर करना शुरू किया। पर मैंने देखा कि सदस्यों में मतभेद था। एक पक्ष मुझे दाखिल कर लेने के पक्ष में था, दूसरा दृढ़तापूर्वक मेरे प्रवेश का विरोध करता था। दोनों का मेरे प्रति जो प्रेम था उसको मैं देख सकता था। पर मेरे प्रति जो प्रेम था, उसकी अपेक्षा सोसायटी की ओर उनकी वफादारी शायद अधिक थी। उससे कम तो कदापि नहीं थी।

इससे हमारी सारी चर्चा मधुर थी और केवल सिद्धांत को लेकर चल रही थी। विरुद्ध पक्ष के लोगों को यही लगा कि अनेक विषयों में मेरे और उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विचारों में उत्तर-दक्षिण का अंतर था। इससे अधिक उन्हें यह लगा कि जिन ध्येयों को सामने रखकर गोखले ने सोसायटी की रचना की थी, मेरे सोसायटी में रहने से उन ध्येयों के ही खतरे में पड़ जाने की पूरी सम्भावाना थी।

बहुत विचार-बहस करने के बाद हम अलग हुए। सदस्यों ने अंतिम निर्णय करना दूसरी बैठक के लिए मुल्तवी रखा।

घर पहुंचकर मैं विचारों के भंवर में पड़ गया। अधिक मतों से मेरा दाखिल होना क्या इष्ट माना जायेगा? यह गोखले के प्रति मेरी वफादारी होगी? अगर मेरे खिलाफ मत पड़े तो उसमें सोसायटी की स्थिति विकट बनाने में मैं निमित्त नहीं बनूंगा? मुझे साफ मालूम हुआ कि सोसायटी के सदस्यों में जब तक मुझे दाखिल करने के बारे में मतभेद हो तब तक मुझे ही दाखिल होने का आग्रह छोड़कर, विरोधी पक्ष को नाजुक स्थिति मे पड़ने से बचा लेना चाहिए और इसी में सोसायटी और गोखले के प्रति मेरी सच्ची निष्ठा है। अंतरात्मा में ज्योंही यह निर्णय स्फुरित हुआ, मैंने तुरंत शास्त्री को पत्र लिखा कि उन्हें मेरे प्रवेश के विषय में सभा करने की जरूरत नहीं है।

विरोध करने वालों को यह निश्चय बहुत पंसद आया। वे धर्मसंकट में से बच गए। उनके और मेरे बीच की स्नेह गांठ अधिक दृढ़ हो गई और सोसायटी में दाखिल होने की अपनी दरख्वास्त वापस लेकर मैं उसका सच्चा सदस्य बन गया।

अनुभव से मैं देखता हूं कि मेरा सोसायटी का रूढ़िपूर्वक सदस्य न होना उचित था और कुछ सदस्यों ने मेरे दाखिले के खिलाफ जो विरोध किया था वह वास्तविक था। अनुभव ने बता दिया है कि उनके सिद्धांतों के बीच भेद था। पर मतभेद जान लेने पर भी, हमारे बीच आात्मा का अंतर कभी नहीं पड़ा, कभी तुरशी नहीं आई। मतभेद होते हुए भी हम बंधु और मित्र बने रहे हैं। सोसायटी का स्थान मेरे लिए तीर्थस्थल रहा है। लौकिक दृष्टि में मैं भले ही उसका सदस्य नहीं बना, आध्यात्मिक दृष्टि से मैं सदस्य रहा ही हूं। लौकिक सम्बन्ध की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्बन्ध अधिक मूल्यवान है। आध्यात्मिकता-रहित लौकिक सम्बन्ध प्राणरहित देह के तुल्य है।

7 : कुम्भ

मुझे डॉक्टर प्राणजीवनदास मेहता से मिलने रंगून जाना था। वहां जाते समय कलकत्ते में श्री भूपेन्द्रनाथ वसु के निमंत्रण पर मैं उनके यहां उतरा था। यहां बंगाली सौजन्य की हद हो गई थी। इन दिनों मैं फलाहार ही करता था। मेरे साथ मेरा लड़का रामदास था। जितनी तरह के मेवे और फल कलकत्ते में मिलते थे, जुटाए गए थे। स्त्रियों ने रातों-रात जागकर पिस्तों वगैरा को भिगोकर उनके छिलके उतारे थे। ताजे फल भी जितनी सुघराई से सजाए जा सकते हैं, सजाए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गए थे। मेरे साथियों के लिए अनेक प्रकार के मकान तैयार किये गए थे। यह प्रेम और शिष्टाचार मेरी समझ में आया लेकिन एक-दो मेहमानों के लिए सारा घर सारा दिन लगा रहे, यह मुझे असह्य लगा। पर मेरे सामने इस मुसीबत से छुटकारा पाने का कोई रास्ता न था।

रंगून जाते हुए स्टीमर में मैं डेक का मुसाफिर था। अगर श्री बसु के यहां प्रेम की मुसीबत थी तो स्टीमर में अभाव की विडम्बना थी। डेक के यात्री की तकलीफ मैंने बुरी तरह अनुभव की। नहाने की जगह इतनी गंदगी थी कि खड़ा होना कठिन था। पाखाने नरक कुंड, मल-मूत्रादि में चलकर या उसे लांघकर पाखाने जाना-ये कष्ट मेरे लिए असह्य थे। मैं जहाज के बड़े अफसर के पास पहुंचा। पर कौन सुनता है? यात्रियों ने अपनी गंदगी से डेक को बिगाड़ डाला था। जहां बैठे थे वहीं थूकते थे, वहीं सुरती की पीक की पिचकारियां चलाते थे। खा-पीकर वहीं जूठन, छिलके वगैरा डाल देते थे। बातचीत से होने वाले शोर की हद नहीं थी। हर आदमी अधिक-से-अधिक जगह छेंक लेने की कोशिश करता, कोई दूसरे के सुभीते का विचार तक न करता था। खुद जितनी जगह लेते, सामान उससे ज्यादा लेता। ये दो दिन बड़े कष्ट से काटे।

रंगून पहुंचकर मैंने एजेंट को सारा हाल लिखा। लौटते हुए भी डेक पर आया, पर? इस पत्र के प्रयत्न और डॉक्टर मेहता के प्रबंध के फलस्वरूप पहले से अधिक सुभीता रहा।

मेरे फलाहार का झंझट तो यहां भी जरूरत से ज्यादा ही था। डॉक्टर मेहता से ऐसा सम्बन्ध था कि मैं उनके घर को अपना ही समझ सकता था इससे मैंने पदार्थों की संख्या और प्रकार पर तो रोक लगा ली थी, लकिन मैंने कोई हद नहीं बांधी थी, इससे बहुत तरह के फल, मेवे आते थे और उनका विरोध मैं नहीं करता था। उनकी विविधता आंखों और जीभ को रुचती थी। तथापि रात के आठ-नौ तो अनायास बज ही जाते थे।

इस साल-1915 में हरद्वार में कुम्भ का मेला था। उसमें जाने की मेरी कोई बहुत इच्छा न थी। पर मुझे महात्मा मुंशीरामजी के दर्शनों को तो जाना ही था। कुम्भ के समय गोखले के सेवक समाज ने एक बड़ी टुकड़ी भेजी थी। उसकी व्यवस्था श्री हृदयनाथ कुंजरू के हाथ में थी। स्वर्गीय डॉक्टर देव भी उसमें थे। यह तय हुआ कि उसमें मदद करने को हम अपनी टुकड़ी भी ले जाएं। मगनलाल गांधी शांतिनिकेतन में विद्यमान टुकड़ी को लेकर मुझसे पहले हरद्वार पहुंच गये थे। मैं रंगून से लौटकर उनके साथ मिल गया।

कलकत्ते से हरद्वार पहुंचने में खूब परेशानी उठानी पड़ी। डब्बों में कितनी ही बार रोशनी तक न होती । सहारनपुर से तो मालगाड़ी या जानवरों के डब्बों में ही यात्रियों को ठूंस दिया था। खुले (छत रहित) डब्बे पर दोपहर का सूर्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तपता था और नीचे लोहे के पत्तर, फिर कष्ट का क्या पूछना? फिर भी भावुक हिन्दू प्यास से गला खूब सूखता होने पर भी 'मुसलमान पानी' आता तो न पीते थे। 'हिन्दू पानी' की आवाज़ आती तभी पीते थे। इन्हीं भावुक हिन्दुओं को दवा में डॉक्टर शराब दे, मुसलमान या ईसाई पानी दे, मांस का सत दे तो उसे लेने में उन्हें हिचक नहीं होती और न कुछ पूछने-जांचने की जरूरत होती।

हमने शांतिनिकेतन में ही देखा था कि भंगी का काम करना तो हिंदुस्तान में हमारा खास पेशा हो ही जायेगा। स्वयंसेवकों के लिए किसी धर्मशाला में तम्बू लगाए गए थे। पाखानों के लिए डॉक्टर देव ने गड्ढे खुदवाए थे। पर उन गड्ढों की सफाई का इंतजाम डॉक्टर देव तो ऐसे मौके पर, जो थोड़े से तनखाहदार भंगी मिल सकते थे, उन्हीं के जरिए करा सकते थे, इन गड्ढों में पड़ने वाले पाखाने को समय-समय पर ढांकते रहने को और उसे और तरह से साफ रखने का काम फिनिक्स की टुकड़ी के जिम्मे कर देने की मेरी प्रार्थना डॉक्टर देव ने खुशी से स्वीकार कर ली थी। इस सेवा की मांग करने वाला तो मैं था, पर करने का बोझ उठाने वाले थे मगनलाल गांधी।

मेरा काम तो एक तरह से तम्बू में बैठकर 'दर्शन' देने का और जो अनेक यात्री आते थे उनके साथ धर्मचर्चा और इस तरह की और बातचीत करना हो गया। दर्शन देते-देते मैं घबरा गया। इस काम से एक मिनट की भी फुरसत न मिलती थी। दक्षिण अफ्रीका में जो कुछ मुझसे सेवा हो पाई थी उसका इतना गहरा असर सारे भारतखंड में हुआ होगा, इसका पता मुझे हरद्वार में ही चला।

मैं तो चक्की के पाटों के बीच पिसने लगा। जहां पहचाना नहीं जाता वहां बतौर तीसरे दरजे के मुसाफिर के रूप में तकलीफें उठाता, जहां उतरता वहां दर्शनार्थियों के प्रेम से परेशान किया जाता। दोनों में से कौन-सी स्थिति अधिक दयनीय है यह कहना अक्सर मेरे लिए कठिन हो गया है। इतना जानता हूं कि दर्शनार्थियों के प्रेम के प्रदर्शन से मुझे कितनी ही बार क्रोध आया है और मन में तो उससे अधिक बार संतप्त हुआ हूं। तीसरे दरजे की कठिनाइयों से मुझे कष्ट हुआ है, पर क्रोध शायद ही आया हो और इससे मेरी तो उन्नति ही हुई है।

इन दिनों मुझमें घूमने-फिरने की शक्ति अच्छी थी इससे मैं खूब चक्कर लगा सका। उस समय इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ था कि राह चलना भी कठिन हो जाता। भ्रमण में मैंने लोगों की धर्मभावना की अपेक्षा उनका बौड़मपन, उनकी अस्थिरता, पांखड और अव्यवस्था अधिक देखी। साधुओं के तो दल-के-दल टूट पड़े थे। ऐसा जान पड़ता था जैसे वे केवल खीर और मालपूआ उड़ाने को ही पैदा हुए हों। यहां मैंने पांच पैरों वाली गाय देखी। मुझे अचम्भा हुआ, पर जानकारों ने मेरा अज्ञान तुरंत दूर कर दिया। पांच पैरों वाली गाय तो दुष्ट लोभियों के लोभ की बलिरूप थी। यह पैर गाय के कंधे पर इस तरह लगाते कि बछड़े

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का जीता पैर काटते और गाय के कंधे को चीरते फिर दोनों को जोड़ देते और यह दोहरा कसाईपन अज्ञानी मनुष्य को ठगने को लिए किया जाता था। पांच पैरों वाली गाय के दर्शन करने के कौन हिन्दू होगा जो न ललचाए? उस दर्शन के लिए जितना दाम दे उतना कम है।

कुम्भ का दिन आया। मेरे लिए यह धन्य घड़ी थी। मैं यात्रा की भावना से हरद्वार नहीं गया था। मुझे तीर्थक्षेत्रों में पवित्रता की तलाश में जाने का मोह कभी नहीं रहा। पर सत्रह लाख आदमी पाखंडी नहीं हो सकते। मेले में सत्रह लाख आदमियों के आने का अंदाजा किया गया था। इनमें असंख्य मनुष्य पुण्य कमाने को, शुद्धि प्राप्त करने को आए हैं, इस विषय में मुझे शंका नहीं थी। इस प्रकार की श्रद्धा आत्मा को कितना ऊंचा उठाती होगी, यह कहना अशक्य नहीं, तो कठिन तो है ही।

बिस्तरे पर पड़ा-पड़ा मैं विचार-सागर में गोते लगाने लगा। चारों ओर फैले हुए पाखंड में उक्त पवित्र आत्माएं भी है। वे ईश्वर के दरबार में दंड की पात्र नहीं मानी जा सकतीं। जो हरद्वार में ऐसे आना ही पाप हो तो मुझे प्रकट रूप से विरोध करके कुम्भ के दिन तो हरद्वार छोड़ ही देना चाहिए। यदि आने और कुम्भ के दिन रहने में पाप न हो तो मुझे कोई-न-कोई कठिन व्रत लेकर चलते हुए पाप का प्रयश्चित करना चाहिए। मेरा जीवन व्रतों के पाये पर रचा हुआ है, इससे कुछ कठिन व्रत लेने का निश्चय किया। कलकत्ते और रंगून में मेरे लिए मेजबानों को जो अनावश्यक परिश्रम करना पड़ा, उसका मुझे स्मरण आया। इससे मैंने खुराक की चीजों की हद बांध देने का और अंधेरे के पहले भोजन लेने का निश्चय किया। मैंने देखा कि यदि मैं मर्यादा नहीं रखता तो मेजबानों के लिए मैं भारी मुसीबत बन जाऊंगा और सेवा करने के बजाय हर जगह मेरी सेवा में ही लोग रह जाएंगे। इससे चौबीस घंटों में पांच चीजों के सिवा और कुछ न खाने और रात में भोजन न करने का व्रत लिया। दोनों की कठिनाइयों का पूरा विचार कर लिया था। इन व्रतों में एक भी छूट न रखने का निश्चय किया। बीमारी में दवा के रूप में अधिक चीजे लूं या न लूं, दवा को खाने की चीजों में गिनना चाहिए या नहीं, इन सब बातों पर विचार कर लिया और निश्चय किया कि खाने का कोई भी पदार्थ पांच के ऊपर मुझे नहीं लेना है। इन दो व्रतों के लिए तेरह बरस हो गये। इनसे मेरी अच्छी परीक्षा हो गई। पर जैसे मेरी परीक्षा हुई वैसे ये मेरे लिए ढालरूप भी बन गये। मेरा विश्वास है कि इन व्रतों ने मेरी जिन्दगी को बढ़ाया है। मैं मानता हूं कि बहुत बार इनकी बदौलत मैं बीमारियों से बचा हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

8: लछमन झूला

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़-जैसे विशाल महत्मा मुंशीरामजी के दर्शन कर और उनका गुरुकुल देखकर मुझे बड़ी शांति मिली। हरद्वार के शोरगुल और गुरुकुल की शांति का भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्मा ने मुझे प्रेम से नहला दिया। ब्रह्मचारी मेरे पास से हटते ही न थे। रामदेवजी की मुलाकात भी उस समय हुई और उनकी शक्ति का परिचय मैं तुरंत पा गया। यद्यपि हमें अपने बीच कुछ मतभेद दिखाई दिया, फिर भी हमारी स्नेह-गांठ बंध गई। गुरुकुल में उद्योग शिक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता के विषय में रामदेवजी तथा अन्य शिक्षकों के साथ मैंने काफी चर्चा की। मुझे गुरुकुल तुरंत छोड़ते हुए दुःख हुआ।

मैंने लछमन झूले की तारीफ बहुत सुनी थी। ऋषिकेश गये बिना हरद्वार न छोड़ने की मुझे बहुतों की सलाह मिली थी। मुझे तो वहां पैदल जाना था। इसे एक मंजिल ऋषिकेश की और दूसरी लछमन झूले की की।

ऋषिकेश में अनेक संन्यासी मिलने आये थे। उनके एक की मेरे जीवन में गहरी दिलचस्पी पैदा हो गई। फिनिक्स-मंडल मेरे साथ था; उन सबको देखकर उन्होंने अनेक प्रश्न किये। हममें धर्म की चर्चा हुई। उन्होंने देखा, मेरे भीतर धर्म की तीव्र भावना है। मैं गंगा-स्नान करके आया था, अतः नंगे बदन था। मेरे सिर पर चुटिया और गले में जनेऊ न देखकर वह दुःखी हुए और मुझसे पूछा-"आप आस्तिक होते हुए भी यज्ञोपवीत और शिखा नहीं रखते, यह देखकर हम-जैसों को दुःख होता है। ये दोनों हिन्दू-धर्म के बाह्य चिह्न हैं और हर एक हिन्दू को इन्हें धारण करना चाहिए।"

कोई दस बरस की उम्र में पोरबंदर में ब्राह्मणों को जनेऊ में बंधी हुई चाबियों की झंकार मैं सुनता तो मुझे उसकी ईर्ष्या होती थी। मन में सोचता कि झनझनाती हुई कुंजियां जनेऊ में बाधंकर घूमूं तो कैसा मजा आये। कठियावाड़ में वैश्य कुटुम्ब में जनेऊ का चलन उस समय नहीं था; पर पहले तीन वर्णों को जनेऊ पहनना ही चाहिए, यह नया प्रचार चल रहा था। उसके फलस्वरूप गांधी-कुटुम्ब के कुछ आदमी जनेऊधारी हो गये थे। जो ब्राह्मण हम दो-तीन भाइयों को रामरक्षा का पाठ सिखाता था उसने हमें जनेऊ पहनाया। और मेरे पास कुंजी रखने का कोई कारण न होने पर भी, मैंने दो-तीन कुंजियां लटका लीं। जनेऊ टूट गया तब उसका मोह उतर गया था या नहीं, यह तो याद नहीं है, पर मैंने नया नहीं पहना।

बड़ी उम्र होने पर दूसरों न मुझे जनेऊ पहनाने का प्रयत्न हिंदुस्तान और दक्षिण अफ्रीका में भी किया था, पर मुझ पर उनकी दलीलों का असर न हुआ। शूद्र जनेऊ न पहने तो दूसरे वर्ण क्यों पहने? जिस बाह्य वस्तु का चलन हमारे कुटुम्ब में नहीं था उसे प्रविष्ट करने को मुझे एक भी सबल कारण नहीं मिला था। मेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लिए जनेऊ का अभाव नहीं था, पर उसे पहनने के कारण का अभाव था। वैष्णव होने के कारण मैं कंठी पहनता था। शिखा तो बुजुर्ग लोग हम भाइयों के सिर पर रखाते थे। विलायत जाते समय वहां सिर नंगा रखना होगा। गोरे उसे देखकर हँसेंगे और जंगली समझेंगे-इस शर्म से शिखा कटा दी थी। मरे साथ रहने वाले मेरे भतीजे छगनलाल गांधी दक्षिण अफ्रीका में बड़ी श्रद्धा से शिखा धारण किये हुए थे। वह शिवा उनके सार्वजनिक काम में बाधक होगी-इस वहम से मैंने उनका मन दुःखाकर भी उसे कटवा दिया था। इस प्रकार शिखा की मुझे शर्म थी।

स्वामी को यह कैफियत सुनाकर मैने कहा-"जनेऊ तो मैं धारण न करूंगा। अगण्ति हिन्दू जिसे नहीं पहनते, फिर भी हिन्दू माने जाते हैं, उसे पहनने की जरूरत मैं नहीं देखता। इसके सिवा जनेऊ पहनने के मानी हैं, दूसरा जन्म लेना अर्थात संकल्पपूर्वक हमें शुद्ध होना-ऊर्ध्वगामी होना चाहिए।। आज हिन्दू-सामज और हिंदुस्तानी गिरे हुए हैं। उसमें जनेऊ पहनने का हमें अधिकार ही कहां है? हिन्दू-सामज अस्पृश्यता की गंदगी दूर कर, ऊंच-नीच की बात भूल जाए, अपने भीतर घुसे हुए दूसरे दोषों को हटाये, चारों ओर फैले हुए अधर्म, पांखड को दूर करे, तब भले ही उसे जनेऊ का अधिकार हो सकता है। अतः जनेऊ धारण करने की आपकी बात तो मेरे गले नहीं उतरती; पर शिखाविषयक आपकी बात पर मुझे जरूर विचार करना होगा। वह तो मैं रखता था। वह मैंने शर्म और डर से कटवा दी है। मुझे लगता है कि उसे धारण करना चाहिए। अपने साथियों से मैं इस विषय में विचार करूंगा।"

स्वामी को जनेऊ विषयक मेरी दलील नहीं जंची। जो कारण मैंने न पहनने के पक्ष में दिये वे उन्हें पहनने के पक्ष में दिखाई दिए। जनेऊ के विषय में ऋषिकेश में मैंने जो विचार प्रकट किया था, आज भी लगभग वही कायम है। जब तक भिन्न-भिन्न धर्म विद्यमान हैं, तब तक प्रत्येक धर्म को किसी विशेष बाह्य चिह्न की शायद जरूरत हो सकती है। लेकिन जब बाह्य चिह्न केवल आडम्बर हो जाय अथवा अपने धर्म को दूसरे धर्मों से अलग और ऊंचा सिद्ध करने का साधन बन जाए, तब वह त्याज्य हो जाता है। आज जनेऊ हिन्दू धर्म को ऊंचे ले जाने का साधन है यह मुझे नहीं दिखाई देता, अतः उसके विषय में मैं तटस्थ हूं। शिखा के त्याग पर मुझे खुद को शर्म आ रही थी, इससे साथियों से मैंने इस विषय में चर्चा की और उसे धारण करने का निश्चय किया। पर अब हमें लछमन झूला चलना चाहिए।

ऋषिकेश और लछमन झूले के प्राकृतिक दृश्य बहुत पंसद आये। अपने पुरखों की प्रकृति की कला को पंहचानने की शक्ति के विषय में और कला को धार्मिक स्वरूप देने की उनकी दूरंदेशी के प्रति मन में बड़ा आदर पैदा हुआ। पर मनुष्य की कृति को देखकर चित्त को शांति न मिली। जैसे हरद्वार में वैसे ऋषिकेश में लोग रास्तों और गंगा के सुंदर तट को गंदा कर डालते थे। गंगा के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पवित्र जल को दूषित करते हुए भी उन्हें तनिक संकोच न होता था। पाखाने जाने वाले दूर जाने के बजाय जहां आदमियों की आमदरफ्त होती थी वहीं बैठ जाते थे। यह देखकर भारी चोट लगी। लछमन झुला जाते हुए लोहे का झूलता पुल देखा। लोगों से सुना कि यह पुल पहले रस्सियों का था और बहुत मजबूत था। उसे तोड़कर एक उदार हृदय मारवाड़ी ने बहुत रुपये लगाकर लोहे का पुल बनवा दिया और उसकी कुंजी सरकार को हवाले कर दी। रस्सियों के पुल की मुझे कोई कल्पना नहीं है, पर लोहे का पुल प्राकृतिक वातावरण को कलुषित कर रहा था और बहुत भद्दा लगता था। यात्रियों के इस रास्ते की कुंजी सरकार को सौंप दी गई। यह बात मेरी उस समय की वफादारी को भी असह्य लगी।

वहां से अधिक दुःखद दृश्य स्वर्गाश्रम का था। टीन के छाजन की तबेली-जैसी कोठरियों को 'स्वर्गाश्रम' नाम दिया गया था। मुझे बतलाया गया कि ये साधकों के लिए बनवाई गई हैं। उनमें शायद ही कोई साधक उस वक्त रहता था। इससे सटी हुई खास इमारत में रहने वालों की भी मुझ पर अच्छी छाप नहीं पड़ी।

पर हरद्वार के अनुभव मेरे लिए अमूल्य सिद्ध हुए। मुझे कहां बसना और क्या करना चाहिए, इसका इसका निश्चय करने में हरद्वार के अनुभवों ने मेरी बड़ी सहायता की।

9 : आश्रम की स्थापना

कुम्भ की यात्रा मेरी हरिद्वार की दूसरी यात्रा थी। सत्याग्रहाश्रम की स्थापना 1915 ई. की 25 मई को हुई। श्रद्धानंदजी की इच्छा थी कि मैं हरिद्धार में बसूं। कलकत्ते के कुछ मित्रों की सलाह वैद्यनाथधाम में बसने की थी। कुछ मित्रों का प्रबल आग्रह राजकोट में बसने का था।

पर जब मैं अहमदाबाद से गुजरा तो अनेक मित्रों ने अहमदाबाद को चुनने पर जोर दिया और आश्रम के खर्च का बीड़ा उन्होंने उठाने का जिम्मा लिया। मकान ढूंढ़ने का भार भी उन्होंने उठा लिया।

अहमदाबाद पर मेरी नजर पहले से जमी थी। मैं जानता था कि मैं गुजराती हूं, इससे गुजराती भाषा के द्वारा देश की अधिक-से-अधिक सेवा कर सकूंगा। यह भी ख्याल था कि अहमदाबाद पहले हाथ की बुनाई का केंद्र रहा है, इससे चरखे का काम यहीं ज्यादा अच्छी तरह हो सकेगा। यह भी आशा थी कि गुजरात का प्रधान नगर होने की वजह से यहां के धनाढ्य लोग धन की अधिक सहायता कर सकेंगे।

अहमदाबाद के मित्रों के साथ हुई बातचीत में अस्पृश्यता के प्रश्न की चर्चा हुई थी। मैंने साफ कह दिया था कि कोई लायक अन्त्यज भाई आश्रम में दाखिल होना चाहेगा तो मैं उसे जरूर दाखिल कर लूंगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"आपकी शर्तों को पाल सकने वाले अन्त्यज कहां पड़े मिलते हैं?" यों कहकर एक वैष्णव मित्र ने अपने मन को संतोष कर लिया और अंत में अहमदाबाद में बसने का निश्चय हो गया।

मकान की तलाश करते हुए कोचरब में श्री जीवनलाल बैरिस्टर का मकान, जो मुझे अहमदाबाद बसाने में प्रमुख थे, किराये पर लेना तै पाया।

आश्रम का नाम क्या रखा जाए जाए यह प्रश्न तुरंत उठा। मित्रों से मशविरा किया। कितने ही नाम सामने आए। सेवाश्रम, तपोवन आदि सुझाए गए थे। सेवाश्रम नाम रुचता था, पर उसमें सेवा की रीति का परिचय नहीं मिलता था। तपोवन नाम पसंद नहीं किया जा सकता था, क्योंकि यद्यपि तपश्चर्या हमें प्रिय थी, फिर भी यह नाम भारी लगा। हमें तो सत्य की पूजा, सत्य की खोज करनी थी, उसी का आग्रह रखना था और दक्षिण अफ्रीका में जिस पद्धति को मैंने अपनाया था उसका परिचय भारतवर्ष में कराना था और शक्ति कितनी व्यापक हो सकती है, यह देखना था। इससे मैंने और साथियों ने सत्याग्रहाश्रम नाम पसंद किया। उसमें सेवा और सेवा की पद्धति दोनों का भाव अपने-आप आ जाता था।

आश्रम चलाने को नियमावली की आवश्यकता थी। इससे नियमावली का मसविदा बनाकर उस पर राय मांगी। बहुसंख्यक सम्मतियों में से सर गुरुदास बनर्जी की सम्मति मुझे याद रह गई है। उन्हें नियमावली पसंद आई, पर उन्होंने सुझाया की व्रतों में नम्रता के व्रत को स्थान देना चाहिए। उनके पत्र की ध्वनि यह थी कि हमारे युवक-वर्ग में नम्रता की कमी है। यद्यपि नम्रता के अभाव का अनुभव मुझे जगह-जगह हो रहा था, फिर भी नम्रता को व्रत में स्थान देने से नम्रता के नम्रता न रह जाने का आभास होता था। नम्रमा का पूरा अर्थ तो शून्यता है। शून्यता की प्राप्ति के लिए दूसरे व्रत करने होते हैं। शून्यता मोक्ष की स्थिति है। मुमुक्षु या सेवक के प्रत्येक कार्य में यदि नम्रता-निरभिमानता न हो तो वह मुमुक्षु नहीं है, सेवक नहीं है। वह स्वार्थी है, अहंकारी है।

आश्रम में इस समय लगभग तेरह तमिल थे। मेरे साथ दक्षिण अफ्रीका से पांच तमिल बालक आए थे। वे और यहां के लगभग पच्चीस स्त्री-पुरुषों से आश्रम का आरम्भ हुआ था। सब एक रसोई में भोजन करते थे। और इस तरह रहने की कोशिश करते थे मानो सब एक ही कुटुम्ब के हों।

10 : कसौटी पर चढ़े

आश्रम को जन्म लिए अभी कुछ ही महीने हुए थे, इतने में हमारी ऐसी अग्नि-परीक्षा को गई जिसकी मुझे आशंका नहीं थी। भाई अमृतलाल ठक्कर का पत्र आया, "एक गरीब और ईमानदार अन्त्यज कुटुम्ब है। उसकी इच्छा आपके आश्रम में आकर रहने की है। उसे लेंगे?"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैं चौंका तो जरूर। उक्कर बापा जैसे पुरुष की सिफारिश लेकर आने वाला अन्त्यज कुटुम्ब इतनी जल्दी आएगा, इसकी मुझे हरगिज उम्मीद न थी। साथियों को चिट्ठी दिखाई। उन्होंने उसका स्वागत किया। भाई अमृतलाल ठक्कर को लिख दिया कि वह कुटुम्ब आश्रम के नियमों का पालन करने को तैयार हो तो उसे लेने को हम तैयार हैं।

दूदाभाई, उनकी पत्नी, दानी, बहन और बैयां-बैयां चलती दूध पीती लक्ष्मी आए। दूदाभाई बम्बई में शिक्षक का काम करते थे। नियमों का पालन करने को तैयार थे। उन्हें आश्रम में लिया।

सहायक मित्र-मंडल में खलबली मच गई। जिस कुएं में बंगले के मालिक का हिस्सा था उस कुएं से पानी भरने में ही अड़चन पड़ने लगी। चरस वाले पर हमारे पानी की छींटे पड़ जाए तो वह अपवित्र हो जाए। उसने गालियां देना और दूदाभाई तो तंग करना शुरू किया। मैंने सबसे कह दिया कि गालियां सहते जाओ और दृढ़तापूर्वक पानी भरते जाओ। हमें चुपचाप गालियां सुनते देखकर चरसवाला लजाया और गालियां बंद कर दीं; पर पैसे की मदद तो बंद हो गई। जिस भाई ने आश्रम के नियमों का पालन करने वाले अन्त्यजों के प्रवेश के सम्बन्ध में पहले से ही शंका की थी उसे तो आश्रम में अन्त्यजों के दाखिल होने की आशा ही न थी। पैसे की मदद बंद हुई। बहिष्कार की अफवाहें मेरे कानों में पड़ने लगीं। मैंने साथियों के साथ विचार कर रखा था-"यदि हमारा बहिष्कार हो और हमें कहीं से मदद न मिले तो भी अब हम अहमदाबाद न छोड़ेंगे। भंगी टोले में जाकर उन्हीं के साथ रहेंगे और जो कुछ मिल रहेगा उस पर या मजदूरी करके गुजर करेंगे।"

अंत में मगनलाल ने मुझे नोटिस दिया-"अगले महीने में हमारे पास आश्रम का खर्च चलाने को पैसे नहीं हैं।" मैंने धीरज से जवाब दिया-"तो हम भंगी टोले में चलकर रहेंगे।"

मुझ पर ऐसा संकट आने का यह पहला मौका न था। हर बार आखिरी घड़ी में 'सबके दाता राम' ने मदद भेज दी थी।

मगनलाल के नोटिस देने के कुछ ही दिन बाद एक दिन सवेरे किसी लड़के ने आकर खबर दी-"बाहर मोटर खड़ी है और सेठ आपको बुला रहे हैं।" मैं मोटर के पास गया। सेठ ने मुझसे पूछा-"मेरी इच्छा आश्रम को कुछ मदद देने की है, आप स्वीकार करेंगे?" मैंने जवाब दिया-"कुछ दीजिएगा तो जरूर लूंगा। मुझे उसे स्वीकार करना चाहिए क्योंकि इस वक्त मैं संकट में भी हूं।"

"मैं कल इस समय आऊंगा, उस वक्त आप आश्रम में होंगे?" मैंने जवाब में 'हां' कहा और सेठ चले गए। दूसरे नियत समय पर मोटर का भोंपू बजा। लड़कों ने खबर दी। सेठजी अंदर नहीं आए। मैं मिलने गया। वह मेरे हाथ पर 1300 रुपये के नोट रखकर चलते बने।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इस मदद को मैंने कभी आशा नहीं रखी थी। मदद देने की यह रीति भी मेरे लिए नई थी। उन्होंने आश्रम में पहले कभी कदम नहीं रखा था। मुझे याद आता है कि उनसे मैं एक ही बार मिला था। न आश्रम में आना, न कुछ पूछना, बाहर-ही-बाहर पैसे देकर चलते बनना; मेरा यह पहला ही अनुभव था। इस सहायता से भंगी टोले में जाना रुक गया। लगभग एक साल का खर्चा मुझे मिल गया।

पर जैसे बाहर खलबली मची वैसे ही आश्रम में भी मची। यद्यपि दक्षिण अफ्रीका में मेरे यहां अन्त्यज आदि आते, रहते, खाते थे, पर यहां अन्त्यज-कुटुम्ब का आना पत्नी को और आश्रम की दूसरी स्त्रियों को पसंद आया हो, यह नहीं कहा जा सकता। दानी बहन के प्रति नफरत तो नहीं, पर उसके प्रति उदासीनता की बात मेरी सूक्ष्म आंखें देख लेतीं और तेज कान सुन लेते थे। पैसे की मदद बंद हो जाने के डर ने मुझे जरा भी चिंता में नहीं डाला था। पर यह भीतर के क्षोभ का सामना करना कठिन लगा। दानी बहन साधारण स्त्री थीं। दूदाभाई की शिक्षा भी साधारण थी, पर उनकी समझ अच्छी थी। उनका धीरज मुझे पंसद आया था। उन्हें कभी-कभी गुस्सा आता था, पर कुल मिलाकर उनकी सहनशक्ति की मुझ पर अच्छी छाप पड़ी थी और वह समझ जाते थे और दानी बहन से सहन करवाते थे।

इस कुटुम्ब को आश्रम में रखने से आश्रम को बहुत से सबक मिले हैं, और अस्पृश्यता की आश्रम में गुंजाइश नहीं है, यह आरम्भ में ही स्पष्ट हो जाने से आश्रम की मर्यादा निश्चित हो गई तथा इस दिशा में उसका काम बहुत आसान हो गया। यह होते हुए भी और आश्रम को उसका खर्च बढ़ते जाते हुए भी, वह मुख्यतः कट्टर समझे जाने वाले हिन्दुओं की ओर से ही मिलता आया है। यह शायद इस बात की स्पष्ट सूचना है कि अस्पृश्यता की जड़ अच्छी तरह हिल गई है। इसके और सबूत तो बहुत हैं ही, पर अंत्यज के साथ जहां रोटी तक का व्यवहार रखा जाता हो, वहां भी अपने को सनातनी मानने वाले हिन्दू मदद दें, यह कोई छोटा प्रमाण नहीं माना जाएगा।

इसी मसले को लेकर आश्रम में हुई एक और सफाई, उसके सिलसिले में उठे हुए नाजुक प्रश्नों का निर्णय, कुछ अकल्पित अड़चनों का स्वागत करना इत्यादि सत्य की खोज के सिलसिले में हुए प्रयोगों का वर्णन प्रस्तुत होने पर भी मुझे छोड़ देना पड़ रहा है, इसका मुझे दुःख है। पर अब आगे के प्रकरणों में यह त्रुटि तो रहा ही करेगी। आवश्यक तथ्य मुझे छोड़ने पड़ेंगे, क्योंकि उनमें हिस्सा लेने वाले पात्रों में से बहुतेरे आज मौजूद हैं औ उनकी अनुमति के बिना, उनके नामों का और उनके साथ घटित प्रसंगों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग करना अनुचित जान पड़ता है। उसकी सम्मति समय-समय पर मंगवाना और उनसे सम्बन्ध रखने वाली बातों को उनके पास भेजकर सुधरवाना, यह हो सकने वाली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

बात नहीं है और यह आत्मकथा की मर्यादा के बाहर की बात है। इससे आगे की कथा, यद्यपि मेरी दृष्टि से सत्य के शोध के लिए जानने योग्य है, फिर भी मुझे डर है कि अधूरी दी जाया करेगी। इतने पर भी असहयोग के युग तक ईश्वर पहुंचने दे तो पहुंच जाऊं, यह मेरी इच्छा और आशा है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11 : गिरमिट की प्रथा

अब समय आ गया है कि नए बसे हुए और भीतरी-बाहरी तूफानों में से उबरे हुए आश्रम को छोड़कर गिरमिट-प्रथा पर थोड़ा विचार कर लिया जाए। 'गिरमिटिया' उसे कहते हैं जो पांच बरस या इससे कम की मजदूरी के इकरारनामे पर सही करके हिंदुस्तान के बाहर मजदूरी करने गया हो। ऐसे नेटाली गिरमिटियों पर से तीन पौंड का कर सन् 1914 में रद्द कर दिया गया था। पर यह प्रथा अभी बंद नहीं हुई थी। सन् 1916 में भारत भूषण पंडित मालवीयजी ने यह सवाल बड़ी कौंसिल में उठाया था और लार्ड हार्डिंग ने उनका प्रस्ताव स्वीकार करके प्रकट किया था कि यह प्रथा 'वक्त आने पर' उठा देने का वचन सम्राटों की ओर से मुझे मिल गया है। पर मुझे तो साफ दिखाई देता था कि यह प्रथा तत्काल बंद करने का निर्णय हो जाना चाहिए। इस प्रथा को हिंदुस्तान ने अपनी लापरवाही से बहुत बरसों तक चलने दिया था। मेरा ख्याल था कि अब लोगों में इतनी काफी जागृति हो गई है कि यह प्रथा बंद कराई जा सके। कुछ नेताओं से मिला, कुछ अखबारों में इस विषय में लिखा और मैंने देखा कि लोकमत इस प्रथा को निकाल देने के पक्ष में है। इसमें सत्याग्रह का उपयोग हो सकता है, इस विषय में तो मुझे कोई शंका नहीं थी पर कैसे किया जाए, यह मैं नहीं जानता था।

इस बीच वाइसराय ने 'वक्त आने पर' शब्दों का अर्थ समझाने का मौका ढूंढ़ लिया था। उन्होंने प्रकट किया कि 'दूसरी व्यवस्था करने में जितना वक्त लगेगा उतने समय में' यह प्रथा उठा दी जाएगी। अतः सन् 1917 के फरवरी में भारत-भूषण पंडित मालवीयजी ने गिरमिट-प्रथा तुरंत उठा देने का कानून बड़ी कौंसिल में पेश करने की इजाजत मांगी तो वाइसराय ने उसे देने से इनकार कर दिया। अतः इस प्रश्न को लेकर मैंने हिंदुस्तान का दौरा शुरू किया।

भ्रमण आरम्भ करने के पहले वाइसराय से मिल लेना मुनासिब मालूम हुआ। उन्होंने तुरंत मेरे मिलने की तारीख तै कर दी। उस समय के मि. मेफी (अब सर जान मेफी) उनके सेक्रेटरी थे। मि. मेफी के साथ मेरा समुचित सम्बन्ध स्थापित हो गया। लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ संतोषजनक बातचीत हुई। उन्होंने निश्चयपूर्वक तो कुछ नहीं कहा, पर मुझे अपनी मदद की आशा दिलाई।

दौरे का आरम्भ बम्बई से किया। बम्बई में सभा करने का भार मि. जहांगीर पेटिट ने अपने मत्थे लिया। 'इंपीरियल सिटीजनशिप एसोसिएशन' के नाम से सभा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हुई। उसमें पेश किए जाने वाले प्रस्ताव को तैयार करने के लिए समिति बनी। उसमें डॉ. रीड, सर लल्लूभाई शामलदास, मि. नटराजन आदि थे। मि. पेटिट तो थे ही। प्रस्ताव में गिरमिट की प्रथा बंद करने की प्रार्थना की गई थी। सवाल यह था कि कब बंद की जाए। तीन सुझाव थे-'जितनी जल्दी हो सके', '31वीं जुलाई तक' और 'तुरंत'। 31 जुलाई मेरा सुझाव था। मुझे तो निश्चित तारीख की जरूरत थी, जिससे उस अरसे में कुछ न हो तो आगे क्या करना है या क्या हो सकता है यह सोच लिया जाए। सर लल्लूभाई का सुझाव 'तुरत' शब्द रखने का हुआ। उन्होंने कहा-"31 जुलाई की अपेक्षा तो 'तुरत' अधिक शीघ्रतासूचक शब्द है।" मैंने यह समझाने की कोशिश की कि जनता 'तुरत' शब्द नहीं समझ सकती। जनता से कुछ काम लेना हो तो उसके सामने निश्चयात्मक शब्द होना चाहिए। 'तुरत' का अर्थ तो सब अपनी मरजी के मुताबिक करेंगे। सरकार एक करेगी, जनता दूसरा करेगी। '31 जुलाई' का अर्थ सब एक ही करेंगे और उस तारीख तक कुछ न हुआ हो तो हमें कौन-सा कदम उठाना चाहिए यह सोचा जा सकेगा। यह दलील डॉ. रीड को तुरंत जंच गई। आखिर में सर लल्लूभाई को भी 31वीं जुलाई पसंद आई और प्रस्ताव में वह तारीख रखी गई। सार्वजनिक सभा में यह प्रस्ताव पेश किया गया और सर्वत्र 31वीं जुलाई की हद रखी गई।

बम्बई से श्री जायजी पेटिट के अथक परिश्रम से स्त्रियों का एक डेपुटेशन वाइसराय के पास गया। उसमें लेडी ताता, स्वर्गीय दिलशाद बेगम इत्यादि थी। सब बहनों के नाम तो मुझ याद नहीं, पर इस डेपुटेशन का असर बहुत अच्छा हुआ और वाइसराय साहब ने उन्हें आशापूर्ण उत्तर दिया था।

मैं कराची, कलकत्ता आदि स्थानों में भी हो आया था। सब जगह अच्छी-खासी सभाएं हुई और सर्वत्र लोगों में भरपूर उत्साह था। इन सभाओं का सिलसिला शुरू करते समय ऐसी सभाएं होने और उनमें इतनी उपस्थिति होने की आशा मैंने नहीं की थी।

इन दिनों मेरी यात्रा अकेले ही होती थी। इसमें अलौकिक अनुभव होते थे। खुफिया पुलिसवाले तो पीछे लगे ही रहते थे। इनके साथ मेरा झगड़ा होने का कोई कारण न था। मुझे कुछ छिपाना नहीं था, इससे न वे मुझे तंग करते थे और न मैं उन्हें तंग करता था। सौभाग्यवश तब तक मुझे 'महात्मा' की उपाधि नहीं मिली थी। यद्यपि जहां मैं पहचान लिया जाता था वहां इस नाम से पुकार तो मचती थी। एक बार रेल में जाते हुए अनेक स्टेशनों पर खुफिया पुलिसवाले मेरा टिकट देखने आते, नम्बर वगैरा लेते रहे। मैं तो वे जो बात पूछते, उसका तुरंत जवाब दे देता था। साथी यात्रियों ने मान रखा था कि मैं कोई सीधा-सादा साधु या फकीर हूं। जब दो-चार स्टेशनों तक खुफिया पुलिसवाले लगातार आए तब वे यात्री बिगड़े और उन्हें गालियां देकर धमकाया-"इस बेचारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
साधु को नाहक क्यों सताते हो।" मेरी ओर मुखातिब होकर बोले, "इन बदमाशों को टिकट मत दिखाओ।"

मैंने धीरे से इन यात्रियों से कहा-"उनके देखने में मुझे कोई परेशानी नहीं होती है, वे अपना कर्त्तव्य करते हैं, इसका मुझे कोई दुःख नहीं है।" यात्रियों के गले यह बात नहीं उतरी और वे मुझ पर ज्यादा तरस खाने लगे और आपस में बातें करने लगे कि बेकसूर आदमियों को इतना हैरान क्यों किया जाता है?

खुफिया पुलिस वालों से तो मुझे कोई तकलीफ नहीं हुई, पर रेलवे की भीड़ के कष्ट का कड़ुए से कड़ुए अनुभव मुझे लाहौर से दिल्ली के बीच हुआ। कराची से कलकत्ते लाहौर के रास्ते जाना था। लाहौर में ट्रेन बदलनी पड़ती थी। वहां की ट्रेन में मेरी दाल कहीं गल नहीं पाती थी। यात्री जबरदस्ती अपना रास्ता कर ले रहे थे। दरवाजा बंद होता तो खिड़कियों में से अंदर घुस रहे थे। मुझे कलकत्ते नियत समय पर पहुंचना था। यह ट्रेन खो दूं तो कलकत्ते नहीं पहुंच सकता था। मैं जगह मिलने की आशा छोड़ रहा था। कोई मुझे अपने डब्बे में जगह नहीं देता था। अंत में एक कुली ने मुझे जगह ढूंढ़ते देखकर कहा-"मुझे बारह आने दो तो मैं जगह दिला दूं।" मैंने कहा-"मुझे जगह दिला दो तो जरूर बारह आने दूंगा।" बेचारा कुली यात्रियों से विनती कर रहा था, पर कोई मुझे लेने को तैयार न होता था। ट्रेन छूटने ही वाली थी कि एक डब्बे के कुछ यात्रियों ने कहा-"यहां जगह नहीं है, लेकिन इसके भीतर घुसा सकते हो तो घुसा दो। खड़ा रहना होगा।" कुली ने पूछा-"क्यों जी?" मैंने 'हां' की और उसने मुझे उठाकर खिड़की में से अंदर डाल दिया। मैं अंदर घुसा। कुली ने बारह आने पैसे बना लिए।

मेरी यह रात कड़े कष्ट से बीती। दूसरे यात्री ज्यों-त्यों करके बैठ गए। मैं ऊपर की बेंच की जंजीर पकड़कर दो घंटे खड़ा ही रहा। इस बीच में कुछ यात्री मुझे धमकाते ही रहे-"अजी, अब तक क्यों नहीं बैठता है?" मैंने बहुतेरा समझाया कि कहीं जगह भी तो हो। पर उन्हें तो मेरा खड़ा रहना भी सहन नहीं होता था, यद्यपि वह ऊपर की बेंचों पर आराम से लम्बे हो रहे थे। बार-बार तंग करते थे। जब तंग करते तब मैं शांति से जवाब देता था इससे वे कुछ शांत हो जाते थे। मेरा नाम-धाम पूछा। मुझे नाम बतलाना पड़ा; तब वे शरमाए। माफी मांगी और मेरे लिए अपनी बगल में जगह कर दी। 'सब्र का फल मीठा होता है' कहावत याद आई। मैं थककर चूर हो रहा था, सिर घूम रहा था। बैठने की जगह की जब सच्ची आवश्यकता थी तब ईश्वर ने दिला दी। यों धक्कम-धक्के में कलकत्ते समय पर पहुंच गया। कासिम बाजार के महाराज ने अपने यहां उतरने का निमंत्रण दे रखा था। वही कलकत्ते की सभा के अध्यक्ष थे। कराची की तरह कलकत्ते में भी लोगों का उत्साह उमड़ पड़ता था। थोड़े से अंग्रेज भी सभा में उपस्थित थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

31वीं जुलाई के पहले गिरमिट की प्रथा बंद होने की घोषणा निकली। सन् 1895 में इस प्रथा का विरोध करने वाली पहली दरख्वास्त मैंने तैयार की थी और यह उम्मीद रखी थी कि किसी दिन यह 'अर्ध गुलामी' जरूर रद्द होगी। पर इसके पीछे शुद्ध सत्याग्रह था यह कहे बिना नहीं रहा जाता।

इस सम्बन्ध में विशेष ब्यौरा और उसमें भाग लेने वाले पात्रों का परिचय दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में पाठकों को अधिक मिलेगा।

12 : नील का धब्बा

चम्पारन राजा जनक की भूमि है। चम्पारन में जैसे आमों के वन हैं वैसे वहां सन् 1917 में नील के खेत थे। चम्पारन के किसान अपनी ही जमीन के 3/20 हिस्से में नील की खेती उसके असल मालिक के लिए करने को कानून से मजबूर थे। इस प्रथा को 'तिनकठिया' कहते थे। बीस कट्ठे का वहां का एक एकड़ था और उसमें तीन कट्ठे की बोआई का नाम था 'तिनकठिया का रिवाज'।

मुझे स्वीकार करना चाहिए कि वहां जाने के पहले मैं चम्पारन का नाम तक नहीं जानता था। वहां नील की खेती होती है, इसका ख्याल भी नहीं के बराबर ही था। नील की गोटियां देखी थीं, पर यह चम्पारन में बनती हैं और उसके कारण हजारों किसानों को कष्ट भोगना पड़ता है, इसकी तनिक भी खबर नहीं थी।

राजकुमार शुक्ल चम्पारन के एक किसान थे। उन पर दुःख पड़ा। यह दुःख उन्हें खलता था। पर इस दुःख से उनके भीतर नील का धब्बा सबके लिए धो डालने की आग जली।

लखनऊ की महासभा में मैं गया था, वहीं इन किसानों ने मेरा पल्ला पकड़ा। "वकील बाबू आपको सब हाल बताएंगे", यह कहते जाते और मुझे चम्पारन आने का न्यौता देते जाते थे। वकील बाबू से मतलब था मेरे चम्पारन के प्रिय साथी, बिहार के सेवाजीवन के प्राण ब्रजकिशोर बाबू। राजकुमार शुक्ल उन्हें मेरे तम्बू में लाए। उन्होंने काले आलपके की अचकन, पतलून वगैरा पहन रखी थी। मेरे मन पर उनकी कोई अच्छी छाप न पड़ी। मैंने मान लिया कि वह भोले किसानों को लूटने वाले कोई वकील साहब होंगे।

मैंने चम्पारन की कथा उनसे थोड़ी-सी सुनी। अपनी साधारण रीति के अनुसार मैंने जवाब दिया, "खुद देखे बिना इस विषय पर मैं कोई राय नहीं दे सकता। आप महासभा में बोलिएगा। मुझे तो फिलहाल छोड़ ही दीजिए।" राजकुमार शुक्ल को महासभा की मदद की तो जरूरत थी ही। चम्पारन के बारे में महासभा में ब्रजकिशोर बाबू बोले और सहानुभूति-सूचक प्रस्ताव पेश हुआ।

राजकुमार शुक्ल को खुशी हुई। पर इतने से ही उन्हें संतोष नहीं हुआ। वह तो खुद मुझे चम्पारन के किसानों का दुःख दिखाना चाहते थे। मैंने कहा, "अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दौरे में मैं चम्पारन को भी सम्मिलित कर लूंगा और एक-दो दिन दूंगा।" उन्होंने कहा, "एक दिन काफी होगा, अपनी नजरों से देखिए तो सही।"

लखनऊ से मैं कानपुर गया। वहां भी राजकुमार शुक्ल मौजूद थे। "यहां से चम्पारन बहुत नजदीक है, एक दिन दे दीजिए।" "अभी मुझे माफ करें। पर मैं आऊंगा, यह वचन देता हूं।" यह कहकर मैं अधिक बंध गया।

मैं आश्रम गया तो राजकुमार शुक्ल वहां भी मेरे पीछे लगे हुए थे। "अब तो दिन मुकर्रर कीजिए।" मैंने कहा, "जाइए, मुझे फलां तारीख को कलकत्ते जाना है, वहां आइयेगा और मुझे ले जाइयेगा।" कहां जाना, क्या करना, क्या देखना है, इसका मुझे कुछ पता नहीं था। कलकत्ते में भूपेनबाबू के यहां मेरे पहुंचने के पहले उन्होंने वहां डेरा डाल रखा था। इस अपढ़, अनगढ़ पर निश्चयवान किसान ने मुझे जीत लिया।

सन् 1917 के आरम्भ में कलकत्ते से हम दोनों जने रवाना हुए। दोनों की एक-सी जोड़ी थी। दोनों किसान-जैसे ही लगते थे। राजकुमार शुक्ल जिस गाड़ी में ले गए उसमें हम दोनों घुसे। सवेरे पटने में उतरे।

पटने की यह मेरी पहली यात्रा थी। वहां मेरा किसी से ऐसा परिचय नहीं था कि उसके घर टिक सकूं। मेरे मन में था कि राजकुमार शुक्ल यद्यपि अनपढ़ किसान हैं तथापि उनका कोई वसीला तो होगा ही। ट्रेन में मुझे उन्हें कुछ अधिक जानने का मौका मिला। पटने में उनका परदा खुल गया। राजकुमार बिलकुल भोले थे। उन्होंने जिन्हें मित्र मान रखा था वह वकील उनके मित्र नहीं थे, बल्कि राजकुमार शुक्ल उनके आश्रित सरीखे थे। किसान मुवक्किल और वकीलों के बीच तो चौमासे की गंगा के चौड़े पाट के जितना अंतर था।

मुझे वह राजेन्द्रबाबू के यहां लिवा ले गए। राजेन्द्रबाबू पुरी या और कहीं गए हुए थे। बंगले पर एक-दो नौकर थे। खाने को कुछ मेरे पास था। मुझे खजूर की जरूरत थी। वह बेचारे राजकुमार शुक्ल बाजार से ले आए।

पर बिहार में छुआछूत का बड़ा जोर था। मेरे डोल के पानी के छींटों से नौकरों को छूत लग जाती थी। नौकर को क्या मालूम कि मैं किस जाति का हूं। राजकुमार ने अंदर का पाखाना काम में लाने को कहा। नौकर ने बाहर के पाखाने की ओर अंगुली दिखाई। मेरे लिए इसमें कहीं परेशानी या रोष का कारण नहीं था। ऐसे अनुभवों में मैं पक्का हो गया था। नौकर तो अपने धर्म का पालन कर रहा था और राजेन्द्रबाबू के प्रति उसका जो फर्ज था उसे बजाता था। इन मनोरंजक अनुभवों से राजकुमार शुक्ल के लिए मेरे मन में आदर बढ़ा। उसी के साथ उनके विषय में मेरा ज्ञान भी बढ़ा। पटने से मैंने लगाम अपने हाथ में ले ली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13. बिहारी सीधापन

मौलाना मजहरुलहक और मैं लंदन में साथ रहते थे। उसके बाद हम बम्बई में सन् 1915 की कांग्रेस में मिले थे। उस साल वह मुस्लिम लीग के अध्यक्ष थे। उन्होंने पुराना परिचय बताकर कहा था कि आप कभी पटने आएं तो मेरे यहां अवश्य पधारेंगे। इस निमंत्रण के आधार पर मैंने उन्हें पत्र लिखा और अपना काम बतलाया। वह तुरंत अपनी मोटर लाए और मुझे अपने यहां ले जाने का आग्रह किया। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और कहा कि जहां मुझे जाना है वहां आप पहली ट्रेन से मुझे रवाना कर दें। रेलवे गाइड से मुझे कुछ पता नहीं चल सकता था। उन्होंने राजकुमार शुक्ल से बातें की और बताया कि मुझे पहले तो मुजफ्फरपुर जाना चाहिए। उसी दिन, शाम को मुजफ्फरपुर जो ट्रेन जाती थी, उसमें उन्होंने मुझे रवाना कर दिया। आचार्य कृपालानीजी उन दिनों मुजफ्फरपुर में ही रहते थे। उन्हें मैं पहचानता था। मैं जब हैदराबाद गया तब उनके महान त्याग की, उनके जीवन की और उनके पैसे से चलने वाले आश्रम की बात डॉ. चोइथराम की जुबानी सुनी थी। वह मुजफ्फरपुर कॉलेज में प्रोफेसर थे। इन दिनों उससे अलग होकर बैठे थे। मैंने उन्हें तार दिया। मुजफ्फरपुर ट्रेन आधी रात को पहुंचती थी। वह अपने शिष्य मंडल को लेकर स्टेशन उपस्थित थे। पर उनके घर-बार नहीं था। वह अध्यापक मलकानी के यहां रहते थे। मुझे उनके यहां ले गए। मलकानी वहां के कॉलेज में प्रोफेसर थे और उस समय के वातावरण में सरकारी कॉलेज के प्रोफेसर का मुझे अपने यहां टिकाना, यह असाधारण बात मानी जा सकती है।

कृपालानी जी ने बिहार की, और उसमें भी तिरहुत विभाग की दीन-दशा का वर्णन किया और मेरे काम की कठिनाई का अंदाजा कराया। कृपालानीजी ने बिहार के साथ गहरा सम्बन्ध जोड़ लिया था। उन्होंने मेरे काम की बात उन लोगों से कर रखी थी। सवेरे छोटा-सा वकील-मंडल मेरे पास आया। उनमें से रामनवमीप्रसाद मुझे याद रह गये हैं। उन्होनें अपने आग्रह से मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा।

"आप जो काम करने आए हैं वह यहां से नहीं होने का। आपको हम-जैसों के यहां ठहरना चाहिए। गयाबाबू यहां के नामी वकील हैं। आपसे, उनकी ओर से मैं यहां उतरने का आग्रह करता हूं। हम सब सरकार से डरते तो जरूर हैं, पर हमसे जितनी बनेगी उतनी मदद हम आपको देंगे। राजकुमार शुक्ल की बहुत-सी बातें सच्ची हैं। दुःख तो यह है कि हमारे अगुआ आज यहां नहीं हैं। बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद और राजेन्द्र प्रसाद को मैंने तार दिए हैं। दोनों यहां तुरंत आ जाएंगे और आपको पूरी बातें बताएंगें और मदद दे सकेंगे। मेहरबानी करके आप ग़याबाबू के यहां चलें।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इस भाषण से मैं लुभाया। मुझे उहराने से गयाबाबू कठिनाई में न पड़ जाए, इस डर से मुझे संकोच होता था, पर गयाबाबू ने मुझे निश्चिंत कर दिया।

मैं गयाबाबू के यहां गया। उन्होंने और उनके कुटुम्बियों ने मुझे अपने प्रेम में सराबोर कर दिया।

ब्रजकिशोरबाबू दरभंगे से आए। राजेन्द्रबाबू पुरी से आए। यहां देखा तो वह लखनऊ वाले ब्रजकिशोर प्रसाद नहीं थे। उनमें बिहारवासी की नम्रता, सादगी, भलमनसी, असाधारण श्रद्धा देखकर मेरा हृदय हर्ष से भर गया। बिहारी वकील-मंडल का ब्रजकिशोरबाबू के प्रति आदर देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ।

इस मंडल के और मेरे बीच जन्मभर के लिए स्नेहगांठ बंध गई।

ब्रजकिशोरबाबू ने मुझे सारी बातों से वाकिफ कराया। वह गरीब किसानों के लिए मुकदमे लड़ते थे। ऐसे दो मुकदमे चल रहे थे। ऐसे मुकदमों की पैरवी करके वह कुछ व्यक्तिगत आश्वासन प्राप्त कर लिया करते थे। कभी-कभी उसमें भी नाकामयाब हो जाते थे। इन भोले किसानों से मेहनताना तो लेते ही थे। त्यागी होते हुए भी ब्रजकिशोरबाबू या राजेन्द्रबाबू मेहनताना लेने में संकोच नहीं रखते थे। उनकी दलील यह थी कि पेशे के काम में मेहनताना न लें तो हमारा घर-खर्च नहीं चल सकता और हम लोगों की मदद भी नहीं कर सकते। उनके मेहनताने के तथा बंगाल के और बिहार के बैरिस्टरों को दिए जाने वाले मेहनताने की कल्पना में न आ सकने वाले आंकड़े सुनकर मैं सुन्न हो गया।

"...साहब को हमने 'ओपीनियन' (राय) के लिए दस हजार रुपये दिए।" हजार से कम की बात ही मैंने नहीं सुनी।

इस मित्र मंडल ने इस सम्बन्ध में मेरा मीठा उलाहना स्नेह सहित सुन लिया। इसका उन्होंने विपरीत अर्थ नहीं लिया।

मैंने कहा-"इन मुकदमों को पढ़ जाने के बाद मेरा मत तो यह है कि अब ये मुकदमे लड़ना हमें बंद ही कर देना चाहिए। ऐसे मुकदमों से फायदा बहुत कम होता है। जो रैयत इतनी कुचली हुई हो, जहां सब इतने भयभीत रहते हों, वहां कचहरियों के जरिए थोड़ा ही इलाज हो सकता है। लोगों का डर निकालना उनके रोग की असली दवा है। यह 'तिनकठिया' प्रथा न जाए तब तक हम चैन से नहीं बैठ सकते। मैं तो दो दिन में जितना देखा जा सके, उतना देखने आया हूं। पर अब देखता हूं कि यह काम तो दो साल भी ले सकता है। इतना समय लगे तो भी मैं देने को तैयार हूं। इस काम में क्या करना चाहिए यह तो मैं सोच सकता हूं, लेकिन आपकी मदद की जरूरत है।"

ब्रजकिशोरबाबू को मैंने बहुत ठंडे दिमाग का आदमी पाया। उन्होंने शांति से जवाब दिया-"हमसे जो मदद हो सकेगी वह हम देंगे। पर वह किस तरह की होनी चाहिए, यह हमें समझाइए।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने इस बातचीत में रात बिता दी। मैंने कहा- "मुझे आपकी वकालत की योग्यता का थोड़ा ही उपयोग होगा। आप-जैसों से मैं तो मुहर्रिर और दुभाषिये का काम चाहूंगा। इसमें जेल जाने की सम्भावना भी मुझे दिखाई देती है। मैं यह पसंद करूंगा कि आप यह जोखिम उठाए। लेकिन आप उसे न लेना चाहें तो न लें। पर वकील न रहकर मुहर्रिर बनना और अपना धंधा अनिश्चित अवधि के लिए छोड़ देना, यह मेरी कोई छोटी मांग नहीं है। यहां की हिंदी बोली समझने में मुझे भारी कठिनाई होती है। कागज-पत्र सब कैथी या उर्दू में लिखे हुए होते हैं, जिन्हें मैं नहीं पढ़ सकता। इनका उलथा कर देने की मैं आपसे आशा रखता हूं। यह काम पैसे देकर करा सकना मुमकिन नहीं है। यह सब सेवाभाव से और बिना पैसे के होना चाहिए।"

ब्रजकिशोरबाबू समझ गए। लेकिन उन्होंने मुझसे और अपने साथियों से जिरह शुरू की। मेरी बातों के गर्भितार्थ पूछे। मेरे अंदाज के अनुसार वकीलों का कब तक त्याग करना होगा, कितनों की जरूरत होगी, थोड़े-थोड़े लोग थोड़ी-थोड़ी अवधि के लिए आए तो काम चलेगा या नहीं, इत्यादि प्रश्न पूछे। वकीलों से पूछा कि आप लोग कितना त्याग कर सकते हैं?

अंत में उन्होंने यह निश्चय जताया-"हम इतने आदमी, आप जो काम सौंपेंगे, वह कर देने को तैयार रहेंगे। इनमें से जितनों को जिस समय मांगियेगा, उतने आपके पास रहेंगे। जेल जाने की बात नई है। उस बारे में हम शक्ति प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।"

14 : अहिंसा देवी का साक्षात्कार

मुझे तो किसानों की हालत की जांच करनी थी। नील की कोठियों के मालिक गोरों (निलहों) के खिलाफ जो शिकायतें थीं, उनमें कितनी सचाई है यह देखना था। इस काम के सिलसिले में हजारों किसानों से मिलने की जरूरत थी, पर उनसे इस प्रकार मिलने के पहले नील के मालिकों की बात सुन लेना और कमिश्नर से मिलना मैंने जरूरी समझा। दोनों को चिट्ठी लिखी।

मालिकों के मंत्री ने मुलाकात के समय साफ कह दिया कि आप परदेशी हैं, आपको हमारे और किसानों के बीच में दखल नहीं देना चाहिए। फिर भी अगर आपको कुछ कहना हो तो मुझे लिखकर जताइएगा। मैंने मंत्री से नम्रतापूर्वक कहा कि मैं अपने को परदेशी नहीं मानता और किसान चाहें तो उनकी हालत की जांच करने का मुझे पूरा अधिकार है। कमिश्नर साहब से मिले। उन्होंने तो धमकाना ही शुरू कर दिया और मुझे आगे बढ़े बिना तिरहुत छोड़ देने की सलाह दी।

मैंने साथियों को सब बातें बताकर कहा कि जांच करने में मुझे सरकार रोकेगी, ऐसी सम्भावना है और जेल-यात्रा का समय मैंने जो सोचा था, उससे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जल्दी भी आ सकता है। अगर मुझे अपने आपको गिरफ्तार कराना ही हो तो मुझे मोतिहारी और मुमकिन हो तो बेतिया में गिरफ्तार कराना चाहिए। और इससे जहां तक जल्दी मुमकिन हो वहां पहुंचना चाहिए।

चम्पारन तिरहुत कमिश्नरी का एक जिला है और मोतिहारी उसका सदर मुकाम। बेतिया के आसपास राजकुमार शुक्ल का घर था और उसके आसपास की कोठियों के किसान सबसे ज्यादा कंगाल थे। उनकी दशा दिखाने का राजकुमार शुक्ल को लोभ था और मुझे अब उसे देखने की इच्छा थी।

अतः साथियों को लेकर मैं उसी दिन मोतिहारी के लिए रवाना हो गया। मोतिहारी में गोरखबाबू ने आश्रय दिया और उनका घर धर्मशाला बन गया। हम सब ज्यों-त्यों करके उसमें अंट सकते थे। जिस दिन हम पहुंचे उसी दिन सुना कि मोतिहारी से कोई पांच मील दूर एक किसान रहता था, उस पर जुल्म हुआ था। यह तय हुआ कि उसे देखने को मैं धरणीधरप्रसाद वकील को लेकर सुबह जाऊं। हम सवेरे हाथी पर सवार होकर निकल पड़े। चम्पारन में हाथी का उपयोग लगभग उसी तरह होता है, जिस तरह गुजरात में बैलगाड़ियों का। आधे रास्ते पहुंचे होंगे कि पुलिस सुपरिटेंडेंट का आदमी आ पहुंचा और मुझसे बोला-"आपको सुपरिटेंडेट साहब ने सलाम दिया है।" मैं समझ गया। धरणीबाबू को मैंने आगे जाने को कहा। मैं उक्त संदेशवाहक के साथ उसकी किराये की की हुई गाड़ी में बैठा। उसने चम्पारन छोड़ने की नोटिस मुझे दी, मुझे अपने स्थान पर ले गया और मेरी सही मांगी। मैंने जवाब लिख दिया कि मैं चम्पारन नहीं छोड़ना चाहता और मुझे तो आगे बढ़ना है और जांच करनी है। चम्पारन छोड़ देने का हुक्म न मानने के कारण दूसरे ही दिन अदालत में हाजिर होने का समन मिला।

सारी रात जागकर जो पत्र मुझे लिखने थे वे लिखे और जो-जो सूचनाएं देनी थी, वे ब्रजकिशोरबाबू को दीं।

समन की बात क्षणभर में सर्वत्र फैल गई और लोग कहते थे कि मोतिहारी में ऐसा दृश्य देखने में आया जैसा इसके पहले कभी देखने में नहीं आया था। गोरखबाबू के घर और कचहरी में लोग उमड़ पड़े। सौभाग्य से मैंने अपना सब काम रात को निबटा लिया था, इससे इस भीड़ को सम्हाल सका। साथियों की कीमत मुझे पूरी-पूरी मालूम हुई। वे लोगों को नियम से रखने में जुट गए। कचहरी में जहां जाता वहां दल के दल लोग मेरे पीछे आते। कलेक्टर, मैजिस्ट्रेट, सुपरिटेंडेंट वगैरा के साथ भी मेरा एक तरह का सम्बन्ध जुड़ गया। सरकारी नोटिसों वगैरा के खिलाफ कानूनी विरोध करना होता तो मैं कर सकता था, इसके बजाए मैंने उनकी सब नोटिसों को स्वीकार कर लिया और अधिकारियों के साथ निजी व्यवहार में मिठास से काम लिया। इससे वे समझ गए कि मुझे उनका विरोध नहीं करना है; बल्कि उनके हुक्म का विनयपूर्वक विरोध करना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। इससे वे मेरी ओर से एक तरह से निर्भय हो गए। मुझे तंग करने के बजाए उन्होंने लोगों को नियम में रखने में मेरी और मेरे साथियों की सहायता का खुशी से उपयोग किया। पर साथ ही वे समझ गए कि उनकी हुकूमत आज से गई। लोग क्षणभर के लिए दंड का भय छोड़कर उनके नये मित्र के प्रेम के शासन के अधीन हो गए।

याद रहे कि चम्पारन में मुझे कोई पहचानता नहीं था। किसान वर्ग बिलकुल अनपढ़ था। चम्पारन गंगा के उस पार ठेठ हिमालय की तराई में नेपाल का निकटस्थ प्रदेश है; यानी नई दुनिया ही। जहां न कहीं कांग्रेस का नाम सुनाई देता था, न कांग्रेस का कोई सदस्य दिखाई देता था। जिन्होंने नाम सुना था वे नाम लेने या उसमें शामिल होते डरते थे। आज महासभा (कांग्रेस) के नाम बिना महासभा ने और महासभा के सेवकों ने प्रवेश किया और महासभा की दुहाई फिरी।

साथियों से मशविरा करके मैंने निश्चय किया था कि महासभा के नाम से कोई भी काम न किया जाए। हमें नाम से नहीं, बल्कि काम से काम है; 'कथनी' नहीं, 'करनी' की जरूरत है। महासभा का नाम यहां अप्रिय है। इस प्रदेश में महासभा का अर्थ है वकीलों की बहसाबहसी, कानूनी छिद्रों से सटक जाने की कोशिश। महासभा के मानी हैं बमगोला, महासभा के मानी हैं 'कथनी' और 'करनी' और ये धारणाएं सरकार और सरकार की सरकार निलहे गोरों की थी। महासभा यह नहीं है; वह महासभा दूसरी ही चीज है, यह हमें साबित करना था। इसलिए हमने महासभा का नाम ही कहीं न लेने और लोगों को महासभा के भौतिक देह का परिचय न कराने का निश्चय किया था। हमने सोच लिया था कि वे उसके अक्षर को न जानकर उसकी आत्मा को जानें और अनुसरण करें तो काफी है, यही असल बात है।

अतः महासभा की ओर से गुप्त या प्रकट दूतों के द्वारा कोई भूमिका तैयार नहीं कराई गई थी। राजकुमार शुक्ल में हजारों आदमियों में प्रवेश करने की शक्ति नहीं थी। उनके अंदर किसी ने आज तक राजनीतिक काम किया ही न था। चम्पारन के बाहर की दुनिया को वह जानते नहीं थे, फिर भी उनका और मेरा मिलाप पुराने मित्रों का सा जान पड़ा। इससे मैंने ईश्वर का, अहिंसा का और सत्य का साक्षात्कार किया, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है पर अक्षरशः सत्य है। इस साक्षात्कार में अपने अधिकार का विचार करता हूं तो मुझे लोगों के प्रति प्रेम के सिवा और कुछ नहीं मिलता। प्रेम अथवा अहिंसा में मेरी अचल श्रद्धा के सिवा और कुछ नहीं।

चम्पारन का यह दिन मेरी जिंदगी में ऐसा था जो कभी भुलाया नहीं जा सकता। यह मेरे लिए और किसानों के लिए उत्सव का दिन था। सरकारी कानून के अनुसार मुझ पर मुकदमा चलाया जाने वाला था। पर सच पूछिए तो मुकदमा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सरकार पर ही डलवाया। यह था कमिश्नर ने जो जाल मेरे लिए बिछाया था, उसमें सरकार को ही फंसा दिया।

15. मुकदमा वापस लिया गया

मुकदमा चला। सरकारी वकील और मैजिस्ट्रेट वगैरा घबराये हुए थे। उन्हें सूझता नहीं था कि क्या करना चाहिए। सरकारी वकील सुनवाई मुल्तवी रखने की प्रार्थना कर रहे थे। मैं बीच में पड़ा और विनय की कि मुल्तवी रखवाने की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि मुझे चम्पारन छोड़ने की नोटिस का अनादर करने का अपराध कबूल कर लेना है। यह कहकर मैंने जो बहुत ही छोटा-सा बयान तैयार किया था, उसे पढ़ सुनाया। वह इस प्रकार था।

"जाब्ता फौजदारी दफा 144 के अनुसार दी हुई आज्ञा का स्पष्ट अनादर करने का गम्भीर कदम मुझे क्यों उठाना पड़ा? इस विषय में छोटा-सा बयान अदालत की इजाजत से देना चाहता हूं। मेरी नम्र सम्मति में यह अनादर का प्रश्न नहीं है, बल्कि स्थानीय सरकार और मेरे बीच मतभेद का प्रश्न है। मैं इस प्रदेश में जनसेवा और देशसेवा के उद्देश्य से ही आया हूं। रैयत से निलहे न्याय का बर्ताव नहीं करते। इस कारण उनकी मदद के लिए आने का मुझसे प्रबल आग्रह किया गया; इसी से मुझे आना पड़ा है। सब बातों को जाने-समझे बिना मैं उनकी मदद कैसे कर सकता हूं? अतः मैं इस प्रश्न का, सम्भव हो तो सरकार और निलहों की सहायता लेकर, अध्ययन करने आया हूं। मेरा कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है और मेरे आने से लोगों की शांति भंग होगी और खून-खराबी होगी, यह मैं नहीं मान सकता। मेरा दावा है कि इस बारे में मुझे यथोचित अनुभव है। पर सरकार का विचार इस विषय में मुझसे भिन्न है। उसकी कठिनाई मैं समझता हूं, और मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि उसे प्राप्त सूचनाओं पर ही भरोसा करना पड़ता है। कानून का आदर करने वाले प्रजाजन की हैसियत से तो मुझे जो हुक्म दिया गया है उसे स्वीकार करने की स्वाभाविक इच्छा होती है और हुई होती; पर मुझे लगा कि वैसा करने में मैं जिनके लिए यहां आया हूं उनके प्रति मैं अपने कर्त्तव्य का घात करूंगा। मुझे लगता है कि उनकी सेवा आज मुझसे उनके बीच में रहकर ही बन सकती है। अतः स्वेच्छा से चम्पारन छोड़ना सम्भव नहीं है। इस धर्मसंकट में मुझे चम्पारन से हटाने की जिम्मेदारी मैं सरकार पर डालने को मजबूर हो गया।

"इस बात को मैं अच्छी तरह समझता हूं कि हिंदुस्तान के लोकजीवन में मुझ-जैसी प्रतिष्ठा रखने वाले आदमी को कोई कदम उठाकर उदाहरण उपस्थित करने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि आज जिस परिस्थिति में हम डाल दिए गए हैं उसमें मुझ जैसी परिस्थिति में पड़े हुए स्वाभिमानी मनुष्य के सामने इसके सिवा कोई दूसरा निरापद और मानयुक्त मार्ग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
नहीं है, सिवा इसके कि आज्ञा का उल्लंघन करने के बदले में जो सजा हो उसे चुपचाप स्वीकार कर ले।"

"मुझे आप जो सजा देना चाहते हैं उसे कम करने की नीयत से यह बयान मैं नहीं दे रहा हूं। मुझे यह महज जता देना था कि आज्ञा का उल्लंघन करने में मेरा उद्देश्य कानून से स्थापित सरकार का अपमान करना नहीं है, बल्कि मेरा हृदय जिस अधिक बड़े कानून को स्वीकार करता है अर्थात् अंतरात्मा की आवाज, उसका अनुसरण करना है।"

अब मुकदमे की सुनवाई रखने की जरूरत नहीं रही। पर मैजिस्ट्रेट या वकील इस नतीजे की उम्मीद नहीं रखते थे। इससे सजा सुनाने के लिए अदालत ने मुकदमे को मुल्तवी रखा। मैंने वाइसराय को सारी स्थिति तार से सूचित कर दी थी। पटना भी तार दिया था। भारतभूषण पंडित मालवीयजी आदि को भी हालात के तार भेज दिए थे। सजा सुनने के लिए अदालत में जाने का समय आने के पहले मेरे पास मैजिस्ट्रट का हुक्म आया कि लाट साहब के हुक्म से मुकदमा वापस ले लिया गया और कलेक्टर का पत्र मिला कि आपको जो जांच करनी हो वह कीजिए और उसमें अधिकारियों से जिस मदद की जरूरत हो वह मांग लें। ऐसे तात्कालिक और शुभ परिणाम की आशा हममें से किसी ने नहीं की थी।

मैं कलेक्टर मि. हेकोक से मिला। वह खुद भला आदमी जान पड़ा और न्याय करने में तत्पर। उसने कहा कि आपको जो कागज पत्र या और कुछ देखना हो वह मांग लें और मुझसे जब मिलना हो मिल सकते हैं।

दूसरी ओर सारे हिन्दुस्तान को सत्याग्रह का अथवा कानून के सविनय भंग का पहला स्थानीय पदार्थ पाठ मिला। अखबारों में इसकी खूब चर्चा हुई; और चम्पारन को तथा मेरी जांच को अकल्पित प्रसिद्धि मिल गई।

अपनी जांच के लिए यद्यपि मुझे सरकार के निष्पक्ष रहने की जरूरत थी, फिर भी अखबारों में चर्चा होने और उनके संवाददाताओं की रिपोर्टों की जरूरत न थी। इतना ही नहीं, उनके बहुत अधिक टीका-टिप्पणी करने और जांच की लम्बी रिपोर्टों से हानि होने का भय था। इससे मैंने खास-खास अखबारों के सम्पादकों से प्रार्थना की थी कि वे अपने रिपोर्टर भेजने के खर्च में न पड़ें। जितना छापने की जरूरत होगी उतना खुद मैं भेजता रहूंगा और उन्हें खबर देता रहूंगा।

चम्पारन के निलहे खूब खीझे हुए हैं, यह मैं जानता था। अधिकारी भी मन में खुश नहीं होंगे, यह भी मैं समझता था। अखबारों में सच्ची-झूठी खबरें छापने से वे ज्यादा चिढ़ेंगे और उनकी खीझ मुझ पर तो क्या उतरेगी; पर बेचारे गरीब, डरपोक रैयत पर उतरे बिना न रहेगी; और ऐसा होने से जो सच्ची स्थिति मैं जानना चाहता हूं उसमें विघ्न आएगा। निलहों की ओर से विषैला आंदोलन शुरू हो गया। उनकी ओर से अखबारों में मेरे और साथियों के विषय में खूब झूठे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रचार हुए, पर मेरे अत्यंत सावधान रहने और छोटी-से-छोटी बातों में भी सत्य को पकड़े रहने की आदत के कारण उनके तीर खाली गए।

ब्रजकिशोरबाबू की अनेक प्रकार से निंदा करने में उन्होंने तनिक भी कसर नहीं की। पर ज्यों-ज्यों वे उनकी निंदा करते गए त्यों-त्यों ब्रजकिशोरबाबू की प्रतिष्ठा बढ़ती गई।

ऐसी नाजुक स्थिति में रिपोर्टरों को आने के लिए मैंने तनिक भी उत्साह नहीं दिलाया। नेताओं को नहीं बुलाया। मालवीयजी ने मुझसे कहला दिया था "जब मेरी जरूरत हो तब बुला लेना। मैं तैयार हूं"। उन्हें भी तकलीफ नहीं दी। इस लड़ाई को कभी राजनैतिक रूप नहीं लेने दिया। जो कुछ होता था उसकी रिपोर्ट मैं मौके से खास-खास अखबारों को भेज दिया करता था। राजनैतिक काम के लिए भी, जहां राजनीति की गुंजाइश न हो वहां राजनीतिक रूप देने से 'माया मिली न राम' वाली बात हो जाती है, और इस प्रकार विषय का स्थानांतर न करने से दोनों सुधरते हैं। यह मैंने बीसियों बार के अनुभव से देख लिया था। शुद्ध लोकसेवा में प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष रीति से राजनीति रहती ही है। चम्पारन की लड़ाई यह सिद्ध कर रही थी।

16: कार्य-पद्धति

चम्पारन की जांच का हाल देने के मानी है चम्पारन के किसानों का इतिहास देना। ऐसा हाल इन प्रकरणों में देना सम्भव नहीं है। फिर चम्पारन की जांच अहिंसा और सत्य का एक बड़ा प्रयोग था। इससे लगाव रखने वाली जितनी बातें हर हफ्ते मेरे दिमाग पर चढ़ती हैं उतनी दे देता हूं। उसका अधिक ब्यौरा तो पाठकों को बाबू राजेन्द्रप्रसाद लिखित इस युद्ध के इतिहास में[1] और 'युगधर्म' प्रेस से प्रकाशित उसके गुजराती उत्थे से मिल सकता है।

अब इस प्रकरण के विषय पर आना चाहिए। गोरखबाबू के यहां रहकर यह जांच होती तो उन्हें अपना घर खाली करना पड़ता। मोतिहारी में किराये पर मांगने पर भी कोई झट अपना मकान दे दे, इतनी निर्भयता लोगों में नहीं आई थी। पर चतुर ब्रजकिशोरबाबू ने एक बड़े सेहन वाला मकान किराये पर लिया और हम उसमें चले गए।

बिल्कुल बिना पैसे के काम चल जाए, ऐसी स्थिति नहीं थी। आज तक की प्रथा प्रजा वर्ग से सार्वजनिक काम के लिए पैसा लेने की नहीं थी। ब्रजकिशोरबाबू का मंडल खासकर वकीलों का मंडल था, अतः वे मौका आने पर अपनी जेब से खर्च कर लेते थे और कुछ मित्रों से मांग लेते थे। उनका ख्याल था कि जो खुद रुपये-पैसे से सुखी हो वह लोगों से द्रव्य-भिक्षा कैसे मांग सकता है? इधर मेरा दृढ़ निश्चय था कि चम्पारन की रैयत से एक कौड़ी भी नहीं लेनी है। उससे लेने

1. 'चम्पारन में महात्मा गांधी'। यह पुस्तक 'मण्डल' से प्रकाशित हुई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का गलत अर्थ निकाला जाएगा। यह भी निश्चय था कि इस जांच के लिए हिन्दुस्तान में आम जनता से चंदा न मागूंगा। ऐसा करने से यह जांच राष्ट्रीय और राजनैतिक रूप धारण कर सकती थी। बम्बई से कुछ मित्रों का 15000 रु. मदद देने का तार आया। उनकी सहायता धन्यवादपूर्वक अस्वीकार कर दी। मैंने निश्चय किया कि चम्पारन के बाहर से लेकिन बिहार के ही संपन्न जनों से ब्रजकिशोरबाबू का मंडल जो सहायता प्राप्त कर सके वह ले लूं और जो कमी रह जाए वह मैं डॉक्टर प्राणजीवनदास मेहता से रुपये लेकर पूरी कर लूं। डॉक्टर मेहता ने लिखा था कि जितने रुपये की जरूरत हो मंगा लीजिएगा। पैसे के बारे में हम निश्चिंत हो गए। गरीबी से कम-से-कम खर्च करके लड़ाई चलानी थी। इससे ज्यादा पैसों की जरूरत नहीं पड़ने वाली थी; वास्तव में पड़ी भी नहीं। मेरा खयाल है कि सब मिलाकर दो या तीन हजार से ज्यादा का खर्च नहीं था। जो इकट्ठा किया था उसमें से 500 रु. या 1000 रु. बच जाने का मुझे ख्याल आ रहा है।

हमारी आरम्भकाल की रहन-सहन विचित्र थी और मेरे लिए वह रोज के विनोद का विषय हो गई थी। वकील-मंडल में हर एक के पास नौकर और रसोइया होता था। हर एक की रसोई अलग बनती थी। वे रात को बारह बजे तक भी भोजन करते थे। ये लोग रहते तो थे अपने खर्च से, फिर भी मेरे लिए यह रहन-सहन उपद्रव रूप था। मेरी और मेरे साथियों की स्नेहगांठ इतनी पक्की हो गई थी कि हममें कोई गलतफहमी न हो पाती थी। वे मेरे शब्दबाण प्रेम से सह लेते थे। अंत में यह तय पाया कि नौकरों को छुट्टी दे दी जाए, सब साथ खाएं और खाने के नियमों की पाबंदी करें। सब निरामिषाहारी नहीं थे और दो चौका चलाने में खर्च बढ़ता था, इसमें निरामिष भोजन ही पकाकर एक ही चौका चलाने का निश्चय हुआ। भोजन भी सादा रखने का आग्रह था। इससे खर्च में बड़ी बचत हुई, काम करने की शक्ति बढ़ी और समय की भी बचत हुई।

अधिक शक्ति की बड़ी आवश्यकता भी थी, क्योंकि किसानों के दल-के-दल अपनी कहानियां लिखाने आने लगे। कहानियां लिखने वाले के पास लिखाने वालों की भीड़ लगी रहती। मकान का सहन भर जाता था। मुझे दर्शनार्थियों से सुरक्षित रखने को मेरे साथी बड़े-बड़े प्रयत्न करते और विफल हो जाते। एक नियत समय पर दर्शन देने को मुझे बाहर कर देने पर ही जान छूटती। कहानी लिखने वाले भी कभी छः-सात से कम न होते, फिर भी शाम को सबके बयान पूरे न हो पाते। इतने सब लोगों के बयान लेने की जरूरत नहीं थी, फिर भी उसे लिख लेने से लोगों को संतोष हो जाता था और मुझे उनकी भावनाओं का पता चल जाता था।

कहानी लिखने वाले को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता था। हर एक किसान से जिरह करनी चाहिए। जिरह में जो उखड़ जाए उसका बयान न लिखा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाए। जिसकी बात शुरू में ही निराधार लगे उसका बयान न लिया जाए। इन नियमों के पालन से यद्यपि समय कुछ अधिक जाता था तथापि बयान अधिक सत्य और साबित होने लायक मिलते थे।

ये बयान लेते समय खुफिया पुलिस का कोई कर्मचारी तो रहता ही था। हम उनका आना रोक सकते थे; पर हमने शुरू से ही निश्चय कर लिया था कि उन्हें आने से न रोकेंगे। इतना ही नहीं, अपितु उनके साथ विनय का बरताव भी करेंगे और देने लायक खबर दे दिया करेंगे। उनके आंख और कान के सामने सारे बयान लिए जाते थे। इसका फ़ायदा यह हुआ कि लोगों में अधिक निर्भयता आई। खुफिया पुलिस से लोग बहुत डरते थे, उनका वह डर चला गया और उनकी निगाह के सामने लिए जाने वाले बयान में अतिशयोक्ति का डर कम रहता था। झूठ बोलने से खुफिया पुलिसवाले उन्हें फांस देंगे इस डर से किसानों को सावधान रहकर बोलना पड़ता था। मुझे निलहों को खिझाना नहीं था, बल्कि उन्हें भलमनसी से जीतने का प्रयत्न करना था। इससे जिनके खिलाफ ज्यादा शिकायतें आती थीं उन्हें पत्र लिखता था और उनसे मिलने की भी कोशिश करता था। निलहों के मंडल से भी मैं मिला था, और रैयत की शिकायतें उनके सामने रखकर उनकी बात भी सुन ली थी। उनमें से कुछ मुझसे नफरत करते थे, कुछ उदासीन थे और कोई-कोई सौजन्य भी दिखाते थे।

17 : साथी

ब्रजकिशोरबाबू और राजेन्द्रबाबू की जोड़ी तो बेजोड़ थी। उन्होंने अपने प्रेम से मुझे ऐसा अपाहिज बना दिया कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे नहीं जा सकता था। उनके शिष्य कहिए या साथी शम्भूबाबू, अनुग्रहबाबू, धरणीबाबू, और रामनवमीबाबू-ये वकील करीब-करीब सदा साथ ही रहते थे। यह तो हुआ बिहारी-संघ। उसका खास काम था लोगों के बयान लेना।

अध्यापक कृपलानी इसमें शामिल हुए बिना कैसे रह सकते थे? खुद सिंधी होते हुए भी वह बिहारी से भी बढ़कर बिहारी थे। ऐसे कम सेवकों को मैंने देखा है कि जिनकी शक्ति जिस प्रांत में जाए उसमें पूरी तरह घुल-मिल जाने की हो; और खुद दूसरे प्रांत के हैं, यह किसी को मालूम न होने दें! इनमें कृपलानी एक हैं। उनका खास काम द्वारपाल का था। दर्शन करने वालों से मुझे बचा लेने में उन्होंने इस समय अपने जीवन की सार्थकता मान ली थी। किसी को मजाक करके मेरे पास आने से रोकते थे तो किसी को अहिंसक धमकी से। रात होने पर अध्यापक का धंधा शुरू करते और सब साथियों को हँसाते, और कोई कच्चे दिल का आदमी पहुंच जाए तो उसे हिम्मत दिलाते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मौलाना मजहरुलहक ने मेरे सहायक के रूप में अपना नाम दर्ज करा रखा था और महीने में एक-दो फेरे कर जाते थे। उस वक्त के उनके ठाठ और दबदबे और आज की उनकी सादगी में जमीन-आसमान का अंतर है। हममें आकर वह अपना दिल मिला जाते थे, पर अपनी साहबी से बाहर के आदमियों को तो हमसे अलग-से लगते।

ज्यों-ज्यों मैं अनुभव प्राप्त करता गया त्यों-त्यों मुझे दिखाई दिया कि चम्पारन में सच्चा काम करना हो तो गांवों में शिक्षा का प्रवेश होना चाहिए। लोगों का ज्ञान दयनीय था। गांवों के बच्चे मारे-मारे फिरते थे या मां-बाप दो-तीन पैसे की आमदनी के लिए उनसे सारे दिन नील के खेतों में मजदूरी करवाते थे। इस समय पुरुषों की मजदूरी वहां दस पैसे से अधिक नहीं थी। स्त्रियों की छह पैसे और लड़कों की तीन पैसे थी। चार आने की मजदूरी पाने वाला मजदूर भाग्यशाली समझा जाता था।

साथियों से सलाह करके पहले तो छह गांवों में बच्चों की पाठशालाएं खोलने का निश्चय हुआ। शर्त यह थी कि उन गांवों के मुखिया मकान और शिक्षक का भोजन व्यय दें। उसके और खर्च हम चलावें। यहां के गांव में पैसे की बहुतायत तो नहीं थी, पर अनाज वगैरा देने की लोगों की शक्ति थी। इसलिए लोग कच्चा अनाज देने को तैयार हो गए थे।

अब बड़ा प्रश्न यह था कि शिक्षक कहां से लाए जाएं । बिहार में थोड़ा वेतन लेने वाले या कुछ न लेने वाले अच्छे शिक्षकों का मिलना कठिन था। मेरा खयाल यह था कि साधारण शिक्षक के हाथ में बच्चों को नहीं देना चाहिए। शिक्षक को अक्षर-ज्ञान भले ही थोड़ा हो, पर उसमें चारित्र्य-बल होना चाहिए।

इस काम के लिए मैंने सार्वजनिक रूप से स्वयंसेवकों की अपील की। उसके जवाब में गंगाधरराव देशपांडे ने बाबा साहब सोमण और पुंडलीक को भेजा। बम्बई से अवंतिकाबाई गोखले आईं। दक्षिण से आनंदीबाई आईं। मैंने छोटेलाल, सुरेंद्रनाथ और अपने लड़के देवदास को बुला लिया। इसी बीच में महादेव देसाई और नरहरि परीख मुझसे मिल गये थे। महादेव देसाई की पत्नी दुर्गाबहन तथा नरहरि परीख की पत्नी मणिबहन भी आईं। कस्तूरबाई को भी मैंने बुला लिया था। इतने शिक्षकों और शिक्षिकाओं का संघ काफी था। श्रीमती अवंतिकाबाई और आनंदीबाई तो शिक्षिता मानी जा सकती थीं, पर मणिबहन परीख और दुर्गाबहन देसाई को सिर्फ थोड़ी-सी गुजराती आती थी। कस्तूरबाई की पढ़ाई तो नहीं के बराबर थी। ये बहनें बच्चों को हिन्दी कैसे पढ़ावें?

मैंने बहनों को बतलाया कि उन्हें बच्चों को व्याकरण नहीं बल्कि तौर-तरीका सिखाना है। पढ़ना-लिखना सिखाने की बनिस्बत उन्हें सफाई के नियम सिखाना ज्यादा जरूरी है। यह भी बतलाया कि हिन्दी, गुजराती, मराठी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में अधिक भेद नहीं है और पहले दर्जे में तो मुश्किल से अंक लिखना सिखाना है, इसलिए उन्हें कठिनाई न होगी। फल यह हुआ कि बहनों के दर्जे बड़ी अच्छी तरह चले। बहनों में आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया और उन्हें अपने काम में रस भी मिला। अवंतिकाबाई की पाठशाला आदर्श पाठशाला बन गई। उन्होंने अपनी पाठशाला में जान डाल दी। उनका शिक्षण-कला का ज्ञान भी भरपूर था। इन बहनों के द्वारा गांव के स्त्री-समुदाय में भी हमारा प्रवेश हो सका था।

पर मुझे पढ़ाई के प्रबंध से ही संतोष नहीं करना था। गांव की गंदगी की कोई हद न थी। गलियों में कूड़ा, कूओं के आस-पास कीचड़ और बदबू, आंगनों की ओर देखा नहीं जाता था। बड़ों को स्वच्छता की शिक्षा की जरूरत थी। चम्पारन के लोग रोगों से पीड़ित दिखाई देते थे। जितना हो सके उतना सुधार काम करें और वह करके लोगों के जीवन के हर एक विभाग में प्रवेश करें, यह हमारा विचार था।

इस काम में डॉक्टर के मदद की जरूरत थी। इसमें मैंने गोखले की सोसायटी से डॉ. देव की मांग की। उनके साथ मेरी स्नेहगांठ तो बंध ही चुकी थी। छह महीने के लिए उनकी सेवा का लाभ मिला। उनकी देख-रेख में शिक्षकों और शिक्षिकाओं को काम करना था।

सबको यह समझा दिया गया था कि कोई भी निलहों के खिलाफ की जाने वाली शिकायतों में न पड़े, राजनीति से स्पर्श न करें, शिकायतें करने वाले को मेरे पास भेज दें, कोई भी अपने क्षेत्र से बाहर एक कदम भी न रखे। चम्पारन के इन साथियों का नियमपालन अद्‌भुत था। ऐसे किसी मौके की मुझे याद नहीं है जब किसी ने दी हुई सूचना का उल्लंघन किया हो।

18 : ग्राम-प्रवेश

प्रायः हर एक पाठशाला में एक पुरुष और एक स्त्री के रखने का प्रबंध किया गया था। उन्हीं के द्वारा दवा-इलाज और सफाई के काम कराने थे। स्त्रियों के जरिये स्त्री-वर्ग में प्रवेश करना था। दवा का काम बहुत आसान बना लिया गया था। अरंडी का तेल, कुनैन और एक मरहम, इतनी ही चीजें हर पाठशाला में रखी जाती थीं। जीभ जांचने पर मैली दिखाई दे और कब्ज की शिकायत हो तो अरंडी का तेल पिला देना। ज्वर की शिकायत हो तो अरंडी का तेल देने के बाद कुनैन पिला देना और जो फोड़े हों तो उन्हें धोकर उन पर मरहम लगा देना। खाने की दवा या मरहम ले जाने को शायद ही दी जाती थी। कहीं खतरेवाली या न समझ में आने वाली बीमारी होती तो डॉक्टर देव को दिखाने के लिए छोड़ दी जाती। डॉक्टर देव भिन्न-भिन्न स्थानों पर नियत समय पर हो आते थे। ऐसी सादी व्यवस्था का लाभ लोग काफी उठा रहे थे। आमतौर से होने वाले रोग थोड़े

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ही हैं और उनके लिए बड़े चिकित्सा-विशारदों की जरूरत नहीं होती। यह बात ध्यान में रखी जाय तो उपर्युक्त रीति से की हुई योजना किसी को हास्यजनक नहीं लगेगी। लोगों को तो नहीं ही लगी।

सफाई का काम कठिन था। लोग गंदगी दूर करने को तैयार नहीं थे। जो लोग रोज खेत पर जाकर काम करते थे वह भी अपने हाथ से मैला साफ करने को तैयार नहीं थे। डॉक्टर देव झट हार मान लेने वाले आदमी नहीं थे। उन्होंने खुद और स्वयंसेवकों ने एक गांव के रास्ते साफ किए, लोगों के आंगन से कूड़ा निकाला, कुओं के आस-पास के गड्ढे भरे, कीचड़ निकाला और गांववालों को स्वयंसेवक देने के लिए प्रेमपूर्वक समझाते रहे। कुछ जगहों में लोगों ने शरमाकर काम करना शुरू किया और कुछ जगह तो लोगों ने मेरी मोटर गुजरने के लिए सड़कें भी अपनी मेहनत से बना दीं। ऐसे मधुर अनुभवों के साथ ही लोगों की लापरवाही के कटु अनुभव भी मिलते थे। मुझे याद है कि सफाई की बात सुनकर कुछ जगहों में लोगों को नफरत भी पैदा हुई।

इन अनुभवों में से एक को, जिसका वर्णन मैंने स्त्रियों की अनेक सभाओं में किया था, यहां देना अनुचित न होगा। भीतिहरवा एक छोटा-सा गांव है। उसके पास उससे भी छोटा एक पुरवा है। वहां कुछ बहनों के कपड़े बहुत मैले दिखाई दिए। इन बहनों को कपड़े धोने-बदलने के बारे में समझाने को मैंने कस्तूरबाई से कहा। उसने बहनों से बात की। इनमें से एक बहन उसे अपनी झोंपड़ी में ले गई और बोली- "आप देखिए, यहां कोई पेटी-संदूक नहीं है कि जिसमें कपड़े बन्द हों। मेरे पास या मैंने जो पहन रखी है बस यही साड़ी है। इसे मैं कैसे धोऊं? महात्माजी से कहें कि वह कपड़े दिलवाएं तो फिर मैं रोज नहाने और रोज कपड़े बदलने को तैयार रहूंगी।" ऐसे झोंपड़े हिंदुस्तान में अपवादरूप-गिनती के दो-चार नहीं हैं। अगणित झोंपड़ों में कोई साज-सामान, संदूक-पिटारा, कपड़े-लत्ते नहीं होते और अगिणत मनुष्य सिर्फ पहने हुए कपड़े पर ही निर्वाह करते हैं।

दूसरा अनुभव भी देने योग्य है। चम्पारन में बांस की या घास की कमी नहीं थी। लोगों ने भीतिहरवा में पाठशाला के लिए जो छप्पर बनाया था वह बांस और घास का था। किसी ने उसे रात को जला दिया। संदेह तो आस-पास के निलहों के आदमियों पर हुआ था। इसके बाद फिर बांस और घास का मकान बनाना ठीक नहीं जंचा। यह पाठशाला श्री सोमण और कस्तूरबाई के मातहत थी। श्री सोमण ने ईंटों का पक्का मकान बनाने का निश्चय किया और उनकी जाती मेहनत की छूत दूसरों को लगी। इससे देखते-देखते ईंटों का मकान बनकर तैयार हो गया और फिर मकान जलने का अंदेशा जाता रहा।

पर मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस काम को स्थाई कर देने का मेरा मनोरथ सफल न हुआ। जो स्वयंसेवक मिले थे वह एक खास मुद्दत के लिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ही मिले थे। दूसरे नये आदमियों के मिलने में कठिनाई पड़ी और बिहार में इस काम के लिए योग्य स्थायी सेवक न मिल सके। मुझे भी, चम्पारन का काम पूरा हुआ ही था कि दूसरा काम, जो तैयार हो रहा था, घसीट ले गया। इतने पर भी छह महीने तक हुए काम ने इतनी जड़ पकड़ ली कि एक नहीं तो दूसरी शक्ल में उसका असर आज तक बाकी है।

19 : उज्ज्वल पक्ष

एक ओर तो समाज सेवा का काम, जिसका मैंने पिछले प्रकरण में वर्णन किया है, हो रहा था और दूसरी ओर लोगों की दुःखगाथाएं लिखने का काम चल रहा था और दिन-दिन बढ़ता जा रहा था। हजारों आदमियों की कहानियां लिखी गईं। इसक असर हुए बिना कैसे रहता? मेरे डेरे पर ज्यों-ज्यों लोगों की आवा-जाही बढ़ती गई त्यों-त्यों निलहों का क्रोध बढ़ता चला। मेरी जांच को बंद कराने की उनकी ओर से होने वाली कोशिशें बढ़ती गईं।

एक दिन मुझे बिहार की सरकार का पत्र मिला। उसका भावार्थ यह था- "आपकी जांच काफी लम्बे अरसे तक चल चुकी और अब आपको उसे बन्द करके बिहार छोड़ देना चाहिए।" पत्र नरम था, लेकिन मतलब साफ था। जवाब में मैंने लिखा कि जांच अभी और चलेगी और वह पूरी हो जाने पर भी लोगों की तकलीफें जब तक दूर न हों, तब तक मेरा इरादा बिहार छोड़ने का नहीं है।

मेरी जांच बन्द करने का सरकार के पास मुनासिब इलाज एक ही था और वह यह कि लोगों की शिकायतों को सच्ची मानकर उन्हें दूर करे या शिकायतों पर ध्यान देकर अपनी जांच-कमेटी बैठाए। गवर्नर सर एडवर्ड गेट ने मुझे बुलाया और खुद जांच कमेंटी नियुक्त करने का इरादा जाहिर किया और उसमें सदस्य होने को मुझे निमन्त्रण दिया। दूसरे नाम देखकर और अपने साथियों से सलाह करके इस शर्त पर सदस्य होना कबूल किया कि मुझे साथियों से मशविरा करने की आजादी रहे और सरकार यह समझ रखे कि मैं सदस्य बनकर किसानों का हिमायती न रहूं सो नहीं होगा, और जांच होने के बाद मुझे संतोष न हुआ तो किसानों की रहनुमाई करने की अपनी आजादी भी मैं न छोड़ूंगा।

सर एडवर्ड गेट ने इन शर्तों को मुनासिब मानकर कबूल कर लिया। स्व. सर फ्रेकस्लाई इस कमेटी के अध्यक्ष चुने गये थे। जांच कमेटी ने किसानों की सब शिकायतों को सही माना, निलहों के अनुचित रीति से लिए हुए रुपयों का अमुक भाग वापस लौटाने की और 'तिनकठिया' पद्धति को रद्द करने की सिफारिश की।

इस रिपोर्ट के मुकम्मल होने और अन्त में कानून पास होने में सर एडवर्ड गेट का बहुत बड़ा हिस्सा था। वह दृढ़ न रहे होते या अपनी कुशलता का पूरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उपयोग न किया होता तो जो रिपोर्ट एकमत से तैयार हुई वह न हो पाती और जो कानून अन्त में पास हुआ वह न बन पाता। निलहों की ताकत जबरदस्त थी। रिपोर्ट प्रकाशित हो जाने पर भी उनमें कुछ ने बिल का तीव्र विरोध किया था; पर सर एडवर्ड गेट अन्त तक दृढ़ रहे और कमेटी की सिफारिशों पर पूरा-पूरा अमल किया।

इस प्रकार तिनकठिया का कानून, जो सौ साल से चला आ रहा था, टूटा और उसके साथ निलहों का राज्य अस्त हुआ। रैयत जो दबी हुई रहती थी उसे अपनी शाक्ति का कुछ ज्ञान और नील का दाग धोये नहीं धुलता-यह वहम दूर हो गया।

मेरी इच्छा थी कि चम्पारन में आरम्भ किया हुआ रचनात्मक काम जारी रखकर कुछ बरस लोगों में काम करूं और अधिक पाठशालाएं खोलूं और अधिक गांवों में प्रवेश करूं। क्षेत्र तैयार था, पर मेरे मनसूबे ईश्वर ने बहुत बार पूरे नहीं होने दिए। मैंने सोचा था कुछ और, दैव ने मुझे घसीट लिया दूसरे ही काम में।

20 : मजदूरों से सम्बन्ध

मैं चम्पारन में कमेटी का काम खत्म कर ही रहा था कि इतने में खेड़ा से मोहनलाल पंड्या और शंकरलाल परीख का पत्र मिला कि खेड़ा जिला में फसल मारी गई है और लगान का माफ किया जाना जरूरी है। वहां जाकर लोगों की रहनुमाई करने का उन्होंने आग्रह किया। मौके पर जाकर जांच किये बिना कोई सलाह देने की मेरी इच्छा नहीं थी, न अपने में इसका बूता या हिम्मत थी।

दूसरी ओर से श्रीमती अनसूयाबाई का पत्र मिला, जो उनके मजदूर-संघ के सम्बन्ध में था। बहुत दिनों से उनकी मांग थी कि उनका वेतन बढ़ाया जाय। इस विषय में उनकी रहनुमाई करने का मुझमें हौसला था। यह परिमाण में छोटा-सा दिखाई देने वाला काम भी दूर से बैठे-बैठे कर सकूं यह योग्यता मुझमें नहीं थी। इससे मौका मिलते ही मैं अहमदाबाद पहुंचा। मैंने सोचा था कि दोनों कामों की जांच करके थोड़े ही दिनों में मैं चम्पारन लौट आऊंगा और वहां के रचनात्मक काम की देख-रेख करूंगा। पर अहमदाबाद पहुंचने के बाद ऐसे काम निकल पड़े कि मैं कुछ अरसे तक चम्पारन न जा सका और जो पाठशालाएं चल रही थीं वे एक-एक करके टूट गईं। मेरे साथियों ने और मैंने कितने ही हवाई महल बनाए थे, तत्काल वे ढह गए। चम्पारन में ग्राम पाठशालाओं और ग्रामसुधार के अतिरिक्त गोरक्षा का काम भी मैंने हाथ में लिया था। गोशाला और हिन्दी प्रचार के काम का इजारा मारवाड़ी भाइयों ने ले रखा था, यह अपने भ्रमण में मैं देख चुका था। बेतिया में एक मारवाड़ी सज्जन अपनी धर्मशाला में मुझे आश्रय दिया था। बेतिया के मारवाड़ी सज्जनों ने मुझे अपनी गोशाला में लपेट लिया था। गोरक्षा के विषय में मेरी जो कल्पना आज है वही कल्पना उस समय बन चुकी थी। गोरक्षा के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मानी है गोवंश-वृद्धि, गोजाति-सुधार, बैल से सीमित काम लेना, गोशाला को आदर्श दुग्धशाला बनाना इत्यादि। इस काम में मारवाड़ी भाइयों ने पूरी मदद देने का वचन दिया था। पर मैं चम्पारन जा न सका, अतः वह काम अधूरा ही रह गया। बेतिया में गोशाला तो आज भी चलती है, लकिन वह आदर्श दुग्धशाला न बन सकी। चम्पारन के बैलों से आज भी ताकत के बाहर काम लिया जाता है। हिन्दू कहलाने वाले आज भी बैलों को बेरहमी से पीटते हैं और धर्म की दुर्दशा करते हैं। यह कांटा मेरे मन में सदा के लिए रह गया है और जब-जब चम्पारन जाता हूं तब-तब इन अधूरे रहे हुए जरूरी कामों को याद करके लम्बी सांस लेता हूं तथा उन्हें अधूरा छोड़ देने के लिए मारवाड़ी भाइयों और बिहारियों को मीठा उलाहना देता हूं। पाठशालाओं का काम तो एक नहीं तो दूसरी रीति से, दूसरे स्थानों में चलता है, पर गोसेवा के कार्यक्रम ने जड़ ही नहीं पकड़ी थी, इसलिए उसे इष्ट दिशा में गति न प्राप्त हो सकी।

अहमदाबाद में जब खेड़ा के काम के बारे में सलाह-मशविरा हो रहा था, उस बीच में मजदूरों का काम मैंने उठा लिया था।

मेरी स्थिति बहुत ही नाजुक थी। मजदूरों का पक्ष मुझे मजबूत जान पड़ा। श्री अनसूयाबहन को अपने सगे भाई के साथ लड़ना था। मजदूरों और मालिकों के बीच इस दारूण युद्ध में श्री अम्बालाल साराभाई अगुआ थे। मिलमालिकों से मेरा सम्बन्ध प्रेम का था। उनके साथ लड़ना टेढ़ा काम था। उनके साथ बातचीत करके मजदूरों की मांग के बारे में पंच चुनने की प्रार्थना की। पर मालिकों ने अपने और मजदूरों के बीच में पंच के बिचवई बनने का औचित्य स्वीकार नहीं किया।

मजदूरों को मैंने हड़ताल करने की सलाह दी। यह सलाह देने के पहले मजदूरों और उनके नेताओं से अच्छी तरह मिल-जुल लिया था। उन्हें हड़ताल की शर्तें समझाईं। वे थीं:

1. किसी भी दशा में शांति का भंग कदापि न करना।
2. जो काम पर जाना चाहे उस पर जोर-जबरदस्ती न करना।
3. मजदूर भीख पर न जीयें।
4. हड़ताल चाहे जितने दिन चले वे दृढ़ रहें और अपने पास पैसा न रह जाय तो दूसरी मजदूरी करके खाने भर कमा लें।

ये शर्तें अगुआ लोगों ने समझ लीं और स्वीकार कीं। मजदूरों की आम सभा हुई और उसमें उन्होंने निश्चय किया कि जब तक हमारी मांग मंजूर न हो जाए या उसके औचित्य-अनौचित्य की जांच के लिए पंच की नियुक्ति न हो तब तक वे काम पर न जाएंगे।

कहना चाहिए कि इस हड़ताल के दौरान में श्रीवल्लभभाई और शंकरलाल बैंकर की मुझे सच्ची पहचान हुई। श्री अनसूयाबहन का परिचय मुझे इसके पहले ही अच्छी तरह हो चुका था।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हड़तालियों की सभा रोज नदी किनारे एक पेड़ की छाया तले होने लगी। उसमें वे सैकड़ों की तादाद में रोज उपस्थित होते। अपनी प्रतिज्ञा की याद मैं उन्हें रोज दिलाता था। शान्ति रक्षा की, और अपने सम्मान की आवश्यकता समझाता था। वे अपना एक टेक का झंडा लेकर रोज शहर में घूमते और जलूस के रूप में सभा में उपस्थित होते थे।

यह हड़ताल इक्कीस दिन चली। इस बीच समय-समय पर मालिकों के साथ मैं बातचीत किया करता था। इन्साफ करने को मनाता था। मुझे जवाब मिलता- "हमारी भी तो टेक है! हममें और हमारे मजदूरों में बाप-बेटे का सम्बन्ध है। उसके बीच में किसी का टांग अड़ाना हमें कैसे बर्दाश्त हो सकता है? इसमें पंच का क्या काम?"

21 : आश्रम की झांकी

मजदूरों का प्रकरण आगे बढ़ाने के पहले आश्रम की एक झांकी कर लेना जरूरी है। चम्पारन में रहते हुए भी मैं आश्रम को भूल नहीं सकता था। कभी-कभी तो वहां हो भी आता था।

कोचरब अहमदाबाद के पास एक छोटा-सा गांव है और आश्रम का स्थान इसी गांव में था। कोचरब में प्लेग फैला। बालकों को मैं गांव के अन्दर सुरक्षित नहीं रख सकता था। स्वच्छता के नियमों का चाहे जितनी सावधानी से पालन किया जाता, आस-पास की अस्वच्छता से आश्रम को अछूता रखना असम्भव था। कोचरब के लोगों से स्वच्छता के नियमों का पालन कराने की अथवा उनकी ऐसे वक्त सेवा करने की शक्ति हममें नहीं थी। हमारा आदर्श तो यह था कि आश्रम को शहर या गांव दोनों से दूर रखें, पर इतनी दूर भी नहीं कि वहां पहुंचने में कठिनाई हो। किसी दिन जब आश्रम आश्रमरूप में सुशोभित होगा उसके पहले उसे अपनी जमीन पर और खुली जगह में स्थिर होना ही था।

प्लेग को मैंने कोचरब छोड़ने की नोटिस माना। श्रीपूंजाभाई हीराचन्द आश्रम के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध रखते थे और आश्रम की छोटी-बड़ी सेवा शुद्ध, निरभिमान भाव से करते थे। उन्हें अहमदाबाद के कारबारी जीवन का बहुत अनुभव था। उन्होंने आश्रम के लिए आवश्यक जमीन तुरंत ढूंढ़ देने का बीड़ा उठाया। कोचरब के उत्तर-दक्षिण के भाग में मैं उनके साथ फिरा। उसके बाद उत्तर की ओर तीन-चार मील दूर कोई टुकड़ा मिल जाय तो ढूंढ़ देने को मैंने उनसे कहा। इस समय आश्रम जहां है वह जमीन उन्होंने ढूंढ़ दी। उसका जेल के नजदीक होना मेरे लिए खास प्रलोभन था। सत्याग्रह-आश्रमवासी की किस्मत में जेल तो लिखा ही होता है, इस धारणा के कारण जेल का पड़ोस मुझे पसन्द आया। इतना तो मैं जानता था कि जेल के लिए सदा वही जगह पसन्द की जाती है जहां आस-पास स्वच्छ स्थान हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठ दिन के भीतर ही जमीन का सौदा हो गया। जमीन पर एक भी पेड़ न था। नदी का किनारा और एकांत वहां का सबसे बड़ा आकर्षण था। हमने तम्बू में रहना तय किया। सोचा गया कि रसोई के लिए एक टीन का कामचलाऊ छप्पर डलवा लें और फिर धीरे-धीरे स्थायी मकान बनवाया जाए।

इस समय आश्रम की आबादी बढ़ गई थी। छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष मिलाकर कोई चालीस आदमी थे सभी एक ही चौके में खाते थे, यह सुभीता था। योजना की कल्पना मेरी थी। उसे कार्यरूप देने का भार उठाने वाले तो नियमानुसार स्व. मगनलाल गांधी ही थे।

स्थायी मकानात बनने के पहले की अड़चनों की हद न थी। बरसात का मौसम सिर पर था। सामान सारा चार मील दूर शहर से लाना पड़ता था। इस बंजर जमीन में सांप आदि तो थे ही। उनमें बालकों की रक्षा की जोखिम ऐसी-वैसी नहीं थी। हमारा नियम सर्पादि को न मारने का था, पर उनके भय से मुक्त तो हममें से कोई न था। आज भी नहीं है।

हिंसक जीवों को न मारने के नियम का यथाशक्ति पालन फिनिक्स, टॉलस्टॉय फार्म और साबरमती तीनों स्थानों में किया गया है। तीनों जगह बंजर जमीन में बसना पड़ा है। कह सकते हैं कि तीनों जगह सर्पादि का उपद्रव काफी था, फिर भी आज तक एक भी जान हमें नहीं खोनी पड़ी। उसमें मेरे-जैसे श्रद्धालु तो ईश्वर का हाथ, उसकी कृपा ही देखते हैं। ईश्वर पक्षपात नहीं करता, मनुष्य के रोजमर्रा के काम में दखल देने को वह खाली नहीं बैठा है, ऐसी बेकार की शंका किसी को न करनी चाहिए। इस अनुभव को दूसरी भाषा में रखना मुझे नहीं आता। लौकिक भाषा में, ईश्वर की लीला को देखते हुए भी मैं जानता हूं कि उसका कार्य अवर्णनीय है। पर यदि पामर मनुष्य वर्णन करता है तो उसके पास तो अपनी तोतली बोली ही होती है। सामान्य रीति से सर्पादि को न मारते हुए भी समाज का पच्चीस वर्ष तक बचे रहना इसे संयोगमात्र मानने के बजाय प्रभु की दया मानना, अगर वहम हो तो वह वहम भी संग्रहणीय है।

जब मजदूरों की हड़ताल हुई तब आश्रम की नींव पड़ रही थी। आश्रम की प्रधान प्रवृत्ति बुनाई-काम की थी। कताई की तो अभी हम खोज ही नहीं कर पाये थे। इससे बुनाईघर पहले बनाने का निश्चय हुआ, अतः उसकी नींव डाली जा रही थी।

22 : उपवास

मजदूरों ने पहले दो सप्ताह तक खूब हिम्मत दिखाई, शान्ति भी खूब रखी। रोज की सभा में बड़ी संख्या में आते भी रहे। मैं रोज उन्हें उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाया करता था। वे रोज पुकार-पुकारकर कहते, "हम मर जाएंगे, पर अपनी एक टेक कभी न छोड़ेंगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर अन्त में वे ढीले पड़ते हुए मालूम हुए और कमजोर आदमी जैसे हिंसक होता है, वैसे जब वे हो गये, तो जो मिल में जाते थे उनसे द्वेष करने लगे और मुझे डर लगा कि कहीं किसी पर जोर-जुल्म न कर बैठें। रोज की सभा में आदमियों की हाजिरी घटने लगी। जो आते उनके चेहरे पर उदासी छाई रहती थी। मुझे खबर मिली कि मजदूर डगमगाने लगे हैं। मैं चिंतित हुआ। ऐसे समय मेरा कर्त्तव्य क्या है, यह सोचने लगा। दक्षिण अफ्रीका के मजदूरों की हड़ताल का मुझे अनुभव था। पर यह अनुभव नया था। जिस प्रतिज्ञा के कराने में मेरी प्रेरणा थी, जिसका मैं रोज साक्षी बनता था वह प्रतिज्ञा कैसे टूटती? इस विचार को अभिमान मानिए या उसे मजदूरों के प्रति और सत्य के प्रति प्रेम मानिए।

सवेरे का पहर था। मैं सभा में मौजूद था। कुछ पता नहीं था कि मुझे क्या करना है। पर सभा में ही मेरे मुंह से निकल गया, "अगर मजदूर फिर तैयार न हुए जब तक फैसला न हो तब तक हड़ताल निभा न सकें तो उस वक़्त तक मुझे उपवास करना है।"

उपस्थित मजदूर हक्के-बक्के हो गये, अनसूयाबहन की आंखों से आंसू की धारा बह चली। मजदूर बोल उठे, "आप नहीं, हम उपवास करेंगे। आप उपवास नहीं करने पाएंगे। हमें माफ कीजिए, हम टेक पालेंगे।" मैंने कहा, "तुम्हें उपवास करने की जरूरत नहीं। तुम अपनी प्रतिज्ञा का पालन करो, इतना ही काफी है। हमारे पास पैसे नहीं हैं। हमें मजदूरों को भीख खिलाकर हड़ताल नहीं चलानी है। तुम कुछ मजदूरी करो और अपने रोज के रोटी चलाने भर को पैसे कमा लो तो हड़ताल चाहे जितने दिन चले तो भी तुम निश्चिंत रह सकते हो। मेरा उपवास भी फैसले के पहले नहीं छूट सकता।"

वल्लभभाई उनके लिए म्यूनिसिपैलिटी में काम ढूंढ़ रहे थे। पर वहां कुछ मिलने वाला नहीं था। मगनलाल ने सुझाया कि आश्रम के बुनाई घर के भराव में मिट्टी डालनी है। उसमें बहुत मजदूर लगाए जा सकते हैं। मजदूर इसे करने को तैयार हो गए। अनसूयाबहन ने पहली टोकरी उठाई और नदी से बालू की टोकरियां भर-भर लाने में मजदूरों का ठट्ट लग गया। यह दृश्य देखने लायक था। मजदूरों में नया बल आ गया। उन्हें पैसा चुकाने वाले चुकाते-चुकाते थक गए।

इस उपवास में एक दोष था। मैं लिख चुका हूं कि मालिकों के साथ मेरा मधुर सम्बन्ध था। इससे उन्हें उपवास स्पर्श किये बिना न रह सकता था। मैं जानता था कि सत्याग्रही की हैसियत से मेरा उनके विरूद्ध उपवास करना उचित नहीं हो सकता। उन पर जो प्रभाव पड़े वह मजदूरों के दोष को लेकर था। मैं मजदूरों का प्रतिनिधि था, इससे उनके दोष से मैं दूषित होता था। मालिकों से तो मैं विनयमात्र कर सकता था। उनके मुकाबले उपवास करना, धरना देने के समान है। फिर भी मैं यह जानता था कि मेरे उपवास का उन पर असर पड़े बिना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नहीं रह सकता। पड़ा भी। पर अपना उपवास मैं रोक नहीं सकता था। ऐसा दोषमय उपवास करने का अपना धर्म मुझे प्रत्यक्ष दिखाई दिया।

मालिकों को मैंने समझाया, "मेरे उपवास के कारण आपको अपने रास्ते से हटने की जरा भी जरूरत नहीं।" उन्होंने मुझे कड़वे, मीठे ताने भी दिये। ऐसा करने का उन्हें हक था।

सेठ अम्बालाल इस हड़ताल के खिलाफ अटल रहने में अगुआ थे। उनकी दृढ़ता आश्चर्यजनक थी। उनकी निष्कपटता भी मुझे उतनी ही पसन्द आई। उनसे लड़ना मुझे प्रिय लगा। जहां उनके जैसे अगुआ विरोध पक्ष में थे वहां उपवास का उन पर पड़ने वाला अप्रत्यक्ष दबाव मुझे खला। इसके सिवा उनकी धर्मपत्नी श्रीसरला देवी का मेरे प्रति सगी बहन-जैसा प्रेम था। मेरे उपवास से उन्हें होने वाली आकुलता मुझसे देखी नहीं जाती थी।

मेरे पहले उपवास में तो अनसूयाबहन, अन्य बहुतेरे मित्र और मजदूर साथी हुए। उन्हें अधिक उपवास न करने के लिए मैं मुश्किल से समझा सका। इस प्रकार चारों ओर वातावरण प्रेममय बन गया। मालिक केवल दयावश समझौते की रहा ढूंढ़ने लगे। अनसूयाबहन के यहां उनके मशविरे चलने लगे। श्री आनंदशंकर ध्रुव भी बीच में पड़े। अन्त में वह पंच चुने गये और हड़ताल टूटी। मुझे तीन ही दिन उपवास करना पड़ा। मालिक ने मजदूरों को मिठाई बांटी। इक्कीसवें दिन समझौता हुआ। समझौते का जलसा हुआ जिसमें मिल मालिक और उत्तरी विभाग के कमिश्नर उपस्थित थे। कमिश्नर ने मजदूरों को सलाह दी थी, "तुम्हें हमेशा मि. गांधी का कहना करना चाहिए।" उन्हीं के खिलाफ मुझे इस घटना के बाद तुरन्त ही लड़ना पड़ा था। समय बदला, अतः वह भी बदल गये और खेड़ा के पाटीदारों को मेरी सलाह न मानने को कहने लगे।

एक मजेदार और करुणाजक घटना का यहां उल्लेख उचित जान पड़ता है। मालिकों की बनवाई हुई मिठाई बहुत ज्यादा थी और वह हजारों मजदूरों में कैसे बांटी जाय, यह सवाल खड़ा हो गया था। जिस पेड़ की छाया तले मजदूरों ने प्रतिज्ञा की थी वहीं उसे बांटना मुनासिब होगा और अन्यत्र हजारों मजदूरों को इकट्ठा करना कठिन भी होगा, यह सोचकर पेड़ के आस-पास के खुले मैदान में, बांटना तै पाया। अपने भोलेपन से मैंने यह मान लिया था कि इक्कीस दिन तक नियमन में रहे हुए मजदूर बिना प्रयत्न के, पांत में खड़े होकर मिठाई ले लेंगे। बेसब्र होकर उस पर टूट न पड़ेंगे। पर मैदान में बांटने की दो-तीन रीतियां आजमाई गईं और बेकार साबित हुईं। दो-तीन मिनट तक चलता कि बंधी पांत टूट जाती। मजदूरों के नेताओं ने बड़ी कोशिश की, पर वह व्यर्थ गई। अन्त में भीड़, शोर और लोगों के टूट पड़ने से कुछ मिठाई कुचली जाकर बरबाद हो गई। मैदान में बांटना बंद करना पड़ा और मुश्किल से बची हुई मिठाई को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बचाकर सेठ अम्बालाल के मिरजापुर वाले बंगले पर पहुंचा सके। यह मिठाई दूसरे दिन बंगले के मैदान में ही बांटनी पड़ी।

इस घटना में विद्यमान हास्यरस स्पष्ट है। 'एक टेक' के पेड़ के पास मिठाई न बंट सकी इसका कारण ढूंढ़ने पर मालूम हुआ कि मिठाई बंटने की खबर पाकर अहमदाबाद के भिखमंगे वहां आकर जुट गए और उन्होंने कतार तोड़कर मिठाई झपट लेने की कोशिश की। यह करुणरस था।

यह देश भुखमरी रोग से इतना पीड़ित है कि भिखमंगों की तादाद बढ़ती जा रही है और वे भोजन की प्राप्ति के लिए साधारण मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं। धनी लोग बिना विचारे ऐसे भिखमंगों के लिए काम ढूंढ़ देने के बजाए उन्हें भिक्षा देकर पालते हैं।

23 : खेड़ा में सत्याग्रह

मजदूरों की हड़ताल समाप्त होने के बाद मुझे दम मारने की फुरसत भी न मिली और तुरन्त खेड़ा जिले के सत्याग्रह का काम हाथ में लेना पड़ा। खेड़ा जिले में अकाल की हालत होने के कारण लगान माफ कराने को खेड़ा के पाटीदार बड़ी कोशिश कर रहे थे। इस विषय में श्री अमृतलाल ठक्कर ने जांच करके रिपोर्ट दी थी। मैं कोई भी पक्की सलाह देने से पहले कमिश्नर से मिला। श्री मोहनलाल पंड्या और श्री शंकरलाल परीख और श्री विट्ठलभाई पटेल के जरिए वे बड़ी कौंसिल में आन्दोलन कर रहे थे। सरकार के पास डेपुटेशन भेजे गए थे।

इस समय मैं गुजरात सभा का अध्यक्ष था। सभा ने कमिश्नर और गवर्नर को प्रार्थनापत्र भेजे, तार दिए, अपमान सहे। उनकी धमकियों को सभा ने पी लिया। अधिकारियों का उस समय का ढंग आज तो हास्यजनक जान पड़ता है। उनका उन दिनों का तुच्छताभरा बरताव आज भी नामुमकिन-सा लगता है।

लोगों की मांग इतनी साफ और हल्की थी कि उसके लिए कोई लड़ाई लड़ने की जरूरत ही न होनी चाहिए। ऐसा कानून था कि अगर फसल चार ही आना या इससे कम हो तो उस साल का लगान माफ हो जाना चाहिए, पर सरकारी अधिकारियों की कूत चार आने से ज्यादा की थी। लोगों की ओर से यह साबित किया जा रहा था कि कूत चार आने से कम की होनी चाहिए। पर सरकार क्यों मानने लगी? लोगों की ओर से पंच चुने जाने की मांग हुई। सरकार को वह असह्य लगी। जितनी विनय-प्रार्थना हो सकती थी, उतनी कर लेने और साथियों से मशविरा कर लेने के बाद मैंने लोगों को सत्याग्रह करने की सलाह दी।

साथियों में खेड़ा जिले के सेवकों के सिवा खासतौर से श्री वल्लभभाई पटेल, श्री शंकरलाल बैंकर, श्री अनसूयाबहन, श्री इंदुलाल याज्ञिक, श्री महादेव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
देसाई वगैरा थे। वल्लभभाई अपनी खूब बढ़ती हुई वकालत को बीच देकर आए थे। कहना चाहिए कि इसके बाद तो वह जमकर वकालत कर ही न पाए।

हमने नड़ियाद अनाथाश्रम में डेरा डाला। अनाथाश्रम में डेरा डालने में कोई विशेषता नहीं थी। नड़ियाद में ऐसा कोई दूसरा, जो इतने आदमियों को अंटा सके, खाली मकान था ही नहीं। अन्त में नीचे लिखे आशय की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर लिए गए:

"हम जानते हैं कि हमारे गांव की फसल चार आने से कम हुई है, इस वजह से हमने लगान की वसूली अगले साल तक मुल्तवी रखने के लिए प्रार्थना की, फिर भी वह रोकी नहीं गई। इससे हम नीचे सही करने वाले प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सरकार का लगान, इस साल का पूरा या जो बाकी रह गया है, अदा नहीं करेंगे; पर उसे वसूल करने मे सरकार जो कानूनी कार्रवाई करना चाहेगी, वह करने देंगे और उनसे होने वाली तकलीफें बर्दाश्त करेंगे। हमारी जमीन जब्त की जाएगी तो हम वह भी हो जाने देंगे। पर अपने हाथ से लगान देकर झूठे बनकर आत्मसम्मान न खोएंगे। यदि सरकार दूसरी किश्त की वसूली बाकी के सब स्थानों पर मुल्तवी कर दे तो हममें जो शक्तिमान होंगे, वे पूरा या बाकी लगान अदा करने को तैयार हैं। हममें से जिनमें लगान अदा करने का सामर्थ्य है, उनके लगान अदा न करने का कारण यह है कि अगर समर्थ अदा कर दें तो असमर्थ घबराहट में अपनी चाहे जिस चीज को बेचकर या कर्ज लेकर अदा करेंगे और दुःख भोगेंगे। हम मानतें हैं कि ऐसी दशा में गरीबों का बचाव करना शक्तिमान का फर्ज है।"

इस लड़ाई को मैं अधिक प्रकरण नहीं दे सकता। इससे अनेक मधुर स्मरण छोड़ देने पड़ेंगे। जो इस महत्व की लड़ाई का गहरा अध्ययन करना चाहें उन्हें श्री शंकरलाल परीख के लिखे 'खेड़ा की लड़ाई का सविस्तार प्रामाणिक इतिहास' पढ़ जाने की मेरी सिफारिश है।

24 : 'प्याजचोर'

चम्पारन हिन्दुस्तान के ऐसे कोने में पड़ता है और वहां की लड़ाई अखबारों से इस तरह अलग रखी जा सकी थी कि वहां बाहर से देखने वाले नहीं आते थे। खेड़ा की लड़ाई अखबारों में आ चुकी थी। गुजरातियों को इस नई चीज में खासी दिलचस्पी हो रही थी। वे पैसा लुटाने को तैयार थे। सत्याग्रह की लड़ाई पैसे से नहीं चल सकती। उसे पैसे की कम-से-कम जरूरत होती है, यह बात जल्दी उनकी समझ में नहीं आ रही थी। मना करते हुए भी बंबई के सेठों ने आवश्यकता से अधिक पैसे दिए थे और लड़ाई के अन्त में उसमें कुछ रकम बच भी गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दूसरी ओर सत्याग्रही सेना को भी सादगी का नया सबक सीखना था। यह तो नहीं कह सकता कि उन्होंने पूरा पाठ पढ़ लिया, पर अपनी रहन-सहन में उन्होंने बहुत-कुछ सुधार कर लिया था।

पाटीदारों के लिए भी इस तरह की लड़ाई नहीं थी। गांव-गांव घूमकर उसका रहस्य समझाना पड़ता था। अधिकारी प्रजा के मालिक नहीं, बल्कि नौकर हैं। प्रजा के पैसे से ही वे तनख्वाह पाते हैं, यह समझकर उनका भय दूर करना मुख्य काम था और निर्भय होते हुए भी उन्हें विनय का पालन सिखाना और उसकी आवश्यकता का कायल बनाना लगभग अशक्य-सा जान पड़ता था। अधिकारियों का भय छोड़ने के बाद उनके हाथों हुए अपमानों का बदला चुकाने का मन किसका नहीं होता है? पर सत्याग्रही का अविनई होना तो दूध में जहर पड़ने के समान समझना चाहिए। पाटीदार विनय का पूरा पाठ नहीं पढ़ पाए थे, यह बात पीछे मैं अधिक समझ सका। अनुभव से देखता हूं कि विनय सत्याग्रह का कठिन-से-कठिन अंश है। विनय के मानी यहां मानपूर्वक वचन बोलना मात्र ही नहीं है। विनय का अर्थ है विरोधी के प्रति भी मन में आदर रखना, सरल भाव, उसके हित की रक्षा और तदनुसार व्यवहार।

आरम्भिक दिनों में लोगों में खूब हिम्मत दिखाई देती थी। शुरू-शुरू में सरकार की कार्रवाई भी नरम थी। पर ज्यों-ज्यों लोगों की दृढ़ता बढ़ती जान पड़ी त्यों-त्यों सरकार का भी ज्यादा कड़ा कदम उठाने का इरादा हुआ। कुर्की करने वालों ने लोगों के जानवर बेच डाले, घर में से चाहे जो चीजें ले गए। चौथाई जमीन का नोटिस निकला। किसी-किसी गांव की सारी फसल कुर्क कर ली गई। इससे लोगों में घबराहट फैल गई। कितनों ने लगान अदा कर दिया। दूसरे लोग मन में यह चाहने लगे कि अधिकारी हमारा कोई माल कुर्क करके लगान वसूल कर लें तो अच्छा है। कुछ मरते दम तक लड़ने वाले भी निकले। इस बीच शंकरलाल परीख की जमीन का लगान उनकी जमीन पर रहने वाले आदमी ने अदा कर दिया। इससे हाहाकार मच गया। शंकरलाल परीख ने वह जमीन जनता को दान करके अपने आदमी से हुई चूक का प्रायश्चित किया। उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा हुई। दूसरों के लिए उदाहरण प्रस्तुत हो गया।

अनुचित प्रकार से जब्त किए हुए एक खेत में प्याज की फसल तैयार थी। डरे हुए लोगों में हिम्मत लाने के लिए मैंने मोहनलाल पंड्या के नेतृत्व में उसे उखाड़ने की सलाह दी। मेरी दृष्टि में इसमें कानून का भंग नहीं होता था। मैंने बताया कि ऐसा होता भी हो तो जरा से लगान के लिए सारी खड़ी फसल को जब्त कर लेना कानून के अनुकूल होने पर भी नीतिविरुद्ध है और खुली लूट है और इस प्रकार की हुई जब्ती का अनादर करना फर्ज है। लोगों को यह साफ बता दिया गया था कि ऐसा करने में जेल जाने का या सजा पाने का खतरा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मोहनलाल पंड्या को तो उसी की जरूरत थी। सत्याग्रह से किसी अविरोधी रीति से किसी के जेल गये बिना खेड़ा की लड़ाई पूरी हो जाए, यह उन्हें नहीं रुच रहा था। उन्होंने इस खेत का प्याजं खुदवाने का बीड़ा उठाया। सात-आठ आदमियों ने उनका साथ दिया।

सरकार उन्हें पकड़े बिना कैसे रहती? मोहनलाल पंड्या और उनके साथी पकड़े गए। इससे लोगों का उत्साह बढ़ गया। जब लोगों के दिलों से जेल आदि का डर चला जाता है तब राजदंड लोगों को दबाने के बजाए उनकी हिम्मत बढ़ाने का काम करता है। कचहरी में लोगों के दल-के-दल मुकदमा देखने को उमड़ पड़े। पंड्या और उनके साथियों को थोड़े-थोड़े दिनों की कैद की सजा मिली। मैं जानता हूं कि अदालत का फैसला गलती से भरा हुआ था। प्याज उखाड़ने का काम चोरी की कानूनी व्याख्या के अन्दर नहीं आता था, पर अपील करने की ओर किसी का मन ही न जाता था।

जेल जाने वालों को पहुंचाने जलूस गया और उस दिन से मोहनलाल पंड्या ने 'प्याजचोर' की सम्मानित पदवी लोगों की ओर से पाई और आज तक उसका प्रयोग कर रहे हैं।

इस लड़ाई का कैसे और कैसा अन्त हुआ, यह बताकर खेड़ा-प्रकरण समाप्त करूंगा।

25 : खेड़ा की लड़ाई का अंत

इस लड़ाई का अन्त विचित्र रूप से हुआ। यह बात साफ थी कि लोग थक चुके थे। जो दृढ़ थे उन्हें अन्त तक बरबाद होने देने में संकोच हो रहा था। मेरा झुकाव इस ओर हो रहा था कि निबटारे का कोई ऐसा रास्ता निकल आवे, जो सत्याग्रही को फबता हो, तो उसे स्वीकार करना चाहिए। ऐसा अकल्पित उपाय सामने आ गया। नडियाद तालुके के तहसीलदार ने कहला भेजा कि अगर अच्छी स्थिति वाले पाटीदार लगान अदा कर दें तो गरीबों का लगान मुल्तवी कर दिया जाएगा। इस विषय में मैंने लिखित स्वीकृति मांगी। वह मिल गई। तहसीलदार अपनी ही तहसील की जिम्मेदारी ले सकता था, सारे जिले की जिम्मेदारी तो कलेक्टर ही ले सकता है। अतः मैंने कलेक्टर से पूछा। उनका उत्तर आया कि तहसीलदार ने जैसा कहा है वैसा हुक्म तो निकल ही चुका है। मुझे ऐसी खबर नहीं थी, पर वैसा हुक्म निकलने से तो लोगों की प्रतिज्ञा का पालन मान लिया जा सकता था। प्रतिज्ञा में यही खास चीज थी, इससे इस हुक्म से हमने संतोष माना।

फिर भी इस अन्त से हम खुश न हो सके। सत्याग्रह की लड़ाई के पीछे जो एक मिठास होती है, वह इसमें नहीं थी। कलेक्टर समझता था जैसे उसने कोई नई बात नहीं की है। गरीबों को छूट देने की बात थी, पर वह शायद ही

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बच पाए। गरीब कौन है, यह कहने का अधिकार जनता न आजमा सकी। जनता में यह शक्ति नहीं रह गई थी, इसका मुझे दुःख था। अन्त का उत्सव मनाया गया पर वह मुझे इस दृष्टि से फीका लगा।

सत्याग्रह का शुद्ध अन्त तब माना जाता है जब आरम्भ की अपेक्षा अन्त में जनता में अधिक तेज और शक्ति दिखाई दे। यह मैंने नहीं पाया।

इतने पर भी इस लड़ाई के जो अदृश्य परिणाम हुए उनका लाभ तो आज भी देखा जा सकता है और उठाया जा रहा है। खेड़ा की लड़ाई से गुजरात के किसानों की जागृति का, उनकी राजनैतिक शिक्षा का श्रीगणेश हुआ।

विदुषी डॉ. बेसेंट के 'होमरूल' के तेजस्वी आन्दोलन ने उसका स्पर्श अवश्य किया था, लेकिन कृषक-जीवन में स्वयंसेवकों का सच्चा प्रवेश तो कह सकते हैं कि इस लड़ाई से ही हुआ। स्वयंसेवक पाटीदारों के जीवन में घुल-मिल गए थे। उनको (स्वयंसेवकों को) अपने क्षेत्र की मर्यादा इस लड़ाई में प्राप्त हुई, उनकी त्याग-शक्ति की वृद्धि हुई। वल्लभभाई ने अपने आपको इस लड़ाई में पहचाना। यह एक ही कोई ऐसा-वैसा फल नहीं; यह हम गत वर्ष संकट निवारण के समय और इस साल बारडोली में देख सके हैं। गुजरात के जनजीवन में नवीन तेज आ गया है। नया उत्साह भर गया है। पाटीदारों को अपनी शक्ति का जो ज्ञान हुआ, वह कभी भूला नहीं। सब समझ गए कि प्रजा की मुक्ति खुद उसी पर, उसकी त्याग-शक्ति पर अवलम्बित है। सत्याग्रह ने खेड़ा के द्वारा गुजरात में जड़ जमा ली। यद्यपि मैं लड़ाई के अन्त से खुश न हो सका, पर खेड़ा की जनता को तो उत्साह था, क्योंकि उसने देख लिया था कि उसकी शक्ति के मान से उसे सब कुछ मिल गया और आगे के लिए राज्य की ओर से मिलने वाले कष्टों के निवारण का मार्ग उसके हाथ लग गया। इतना ज्ञान उसके उत्साह के लिए काफी था।

पर खेड़ा के जनता सत्याग्रह का स्वरूप पूरा नहीं समझ सकी थी। इस कारण उसे कैसे कड़वे अनुभव हुए, इसकी चर्चा आगे करूंगा।

26 : एकता की रट

जिस समय खेड़ा-प्रकरण चल रहा था उस समय यूरोप का महायुद्ध भी जारी था। उसके सिलसिले में वाइसराय ने दिल्ली में नेताओं को आमंत्रित किया था। मैं बता चुका हूं कि लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ मेरा मैत्री सम्बन्ध था।

मैंने निमंत्रण स्वीकार किया और दिल्ली गया। पर इस सभा में सम्मिलित होने में मुझे एक संकोच तो था ही। मुख्य कारण तो यह था कि इसमें अलीभाइयों, लोकमान्य तथा अन्य नेताओं को निमन्त्रित नहीं किया गया था। उस समय अलीभाई जेल में थे। उनसे मैं एक-दो बार ही मिला था। उनके बारे में सुन बहुत-कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रखा था। उनकी सेवावृत्ति और उनकी बहादुरी की तारीफ सभी लोग करते थे। हकीम (स्व. हकीम अजमलखां) साहब से भी मेरा प्रत्यक्ष परिचय नहीं हो पाया था। हां, उनकी बड़ाई स्व. आचार्य रुद्र और दीनबंधु एंड्रयूज के मुंह से भी बहुत सुनी थी। मुस्लिम लीग की कलकत्ते की बैठक के समय मैं वेब कुर्रेशी और बैरिस्टर ख्वाजा से मिला था। डॉ. अंसारी और डॉ. अब्दुर्रहमान के साथ भी मिलने-जुलने का सम्बन्ध जोड़ चुका था। भले मुसलमानों की सोहबत के मौके मैं ढूंढ़ता रहता था और जो पवित्र तथा देशभक्त माने जाते थे, उनसे जान-पहचान करने और उनकी भावना जानने की मुझे तीव्र इच्छा थी। इससे मुझे जहां वे अपने समाज में ले जाना चाहते, वहां बिना किसी इनकार के चला जाता था।

हिन्दू-मुसलमान में सच्ची मित्रता नहीं है, यह तो मैं दक्षिण अफ्रीका में ही समझ गया था। दोनों का मनमुटाव मिटाने का एक भी मौका मैं हाथ से नहीं जाने देता था। झूठी खुशामद करके या आत्मसम्मान खोकर उन्हें या किसी को प्रसन्न करना मेरे स्वभाव में ही न था? पर वहीं से मैं समझता आया था कि मेरी अहिंसा की परख और उसका विशाल प्रयोग इस एकता के सिलसिले में होने वाला है। आज भी मेरी यह राय कायम है। मेरी परख ईश्वर प्रतिक्षण कर रहा है। मेरा प्रयोग तो चल ही रहा है।

ऐसे विचार लेकर मैं बंबई बन्दर पर उतरा था। अतः अलीभाइयों से मिलकर मुझे प्रसन्नता हुई। हमारा स्नेह बढ़ता गया। हमारा परिचय होने के बाद तुरन्त ही अलीभाइयों को तो सरकार ने जीते-जी दफना दिया: मौलाना मुहम्मदअली इजाजत मिलने पर मुझे लम्बे-लम्बे पत्र, बैतूल जेल या छिंदवाड़ा से, लिखा करते थे। मैंने उनसे मिलने की इजाजत सरकार से मांगी थी। वह नहीं मिली।

अलीभाइयों के नजरबन्दी के बाद कलकत्ता मुस्लिमलीग की बैठक में मुझे मुसलमान भाई लिवा ले गए थे। वहां मुझसे बोलने को कहा गया। मैंने कहा कि अलीभाइयों को छुड़ाना मुसलमानों का फर्ज है।

इसके बाद वे मुझे अलीगढ़ कॉलेज में भी ले गए थे। वहां मैंने मुसलमानों को देश के लिए फकीरी लेने का आह्वान किया।

अलीभाइयों को छुड़ाने के लिए मैंने सरकार के साथ पत्रव्यवहार चलाया। इस सिलसिले में इन भाइयों की खिलाफत सम्बन्धी प्रवृत्ति का अध्ययन किया। मुसलमान मित्रों से चर्चा की। मैंने सोचा, अगर मैं मुसलमानों का सच्चा दोस्त बनना चाहूं तो अलीभाइयों को छुड़ाने और खिलाफत के प्रश्न का न्यायानुकूल निबटारा होने में मुझे पूरी मदद करनी चाहिए। खिलाफत का प्रश्न मेरे लिए आसान था। उसके स्वतन्त्र गुण-दोष देखने नहीं थे। मुझे यह लगा कि इस विषय में मुसलमानों की मांग नीतिविरूद्ध न हो तो मुझे उनकी मदद करनी चाहिए। धर्म के प्रश्न में श्रद्धा सर्वोपरि होती है। सबकी श्रद्धा एक ही चीज में एक-सी होती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तो दुनिया में एक ही धर्म होता। खिलाफत-सम्बन्धी मांग मुझे नीति-विरुद्ध न जान पड़ी। इतना ही नहीं, बल्कि इसी मांग को ब्रिटिश प्रधानमंत्री लायड जार्ज ने मंजूर किया था। अतः मुझे तो उनके वचन का पालन करवाने भर का ही प्रयत्न करना था। वचन ऐसे स्पष्ट शब्दों में था कि मर्यादित गुण-दोष जांचने का काम केवल अपनी अन्तरात्मा को प्रसन्न करने के लिए ही करना था।

खिलाफत के मसले में मैंने मुसलमानों का साथ दिया, इसके लिए मित्रों और आलोचकों ने मुझे खरी-खोटी सुनाई है। इन सब पर विचार करते हुए भी, जो राय मैंने कायम की और जो मदद दी, दिलाई उसके लिए मुझे पछतावा नहीं है। न उसमें मुझे कोई सुधार ही करना है। मुझे जान पड़ता है कि आज भी ऐसा सवाल उठे, तो मेरा व्यवहार वैसा ही होगा।

इस तरह के विचार लेकर मैं दिल्ली गया। मुसलमानों की व्यथा की चर्चा मुझे वाइसराय से करनी ही थी। खिलाफत के सवाल ने अभी अपनी पूरी शक्ल नहीं ली थी।

दिल्ली पहुंचते ही दीनबंधु एंड्रयूज ने एक नैतिक प्रश्न खड़ा कर दिया। इसी बीच इटली और इंग्लैंड के दरमियान गुप्त संधि होने की चर्चा जो अंग्रेजी अखबारों में हुई थी, उसकी बात कहकर दीनबंधु ने मुझसे पूछा-"यदि इस प्रकार की गुप्त संधि इंग्लैंड ने किसी शक्ति के साथ की हो तो आप इस सभा में सहायक रूप में कैसे भाग ले सकते हैं?" मैं इन संधियों के बारे में कुछ जानता न था। दीनबंधु के शब्द मेरे लिए काफी थे। यह कारण सामने रखकर मैंने लॉर्ड चेम्सफोर्ड को लिखा कि मुझे सभा में शरीक होने में हिचक हो रही है। उन्होंने मुझे चर्चा के लिए बुलाया, उनके साथ और बाद को मि. मेफी के साथ मेरी लम्बी चर्चा हुई। उसका अंत यह हुआ कि मैंने सभा में सम्मिलित होना स्वीकार किया। वाइसराय की दलील थोड़े में यह थी-"आप यह तो नहीं मानते कि ब्रिटिश-मंत्रिमंडल जो कुछ करे उसकी वाइसराय को जानकारी होनी ही चाहिए? ब्रिटिश सरकार से कभी भूल-चूक होती ही नहीं, यह दावा मैं नहीं करता। कोई भी नहीं करता। पर अगर आप यह मानते हैं कि उसका अस्तित्व जगत के लिए कल्याणकारी है, यदि आप यह मानते हैं कि उसके कार्यों से इस देश का समष्टिरूपेण लाभ हुआ है, तब क्या आप यह स्वीकार न करेंगे कि विपत्ति में उसकी मदद करना हर नागरिक का फर्ज है? गुप्त संधि के सम्बन्ध में आपने अखबारों में जो कुछ देखा है, वही मैंने भी देखा है। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं जानता, इसका मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं। अखबारों में कैसी-कैसी गप्पें आती हैं, यह तो आप जानते ही हैं। क्या अखबार में आई हुई एक उल्टी-सीधी बात पर आप राज्य का साथ ऐसे वक्त पर छोड़ सकते हैं? लड़ाई खत्म होने के बाद आपको जितने नैतिक प्रश्न उठाने हों, उठा सकते हैं, और जितनी बहस करना हो कर सकते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

यह दलील नई नहीं थी। जिस मौके पर और जिस रीति से वह पेश की गई उससे मुझे नई-सी लगी और मैंने सभा में जाना स्वीकार कर लिया। खिलाफत के बारे में तय पाया कि मैं वाइसराय को पत्र लिखकर भेजूं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

27 : रंगरूटों की भरती

सभा में मैं हाजिर हुआ। वाइसराय की तीव्र इच्छा थी कि मैं सिपाही देकर सरकार की मदद करने के प्रस्ताव का समर्थन करूं। मैंने हिन्दी-हिंदुस्तानी में बोलने की मांग की। वाइसराय ने उसे मंजूर किया, पर साथ ही अंग्रेजी में भी बोलने को कहा। मुझे व्याख्यान तो देना ही नहीं था। मैं जो बोला वह इतना ही था, "मुझे अपनी जिम्मेदारी का पूरा ख्याल है और उस जिम्मेदारी को समझते हुए भी मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।"

हिन्दुस्तानी में बोलने के लिए बहुतों ने मुझे धन्यवाद दिया। वे कहते थे कि वाइसराय की सभा में इस जमाने में हिन्दुस्तानी में बोलने की यह पहली मिसाल है। धन्यवाद और पहला उदाहरण होने की बात मुझे चुभी। मैं शरमाया। अपनी ही देश में, देश से सम्बन्ध रखने वाले काम की सभा में देश की भाषा का बहिष्कार या उसकी अवगणना होना कितने दुःख की बात है। और मुझ जैसा कोई हिन्दुस्तानी में एक या दो जुमले बोल दे तो इसमें धन्यवाद किस बात का? यह प्रसंग हमारी गिरी हुई दशा की सूचना देता है। सभा में कहे हुए वाक्य में मेरे लिए तो बहुत वजन था। यह सभा और यह समर्थन ऐसा नहीं था कि मैं उसे भूल जाऊं। अपनी एक जिम्मेदारी तो मुझे दिल्ली में ही खत्म कर लेनी थी। वाइसराय को पत्र लिखने का काम मुझे आसान न जान पड़ा। सभा में जाने में मेरी आनाकानी, उसके कारण, भविष्य की आशाओं आदि का स्पष्टीकरण, अपने लिए, सरकार के लिए और जनता के लिए, कर लेना मुझे आवश्यक जान पड़ा।

मैंने वाइसराय को जो पत्र लिखा उसमें लोकमान्य तिलक, अलीभाइयों आदि नेताओं की अनुपस्थिति पर अपना खेद प्रकट किया, लोगों की राजनैतिक मांग का और युद्ध से उत्पन्न मुसलमानों की मांगों का उल्लेख किया। इस पत्र को छपाने की मैंने इजाजत मांगी और वाइसराय ने वह खुशी से दे दी।

यह पत्र शिमला भेजना था, क्योंकि सभा समाप्त होते ही वाइसराय शिमला पहुंच गए थे। डाक से पत्र भेजने में देर होती थी। मेरी समझ से पत्र महत्त्वपूर्ण था। समय बचाना जरूरी था। चाहे जिसके हाथ पत्र भेजने की इच्छा नहीं थी। मुझे लगा कि पत्र किसी पवित्र मनुष्य की मारफत जाए तो अच्छा है। दीनबंधु और सुशील रुद्र ने सज्जन रेवरेंड आयरलैंड का नाम सुझाया। उन्होंने पत्र पढ़ने पर उन्हें ठीक जंचे तो ले जाना स्वीकार किया। पत्र व्यक्तिगत तो था ही नहीं। उन्होंने पढ़ा, उन्हें रुचा और ले जाने को राजी हो गए। मैंने सेकेंड क्लास का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भाड़ा देने को कहा पर उसे लेने से उन्होंने इंकार किया और रात की यात्रा होते हुए भी ड्योढ़े का ही टिकट लिया। उनकी सादगी, सरलता और स्पष्टता पर मैं मोहित हो गया। इस प्रकार पवित्र हाथों से भेजे हुए पत्र का परिणाम मेरी दृष्टि से अच्छा ही हुआ। मेरा रास्ता उससे साफ हो गया।

मेरी दूसरी जिम्मेदारी रंगरूट भरती करने की थी। मैं यह याचना खेड़ा में न करता तो कहां करता? पहले अपने साथियों को न्यौता न दूं तो और किसे दूं? खेड़ा पहुंचते ही वल्लभभाई आदि के साथ मशविरा किया। उनमें से बहुतों के गले तुरंत यह बात नहीं उतरी। जिन्हें वह रुची, उन्हें कार्य की सफलता के विषय़ में शंका हुई। जिस वर्ग में से भरती करनी थी उस वर्ग को सरकार के प्रति कोई प्रेम न था। सरकारी अधिकारियों का जो कड़वा अनुभव हुआ था, वह अभी ताजा ही था। फिर भी काम शुरू करने के पक्ष में सभी हो गए। आरम्भ करते ही मेरी आंखें खुलीं। मेरा आशावाद भी कुछ ढीला पड़ गया। खेड़ा की लड़ाई में लोग अपनी गाड़ियां मुफ्त देते थे। जहां एक स्वयंसेवक की जरूरत होती वहां तीन-चार मिल जाते थे। अब पैसा देने पर भी गाड़ी मिलना कठिन हो गया। पर हम यों निराश होने वाले जीव नहीं थे। गाड़ी के बजाय पैदल यात्रा करना तै किया। रोज बीस मील की मंजिल तै करनी थी। जहां गाड़ी नहीं मिलती थी वहां खाना कहां से मिलता? मांगना भी उचित नहीं था। उससे यह तै पाया कि हर एक स्वयंसेवक अपने खाने का सामान अपने दफ्तर से लेकर रवाना हो। मौसम गर्मी का था, इससे ओढ़ने के लिए कोई चीज साथ लेने की जरूरत नहीं थी।

जिस-जिस गांव में हम जाते वहां सभा करते। लोग आते थे पर भरती में नाम तो मुश्किल से एक या दो मिलते। "आप अहिंसावादी होकर कैसे हमें हथियार बांधने को कहते हैं?" "सरकार ने हिन्दुस्तान की क्या भलाई की है जो आप उसकी मदद करने को कहते हैं?" ऐसे अनेक प्रकार के प्रश्न मेरे सामने रखे जाते।

यह सब होते हुए भी धीरे-धीरे सतत प्रयत्न का असर लोगों पर होने लगा। नाम भी पहले से काफी मिलने लगे और हम सोचने लगे कि पहली टुकड़ी निकल पड़ी तो दूसरी के लिए रास्ता साफ हो जाएगा। काफी रंगरूट मिल गए तो उनको कहां रखना होगा, आदि की बातचीत मैं कमिश्नर से करने लगा था। कमिश्नर लोग जगह-जगह दिल्ली के नमूने की सभाएं करने लगे थे। वैसी सभा गुजरात में भी हुई। उसमें मुझे और साथियों को जाने का निमंत्रण था। यहां भी मैं उपस्थित हुआ था, पर यदि दिल्ली में मैं कम फबा था तो मुझे जान पड़ा कि यहां मैं उससे भी बहुत ही कम फब रहा हूं। जी-हजूरी के वातावरण में मुझे चैन नहीं मिलता था। यहां मैं जरा ज्यादा बोला था। मेरे बोलने में खुशामद-जैसी चीज तो थी ही नहीं, बल्कि दो कड़वे बोल भी थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रंगरूट-भरती के मिलसिले में मैंने एक पर्चा निकाला था। उसमें भरती होने के निमंत्रण में एक दलील थी, जो कमिश्नर को चुभी थी। उसका सार यह था–"ब्रिटिश राज्य के बहुसंख्यक अपकृत्यों में सारी प्रजा को शस्त्ररहित करने के कानून का इतिहास उसका काले-से-काला कारनामा माना जाएगा। इस कानून को रद्द कराना हो और शस्त्र का उपयोग सीखना हो तो यह सुनहरा अवसर है। राज्य की विपदा में मध्यमवर्ग स्वेच्छापूर्वक सहायता देगा तो अविश्वास दूर हो जाएगा और जिसे शस्त्र धारण करना होगा वह खुशी से धारण कर सकेगा।" इसको लक्ष्य करके कमिश्नर को कहना पड़ा था कि आपमें और मुझमें मतभेद होते हुए भी सभा में आपकी उपस्थिति मुझे प्रिय है। मुझे अपने मत का समर्थन यथासम्भव मधुर शब्दों में करना पड़ा था।

ऊपर जिस पत्र का जिक्र किया गया है उसका सार नीचे दिया जा रहा है:

युद्ध-परिषद में उपस्थित होने के बारे में मुझे हिचकिचाहट थी; पर आपसे मिलने के बाद वह दूर हो गई और उसका एक कारण यह जरूर था कि आपके लिए मेरे मन में बड़ा आदर है। न आने के कारणों में एक सबल कारण यह था कि उसमें लोकमान्य तिलक, मिसेज बेसेंट और अलीभाइयों को निमंत्रण नहीं था। इन्हें मैं जनता के बड़े शक्तिशाली नेता मानता हूं। मुझे तो जान पड़ता है कि उन्हें निमंत्रण न देने में सरकार ने भारी भूल की है, और मैं आज भी कहता हूं कि जब प्रांतीय सभाएं की जाएं तब उन्हें निमंत्रण दिया जाए। मेरा नम्र निवेदन है कि ऐसे प्रौढ़ नायकों की, उनके साथ कैसा भी मतभेद क्यों न हो, कोई राज्य अवगणना नहीं कर सकता। इस स्थिति में मैं सभा की कार्यकारिणी समितियों में उपस्थित न हो सका और सभा में प्रस्ताव का समर्थन करके ही संतोष माना। सरकार मेरे सुझाव को स्वीकार कर ले तो मैं तुरन्त अपने समर्थन को कार्यरूप देने की आशा रखता हूं।

जिस राज्य के भविष्य में हम सम्पूर्ण रूप से हिस्सेदार होने की आशा रखते हैं उसे उसके संकटकाल में पूरी मदद देना हमारा धर्म है; पर मुझे यह कहना ही होगा कि इसके साथ यह उम्मीद लगी हुई है कि इस मदद की बदौलत हम अपने लक्ष्य तक जल्दी पहुंच सकेंगे। इससे लोगों को यह मान लेने का हक है कि जो सुधार तत्काल होने की आशा आपके भाषण में दिलाई गई है, उन सुधारों में कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मुख्य मांगों का समावेश होगा। मेरे वश की बात होती तो मैं ऐसे मौके पर होमरूल वगैरा का नाम तक न लेता, बल्कि साम्राज्य के इस आड़े वक्त में सारे शक्तिशाली हिन्दुस्तानियों को उसकी रक्षा में चुपचाप बलिदान हो जाने को प्रेरित करता। इतना करने से ही हम साम्राज्य के बड़े-से-बड़े और आदरणीय हिस्सेदार बन जाते और रंगभेद तथा देशभेद मिट जाता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर शिक्षित समुदाय ने इससे कम प्रभावकारी मार्ग ग्रहण किया है। जन-समाज पर उसका असर ज्यादा है। मैं जबसे हिन्दुस्तान में आया हूं तभी से जनसमाज से निकट सम्पर्क रखता रहा हूं। और मैं आपको बतलाना चाहता हूं कि होमरूल की आकांक्षा उनमें भी घर की गई है। होमरूल के बिना लोगों को कभी संतोष नहीं होने का। वे समझते हैं कि होमरूल पाने के लिए जितनी भी कुरबानी करनी पड़े कम होगी। इसलिए यद्यपि साम्राज्य के लिए जितने स्वयंसेवक दिए जा सकते हों उतने हमें देने चाहिए। लेकिन आर्थिक सहायता के बारे में मैं ऐसा नहीं कह सकता। लोगों की स्थिति को जानकर मैं कह सकता हूं कि हिन्दुस्तान जो मदद दे चुका है वह उसके बूते से बाहर की है। पर मैं इतना समझता हूं कि सभा में जिन्होंने प्रस्ताव का समर्थन किया है, उन्होंने मरते दम तक सहायता देने का निश्चय किया है। पर हमारी स्थिति विषम है। हम कोई गद्दी या कोठी के हिस्सेदार नहीं हैं। हमारी मदद की नींव भविष्य की आशा पर खड़ी की गई है; और यह आशा क्या है इसे जरा खोलकर कहने की जरूरत जान पड़ती है। मैं सौदा करना नहीं चाहता हूं, पर मुझे इतना तो कहना ही होगा कि उस विषय में हमारे मन में नैराश्य उत्पन्न हो जाए तो साम्राज्य के विषय में आज तक की हमारी धारणा भ्रम मानी जाएगी। आपने घरेलू झगड़े भूल जाने की सलाह दी है। उसका मतलब अगर यह हो कि अत्याचार और अधिकारियों के अपकृत्यों को हम चुपचाप सह लें तो यह नामुमकिन है। संघठित अत्याचार का सामना पूरे बल से करना मैं धर्म मानता हूं। अतः आपको अधिकारियों को सुझाना चाहिए कि एक भी प्राणी की वे अवगणना न करें और लोकमत का पहले से अधिक आदर करें। चम्पारन में सदियों से होते आने वाले जुल्म का मुकाबला करने में ब्रिटिश न्याय की सर्वश्रेष्ठता मैंने सिद्ध कर दिखाई है। खेड़ा की जनता ने देख लिया कि जब उसमें सत्य के लिए कष्ट सहने की शक्ति है तो असली ताकत राज्य-शक्ति नहीं बल्कि लोकशक्ति है; ओर इससे जिस शासन-पद्धति को वह शाप दे रही थी, उसके प्रति उसकी कटुता कम हो गई है। और जिस हुकूमत ने सविनय कानून-भंग को सहन कर लिया, वह हुकूमत लोकमत की नितांत अवहेलना करने वाली नहीं हो सकती, इसका उन्हें विश्वास हो गया है। इसलिए मैं यह मानता हूं कि चम्पारन और खेड़ा में मैंने जो काम किया है वह इस लड़ाई में मेरी मदद है। अपना इस तरह का काम बन्द कर देने को अगर आप मुझसे कहें तो मैं मानूंगा कि आप मुझसे अपनी सांस बन्द करने को कह रहे हैं। यदि आत्मबल अर्थात् प्रेमबल को शस्त्रबल के बदले में, लोकप्रिय बना देने में मुझे कामयाबी हो जाए तो मैं जानता हूं कि हिन्दुस्तान सारे संसार की त्यौरी को भी बरदाश्त कर सकता है। इससे हर वक्त यह दुःख सहन करने की सनातन नीति अपने जीवन में ओतप्रोत करने के लिए मैं अपनी आत्मा को कसता रहूंगा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और इस नीति को स्वीकार करने को दूसरों को निमंत्रित करता रहूंगा। और यदि मैं किसी अन्य उद्योग में योग देता हूं तो उसका हेतु भी केवल इसी नीति को बेजोड़ उत्तमता सिद्ध करना मात्र है।

अन्त में मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुसलमानी राज्यों के बारे में पक्का आश्वासन देने के लिए ब्रिटिश-मंत्रिमंडल को लिखें। आप जानते हैं कि इसके बारे में हम मुसलमान को चिन्ता लगी रहती है। स्वयं हिन्दू होकर मैं उनकी भावना के प्रति लापरवाह नहीं हो सकता। उनका दुःख तो हमारा ही दुःख है। इन मुसलमानी राज्यों के हक की रक्षा में, उनके धर्मस्थानों के विषय में, उनकी भावना का आदर करने में और हिन्दुस्तान की होमरूल-सम्बन्धी मांग के स्वीकार में साम्राज्य की सलामती छिपी हुई है। इस पत्र के लिखने का यह कारण है कि मैं अंग्रेजों को प्यार करता हूं और जो वफादारी अंग्रेज में है, वही वफादारी हर एक हिन्दुस्तानी में जगाना चाहता हूं।

28 : मृत्यु-शय्या पर

रंगरूट भरती करने में मेरा शरीर काफी छीज गया। उस वक्त मेरी खुराक खासतौर से थी भुनी और कुटी हुई मूंगफली गुड़ मिलाकर, केले इत्यादि फल और दो-तीन नीबुओं का रस। मैं जानता था कि मूंगफली ज्यादा खाने से नुकसान करती है। फिर भी वह ज्यादा खाई गई। इससे मामूली पेचिश हो गई। मुझे समय-समय पर आश्रम में आना तो पड़ता ही था। यह पेचिश मुझे परवाह करने लायक नहीं जान पड़ी। रात को आश्रम में पहुंचा। दवा इन दिनों में शायद ही करता था। मुझे विश्वास था कि एक वक्त का खाना छोड़ देने से पेचिश चली जाएगी। दूसरे दिन सवेरे कुछ न खाया, इससे ऐंठन लगभग शांत हो गई थी। पर मैं जानता था कि मुझे उपवास थोड़ा और करना चाहिए अथवा खाना ही हो तो फल के रस-जैसी कोई चीज लेनी चाहिए।

यह दिन किसी त्यौहार का था। मुझे याद है कि मैंने कस्तूरबाई से कह दिया था कि मैं दोपहर को भी न खाऊंगा, पर उसने मुझे ललचाया और मैं लालच में पड़ गया। इस वक्त मैं किसी भी पशु का दूध न लेता था। इससे घी-मट्ठे का भी त्याग था। अतः मुझसे कहा गया कि मरे लिए तेल में भुने गेहूं का दलिया पकाया गया है और साबुत मूंग मेरे लिए खासतौर से रखे गए हैं। मैं स्वादवश पिघला। पिघलने पर भी इच्छा थी कि कस्तूरबाई को खुश रखने भर को थोड़ा ही खाऊंगा। स्वाद भी लूंगा और शरीर की रक्षा भी करूंगा। पर शैतान अपने मौके की ताक में बैठा था। मैं खाने बैठा और तनिक-सा खाने के बजाए पेट भरके खा लिया। स्वाद तो पूरा लिया, पर साथ ही यमराज को भी न्यौता दे दिया। खाये घंटा भी न बीता होगा कि पेट में सख्त मरोड़ शुरू हो गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रात को नडियाद को वापस जाना ही था। साबरमती स्टेशन तक पैदल गया। लेकिन यह सवा मील का रास्ता काटना कठिन हो गया। अहमदाबाद स्टेशन से वल्लभभाई साथ चलने वाले थे। वह आए और उन्होंने मेरी पीड़ा भांप ली। फिर भी यह पीड़ा असह्य है, यह मैंने उन्हें या दूसरे साथियों को न जानने दिया।

नडियाद पहुंचे। वहां से अनाथाश्रम का रास्ता आधे मील के अन्दर ही था, फिर भी वह दस मील-सा लगा। बड़ी कठिनाई से वहां पहुंचे। पर ऐंठन बढ़ती जाती थी। पाखाने की हाजत पाव-पाव घंटे पर हो रही थी। अन्त में मैं हारा। अपनी असह्य वेदना को प्रकट किया और खाट पकड़ी। आश्रम के आम पाखाने में शौच जाया करता था, उसके बजाए बगल के कमरे में कमोड रखवाया। शरम तो बहुत लगी, लेकिन लाचार हो गया। फूलचन्द बापूजी दौड़कर कमोड ले आए। चिंतातुर होकर साथी मेरे आस-पास इकट्ठे हो गए। उन्होंने प्रेम की मुझ पर वर्षा कर दी, पर मेरी पीड़ा को वे कैसे बांट सकते थे? मेरे हठ की हद न थी। डॉक्टर बुलवाने से मैंने इंनकार कर दिया। "दवा न लूंगा, किए हुए पाप का दण्ड भोगूंगा।" साथियों ने यह सब मुंह लटकाकर सहा। चौबीस घंटों में तीस-चालीस बार ट्रट्टी की हाजत हुई होगी। खाना तो मैंने बन्द ही कर दिया था और पहले दिनों में तो फलों का रस भी न लिया। लेने की रुचि बिलकुल न थी।

जिस शरीर को मैं आज तक पत्थर-सा समझता था वह शरीर गारे के जैसा हो गया। बल टूट गया। डॉक्टर कानूना आए। उन्होंने दवा लेने को समझाया। मैंने इनकार किया। तब उन्होंने इंजेक्शन देने को कहा। मैंने इससे भी इनकार किया। इंजेक्शन के विषय में मेरा उस समय का अज्ञान हास्यजनक था। मैं यही मानता था कि पिचकारी में तो किसी-न-किसी तरह की लस (रक्तज) औषध होगी। बाद को समझा कि यह तो निर्दोष वानस्पतिक औषध की पिचकारी थी। पर जब समझ आई तब अवसर बीत चुका था। आंव के दस्त जारी थे। शौच की हाजत बार-बार हो रही थी। अधिक परिश्रम के कारण बुखार आ गया और बेहोशी हो गई। मित्र लोग अधिक घबराए। दूसरे डॉक्टर भी आए, पर जो मरीज उनकी न माने उसके लिए यह क्या कर सकते थे।

सेठ अंबालाल और उनकी धर्मपत्नी नडियाद आए। साथियों से मशविरा करके मुझे वे अपने मिरजापुर के बंगले में बड़े ही एहतियात से ले गए। इतना तो मैं जरूर कह सकता हूं कि इस बीमारी में जो निर्मल, निष्काम सेवा मैंने पाई उससे अधिक सेवा कोई नहीं पा सकता। मन्द ज्वर रहने लगा। शरीर क्षीण हो चला। मैंने यह भी सोचा कि बीमारी काफी लम्बी होगी। यह भी हो सकता है कि मैं बिछौने से न उठ सकूं। अंबालाल सेठ के बंगले में प्रेम में घिरा हुआ होने पर भी मैं बेचैन हो गया और उनसे प्रार्थना की कि मुझे आश्रम में पहुंचा दीजिए। मेरा अतिशय आग्रह देखकर वे मुझे आश्रम में ले गए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम में मैं पीड़ा भोग ही रहा था कि इतने में वल्लभभाई खबर लाए कि जर्मनी की पूरी हार हो गई और कमिश्नर ने कहलाया है कि रंगरूट भरती करने की जरूरत अब नहीं है। अतः भरती की चिन्ता से मैं छुट्टी पा गया और इससे शन्ति हुई।

अब मैं जल चिकित्सा करता था और इससे शरीर टिका हुआ था। पीड़ा चली गई थी, पर शरीर किसी तरह पनप नहीं रहा था। वैद्य मित्र और डॉक्टर मित्र अनेक प्रकार की सलाह देते थे, पर मैं कोई दवा लेने को तैयार न हुआ। दो-तीन मित्रों ने सलाह दी कि दूध लेने में बाधा हो तो मांस का शोरबा ले सकते हैं और इसके लिए आयुर्वेद से प्रमाण पेश कर दिए कि औषध के रूप में मांस आदि चाहे जो चीज ली जा सकती है। एक ने अंडे लेने की सलाह दी। पर उनमें से किसी की सलाह मैं स्वीकार न कर सका। मेरा जवाब एक ही था।

खाद्याखाद्य का निर्णय मेरे लिए केवल शास्त्रों के श्लोकों पर आश्रित नहीं है बल्कि मेरे जीवन के साथ स्वतंत्र रीति से निर्मित हुआ है। चाहे जो खाकर और चाहे जिस इलाज से जीने का मुझे तनिक भी लोभ नहीं है। जिस धर्म का आचरण मैंने अपने पुत्रों के लिए, स्त्री के लिए और स्नेहियों के लिए किया, उस धर्म का त्याग मैं अपने विषय में कैसे कर सकता हूं।

इस प्रकार मेरी इस दीर्घकालीन और जीवन में पहली इतनी बड़ी बीमारी में मुझे धर्मनिरीक्षण करने का, उसे परखने का अलभ्य लाभ हुआ। एक रात तो मैंने जीने की आशा बिल्कुल त्याग दी। मुझे जान पड़ा कि मौत पास ही है। श्रीमती अनसूयाबहन को खबर भेजी। वह आईं। वल्लभभाई आए। डॉक्टर कानूगा आए। डॉक्टर कानूगा ने नाड़ी देखी और बोले-"मृत्यु के कोई लक्षण तो मैं नहीं पा रहा हूं। नाड़ी साफ है। आपको सिर्फ कमजोरी के कारण मानसिक घबराहट है।" पर मेरा मन न माना। रात किसी तरह कटी। उस रात को शायद ही मेरी आंख लगी हो।

सवेरा हुआ। मृत्यु न आई। फिर भी जीने की आशा मैं उस समय न बांध सका और मरण समीप है यह समझकर जितना हो सके उतना समय साथियों से गीता पढ़वाकर सुनने में बिताने लगा। कुछ काम-काज करने की ताकत तो थी ही नहीं। इतनी शक्ति भी न थी कि कुछ पढ़ सकूं। किसी से बात करने को भी जी न चाहता था। दो-चार वाक्य बोलने से ही दिमाग थक जाता था। इससे जीने में कोई आनन्द न था। जीने के लिए जीना मुझे कभी रुचा ही नहीं। कुछ काम-काज किए बिना साथियों की सेवा लेकर क्षीण होते हुए शरीर को टिकाए रखना मुझे अति कष्टकर लगता था।

यों बैठकर मौत की राह देख रहा था कि इतने में डॉक्टर तलवलकर एक विचित्र व्यक्ति ले आए। यह महाराष्ट्रीय हैं। हिन्दुस्तान में उनकी ख्याति नहीं है।

यह मैं उन्हें देखते ही समझ गया कि यह भी मेरी ही तरह सनकवाले हैं। यह अपना इलाज मुझ पर आजमाने आए थे। उन्होंने डॉक्टरी का अध्ययन ग्रेट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

मेडिकल कॉलेज में किया था, पर डिग्री नहीं ली थी। पीछे मालूम हुआ कि वह ब्रह्मसमाजी हैं। उनका नाम केलकर है। बड़े स्वतंत्र स्वभाव के हैं। वह बरफ के इलाज के बड़े हिमायती हैं। मेरी बीमारी की बात सुनकर वह बरफ का उपचार मुझ पर आजमाने आए। तब से हमने उन्हें 'आइस डॉक्टर' का उपनाम दे रखा है। अपने मत का उन्हें जबरदस्त आग्रह है। उन्हें विश्वास है कि डिग्री वाले (उपाधिकारी) डॉक्टरों से भी उन्होंने कुछ ज्यादा अच्छी चीजें खोज की हैं। अपना यह विश्वास वह मुझमें न भर सके, यह उनके और हम दोनों के लिए दुःख की बात बनी रही। मैं एक हद तक उनके उपचारों का कायल हूं। पर मेरा खयाल है कि कुछ नतीजे निकालने में उन्होंने जल्दबाजी की है।

पर उनकी खोजें सही हों या गलत मैंने अपने शरीर पर प्रयोग करने दिया। बाह्य उपचारों से अच्छा होना तो मुझे रुचता ही था, फिर यह उपचार तो बरफ यानी पानी का था। अतः उन्होंने मेरे सारे शरीर पर बरफ मलना शुरू किया। इससे जितना वह मानते हैं उतना लाभ यद्यपि मुझे नहीं हुआ, फिर भी रोज तो मैं मौत की बाट देख रहा था उसके बदले अब कुछ जीने की आशा बांधने लगा। कुछ उत्साह आया। मन के उत्साह के साथ शरीर में भी उत्साह का अनुभव किया। खुराक कुछ बढ़ गई। दस-पांच मिनट रोज टहलने लगा। उन्होंने मेरे भोजन में एक सुधार सुझाया-"यदि आप अंडों का रस पिएं तो आपको जितना उत्साह आया है उसकी अपेक्षा अधिक उत्साह आने की मैं जिम्मेदारी लेता हूं; और अंडा दूध के समान ही निर्दोष पदार्थ है। यह मांस तो हरगिज नहीं है। हर एक अंडे में बच्चा पैदा होता हो सो बात नहीं है। जिससे बच्चे पैदा नहीं होते ऐसे बांझ अंडे काम में लाए जाते हैं, यह आपके सामने साबित कर सकता हूं।" पर ऐसे बांझ अंडे लेने को भी मैं तैयार नहीं हुआ। फिर भी मेरी गाड़ी कुछ आगे बढ़ी और मैं आस-पास के कामों में थोड़ा-थोड़ा रस लेने लगा।

29 : रौलट ऐक्ट और मेरा धर्म-संकट

मित्रों की इस सलाह से कि माथेरान जाने से शरीर में जल्दी बल लौटेगा, मैं माथेरान गया। पर वहां का पानी भारी था। इससे मेरे-जैसे मरीज का रहना मुश्किल हो गया। आंव के कारण गुदाद्वार बहुत नरम हो गया था, और वहां दरारें पड़ जाने से शौच में बड़ा दर्द होता था, इसलिए कुछ भी खाते डर लगता था। एक हफ्ते में माथेरान से वापस आया। मेरी तबीयत की देखभाल शंकरलाल ने अपने ऊपर ले ली। उन्होंने डॉक्टर दलाल की सलाह लेने का आग्रह किया। डॉक्टर दलाल आए। उनकी तत्काल निर्णय करने की शक्ति ने मुझे मोह लिया। वह बोले:

"जब तक आप दूध न लेंगे मैं आपके शरीर को भर नहीं सकता। उसे भरने के लिए आपको दूध लेना चाहिए और लोहे तथा संखिये के इंजेक्शन लेने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चाहिए। इतना कीजिए तो आपके शरीर को फिर पुष्ट कर देने की मैं गारंटी देता हूं।"

मैंने जवाब दिया-"इंजेक्शन दीजिए, लेकिन दूध न लूंगा।"

डॉक्टर ने पूछा-"दूध के बारे में आपकी क्या प्रतिज्ञा है?"

"गाय-भैंस के फूंका लगाया जाता है, यह जानने के बाद दूध से मुझे नफरत हो गई, और वह मनुष्य की खुराक नहीं है यह तो मैं सदा मानता रहा हूं। इससे मैंने दूध का त्याग कर दिया।"

"तब तो बकरी का दूध लिया जा सकता है।"-तत्काल कस्तूरबाई, जो मेरी खाट के पास खड़ी थीं, बोल उठीं। डॉक्टर बीच में बोले-"आप बकरी का दूध लें तो भी मेरा काम हो जाएगा।"

मैं हारा। सत्याग्रह की लड़ाई के मोह ने मुझमें जीने का लोभ पैदा कर दिया और मैंने प्रतिज्ञा के अक्षर के पालन से संतोषमात्र कर उसकी आत्मा का हनन किया। दूध की प्रतिज्ञा करते समय यद्यपि मेरे सामने गाय-भैंस ही थी, फिर भी मेरी प्रतिज्ञा दूध मात्र की ही मानी जानी चाहिए और जब तक मैं पशु के दूध मात्र को मनुष्य की खुराक के रूप में निषिद्ध मानता हूं तक तक मुझे उसके लेने का अधिकार नहीं है, यह जानते हुए भी बकरी का दूध लेने को तैयार हो गया। सत्य के पुजारी ने सत्याग्रह की लड़ाई के लिए जीने की इच्छा रखकर अपने सत्य को दाग लगा दिया।

मेरे इस कार्य का घाव अभी भरा नहीं है और बकरी का दूध छोड़ने के विषय में मेरा चिन्तन तो जारी ही है। बकरी का दूध पीते हुए नित्य दुःख अनुभव करता हूं। पर सेवा करने का अति सूक्ष्म मोह जो मेरे पीछे लगा हुआ है, वह मेरा मन-बहलाव है। पर मुझे बकरी का दूध लेना इस दृष्टि से आज नहीं खलता है। वह मुझे सत्य की दृष्टि से खलता है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि अहिंसा को जितना मैं पहचान सका हूं उससे सत्य को अधिक पहचानता हूं। मेरा यह अनुभव है कि यदि सत्य को छोड़ दूं तो अहिंसा की कठिन गुत्थियों को मैं कदापि नहीं सुलझा सकता। सत्य के पालन का अर्थ है, लिए हुए व्रत से शरीर और आत्मा की रक्षा; शब्दार्थ और भावार्थ दोनों का पालन। यहां मैंने आत्मा का-भावार्थ का हनन किया, यह मुझे रोज चुभता है। यह जानते हुए भी, अपने व्रत के सिलसिले में मेरा धर्म क्या है यह मैं नहीं जान सका। या यों कहिए कि उसके पालन की हिम्मत मुझमें नहीं है। दोनों एक ही वस्तु हैं, क्योंकि शंका के मूल में श्रद्धा का अभाव होता है। "हे ईश्वर! मुझे तू श्रद्धा दे!"

बकरी के दूध शुरू करने के कुछ दिनों बाद डॉ. दलाल ने गुदाद्वार में जो दरार थी उन पर शस्त्रक्रिया की और वह बहुत सफल सिद्ध हुई।

खाट से उठने की कुछ आशा बांध रहा था और अखबार वगैरा पढ़ने लगा था। इतने में रौलट कमेटी की रिपोर्ट मेरे हाथ में पड़ी। उसकी सिफारिशें पढ़कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैं चौंक उठा। भाई उमर (सुभानी) और शकरलाल ने सलाह दी कि इस विषय में जोरदार कार्रवाई करनी चाहिए। लगभग महीने भर बाद मैं अहमदाबाद गया। वल्लभभाई प्रायः नित्य मुझे देखने आते थे। मैंने उनसे बातें कीं और कहा कि इस विषय में कुछ होना चाहिए। "क्या होना चाहिए?" इसके जवाब में मैंने कहा- "अगर थोड़े से आदमी भी इसकी प्रतिज्ञा लेने वाले मिल जाएं और कमेटी की सिफारिशों के मुताबिक कानून बन ही जाए तो हमें सत्याग्रह शुरू कर देना चाहिए। मैं खाट पर पड़ा न होता तो अकेला भी जूझता और आशा करता कि दूसरे बाद में आ मिलेंगे। अपनी लाचार हालत में अकेले जूझने की शक्ति मुझमें बिल्कुल नहीं है।"

इस बातचीत के फलस्वरूप, मेरे साथ जिनसे मेरा काफी साबिका पड़ चुका था, ऐसे आदमियों की एक छोटी-सी बैठक करने का निश्चय हुआ। मुझे तो साफ दिखाई दे रहा था कि रौलट कमेटी को जो सबूत मिले थे उनके आधार पर जैसे कानून की सिफारिश उसने की है वैसे कानून की कतई जरूरत नहीं है। कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र वैसे कानून को स्वीकार नहीं कर सकता; यह बात भी मेरे लिए उतनी ही स्पष्ट थी।

फिर सभा हुई। उसमें मुश्किल से बीस आदमी बुलाए गए थे। मेरी स्मृति के अनुसार वल्लभभाई के सिवा उससे श्रीमती सरोजिनी नायडू, हार्नीमैन, स्व. उमरसुभानी, शंकरलाल बैंकर, अनसूयाबहन आदि थे।

प्रतिज्ञा पत्र बनाया गया और जहां तक मुझे याद है जो लोग वहां उपस्थित थे सबने उस पर दस्तखत किए। इस समय मैं अखबार नहीं चलाता था, पर समय-समय पर अखबारों में लिखा करता था। मैंने वैसे ही लिखना शुरू किया और शंकरलाल बैंकर ने जोर का आन्दोलन चलाना शुरू किया। उनकी काम करने और संगठन करने की शक्ति का मुझे इस समय खूब अनुभव हुआ।

वह मुझे नामुमकिन मालूम हुआ कि कोई भी मौजूदा संस्था सत्याग्रह के समान नया शस्त्र उठा ले। इससे सत्याग्रह-सभा की स्थापना हुई। उसमें मुख्य नाम बम्बई में ही लिखे गए। उसका केंद्र भी बम्बई में ही रखा गया। प्रतिज्ञा-पत्र पर खूब दस्तखत होने लगे और खेड़ा के युद्ध की भांति यहां भी परचे निकले और जगह-जगह सभाएं हुईं।

इस सभा का अध्यक्ष मैं बना था। मैंने देखा कि शिक्षितवर्ग और मेरे बीच अधिक मेल नहीं जम सकता। सभा में गुजराती भाषा के उपयोग के मेरे आग्रह और मेरी अन्य कुछ पद्धतियों ने उन्हें परेशानी में डाल दिया। फिर भी मुझे यह स्वीकारना होगा कि बहुतों ने मेरी पद्धति को निभा लेने की उदारता दिखाई। पर आरम्भ में ही मैंने देखा कि यह सभा अधिक दिन नहीं चल सकती। इसके सिवा सत्य और अहिंसा का मेरा जोर देना बहुतों को अप्रिय हो गया। तो भी आरम्भ में तो यह नया काम बड़े जोर-शोर से चला।

GC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

30 : वह अद्‌भुत दृश्य!

रौलट-कमेटी की रिपोर्ट के खिलाफ एक ओर से आन्दोलन बढ़ता गया, दूसरी ओर से सरकार कमेटी की सिफारिशों को अमल में लाने को कृत-निश्चय होती गई। रौलट-बिल प्रकाशित हुआ। मैं एक ही बार बड़ी कौंसिल की बैठक में गया हूं। रौलट-बिल पर होने वाली बहस सुनने गया। शास्त्रीजी ने गरमागरम भाषण दिया, सरकार को चेतावनी दी। शास्त्रीजी का वचन-प्रवाह जब चल रहा था उस समय वाइसराय उनके मुंह की ओर ताक रहे थे। मुझे तो लगा कि इस भाषण का उनके मन पर असर हुआ होगा। शास्त्रीजी भावावेग से उफन रहे थे।

पर ऊंघते को आदमी जगा सकता है, जागता ऊंघे तो उसके कान पर ढोल बजाने से भी क्या होगा? कौंसिल में बिलों पर विचार का नाटक तो होना ही चाहिए था। सरकार ने यह किया, पर उसे जो काम करना था उसका निश्चय तो हो ही चुका था। अतः शास्त्रीजी की चेतावनी बेकार गई।

मेरी तूती की आवाज तो उस नक्कारखाने में सुनता ही कौन था। मैंने वाइसराय से मिलकर बहुत आरजू-मिन्नत की, निजी पत्र लिखे, खुली चिट्ठियाँ लिखीं। उसमें साफ बतला दिया कि सत्याग्रह के सिवा मेरे पास दूसरा रास्ता नहीं है। पर सब जंगल का रोना साबित हुआ।

अभी बिल गजट में आया नहीं था। मेरा शरीर तो कमजोर था, पर मैंने लम्बी यात्रा की जोखिम उठाई। मुझमें ऊंचे स्वर में बोलने की शक्ति नहीं आई थी। खड़े रहकर बोलने की शक्ति तो गई सो फिर आज तक न लौटी। खड़े-खड़े थोड़ी देर बोलने से सारा शरीर कांपने लगता और छाती तथा पेट में बेचैनी होने लगती। पर मुझे ऐसा लगा कि मद्रास से आए हुए निमन्त्रण को मुझे स्वीकार करना ही चाहिए। दक्षिण के प्रान्त उस समय मुझे घर-जैसे लगते थे। दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध के कारण तमिल, तेलुगु आदि दक्षिण प्रान्त के लोगों पर मैं अपना कुछ हक मानता आया हूं और वैसा मानने में मुझे अपनी जरा-सी भी भूल अब तक नहीं जान पड़ी। निमंत्रण स्व. कस्तूरी गंगा आयंगर की ओर से था। उस निमन्त्रण के पीछे राजगोपालाचार्य थे। यह मुझे मद्रास जाने पर मालूम हुआ। यह मेरा राजगोपालाचार्य से पहला परिचय माना जा सकता है। मैं उन्हें शक्ल से इसी समय से पहचानने लगा।

सार्वजनिक काम में अधिक योग देने के विचार से और श्री कस्तूरी रंगा आयंगर इत्यादि मित्रों के अनुरोध से वह सेलम छोड़कर मद्रास में वकालत शुरू करने वाले थे। मैं उन्हीं के यहां ठहराया गया था। मुझे दो दिन बाद ही पता चला कि मैं उनके यहां ठहराया गया था। बंगला कस्तूरी रंगा आयंगर का होने के कारण मैंने यह मान लिया था कि मैं उनका मेहमान हूं। महादेव देसाई ने मेरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भूल सुधारी। राजगोपालाचार्य हमसे कतराते ही रहते थे, पर महादेव ने उनको भली-भांति पहचान लिया था। महादेव ने मुझे बताया-"आपको राजगोपालाचार्य से परिचय कर लेना चाहिए।"

मैंने परिचय किया। उनके साथ रोज युद्ध की योजना के बारे में मशविरा करना था। सभाएं करने के सिवा मुझे दूसरी चीज सूझती ही न थी। रौलट बिल अगर कानून बन जाए तो उसका सविनय भंग कैसे किया जाए? उसके सविनय-भंग का मौका भी सरकार दे तभी मिल सकता है और जिस कानून का सविनय-भंग हो सकता है उसकी मर्यादा की हद कहां रखी जाए। इसी तरह की चर्चा होती थी।

श्री कस्तूरी रंगा आयंगर ने नेताओं की एक छोटी-सी बैठक भी की। उसमें खूब बहस हुई। उसमें श्री विजयराघवाचार्य पूरा हिस्सा लेते थे। उन्होंने मुझे सूक्ष्म सूचनाएं लिखकर सत्याग्रह का शास्त्र लिख डालने की सलाह दी। मैंने निवेदन किया कि यह काम मेरे बूते के बाहर है।

यों खिचड़ी पक रही थी कि इसी बीच खबर मिली कि बिल बतौर कानून के रूप में गजट में प्रकाशित हो गया। जिस दिन यह खबर मिली उसी रात को मैं विचार करते-करते सोया। भोर में ही जग गया। अर्ध निद्रा रही होगी जब स्वप्न में मुझे विचार सूझा। सवेरे ही मैंने राजगोपालाचार्य को बुलाया और बात की-"रात को स्वप्नावस्था में मेरे मन में यह विचार आया कि इस कानून के जवाब में हमें सारे देश में हड़ताल करने की सलाह देनी चाहिए। सत्याग्रह आत्मशुद्धि का युद्ध है। यह धार्मिक युद्ध है। धर्मकार्य शुद्धि से आरम्भ करना ठीक मालूम होता है। उस दिन सब उपवास करें और काम-काज बन्द रखें। मुसलमान भाई रोजे से ज्यादा उपवास न रखेंगे, इसलिए उपवास चौबीस घंटे का रखने की सलाह देनी चाहिए। इसमें सब प्रान्त वाले शामिल होंगे या नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता। बम्बई, मद्रास, बिहार और सिंध की तो मुझे आशा है ही। इतनी जगहों में ठीक तौर से हड़ताल हो जाए तो हमें संतोष मानना चाहिए।

यह सलाह राजगोपालाचार्य को बहुत पसन्द आई। उसके बाद वह दूसरे मित्रों को बताई गई। सबने स्वागत किया। एक छोटी-सी नोटिस मैंने बना दी। पहले 1919 के मार्च की 30 तारीख रखी गई थी, फिर छठी अप्रैल कर दी गई। लोगों को सूचना बहुत थोड़े दिन पहले ही दी गई थी। काम तुरन्त शुरू कर देने की जरूरत समझी जा रही थी। इससे तैयारी के लिए लम्बी अवधि की गुंजाइश ही न थी।

पर मालूम नहीं कैसे, सारा संगठन हो गया। सारे हिन्दुस्तान में-शहर में और गाँवों में-हड़ताल हुई। वह शानदार दृश्य था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

31 : वह हफ्ता!

(1)

दक्षिण में थोड़ी यात्रा करके सम्भवतः चौथी अप्रैल को मैं बंबई पहुंचा। श्री शंकरलाल बैंकर का तार आया था कि छठी तारीख की हड़ताल मनाने के लिए आपको बम्बई में मौजूद रहना चाहिए।

पर इसके पहले दिल्ली में तो हड़ताल 30 मार्च को मना ली गई थी। दिल्ली में स्व. श्रद्धानन्दजी और स्वर्गीय हकीम साहब अजमलखां की दुहाई फिरती थी। छठी तारीख तक हड़ताल की अवधि बढ़ाने की सूचना दिल्ली में देर से पहुंची थी। दिल्ली में उस दिन जैसी हड़ताल हुई थी वैसे पहले कभी नहीं हुई थी। जान पड़ा हिन्दू और मुसलमान एक दिल हो गए। श्रद्धानन्दजी को जामा मस्जिद में आने का निमन्त्रण दिया और वहां उन्हें भाषण करने दिया गया। यह सब अधिकारियों की बर्दाश्त के बाहर था। रेलवे स्टेशन की ओर जाते जलूस को पुलिस ने रोका और गोलियां चलाईं। कितने ही लोग जख्मी हुए कुछ जान से मारे गए। दिल्ली में दमन का दौर-दौरा हुआ। श्रद्धानन्दजी ने मुझे दिल्ली बुलाया। मैंने तार दिया कि बम्बई में छठी तारीख मनाकर तुरन्त दिल्ली पहुंचूंगा।

जो कुछ दिल्ली में हुआ वही लाहौर और अमृतसर में भी हुआ। अमृतसर से डॉ. सत्यपाल और किचलू का साग्रह बुलाहट का तार मिला था। इन दो भाइयों को मैं उस वक्त बिल्कुल न जानता था। पर उन्हें भी लिख दिया कि दिल्ली होकर आऊंगा।

छठी को बम्बई में सवेरे के समय हजारों आदमी चौपाटी पर स्नान करने गए और वहां से ठाकुरद्वार[1] जाने को जलूस निकाला। उसमें स्त्रियां और बच्चे भी थे। जलूस में मुसलमान भी अच्छी तादाद में शामिल हुए थे। इस जलूस में से मुसलमान भाई हमें एक मस्जिद में ले गए। वहां श्रीमती सरोजिनी देवी से और मुझसे भाषण कराए। यहां श्री विट्ठलदास जेराजाणी ने स्वदेशी और हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिज्ञा कराने का सुझाव पेश किया। मैंने ऐसी उतावली में प्रतिज्ञा कराने से इनकार किया। जितना हो रहा था उतने से संतोष करने की सलाह दी। प्रतिज्ञा करके तोड़ी नहीं जा सकती। स्वदेशी का अर्थ हमें समझना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम एकता की जोखिम का खयाल हमें करना चाहिए इत्यादि बातें कहीं; और यह सूचना दी कि जिसको प्रतिज्ञा लेने का विचार हो वह चाहे तो अगले दिन सवेरे चौपाटी के मैदान पर उपस्थित हो।

---

1. यहां 'ठाकुरद्वार' के स्थान पर 'माधववाग' पढ़िए। अब तक के अंग्रेजी और गुजराती संस्करण में यह गलती रहती आई है। उस समय गांधीजी के साथ रहने वाले श्री मथुरादास त्रिकमजी ने इसे सुधरवाया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बई की हड़ताल सम्पूर्ण थी।

यहां कानून के सविनय-भंग की तैयारी कर रखी गई थी। भंग हो सकने वाली दो-तीन चीजें थीं। जो कानून रद्द किए जाने लायक थे और जो ऐसे थे कि जिनका भंग सब आसानी से कर सकते थे, उनमें से एक का ही उपयोग करने का निश्चय था। नमक-कर का कानून सबको खलता था। उस कर को रद्द करने के लिए बहुत कोशिशें हो रही थीं। अत: मैंने एक सुझाव यह रखा कि सब लोग बिना इजाजत के अपने घर में नमक बनाएं। दूसरा सुझाव था सरकार की जब्त की हुई पुस्तकों को छपाने और बेचने का। ऐसी दो पुस्तकें मेरी ही थीं 'हिन्द स्वराज्य' और 'सर्वोदय'। इन पुस्तकों का छपाना सबसे आसान सविनय कानून-भंग जान पड़ा। इससे ये छपाई गईं और शाम को उपवास समाप्त होने पर और चौपाटी की विराट सभा के विसर्जन के बाद बेचने का इंतजाम हुआ।

शाम को अनेक स्वयंसेवक ये पुस्तकें बेचने निकल पड़े। एक मोटर में मैं निकला और दूसरी में श्रीमती सरोजिनी नायडू निकलीं। जितनी प्रतियां छपाई गई थीं उतनी सब खप गईं। इनकी जो कीमत मिलती वह लड़ाई के काम में ही खर्च की जाने वाली थीं। प्रत्येक का मूल्य चार आने रखा गया। पर मेरे हाथ पर या सरोजिनी देवी के हाथ पर शायद ही किसी ने चार आने रखे होंगे। जो कुछ अपनी जेब में था सब हवाले करके प्रतियां लेने वाले बहुत निकल आए। कोई-कोई पांच और दस के नोट भी हमारे हाथ पर रख देते थे। पचास रुपए के नोट तक एक प्रति के लिए पाने का मुझे स्मरण है। लोगों को बता दिया गया था कि खरीदार के लिए भी जेल का खतरा है। पर क्षणभर के लिए लोगों ने मन से जेल का भय त्याग दिया था।

सातवीं तारीख को मालूम हुआ कि जिन किताबों को बेचने पर सरकार ने प्रतिबन्ध लगाया था, वह सरकार की दृष्टि में बेची गई नही मानी जा सकतीं। जो पुस्तकें बिकीं वे तो उसकी दूसरी आवृत्ति के छापने, बेचने, खरीदने में कोई अपराध हुआ नहीं माना जाएगा। यह खबर सुनकर लोग निराशा हुए।

इस तारीख को चौपाटी पर सवेरे स्वदेशी-व्रत और हिन्दू-मुस्लिम एकता का व्रत लेने के लिए लोगों के एकत्र होने की बात थी। विट्ठलदास जेराजाणी को यह पहला अनुभव हुआ कि हर सफेद चीज दूध नहीं है। लोग बहुत कम इकट्ठे हुए। उनमें दो-चार बहनों के नाम मुझे याद आ रहे हैं। पुरुष भी थोड़े थे। मैंने व्रत का मसविदा बना रखा था। उसका अर्थ उपस्थित जनों को खूब समझा दिया, तब व्रत लेने दिया। थोड़ी उपस्थिति से मुझे अचरज नहीं हुआ, दु:ख भी नहीं हुआ। तूफानी काम और धीमे रचनात्मक काम के बीच जो भेद है वह और पहले के प्रति लोगों के पक्षपात और दूसरे से अरुचि का अनुभव मैं तभी से करता आया हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर इस विषय को अलग प्रकरण देना पड़ेगा।

सात की रात को मैं दिल्ली-अमृतसर के लिए रवाना हुआ। आठ को मथुरा पहुंचने पर कान में भनक पड़ी कि शायद मुझे गिरफ्तार कर लें। मथुरा के बाद एक स्टेशन पर गाड़ी रुकती थी। वहां आचार्य गिडवानी मिले। उन्होंने मेरे पकड़े जाने के बारे में पक्की खबर दी और कहा कि मेरी सेवा की आवश्यकता हो तो मैं हाजिर हूं। मैंने धन्यवाद दिया और कहा कि आवश्यकता होने पर आपसे सहायता लेना न भूलूंगा।

पलवल स्टेशन आने के पहले ही पुलिस-अधिकारी ने मेरे हाथ पर हुक्मनामा रखा। आज्ञा इस प्रकार की थी, "आपके पंजाब में प्रवेश करने से अशांति बढ़ने का डर है, इससे आप पंजाब की सरहद में दाखिल न हों।" इस प्रकार का हुक्म था। पुलिस-अधिकारी ने हुक्मनामा देकर मुझे उतर जाने को कहा। मैंने उतरने से इनकार किया और कहा-"मैं अशांति बढ़ाने नहीं, बल्कि निमंत्रण पाकर अशांति घटाने के लिए जाना चाहता हूं। इसलिए मुझे खेद है कि मुझसे इस आज्ञा का पालन नहीं हो सकता।"

पलवल आया। महादेव मेरे साथ थे। उन्हें दिल्ली जाकर श्रद्धानन्द जी को खबर देने और लोगों को शांत रखने को कहा तथा बताया कि हुक्म को न मानकर जो सजा होगी उसे भुगतने का मैंने निश्चय किया है; और सजा होने पर भी लोगों के शांत रहने में ही हमारी जीत है, यह समझा दिया जाए।

पलवल स्टेशन पर मैं उतार लिया गया और पुलिस के हवाले कर दिया गया। दिल्ली से आने वाली किसी ट्रेन के तीसरे दरजे के डब्बे में बिठाया गया और पुलिस दल साथ बैठा। मथुरा पहुंचने पर मुझे पुलिस बैरक में ले गए। मेरा क्या होगा और मुझे कहां ले जाना है, कोई पुलिस का अधिकारी मुझे बता न सका। सवेरे चार बजे मुझे उठाया और बम्बई की ओर जाने वाली मालगाड़ी में बिठा दिया गया। दोपहर को सवाई माधोपुर स्टेशन पर उतार दिया गया। वहां बम्बई की मेल ट्रेन में लाहौर से इंस्पेक्टर बोरिंग आए। उन्होंने मेरा चार्ज लिया।

अब में पहले दरजे में सवार कराया गया। साथ साहब बैठे। अब तक मैं साधारण कैदी था, अब 'जेंटलमैन कैदी' समझा जाने लगा। साहब ने सर माइकल ओडवायर का बखान शुरू किया। उन्हें मेरे खिलाफ तो कोई शिकायत नहीं है। लेकिन मेरे पंजाब में जाने से उन्हें अशांति का पूरा भय है; इत्यादि, कहकर मुझे अपने आप लौट जाने और फिर पंजाब की सरहद पार न करने का अनुरोध किया। मैंने उनसे कह दिया कि मुझसे इस आज्ञा का पालन न हो सकेगा और मैं स्वेच्छा से वापस जाने को तैयार नहीं। अतः साहब ने लाचार होकर कानूनी कार्रवाई की बात कही। मैंने पूछा, "लेकिन, यह तो कहिए कि मेरा करना क्या चाहते हैं?" बोले, "मुझे तो पता नहीं है। मुझे दूसरे हुक्म का इंतजार है। अभी तो मैं आपको बम्बई ले जा रहा हूं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरत पहुंचने पर किसी दूसरे अधिकारी ने मेरा चार्ज लिया। राह में मुझसे कहा–"आप मुक्त हैं, पर आपके लिए मरीन लाइन्स स्टेशन के पास गाड़ी खड़ी कराऊंगा और आप वहां उतर जाएं तो ज्यादा अच्छा हो। कोलाबा स्टेशन पर बड़ी भीड़ होने की सम्भावना है।" मैंने उनसे कहा कि "आपका कहना करने में मुझे प्रसन्नता है।" वह खुश हुआ और धन्यवाद दिया। मैं मरीन लाइन्स पर उतरा। वहां किसी परिचित की घोड़ा-गाड़ी दिखाई दी। वह मुझे रेवाशंकर झवेरी के घर उतार गए। उन्होंने मुझे खबर दी, "आपके पकड़े जाने की खबर पाकर लोग क्रुद्ध हो गए हैं और पागल-से हो रहे हैं। पायधुनी के पास दंगे का खतरा है। मैजिस्ट्रेट और पुलिस वहां पहुंच गई है।"

मैं घर पहुंचा ही था कि उमर सुभानी और अनसूयाबहन मोटर में आए और मुझे पायधुनी चलने को कहा। "लोग अधीर हो गए हैं, उत्तेजित हो रहे हैं। हममें से किसी के किए शांत नहीं हो सकते। आपको देखेंगे तभी शांत होंगे।"

मैं मोटर में बैठ गया। पायधुनी पहुंचते ही रास्ते में भारी मजमा दिखाई दिया। लोग मुझे देखकर हर्षोन्मत्त हो गए। अब जलूस बना। 'वन्देमातरम्', 'अल्लाहो अकबर' के नारों से आकाश गूंज उठा। पायधुनी पर घुड़सवार दिखाई दिए। ऊपर से ईंटों की वर्षा हो रही थी। मैं लोगों से शांत रहने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा था। जान पड़ा कि हम भी ईंटों की इस बौछार से न बच पाएंगे।

अब्दुर्रहमान गली में से क्राफर्ड मारकेट की ओर जाते हुए जलूस को रोकने के लिए घुड़सवारों का दल सामने से आ पहुंचा। वे जलूस को फोर्ट की ओर जाने से रोकने की कोशिश कर रहे थे। लोग वहां समा नहीं रहे थे। मजमा पुलिस की लाइन को चीरकर आगे बढ़ा। मेरी आवाज वहां सुनाई न पड़ सकती थी। इस पर घुड़सवार दल के नायक ने जलूस को तितर-बितर करने का हुक्म दिया और भाला चमकाती हुई इस टुकड़ी ने एकबारगी घोड़ों को छोड़ दिया। मुझे डर लगा कि इनका भाला हमारा भी काम तमाम कर दे तो ताज्जुब नहीं। पर यह भय निराधार था। बगल होकर सब भाले बड़ी तेजी से सनसनाते हुए दूर निकल जाते थे। लोगों का मजमा बिखर गया। भगदड़ मची। कोई कुचला गया, कोई जख्मी हुआ। घुड़सवारों के निकलने का रास्ता नहीं था। लोगों के लिए आस-पास बिखरने का रास्ता नहीं था। वह पीछे लौटें तो उधर भी हजारों ठसाठस भरे हुए थे। सारा दृश्य भयंकर लगा। घुड़सवार और जनसमूह दोनों पागल-से लगे। घुड़सवार कुछ देखते नहीं थे, या देख नहीं सकते थे। वे तो टेढ़े होकर घोड़ों को दौड़ा रहे थे। मैंने यह देखा कि जितने क्षण इन हजारों के दलों को चीरने में लगे उतनी देर तक वे कुछ देख ही न सकते थे।

लोग यों तितर-बितर किए और आगे जाने से रोके गए। हमारी मोटर को आगे बढ़ने दिया गया। मैंने कमिश्नर के दफ्तर के सामने मोटर रुकवाई और उससे पुलिस के व्यवहार की शिकायत करने उतरा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2)

कमिश्नर ग्रिफिथ के दफ्तर में गया। उनकी सीढ़ी के पास जहां देखा वहीं हथियारबंद सैनिकों को बैठे हुए पाया, मानो लड़ाई के लिए तैयार हो रहे हों। बरामदे में भी हलचल मच रही थी। मैं खबर कराके ऑफिस में पैठा तो कमिश्नर के पास मि. बोरिंग को बैठे पाया। मैंने जो दृश्य देखा था वह कमिश्नर को बताया। उन्होंने संक्षेप में जवाब दिया–"मुझे जलूस को फोर्ट की तरफ नहीं जाने देना था। वहां जाने पर उपद्रव हुए बिना न रहता और मैंने देखा कि लोग समझाने से लौटने वाले नहीं हैं, इसलिए घुड़सवारों को भीड़ को दाबकर धकेलने का हुक्म देने के सिवा दूसरा उपाय नहीं था।"

मैंने कहा, "पर उसका नतीजा तो आप जानते थे। लोग घोड़ों से कुचले जाने से नहीं बच सकते थे। मेरा तो खयाल है कि घुड़सवार-दल भेजने की जरूरत ही नहीं थी।" साहब बोले–"इसका पता आपको नहीं हो सकता। लोगों पर आपकी शिक्षा का असर कैसा हुआ है, इसका पता हम पुलिसवालों को आप से ज्यादा है। हम पहले से कड़ी कार्रवाई न करें तो ज्यादा नुकसान हो सकता है। मैं आपको बतलाता हूं कि लोग आपके काबू में भी रहने वाले नहीं हैं। कानून के तोड़ने की बात वे झट समझ लेंगे, लेकिन शांति की बात समझना उनके बूते के बाहर है। आपकी नीयत अच्छी है, पर उसे लोग समझ नहीं पाते। वे तो अपने स्वभाव का अनुसरण करेंगे।"

मैंने जवाब दिया–"पर मुझ में और आप में यही तो भेद है। लोग स्वभावतः लड़ाके नहीं, बल्कि शांतिप्रिय हैं।"

हममें बहस होने लगी।

अंत में साहब बोले–"अच्छा कहिए, अब यदि लोग आपकी शिक्षा नहीं समझ पाए हैं इसका आपको इत्मीनान हो जाए तो आप क्या करेंगे?"

मैंने जवाब दिया–"मुझ पर यह साबित हो जाए तो इस आन्दोलन को मैं स्थगित रखूंगा।"

"स्थगित रखने के क्या मानी? आपने तो मि. बोरिंग से कहा है कि आप मुक्त हो जाएं तो तुरन्त वापस पंजाब जाना चाहते हैं!"

"हां, मेरा इरादा तो वापसी ट्रेन से वापस जाने का था, पर आज तो यह हो नहीं सकता।"

"आप धीरज रखेंगे तो आपको और बहुत-सी बातें मालूम होंगी। आपको पता है कि अहमदाबाद में क्या हो रहा है, अमृतसर में क्या हुआ है। लोग सर्वत्र पागल-से हो रहे हैं। मुझे भी पूरा पता नहीं है। कितनी ही जगह तार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तोड़ दिए गए हैं। मैं तो आपसे कहता हूं कि इस सारे नुकसान की जवाबदेही आपके सिर है।"

मैंने कहा, "मेरी जवाबदेही जहां होगी वहां मैं ओढ़ने से इनकार नहीं करूंगा। अहमदाबाद में लोग कुछ भी करें तो मुझे आश्चर्य और दुःख होगा। अमृतसर के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। वहां तो मैं कभी गया ही नहीं। वहां मुझे कोई जानता भी नहीं। पर मैं इतना जानता हूं कि पंजाब की सरकार ने मुझे वहां से न रोका होता तो मैं शांतिरक्षा में बहुत हाथ बंटा सकता था। मुझे रोककर तो सरकार ने लोगों को चिढ़ाया है।"

इस प्रकार बातें होती रहीं। हमारे मत का मेल मिलने वाला नहीं था। चौपाटी पर सभा करने और लोगों को शांति रखने को समझाने का विचार बताकर मैं चला आया।

चौपाटी पर सभा हुई। मैंने लोगों को शांति और सत्याग्रह की मर्यादा के बारे में समझाया और बतलाया–"सत्याग्रह सचाई का खेल है। लोग शांति न रखेंगे तो सत्याग्रह का युद्ध मेरे चलाए कभी न चल सकेगा।" अहमदाबाद से श्रीमती अनसूयाबंहन को भी खबर मिल चुकी थी कि वहां भी दंगा हुआ है। किसी ने अफवाह उड़ा दी थी कि वह भी पकड़ी गई हैं। इससे मजदूर पागल हो उठे थे। उन्होंने हड़ताल की और उपद्रव भी मचाया था और एक सिपाही का खून भी हो गया था।

मैं अहमदाबाद गया। मुझे पता चला कि नडियाद के पास रेल की पटरी उखाड़ने की कोशिश भी हुई थी। वीरमगांव में एक सरकारी कर्मचारी का कत्ल कर दिया गया था। अहमदाबाद पहुंचा तो वहां मार्शल लॉ (सैनिक शासन) जारी था। लोगों में दहशत फैल रही थी। लोगों ने जैसा किया वैसा पाया और ब्याज भी पाया।

स्टेशन पर मुझे कमिश्नर मि. प्रेट के पास ले जाने को आदमी मौजूद थे। मैं उनके पास गया। वह खूब गुस्से में थे। मैंने शांति से उन्हें उत्तर दिया। हत्याओं के लिए दुःख प्रकट किया। मार्शल लॉ की आवश्यकता भी बताई और कहा कि फिर से शांति स्थापित होने के लिए जो कुछ करना जरूरी हो उसे करने को तैयार हूं। मैंने सार्वजनिक सभा करने की इजाजत मांगी। वह सभा आश्रम की जमीन पर करने की इच्छा बताई। यह राय उन्हें पसन्द आई। जहां तक मुझे याद है मैंने 13 अप्रैल रविवार को सभा की। मार्शल लॉ भी उसी दिन या दूसरे दिन समाप्त हुआ। इस सभा में मैंने लोगों को उनका कसूर बतलाने की कोशिश की। मैंने तीन दिन का उपवास प्रायश्चित्त रूप में किया और लोगों को एक दिन का उपवास करने की सलाह दी। जो हत्या इत्यादि में शरीक रहे हों उन्हें अपना अपराध स्वीकार कर लेने की सलाह दी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे अपना फर्ज साफ दिखाई दिया। जिन मजदूरों आदि के बीच मैंने इतना समय बिताया था, जिनकी मैंने सेवा की थी और जिनसे मैं भले व्यवहार की आशा रखता था, उन्होंने हुल्लड़ में हिस्सा लिया, यह मुझे असह्य लगा और इनके दोष का मैंने अपने आपको भागी माना।

जैसे लोगों को अपराध स्वीकार कर लेने की सलाह मैंने दी वैसे ही सरकार से उसे माफ कर देने को कहा, पर मेरी बात दोनों में से एक ने भी नहीं सुनी। न लोगों ने अपना कसूर कबूल किया, न सरकार ने उन्हें माफ किया।

स्व. रमणभाई आदि नागरिकों ने आकर मुझसे सत्याग्रह स्थगित रखने की अपील की। मुझसे अपील करने की जरूरत ही नहीं रह गई थी। जब तक लोग शांति का पाठ न पढ़ लें तब तक सत्याग्रह स्थगित रखने का निश्चय मैं कर ही चुका था इससे वे खुश हुए।

कुछ मित्र नाराज भी हुए। वे सोचते थे कि यदि मैं सर्वत्र शांति की आशा रखूं और यह सत्याग्रह की शर्त हो तो बड़े पैमाने पर सत्याग्रह कभी चल ही नहीं सकता। मैंने अपना मतभेद जताया। जिन लोगों में काम किया गया हो, जिनके द्वारा सत्याग्रह करने की आशा रखी जाती हो, वे अगर शांति न रखें तो निःसन्देह सत्याग्रह नहीं चल सकता। मेरी दलील थी कि इतनी मर्यादित शांति-रक्षा की शक्ति सत्याग्रही नेताओं को प्राप्त करनी ही चाहिए। आज भी अपने इन विचारों को बदल नहीं सका।

33 : 'पहाड़-जैसी भूल'

अहमदाबाद की सभा के बाद तुरंत मैं नडियाद गया। 'पहाड़-जैसी भूल' के नाम से जो शब्दप्रयोग इतना प्रसिद्ध हो गया, वह मैंने पहले नहीं किया। अहमदाबाद में ही मुझे अपनी भूल दिखाई देने लगी थी। पर नडियाद में वहां की स्थिति का विचार करते हुए, खेड़ा जिले के बहुतेरे आदमियों के गिरफ्तार हो जाने की बात सुनकर, जिस सभा में मैं हुई घटनाओं पर भाषण कर रहा था, वहीं यकायक मेरे मन ने कहा कि खेड़ा जिले के तथा ऐसे दूसरे लोगों को कानून का सविनय-भंग करने के लिए आह्वान करने में मैंने जल्दबाजी करने की गलती की थी और वह भूल मुझे पहाड़-जैसी जान पड़ी।

इस स्वीकारोक्ति के कारण मेरा काफी मजाक उड़ाया गया, फिर भी अपनी गलती स्वीकार करने के लिए मुझे कुछ पछतावा नहीं हुआ। मैंने सदा यह माना है कि दूसरों के गज-समान दोषों को हम रज-समान करके देखें; और अपने राई-जैसे लगने वाले दोषों को पर्वत के समान देखना सीखें, तभी हमें अपने और पराए दोषों का सही अंदाजा हो सकेगा। मैंने यह भी माना है कि इस साधारण नियम का पालन सत्याग्रही होने के अभिलाषी को बहुत अधिक सूक्ष्मता से करना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चाहिए। अब इस पर विचार करें कि वह पहाड़ सी लगने वाली भूल थी क्या? कानून का सविनय-भंग उन्हीं आदमियों से हो सकता है जिन्होंने कानून का विनय-पूर्वक स्वेच्छा से पालन किया हो। अधिकांश में तो हम कानूनों का पालन उनसे मिलने वाली सजा के डर से करते हैं। इसके सिवा यह बात ऐसे कानूनों पर खासतौर से घटित होती है, जिनमें नीति-अनीति का सवाल नहीं होता। कानून हो या न हो, पर अच्छे माने जाने वाले आदमी यकायक चोरी न करेंगे; फिर भी रात को बाइसिकिल में रोशनी रखने के नियम से बचने पर अच्छे आदमी को भी ग्लानि नहीं होती और ऐसे नियम का पालन करने की सलाह कोई दे तो उसका पालन करने को भले आदमी भी झटपट तैयार नहीं होंगे। पर जब वह बात कानून में आ जाती है और उसके भंग में दंडित होने का डर होता है तब दंड के कष्ट से बचने के लिए वे अंधेरा होने पर रोशनी जलाएंगे। नियम का ऐसा पालन स्वेच्छा से किया हुआ पालन नहीं माना जा सकता।

पर सत्याग्रही तो समाज के कानूनों का आदर सोच-समझकर, खुशी से और धर्म मानकर करेगा। इस प्रकार जिसने समाज के नियमों का इच्छापूर्वक पालन किया है और उसी को समाज के नियमों की नीति-अनीति का भेद करने की शक्ति प्राप्त होती है और उसे कुछ अवस्थाओं में अमुक नियम विशेष का भंग करने का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसा अधिकार लोगों के प्राप्त करने के पहले उन्हें मैंने सविनय कानून-भंग का आह्वान किया। अपनी यह भूल मुझे पहाड़-जैसी लगी और खेड़ा जिले में प्रवेश करने पर मुझे वहां के आन्दोलन की याद आई और मेरे मन ने कहा कि मैंने खुले खतरे को नहीं देखा। मुझे लगा कि लोग सविनय-भंग करने के योग्य बनें, इसके पहले उसके गम्भीर रहस्य का उन्हें ज्ञान होना चाहिए। जिन्होंने कानूनों को रोज जानकर तोड़ा हो, जो गुप्तरीति से अनेक बार कानूनों से भंग करते हों, वे यकायक सविनय-भंग को कैसे समझ सकते हैं? उसकी मर्यादा का पालन कैसे कर सकते हैं?

यह आदर्श स्थिति हजारों या लाखों आदमी नहीं प्राप्त कर सकते, यह बात तो सहज ही समझ में आ सकती है। पर ऐसा हो तो सविनय भंग कराने के पहले लोगों को ज्ञान देने वाला और उन्हें प्रतिक्षण रास्ता दिखाने वाला शुद्ध स्वयंसेवकों का दल पैदा होना चाहिए और ऐसे दल को सविनय-भंग का और उसकी मर्यादा का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए।

ऐसे विचारों को लेकर मैं बम्बई पहुंचा और सत्याग्रह सभा के द्वारा सत्याग्रही स्वयंसेवकों का दल बनाया। उसके द्वारा लोगों में सविनय-भंग के तत्त्व समझाने की शिक्षा कां श्रीगणेश किया। वह तत्त्व समझाने वाले परचे प्रकाशित किए।

यह काम चला तो जरूर, पर मैंने देखा कि उसमें मैं बहुत रस पैदा नहीं कर सका। स्वयंसेवकों की बाढ़ नहीं आई। यह नहीं कह सकते कि जो भरती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हुए उन सभी ने नियमित तालीम ली। सस्ती में नाम लिखाने वाले भी, ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए बजाए दृढ़ होने के फिसलने लगे। मैंने समझा कि सविनय-भंग की गाड़ी जितना मैंने सोचा था उससे ज्यादा धीमी चाल से चलेगी।

34 : 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया'

एक ओर तो यह शांति-रक्षा का आन्दोलन-उसकी चाल कितनी ही धीमी क्यों न हो-चल रहा था और दूसरी ओर सरकार की दमन-नीति पूरे जोर से चल रही थी। पंजाब में उसके प्रभाव का साक्षात्कार हुआ। वहां फौजी कानून यानी नादिरशाही शुरू हुई। नेता पकड़े गए। खास अदालतें, अदालतें नहीं थीं, बल्कि एक गवर्नर का हुक्म बजाने का साधन बनी हुई थीं। उन्होंने बिना सबूत और शहादत के सजाएं दीं। फौजी सिपाहियों ने बेकसूर आदमियों को कीड़े की तरह पेट के बल रेंगाया। इसके सामने जलियांवाला बाग का कत्ले-आम तो मेरी दृष्टि में किसी गिनती में नहीं था। यद्यपि जनता का और दुनिया का ध्यान तो इस नरमेघ ने ही खींचा था।

पंजाब में चाहे जैसे भी प्रवेश हो करने के लिए मुझ पर जोर डाला गया। मैंने वाइसराय को पत्र लिखा, तार दिया, पर इजाजत न मिली। बिना इजाजत के जाऊं तो अंदर तो जा नहीं सकता था; किन्तु केवल सविनय कानून-भंग करने का ही संतोष प्राप्त कर सकता था। इस धर्मसंकट में मेरा कर्त्तव्य क्या है यह विकट प्रश्न मेरे सामने खड़ा हुआ। मुझे लगा कि मैं मनाही की आज्ञा का उल्लंघन करके प्रवेश करूं तो यह सविनय कानून-भंग नहीं माना जाएगा। शांति की जो प्रतीति मैं चाहता था वह अभी मुझे नहीं हुई थी। पंजाब की नादिरशाही ने लोगों को अधिक उत्तेजित कर दिया था। ऐसे समय में मेरा कानून-भंग करना मुझे जलती आग में घी डालना जान पड़ा और मैंने सहसा पंजाब में प्रवेश करने की सलाह को मंजूर नहीं किया। यह निर्णय मेरे लिए कड़वा था, रोज पंजाब से अन्याय के समाचार आते थे और रोज मुझे उन्हें सुनना और दांत पीसकर रह जाना पड़ता।

इतने में मि. हार्नीमैन को, जिन्होंने 'क्रानिकल' को एक प्रचंड शक्ति बना दिया था, जनता को बेखबर रखकर सरकार चुरा ले गई। इस चोरी में जो गंदगी थी उसकी बदबू मुझे अब तक आया करती है। मैं जानता हूँ कि मि. हार्नीमैन अराजकता नहीं चाहते थे। मैंने सत्याग्रह-समिति की सलाह के बिना पंजाब सरकार का हुक्म तोड़ा, यह उन्हें नहीं रुचा था। सविनय कानून-भंग को मुल्तवी रखने में उनकी पूरी सम्मति थी। उसे मुल्तवी रखने का इरादा मैं जाहिर करूं, इसके पहले ही मुल्तवी रखने की सलाह देने वाला उनका पत्र मेरे नाम रवाना हो चुका था और वह मेरा इरादा जाहिर हो चुकने पर मिला। इसका कारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अहमदाबाद और बम्बई के बीच का फासला था। अतः उनके देशनिकाले से मुझे जितना आश्चर्य हुआ उतना ही दुःख भी।

इस घटना के कारण 'क्रानिकल' के व्यवस्थापकों ने उसके चलाने का भार मुझ पर डाला। मि. बरेलवी तो थे ही, इसलिए मुझे अधिक कुछ करना-कराना नहीं रहता था, फिर भी मेरे स्वभाव के अनुसार मेरे लिए यह जिम्मेदारी बहुत बड़ी हो गई थी।

पर मुझे वह जिम्मेदारी ज्यादा दिन न उठानी पड़ी। सरकार की मेहरबानी से 'क्रानिकल' बंद हो गया।

जो 'क्रानिकल' की व्यवस्था में कर्ताधर्ता थे वही-उमर सुभानी और शंकरलाल बैंकर-'यंग इंडिया' की व्यवस्था पर भी देख-रेख रखते थे। इन दोनों ने मुझे 'यंग इंडिया' की जिम्मेदारी लेने की सलाह दी। 'क्रानिकल' के अभाव की थोड़ी-बहुत पूर्ति होने के खयाल से 'यंग इंडिया' को हफ्ते में एक बार के बजाए दो बार निकालना उन्हें और मुझे ठीक लगा। लोगों को सत्याग्रह का रहस्य समझाने का मुझे चाव था। पंजाब के बारे में मैं और कुछ न सही तो उचित आलोचना तो कर सकता था और उसके पीछे सत्याग्रह का बल विद्यमान है, इसका पता तो सरकार को था ही। इससे इन मित्रों की सलाह मैंने स्वीकार कर ली।

पर अंग्रेजी के द्वारा जनता को सत्याग्रह की तालीम कैसे दी जा सकती है? गुजरात मेरे कार्य का मुख्य क्षेत्र था। भाई इंदुलाल याज्ञिक इस समय इसी मंडली में थे। उनके हाथ में मासिक 'नवजीवन' था। उसका खर्च भी उक्त मित्र पूरा करते थे। यह पत्र इंदुलाल और उन दोस्तों ने मुझे सौंप दिया और भाई इंदुलाल ने उसमें काम करना भी स्वीकार किया। इस मासिक को हमने साप्ताहिक कर दिया।

इस बीच 'क्रानिकल' सजीव हो गया। अतः 'यंग इंडिया' फिर साप्ताहिक हो गया और मेरी सलाह पर उसे अहमदाबाद ले गए। दो अखबारों के अलग-अलग स्थानों में से चलने में खर्च ज्यादा पड़ता था और मुझे अधिक कठिनाई होती थी। 'नवजीवन' तो अहमदाबाद से ही निकलता था। ऐसे अखबारों के लिए निज का छापाखाना होना चाहिए, इसका तो मुझे 'इंडियन ओपीनियन' के मामले में ही अनुभव हो गया था। इसके सिवा यहां के उस समय के अखबारों के कानून भी ऐसे थे कि मुझे जो विचार प्रकट करने थे उन्हें व्यापार-दृष्टि से चलने वाले छापेखाने वाले छापने में हिचकिचाते थे। यह भी अपना प्रेस करने का प्रबल कारण था और वह अहमदाबाद में ही आसानी से हो सकता था। इसलिए 'यंग इंडिया' को अहमदाबाद ले गए।

इन अखबारों के जरिए मैंने सत्याग्रह की शिक्षा जनता को यथाशक्ति देना आरम्भ किया। पहले दोनों अखबारों की थोड़ी ही प्रतियां छपा करती थीं, सो बढ़ते-बढ़ते 40,000 के आस-पास पहुंच गई थीं। 'नवजीवन' के ग्राहक एकबारगी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बढ़े, पर 'यंग इंडिया' के धीरे-धीरे बढ़े। मेरे जेल जाने के बाद इस ज्वार में भाटा आया और आज दोनों की ग्राहक संख्या आठ हजार से नीचे चली गई है।

इन अखबारों के विज्ञापन न लेने का मेरा आग्रह आरम्भ से ही था। मेरा खयाल है कि इससे कोई हानि नहीं हुई ओर अखबारों की विचार-स्वतन्त्रता की रक्षा में इस प्रथा ने बहुत मदद दी है।

इन अखबारों के द्वारा मैं शांति पा सका; क्योंकि यद्यपि तुरंत मैं सविनय कानून-भंग का आरम्भ न कर सका, पर मैं अपने विचार स्वतन्त्रता से प्रकट कर सका। जो सलाह-सुझाव के लिए मेरी ओर देख रहे थे उन्हें आश्वासन दे सका और मेरा खयाल है कि दोनों अखबारों ने आड़े वक्त पर जनता की अच्छी सेवा की और फौजी कानून के जुल्म को हल्का करने में हिस्सा लिया।

35 : पंजाब में

पंजाब में जो कुछ हुआ उसके लिए सर माइकल ओडवायर ने मुझे गुनहगार ठहराया था, तो वहां के कोई-कोई नौजवान मार्शल लॉ के लिए भी मुझे अपराधी ठहराते न हिचकते थे। इन गुस्सों में भरे हुए नौजवानों की यह दलील थी कि मैंने सविनय कानून-भंग को मुल्तवी कर दिया होता तो जलियांवाला बाग का कत्लेआम कभी न हुआ होता, न फौजी कानून ही जारी हुआ होता। किसी-किसी ने धमकी भी दी थी कि पंजाब में कदम रखा तो गोली का निशाना बनाए बिना न रहेंगे।

पर मुझे तो अपना कदम इतना सही मालूम होता था कि समझदार आदमियों को गलतफहमी होने की गुंजाइश ही न थी। पंजाब में जाने को मैं अधीर हो रहा था। मैंने पंजाब कभी देखा न था, पर अपनी आंखों से जो कुछ देख सकूं वह देखने की तीव्र इच्छा थी, और मुझे बुलाने वाले डॉ. सत्यपाल, डॉ. किचलू, पं. रामभजदत्त चौधरी को देखना चाहता था। वे जेल में थे, पर मुझे पूरा विश्वास था कि सरकार उन्हें जेल में बहुत दिन नहीं रख सकती। बम्बई जब-जब जाता तब-तब बहुत-से पंजाबी भाई आकर मिलते थे। उन्हें मैं प्रोत्साहन देता था, जिसे पाकर वह प्रसन्न होते थे। मैं इस समय आत्मविश्वास से भरा हुआ था।

पर मेरा जाना टलता जाता था। वाइसराय से हर बार यही जवाब मिलता-"अभी देर है।"

इस बीच हंटर-कमेटी आई। उसे सैनिक शासन के दिनों में पंजाब के अधिकारियों के कारनामे के बारे में जांच करनी थी। दीनबंधु एंड्रयूज वहां पहुंच गए थे। उनके पत्रों में वहां की स्थिति का हृदयद्रावक वर्णन होता था। उनसे प्रकट होता था कि अखबारों में जितना छपा था, उससे भी मार्शल लॉ का जुल्म ज्यादा था। उनमें मेरे पंजाब पहुंचने का आग्रह होता था। दूसरी ओर से मालवीयजी के भी तार आ रहे थे कि तुम्हें तुरत पंजाब पहुंचना चाहिए। इसलिए मैंने फिर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वाइसराय को तार दिया। जवाब आया–"फलां तारीख को आप जा सकते हैं।" मुझे तारीख ठीक से याद नहीं है, पर बहुत करके वह सत्रहवीं अक्तूबर थी।

मैंने लाहौर पहुंचकर जो दृश्य देखा वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। स्टेशन पर आदमियों की भारी भीड़ जमा हो गई थी, मानो अनेक वर्षों के वियोग के बाद कोई प्रियजन आता है और उससे मिलने को सगे-सम्बन्धी आए हों। उसी प्रकार लोग हर्षोन्मत्त हो गए थे।

पंडित रामभजदत्त चौधरी के यहां मैं ठहराया गया। श्री सरलादेवी चौधरानी पर, जिन्हें मैं पहले से जानता था, मेरी पहुनाई का भार था। 'भार' इसलिए कहता हूं कि उस समय भी जहां मैं उतरता था वहां मकान मालिकों का मकान धर्मशाला-सा हो जाता था।

पंजाब में मैंने देखा कि बहुत-से पंजाबी नेताओं के जेल में होने के कारण मुख्य नेताओं का स्थान पंडित मालवीयजी, पंडित मोतीलालजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी ने ले रखा था। मालवीयजी और श्रद्धानन्दजी के सम्पर्क में तो अच्छी तरह आ चुका था, पर पंडित मोतीलालजी के निकट सम्पर्क में तो लाहौर में ही आया। इन नेताओं और उन स्थानिक नेताओं ने, जिन्हें जेल जाने का सम्मान नहीं मिला था, मुझे तुरंत अपना लिया। मैं कहीं अजनबी-सा न लगा।

हंटर-कमेटी के सामने शहादत न देने का निश्चय हम सबने एकमत से किया। इसके सब कारण उसी वक्त बता दिए गए थे। इसलिए उन्हें यहां नहीं गिनाता। मैं आज भी मानता हूं कि ये कारण सबल थे और कमेटी का बहिष्कार उचित था।

पर यह निश्चय हुआ कि यदि कमेटी का बहिष्कार हो तो जनता की ओर से अर्थात् महासभा की ओर से एक कमेटी होनी चाहिए। पंडित मालवीयजी ने मुझे, पंडित मोतीलाल नेहरू, स्व. चितरंजनदास, श्री अब्बास तैयबजी और श्री जयकर को इस कमेटी में रखा। हम जांच के लिए अलग-अलग बंट गए। इस कमेटी की व्यवस्था का भार सहज ही मुझ पर आ पड़ा था और अधिक-से-अधिक गांवों की जांच का काम मेरे हिस्से में आने से मुझे पंजाब और पंजाब के गांवों को देखने का अलभ्य लाभ मिला।

इस जांच के बीच पंजाब की स्त्रियों से तो मैं इस तरह मिला मानो मैं युगों से उन्हें जानता पहचानता हूं। जहां जाता वहां उनकी मंडलियां मुझसे मिलतीं और मेरे सामने अपने काते हुए सूत का ढेर लगा देतीं। इस जांच के सिलसिले में मैंने अनायास देखा कि पंजाब खादी का महान क्षेत्र हो सकता है।

लोगों पर हुए जुल्मों की जांच करते हुए ज्यों-ज्यों मैं गहराई में उतरता गया त्यों-त्यों सरकारी अराजकता, अधिकारियों की नादिरशाही, उनकी मनमानी-घरजानी की बातें सुनकर मुझे आश्चर्य और दुःख होने लगा। जिस पंजाब से सरकार को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अधिक-से-अधिक सिपाही मिलते हैं, वहां के लोग कैसे इतना बड़ा जुल्म सहन कर सके, यह मुझे उस समय अचरज की बात जान पड़ी और आज भी लगती है।

इस कमेटी की रिपोर्ट तैयार करने का काम भी मुझे सौंपा गया था। पंजाब में कैसे-कैसे जुल्म हुए, यह जिन्हें जानना हो, उन्हें यह रिपोर्ट जरूर पढ़नी चाहिए। इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में इतना कह सकता हूं कि इसमें जानबूझकर एक स्थान पर भी अत्युक्ति नहीं की गई है। जो बात दी गई है उसके लिए उसी में सबूत रख दिया गया है। इस रिपोर्ट में जितने सबूत दिए गए हैं उनसे बहुत अधिक कमेटी के पास मौजूद थे। जिसके विषय में जरा भी शक था, ऐसी एक भी बात इस रिपोर्ट में नहीं दी गई। इस प्रकार सत्य को ही सामने रखकर लिखी हुई रिपोर्ट से पाठक देख सकेंगे कि ब्रिटिश राज्य अपनी हुकूमत को कायम रखने के लिए किस हद तक जा सकता है, कैसे-कैसे अमानुषिक काम कर सकता है। इस रिपोर्ट की एक भी बात जहां तक मुझे मालूम है, गलत नहीं साबित हुई।

36 : खिलाफत के बदले गोरक्षा?

पंजाब के हत्याकांड को अब हम थोड़ी देर के लिए छोड़ दें।

पंजाब की डायरशाही की जांच महासभा की ओर से जारी थी। इतने में एक सार्वजनिक निमंत्रण मेरे हाथ में आया। उसमें स्व. हकीम साहब और भाई आसफअली के नाम थे। श्रद्धानंदजी सभा में उपस्थित रहने वाले हैं, इसका भी जिक्र था। मुझे खयाल तो ऐसा है कि वह उपसभापति थे। यह निमंत्रण था दिल्ली में खिलाफत-सम्बन्धी उत्पन्न हुई परिस्थिति का विचार करने वाली और संधि के उत्सव में शामिल होना चाहिए या नहीं, इसका निर्णय करने के लिए होने वाली हिन्दू-मुसलमानों की संयुक्त सभा में उपस्थित होने का। मुझे ऐसा याद है कि यह सभा नवम्बर महीने में होने को थी।

इस निमंत्रण-पत्र में यह लिखा था कि इस सभा में खिलाफत के मसले पर ही नहीं, बल्कि गोरक्षा के प्रश्न पर भी विचार होगा और गोरक्षा साधने का यह सुन्दर अवसर है। मुझे वह वाक्य चुभा। इस निमंत्रण-पत्र का उत्तर देते हुए मैंने लिखा कि उपस्थिति की कोशिश करूंगा और साथ ही यह भी लिखा कि खिलाफत और गोरक्षा को साथ मिलाकर उन्हें परस्पर सौदे का सवाल नहीं बनाना चाहिए। हर एक पर उसके गुण-दोष की दृष्टि से विचार होना चाहिए। सभा में मैं हाजिर हुआ। उसमें उपस्थिति अच्छी थी। पर बाद को जैसे हजारों की भीड़ हुआ करती थी वह दृश्य यहां नहीं था। इस सभा में श्रद्धानंदजी उपस्थित थे। उनके साथ मैंने उपर्युक्त विषय पर बातचीत की। उन्हें मेरी दलील

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पसन्द आई और सभा में उसे पेश करने का काम उन्होंने मुझी पर रखा। मैंने हकीम साहब के साथ भी बात कर ली थी। मेरी दलील यह थी कि दोनों प्रश्नों पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से विचार होना चाहिए। यदि खिलाफत के प्रश्न में तथ्य हो, उसमें सरकार की ओर से अन्याय होता हो तो हिन्दुओं को मुसलमानों का साथ देना चाहिए और इसके साथ गोरक्षा को जोड़ना नहीं चाहिए। हिन्दू अगर ऐसी कोई शर्त करें तो वह उन्हें शोभा न देगा। मुसलमान खिलाफत में मिलने वाली मदद के बदले में गोवध बंद करें तो वह उन्हें भी शोभा न देगा।

पड़ोसी और एक ही धरती के होने के कारण हिन्दुओं की भावना का आदर करने के लिए वे स्वतंत्र रीति से गोवध बंद करें तो यह उनके लिए शोभा की बात होगी। यह उनका फर्ज है, और यह सवाल अलग है। जो यह फर्ज हो और वे फर्ज समझें तो हिन्दू खिलाफत में मदद दें या न दें, तो भी मुसलमानों कां गोवध बंद करना वाजिब है। इस प्रकार दोनों प्रश्नों पर स्वतंत्र रीति से विचार करना चाहिए और इस सभा में तो सिर्फ खिलाफत के प्रश्न पर ही विचार होना उचित है। यों मैंने अपनी दलील पेश की। सभा को वह पसंद आई। गोरक्षा के सवाल की सभा में चर्चा नहीं हुई। पर मौलाना अब्दुल बारी साहब ने तो कहा भी : "खिलाफत में हिन्दुओं की मदद हो या न हो हम एक मुल्क के हैं, इसलिए मुसलमानों को हिन्दुओं की भावना का लिहाज करके गोवध बंद कर देना चाहिए।" एक बार तो ऐसा ही लगा कि मुसलमान सचमुच ही गोवध बंद करेंगे।

कुछ लोगों ने यह सुझाव रखा कि पंजाब के सवाल को भी खिलाफत के साथ मिला लिया जाए। मैंने इसका विरोध किया। मेरी दलील यह थी कि पंजाब का प्रश्न स्थानीय है, पंजाब के दुःख के कारण हम साम्राज्य से सम्बन्ध रखने वाले संधि के उत्सव से अलग नहीं रह सकते। खिलाफत के सवाल के साथ पंजाब को मिला लेने से हम पर नासमझी का दोष लगाया जा सकेगा। यह राय सबको पसंद आई।

इस सभा में मौलाना हसरत मोहानी भी थे। उनसे मेरा परिचय तो हो ही चुका था, पर वह कैसे योद्धा हैं, इसका अनुभव मुझे यहीं हुआ। हममें मतभेद यहीं से आरम्भ हुआ, जो अनेक बातों में अन्त तक बना रहा।

अनेक प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव यह था कि हिन्दू-मुसलमान सब स्वदेशी-व्रत का पालन करें और उसके लिए विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करें। खादी का पुनर्जन्म अभी नहीं हुआ था। यह प्रस्ताव हसरत साहब के गले में उतरता था। उन्हें तो ब्रिटिश साम्राज्य यदि खिलाफत के मामलों में इंसाफ न करे तो उससे बैर चुकाना था। इससे उन्होंने ब्रिटिश माल मात्र का यथासम्भव बहिष्कार करने का सुझाव रखा। मैंने ब्रिटिश वस्तु मात्र के बहिष्कार की अशक्यता और अयोग्यता के विषय में अपनी दलीलें पेश कीं, जो आज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सर्वविदित है। मैंने अपनी अहिंसावृत्ति का भी प्रतिपादन किया। मैंने देखा कि सभा पर मेरी दलीलों का गहरा असर हुआ। हसरत मोहानी की दलीलें सुनकर लोग ऐसा हर्षनाद करते थे कि मुझे जान पड़ा कि इस नक्कारखाने में तूती की मेरी आवाज कौन सुनेगा। पर मुझे अपने कर्त्तव्य से नहीं चूकना चाहिए, न अपना भाव छिपाना चाहिए, यह सोचकर मैं बोलने उठा। लोगों ने मेरा भाषण खूब ध्यान से सुना। मंच पर तो मुझे पूरा समर्थन प्राप्त हुआ और मेरे समर्थन में एक के बाद एक भाषण होने लगे। नेताओं ने देख लिया कि ब्रिटिश माल के बहिष्कार के प्रस्ताव से एक भी मतलब सधने वाला नहीं था। जग-हँसाई अलबत्ता काफी होती। सारी सभा में मुश्किल से कोई ऐसा आदमी दिखाई देता जिसके बदन पर कोई-न-कोई विदेशी वस्तु न हो। जिस बात के करने में सभा में उपस्थित लोग भी असमर्थ थे उस बात के करने के प्रस्ताव से लाभ के बदले हानि ही होगी, यह बात बहुतों की समझ में आ गई।

मौलाना हरसत ने अपने भाषण में कहा : "हमें तो आपके विदेशी वस्त्र के बहिष्कार से संतोष होने वाला नहीं है। कब हम अपनी जरूरतभर का कपड़ा बना पाएंगे और कब विदेशी वस्त्र का बहिष्कार होगा? हमें तो कोई ऐसी चीज चाहिए जिसका अंग्रेजों पर तुरत असर हो। अपना बहिष्कार भी रखिए, पर इससे ज्यादा जल्दी काम करने वाली कोई चीज आपको बतानी चाहिए।" मैंने सोचा कि विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के अतिरिक्त कोई दूसरी और नई चीज मुझे बतानी चाहिए। विदेशी वस्त्र का बहिष्कार फौरन नहीं हो सकता, यह मुझे उस समय तो साफ दिखाई दिया। खादी की अपनी जरूरतभर के लिए पूरी पैदा कर लेने की शक्ति, हम चाहें तो, हममें है, यह बात पीछे से मुझे दिखाई दी। उसका पता उस वक्त मुझे न था। अकेली मिल का भरोसा करने से वह वक्त पर दगा देगी। यह मैं उस वक्त भी जानता था। मौलाना साहब ने अपना भाषण पूरा किया, उस वक्त मैं जवाब देने को तैयार हो रहा था।

मुझे उर्दू-हिन्दी शब्द तो न सूझा। ऐसी खास मुसलमानों की सभा में युक्तिप्रधान भाषण करने का यह मेरा पहला अनुभव था। कलकत्ते में मुस्लिम-लीग में मैं बोला था सो चंद मिनटों के लिए; हृदय को स्पर्श करने वाला ही भाषण था। पर यहां मुझे विरुद्ध मत वाले समाज को समझाना था। पर मैंने संकोच छोड़ दिया था। दिल्ली के मुसलमानों के सामने मुझे शुद्ध उर्दू में लच्छेदार भाषण नहीं करना था, बल्कि अपना अभिप्राय मुझे टूटी-फूटी हिन्दी में समझा देना था। यह काम मैं मजे से कर पाया। हिन्दी-उर्दू ही राष्ट्रभाषा बन सकती है इसकी यह सभा प्रत्यक्ष प्रमाण थी। मैंने अंग्रेजी में भाषण किया होता तो मेरी गाड़ी आगे नहीं सरकती और मौलाना साहब ने जो चुनौती दी थी उसे देने का मौका न आया होता और आता तो मुझे जवाब न सूझता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू या गुजराती शब्द हाथ में लगने से मैं शरमाया, पर जवाब तो दिया ही। मुझे 'नान-कोआपरेशन'[1] शब्द सूझा। मौलाना साहब जब भाषण कर रहे थे उस वक्त मेरे मन में यह भाव उठ रहा था कि वह स्वयं बहुत मामलों में जिस सरकार का साथ दे रहे हैं उस सरकार के विरोध की बात करना बेकार है। मैंने सोचा कि जब हमें तलवार से विरोध नहीं करना है तो साथ न देना ही सच्चा विरोध होगा और मैंने "नान-कोआपरेशन" शब्द का प्रथम प्रयोग इस शब्द में क्या-क्या समा सकता है इसकी कल्पना मुझे नहीं थी। इससे मैं ब्यौरे में न उतर सका। मुझे तो इतना ही कहने की याद है-"मुसलमान भाइयों ने एक दूसरा भी महत्त्वपूर्ण निश्चय किया है। ईश्वर न करे, पर शायद यदि सुलह की शर्तें उनके खिलाफ जाएं तो वे सरकार की सहायता करना बंद कर देंगे। मुझे यह प्रजा का अधिकार जान पड़ता है। सरकारी उपाधियां धारण करने या सरकारी नौकरियां करने को हम मजबूर नहीं हैं। जब सरकार के हाथों खिलाफत-जैसे अति महत्त्व के मजहबी मसले के मामले में हमें नुकसान पहुंचता है तब हम उसकी मदद कैसे कर सकते हैं? इसलिए खिलाफत का फैसला अगर हमारे खिलाफ हुआ तो हमें हक होगा कि उसकी मदद से अपना हाथ खींच लें।"

पर इसके बाद इस वस्तु का प्रचार होने में कई महीने बीते। यह शब्द कुछ महीनों तक तो इस सभा में ही गड़ा रहा। एक महीने बाद अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो वहां मैंने असहयोग के प्रस्ताव का समर्थन किया। उस वक्त मैं तो यही आशा रखता था कि हिन्दू-मुसलमानों के लिए असहयोग का अवसर न आएगा।

37 : अमृतसर की कांग्रेस

मार्शल लॉ के जमाने में जिन सैकड़ों निर्दोष पंजाबियों को नाम की अदालतों ने नाम के सबूत-शहादत पर छोटी-बड़ी मुद्दतों के लिए जेल में ठूंस दिया था, पंजाब की सरकार उन्हें रख न सकी। इस ज्वलंत अन्याय के विरुद्ध ऐसी जबरदस्त आवाज चारों ओर से उठी कि सरकार के लिए इन कैदियों को ज्यादा दिन जेल में रखना नामुमकिन हो गया। अतः कांग्रेस के अधिवेशन के पहले ही बहुत से कैदी छूट गए। लाला हरकिशनलाल वगैरा सब नेता छूट गए और कांग्रेस अधिवेशन के दरमियान अलीभाई भी छूटकर आ गए। इससे लोगों के हर्ष की सीमा न रही। पंडित मोतीलाल नेहरू, जिन्होंने अपनी वकालत को लात मारकर पंजाब में डेरा डाला था, सभापति थे। स्वामी श्रद्धानंदजी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे।

आज तक कांग्रेस में मेरा हिस्सा हिन्दी में छोटा-सा भाषण करके हिन्दी की वकालत करना और उपनिवेशवासी हिन्दुस्तानियों का सवाल पेश करना भर होता

---

1. असहयोग।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
था। अमृतसर में मुझे इससे कुछ अधिक करना होगा यह मैंने नहीं सोचा था, पर जैसा मेरे बारे में पहले हो चुका है वैसे ही जिम्मेदारी यकायक मुझ पर आ पड़ी।

सम्राट की नई सुधार सम्बन्धी घोषणा निकल चुकी थी। वह ऐसी तो थी ही नहीं कि मुझे पूरा संतोष दे सके। औरों को तो पसंद ही न आई थी। पर उस वक्त मैंने मान लिया कि उक्त घोषणा में सूचित सुधार त्रुटियों से भरे हुए होने पर भी स्वीकार कर लेने लायक हैं। सम्राट की घोषणा में मैं लार्ड सिंह का हाथ पाता था। उसकी भाषा में उस काल की मेरी आंखें आशा की झलक देख रही थीं, पर अनुभवी लोकमान्य, चितरंजनदास, इत्यादि योद्धा सिर हिलाते थे। भारतभूषण मालवीयजी मध्यस्थ थे।

मेरा डेरा उन्होंने अपनी ही कोठरी में रखा था। उनकी सादगी की झलक मुझे काशी विश्वविद्यालय के शिलान्यास के समय मिल चुकी थी। पर इस वक्त तो उन्होंने अपने कमरे में ही मुझे टिकाया था, उससे उनकी सारी दिनचर्या मुझे देखने का अवसर मिला और मुझे उससे सानंदाश्चर्य हुआ। उनका कमरा क्या था, गरीबों की धर्मशाला थी। उसमें कहीं रास्ता नहीं बच गया था; जहां-तहां लोग पड़े हुए थे। न वहां कोई खाली जगह थी, न एकांत। चाहे तो आदमी, चाहे जिस समय आता और उनका चाहे जितना वक्त लेता। इस दरबे के एक कोने में मेरा दरबार यानी चारपाई थी।

पर मुझे यह प्रकरण मालवीयजी की रहन-सहन के वर्णन को नहीं देना है, अतः अपने विषय पर आना चाहिए।

इस स्थिति में मालवीयजी के साथ रोज बातचीत होती थी। वह मुझे सबका पक्ष, बड़ा भाई जैसे छोटे को समझाता है वैसे प्रेमपूर्वक समझाते थे। सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव में भाग लेना मुझे अपना कर्त्तव्य जान पड़ा।

पंजाब-कांग्रेस की रिपोर्ट के उत्तरदायित्व में मेरा हिस्सा था। पंजाब के बारे में सरकार से काम लेना था। खिलाफत का मसला तो था ही। यह भी मैंने मान रखा था कि मांटेग्यू हिन्दुस्तान को धोखा नहीं देने देंगे। कैदियों के-और उनमें भी अलीभाइयों के-छुटकारे को मैंने शुभ लक्षण माना था। अतः प्रस्ताव सुधारों की स्वीकृति का होना चाहिए। चितरंजनदास का दृढ़ मत था कि सुधारों को बिल्कुल असंतोषजनक और अधूरा मानकर ठुकरा देना चाहिए। लोकमान्य कुछ तटस्थ थे। पर देशबंधु जो प्रस्ताव पसंद करें उसकी ओर अपना वजन डालने का उन्होंने निश्चय कर रखा था।

ऐसे पुराने पके और कसे हुए सर्वमान्य लोकनायकों से मेरा मतभेद मुझे असह्य लगा। दूसरी ओर मेरा अंतर्नाद स्पष्ट था। मैंने कांग्रेस की बैठक से भागने की कोशिश की। पंडित मोतीलाल नेहरू और मालवीयजी को अपना विचार बताया। मुझे अनुपस्थित रहने से सब काम बन जाएगा और मैं महान नेताओं के साथ मतभेद प्रकट करने के संकट से बच जाऊंगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विचार इन दोनों बुजुर्गों को नहीं जचा। लाला हरकिशनलाल के कान में बात पड़ते ही उन्होंने कहा–"यह कभी हो ही नहीं सकता। पंजाबियों को भारी आघात पहुंचेगा।" लोकमान्य और देशबंधु के साथ मशविरा किया। मि. जिन्ना से मिला। किसी तरह राह नहीं निकल पाती थी। अपनी वेदना मैंने मालवीयजी के सामने रखी–"समझौते के लक्षण मुझे नहीं दिखाई देते। मुझे अपना प्रस्ताव पेश करना ही पड़े तो अंत में मत तो लिए ही जाएंगे। पर यहां मत लिए जाने की व्यवस्था मैं नहीं देखता। अब तक हम भारी सभा में हाथ उठवाते आए हैं। हाथ उठाते समय दर्शक और प्रतिनिधियों में भेद नहीं रहता। ऐसी विशाल सभा में मतगणना की व्यवस्था हमारे पास नहीं होती, अतः मुझे अपने प्रस्ताव पर मत लिवाने हों तो भी इसका सुभीता नहीं है।"

लाला हरकिशनलाल ने वह सुभीता संतोषजनक रीति से कर देने का जिम्मा लिया। उन्होंने कहा–"मत लेने के दिन दर्शकों को न आने दिया जाएगा, केवल प्रतिनिधि ही आवेंगे और उनके मत गिनवा देने का जिम्मा मेरा है। पर आप कांग्रेस की बैठक में अनुपस्थित रहें यह नहीं हो सकता।"

अंत को मैं हारा। मैंने अपना प्रस्ताव तैयार किया। बड़े संकोच से मैंने उसे पेश करना स्वीकार किया। मि. जिन्ना और मालवीय जी समर्थन करने वाले थे। भाषण हुए। मैं देख रहा था कि यद्यपि मतभेद में कहीं कटुता नहीं थी, भाषणों में भी दलीलों के सिवा और कुछ न होता था, फिर भी सभा मतभेद मात्र सहन नहीं कर सकती थी और नेताओं के मतभेद से दुःख होता था। सभा को तो एक मत चाहिए था।

जब भाषण चल रहे थे उस समय भी मंच पर मतभेद मिटाने की कोशिशें हो रही थीं। एक-दूसरे के बीच पुरजे आ-जा रहे थे। मालवीयजी तो, चाहे जो भी हो, समझौता कराने के लिए यत्न कर रहे थे। इतने में जयरामदास ने मेरे हाथ पर अपना सुझाव रखा और बड़े मधुर शब्दों में मत देने के संकट से प्रतिनिधियों को उबार लेने की मुझसे प्रार्थना की। मुझे उनका सुझाव पसंद आया। मालवीयजी की नजर तो चारों ओर आशा की खोज में फिर ही रही थी। मैंने कहा–"यह संशोधन दोनों पक्षों को पसंद आने लायक जान पड़ता है।" लोकमान्य को मैंने उसे दिखाया। उन्होंने कहा–"दास को पसंद आ जाए तो मुझे कोई एतराज नहीं है।" देशबंधु पिघले। उन्होंने विपिनचंद्र पाल की ओर देखा। मालवीयजी को पूरी आशा बंध गई। उन्होंने पुरजा हाथ से छीन लिया। देशबंधु के मुंह से 'हां' का शब्द पूरा नहीं निकल पाया था कि वह बोल उठे–"सज्जनों! आपको सुनकर खुशी होगी कि समझौता हो गया।" फिर क्या चाहिए? तालियों की गड़गड़ाहट से मंडप गूंज उठा और लोगों के चेहरे पर जो गंभीरता छा रही थी, उसके बदले खुशी चमक उठी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रस्ताव क्या था, इसकी चर्चा की यहां जरूरत नहीं है। यह प्रस्ताव कैसे हुआ, इतना ही इस प्रसंग में बतलाना मेरे इन प्रयोगों का विषय है।

समझौते ने मेरी जिम्मेदारी बढ़ा दी।

38 : महासभा में प्रवेश

कांग्रेस में मुझे हिस्सा लेना पड़ा, इसे मैं अपना महासभा में प्रवेश नहीं मानता। उसके पहले की महासभाओं की बैठकों में जो मैं गया वह केवल निष्ठा के निदर्शन-स्वरूप था। छोटे-से-छोटे सिपाही के काम के सिवा मेरा कोई वहां दूसरा काम भी हो सकता है, दूसरी सभाओं में मुझे ऐसा आभास नहीं हुआ, न ऐसी इच्छा ही हुई।

अमृतसर के अनुभव ने बतलाया कि मेरी शक्ति का उपयोग महासभा के लिए है। पंजाब-जांच-कमेटी के काम से लोकमान्य, मालवीयजी, मोतीलालजी, देशबंधु वगैरा को खुशी हुई थी, यह मैं देख सका था। इससे मुझे उन्होंने अपनी बैठकों और मशविरों में बुलाया। इतना तो मैंने देख लिया था कि विषयनिर्धारिणी समिति का असली काम ऐसी बैठकों में ही होता था और ऐसे मशविरों में वे लोग होते थे जिन पर नेताओं का विशेष विश्वास या आधार होता था या फिर चाहे जैसा बहाना बनाकर घुस जाने वाले होते थे।

अगले साल के लिए किए जाने वाले दो कामों में मुझे दिलचस्पी थी, क्योंकि उनमें मेरी कुछ पैठ थी।

एक था जलियांवाला बाग के कत्लेआम का स्मारक। इसके बारे में महासभा ने बड़ी शान के साथ प्रस्ताव पास किया था। उसके लिए कोई पांच लाख रुपए का चंदा करना था। उसमें ट्रस्टियों में मेरा नाम था। देश में जनकार्य के लिए भीख मांगने की बड़ी शक्ति रखने वालों में प्रथम पद मालवीयजी का था और है। मैं जानता था कि मेरा दरजा उनसे बहुत नीचे नहीं रहेगा। अपनी यह शक्ति मैंने दक्षिण अफ्रीका में देख ली थी। राजा-महाराजाओं पर जादू करके लाखों ले लेने की शक्ति मुझमें नहीं थी, आज भी नहीं है। इस विषय में मालवीयजी के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने वाला मैंने किसी को पाया ही नहीं। जलियांवाला बाग के काम में उन लोगों से पैसा नहीं मांगा जा सकता, यह मैं जानता था। अतः इस स्मारक के लिए चंदा एकत्र करने का भार मुख्यतः मुझ पर ही पड़ेगा, यह मैं रक्षक का पद स्वीकारते समय समझ गया था। हुआ भी यही। इस स्मारक के लिए बम्बई के उदार नागरिकों ने दिल खोलकर पैसा दिया और आज जनता के पास उसके लिए जितना चाहिए उतना पैसा है। पर इस हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों के मिश्रित रक्त से पावन हुई भूमि पर किस तरह स्मारक बनाया जाए अर्थात पड़े हुए पैसों का क्या उपयोग किया जाए यह एक टेढ़ा सवाल हो गया

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है; क्योंकि तीनों के बीच या कहिए, दो के बीच, दोस्ती के बजाए आज दुश्मनी होने का भास हो रहा है।

मेरी दूसरी शक्ति मुंशी का काम करने की थी, जिसका उपयोग महासभा कर सकती थी। लंबी मुद्दत के अभ्यास से, कहां कैसे किन और कितने थोड़े शब्दों में अविनय रहित भाषा में लिख लेना मैं जानता हूं, नेताओं को यह बात मालूम हो गई थी। महासभा का उस समय जो विधान था वह गोखले की दी हुई पूंजी थी। उन्होंने कुछ नियम बना दिए थे। उनके सहारे महासभा का काम चलता था। वे नियम कैसे गढ़े गए, इसका मधुर इतिहास मैंने उन्हीं के मुंह से सुना था। पर अब महासभा का काम उतने ही नियमों से नहीं चल सकता, यह सभी समझ रहे थे। उसका विधान बनाने की चर्चा हर साल उठती थी। पर महासभा के पास ऐसी व्यवस्था ही नहीं थी जिससे पूरे बरस भर उनका काम चलता रहे या कोई आगे की बात सोचे। उसके तीन मंत्री होते थे, पर वास्तव में कार्यवाहक मंत्री तो एक ही रहता था। एक मंत्री दफ्तर चलाए या भविष्य का विचार करे अथवा भूतकाल में उठाई हुई महासभा की जिम्मेदारियों को चलते बरस में पूरा करे? अतः यह प्रश्न इस साल सबकी दृष्टि से खूब आवश्यक हो गया। जिस महासभा में हजारों की भीड़ होती हो, उसमें राष्ट्र का काम कैसे हो सकता? प्रतिनिधियों की संख्या की कोई हद न थी। हर सूबे से चाहे जितने प्रतिनिधि आ सकते थे। चाहे जो प्रतिनिधि हो सकता था। इससे कुछ व्यवस्था होने की आवश्यकता सबको दिखाई दी। विधान बनाने का भार मैंने अपने ऊपर लिया। मेरी एक शर्त थी। जनता पर दो नेताओं का काबू मैं देख रहा था। इससे मैंने मांग की कि उनके प्रतिनिधि मेरे साथ रहें। वे खुद इत्मीनान से बैठकर विधान बनाने का काम नहीं कर सकते, यह मैं समझता था। इससे लोकमान्य और देशबंधु से उनके विश्वास के दो नाम मांगे। मैंने यह सलाह दी कि उनके सिवा विधान-समिति में कोई न होना चाहिए। यह सूचना स्वीकृत हुई। लोकमान्य ने श्री केलकर का और देशबंधु ने श्री आई.बी. सेन का नाम दिया। यह विधान-समिति मिलकर एक दिन भी नहीं बैठी। फिर भी हमने अपना काम एक मत से पूरा किया। हमने पत्र-व्यवहार से अपना काम चला लिया। इस विधान के विषय में मुझे थोड़ा अभिमान है। मैं मानता हूं कि इसका अनुसरण करते हुए काम किया जाए तो आज हमारा बेड़ा पार है। यह तो जब होगा, तब होगा, पर मेरा खयाल है कि यह जिम्मेदारी लेकर मैंने महासभा में सच्चे अर्थ में प्रवेश किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् 1908 ई. तक मैंने चरखा या करघा देखा हो, इसकी याद मुझे नहीं। फिर भी 'हिन्द-स्वराज' में चरखे के जरिए हिन्दुस्तान की कंगाली मिट सकती है, यह बात मैंने मानी है और जिस उपाय से भुखमरी भाग सकती हो उस उपाय से स्वराज भी मिलेगा, यह तो सभी समझ सकते हैं। सन् 1915 में जब दक्षिण अफ्रीका से देश लौटा तब भी मैंने चरखे के दर्शन नहीं किए थे। आश्रम खोलने पर करघा बैठाया। करघा बैठाने में भी मुझे बड़ी कठिनाई पड़ी। हम सब अनाड़ी थे। अतः करघा मंगा लेने मात्र से तो वह चल नहीं सकता था। हम सब कलम चलाने वाले या बनिज-व्यापार के जानकार इकट्ठे हुए थे। कोई कारीगर नहीं था। अतः करघा लेने के बाद बुनाई का काम सिखाने वाले की जरूरत थी। काठियावाड़ा और पालनपुर से करघे मिले और एक सिखाने वाला आया। उसने अपना हुनर नहीं बताया। पर मगनलाल गांधी हाथ में लिए हुए काम को झट छोड़ देने वाले नहीं थे। उनके हाथ में कारीगरी तो थी ही। अतः उन्होंने बुनाई के हुनर को पूरा-पूरा जान लिया और आश्रम में एक के बाद एक इस प्रकार नए बुनकर तैयार हो गए।

हमें तो अपने कपड़े खुद तैयार करके पहनने थे। इससे मिल का कपड़ा पहनना बंद कर दिया और आश्रमवासियों ने हाथ-करघे में देशी मिल के सूत से बना हुआ कपड़ा पहनने का निश्चय किया। इस व्रत को निभाने में बहुत-कुछ सीखने को मिला। हिन्दुस्तान के बुनकरों के जीवन, आमदनी, सूत मिलने में होने वाली कठिनाइयां, उसमें वे कैसे ठगे जाते हैं इसका और अंत में वे दिन-दिन कैसे कर्जदार होते जा रहे हैं, इस सबका पता चला। हम तुरत खुद अपना सारा कपड़ा बुन लें ऐसी स्थिति तो नहीं ही थी। इससे बाहर के बुनकरों से अपनी आवश्यकता भर का कपड़ा हमें बनवा लेना था; क्योंकि देशी मिल के सूत का हाथ का बुना हुआ कपड़ा बुनकरों से जल्दी मिलने वाला नहीं था। बुनकर अच्छा कपड़ा तो सारा-का-सारा विलायती सूत का ही बुनते थे, क्योंकि हमारे यहां की मिलें महीन सूत नहीं कातती थीं। आज भी महीन सूत तो वे कम ही कातती हैं। बहुत महीन तो कात ही नहीं सकतीं। बड़ी कठिनाइयों से कुछ बुनकर मिले, जिन्होंने देशी सूत का कपड़ा बुनकर ला देने की कृपा की। इन बुनकरों को, देशी सूत का बना हुआ कपड़ा खरीद लेने की, आश्रम की ओर से गारंटी देनी पड़ी थी, इस प्रकार खासतौर से तैयार कराया हुआ कपड़ा हमने पहना और मित्रों में उसका प्रचार किया। हम तो कातने वाली मिलों के बिना कौड़ी-पैसे के दलाल बन गए। मिलों के बारे में जानकारी होने पर उनकी व्यवस्था और उनकी विवशता का पता चला। मैंने देखा कि मिलों का ध्येय खुद कातकर खुद बुनना था। वे करघों की इच्छापूर्वक सहायक नहीं थीं बल्कि अनिच्छा से थीं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह सब देखकर हम हाथ से कातने को अधीर हो गए। हमने देखा कि जब तक हम हाथ से न कातें हमारी पराधीनता बनी रहेगी। हमें यह नहीं जान पड़ा कि मिलों के एजेंट बनकर हम देश-सेवा कर रहे हैं।

पर न चरखा मिलता था, न चरखा कातनेवाला। कुकड़ियां भरने के चरखे तो हमारे पास थे, पर उन पर काता जा सकता है इसका तो खयाल ही न था। एक बार कालीदास वकील एक बहन को खोजकर लाए। उन्होंने कहा कि यह कातकर दिखाएंगी। उसके साथ एक ऐसे आश्रमवासी को कर दिया जो नए कामों को सीख लेने में बड़े होशियार थे। पर हुनर हाथ न लगा।

दिन बीत रहे थे। मैं बेताब हो गया। आश्रम में आने वाले हर ऐसे आदमी से जो इस विषय में कुछ बता सकता हो, मैं पूछा करता। पर कताई का इजारा तो स्त्रियों का ही था। अतः कोने-अंतरे में पड़ी हुई कताई जानने वाली स्त्री तो स्त्री को ही मिल सकती थी।

सन् 1917 में गुजराती भाई मुझे भड़ौच शिक्षा-परिषद में घसीट ले गए थे। वहां महासाहसी विधवा गंगाबाई मुझे मिलीं। वह बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थीं, पर उनमें हिम्मत और समझदारी, शिक्षित बहनों में आमतौर से जितनी होती है उससे ज्यादा थी। उन्होंने अपने जीवन में अस्पृश्यता की जड़ खोद डाली थी; और वे बेधड़क अंत्यजों में मिलती और उनकी सेवा करती थीं। उनके पास पैसा था, पर निज की आवश्यकताएं कम ही थीं। शरीर कसा हुआ था और चाहे जहां भी अकेले जाने में उन्हें तनिक भी हिचक न होती थी। घोड़े की सवारी करने को भी तैयार रहती थीं। इन बहन का विशेष परिचय गोधरा की परिषद में प्राप्त हुआ। अपनी व्यथा मैंने उनके सामने रखी और दमयंती जैसे नल की तलाश में भटकी थी वैसे चरखे की खोज में भटकने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने मेरा भार हल्का कर दिया।

40 : मिला

गुजरात में खूब भटकने के बाद गायकवाड़ के बीजापुर में गंगाबहन को चरखा मिला। बहुतेरे कुटुम्बों के पास चरखा था और उसे उठाकर उन्होंने टांड़ पर धर दिया था। पर यदि उनका सूत कोई ले ले और उन्हें पूनी दी जाए तो वे कातने को तैयार थे। गंगाबहन ने मुझे सूचना दी और मेरी खुशी की हद न रही। पूनी पहुंचाने का काम कठिन लगा। स्व. उमर सुभानी से बातें करने पर उन्होंने अपनी मिल से पूनी भेजने का जिम्मा लिया, मैंने वह पूनियां गंगाबहन को भेजीं और सूत इतनी तेजी से कतने लगा कि मैं थक गया।

भाई उमर सुभानी की उदारता बहुत बड़ी थी, फिर भी उसकी हद थी। पूनियां दाम देकर लेने का निश्चय करने में मुझे संकोच हुआ। इसके सिवा मिल की पूनियां लेकर सूत कतवाने में मुझे भारी दोष दिखाई दिया। अगर मिल की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पूनियां लेते हैं तो फिर सूत लेने में क्या दोष है? हमारे पुरखों के पास मिल की पूनियां कहां थीं। वे कैसे पूनियां तैयार करते थे? पूनियां बनाने वाले की तलाश के लिए मैंने गंगाबहन से कहा। उन्होंने इसका जिम्मा लिया। एक धुनिया ढूंढ़ निकाला। उसे 35 रुपया या उससे कुछ अधिक मासिक वेतन पर रखा। पूनी बनाना लड़कों को सिखलाया। मैंने रूई की भिक्षा मांगी। भाई यशवंतप्रसाद देसाई ने रूई की गांठें देने का भार लिया। गंगाबहन ने काम को एकबारगी बढ़ाया। बुनकर लाकर बसाए और कता हुआ सूत बुनवाना शुरू किया। बीजापुर की खादी का नाम हो गया।

दूसरी ओर आश्रम में अब चरखे का प्रवेश होने में देर न लगी। मगनलाल गांधी की शोध-शक्ति ने चरखे में सुधार किए और चरखे तथा तकुए आश्रम में बने। आश्रम की खादी के पहले थान की लागत गज पीछे सत्रह आने आई। मैंने दोस्तों से मोटी कमजोर सूत की खादी के दाम सत्रह आने गज लिए, जो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दिए।

बम्बई में मैं खाट पर पड़ा था, पर सबसे पूछता रहता था। वहां दो कातने वाली बहनें मिलीं। उन्हें एक सेर सूत का एक रुपया दिया। मैं खादी-शास्त्र में निपट अनाड़ी था। मुझे तो हाथ-कता सूत चाहिए था; कत्तिनें चाहिए थीं। गंगाबहन जिस दर से दाम देती थीं उससे तुलना करने पर मालूम हुआ कि मैं ठगा जा रहा हूं। बहनें कम लेने को तैयार न थीं, इससे उन्हें छोड़ देना पड़ा। पर उनका उपयोग था। उन्होंने श्री अवंतिकाबाई, श्री रमीबाई कामदार, श्री शंकरलाल बैंकर की माताजी को और श्री वसुमती बहन को कातना सिखा दिया और मेरे कमरे में चरखा गूंजने लगा। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि इस यंत्र ने मुझ मरीज को अच्छे होने में मदद दी। यह सही है कि यह मानसिक स्थिति है। पर मन का हिस्सा मनुष्य को चंगा करने में कौन कम है? चरखे को मैंने भी हाथ लगाया। इससे आगे मैं इस समय न जा सका।

यहां हाथ की पूनियां कहां से आएं? श्री रेवाशंकर झवेरी के बंगले के पास से रोज तांत बजाता हुआ एक धुनिया जाया करता था। उसे मैंने बुलाया। वह गद्दों के लिए रूई धुना करता था। उसने पूनियां तैयार कर देना मंजूर किया। उजरत ऊंची दर से मांगी, जो मैंने दी। इस प्रकार तैयार हुआ सूत मैंने वैष्णवों के हाथ ठाकुरजी की माला के लिए दाम लेकर बेचा। भाई शिवजी ने बम्बई में चरखा क्लास खोला। इन प्रयोगों में पैसा काफी खर्च हुआ। श्रद्धालु देशभक्तों ने पैसे दिए और मैंने खर्च किए। मेरा नम्र मत है कि यह खर्च बेकार नहीं गया। उससे हमने बहुत सीखा। मर्यादा का माप मिल गया।

अब मैं शुद्ध खादीमय होने को अधीर हो उठा। मेरी धोती देशी मिल के कपड़े की थी। जो खादी बीजापुर में और आश्रम में तैयार होती थी वह बहुत

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मोटी और 30 इंच पनहे की थी। मैंने गंगाबहन को चेतावनी दी कि यदि 45 इंच पनहे की खादी की धोती एक महीने के अंदर न ला दी तो मुझे मोटी खादी का जांघिया पहनकर निर्वाह करना होगा। वह बेचारी घबरा गई। अवधि कम जान पड़ी, पर हिम्मत न हारीं। महीने भर के अंदर पचास इंच की धोती का जोड़ा लाकर मेरे सामने रख दिया और मेरा दारिद्रय टला।

इसी बीच भाई लक्ष्मीदास लाठी गांव से अंत्यज भाई रामजी और उनकी पत्नी गंगाबहन को आश्रम में लाए और उनसे बड़े पनहे की खादी बनवाई। खादी-प्रचार में इस दम्पती का हिस्सा ऐसा-वैसा नहीं कहा जा सकता। उन्होंने गुजरात और गुजरात के बाहर हाथ का सूत बुनने की कला दूसरों को सिखाई है। यह निरक्षर पर संस्कारवान बहन जब करघा चलाती है तब उसमें इतनी लीन हो जाती है कि इधर-उधर देखने या किसी से बात करने की फुरसत अपने पास नहीं रखती।

41 : एक सम्वाद

जिस समय स्वदेशी के नाम से प्रसिद्ध यह आन्दोलन आरम्भ हुआ उस समय मिल-मालिकों की ओर से मेरी खासी आलोचना होने लगी। भाई उमर सुभानी खुद होशियार मिल-मालिक थे, इससे वह अपने ज्ञान का लाभ तो मुझे देते ही थे, दूसरों की राय भी मुझे बता दिया करते थे। उनमें से एक की दलील का असर उन पर हुआ और मुझे उनके पास ले चलने की बात कही। मैंने उनकी सलाह का स्वागत किया। हम उनके पास गए। उन्होंने बातचीत का सिलसिला यों शुरू किया-

"आपका स्वदेशी आन्दोलन पहला ही नहीं है, यह तो आप जानते हैं न?"

मैंने जवाब दिया-"जी हां।"

"आप जानते हैं कि बंगभंग के समय स्वदेशी आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा था। उसका हम मिल वालों ने खूब फायदा उठाया और कपड़े के दाम बढ़ा दिए। कुछ न करने लायक बातें भी कीं।"

"मैंने यह बात सुनी और सुनकर दुखी हुआ हूं।"

"आपका दुःख मैं समझता हूं, पर उसके लिए कारण नहीं है। हम कुछ परोपकार के लिए रोजगार नहीं करते। हमें तो पैसा कमाना है। अपने हिस्सेदारों को जवाब देना है। चीज के दाम उसकी मांग पर अवलम्बित होते हैं। इस नियम के विरुद्ध कौन जा सकता है? बंगालियों को जानना चाहिए था कि उनके आन्दोलनों से स्वदेशी वस्त्र के दाम बढ़ेंगे ही।"

"ये बेचारे मेरी तरह सहज विश्वासी हैं, इससे उन्होंने मान लिया कि मिल-मालिक एकबारगी स्वार्थी नहीं बन जाएंगे, धोखा तो नहीं ही देंगे। स्वदेशी के नाम से विदेशी कपड़ा तो नहीं ही बेचेंगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"आप यह मानते हैं यह मैं जानता था, इसी से मैंने आपको चेताने की बात सोची और यहां आने का कष्ट दिया, जिससे आप भोले बंगालियों की तरह धोखे में न रह जाएं।" यह कहकर सेठजी ने अपने यहां बुनी जाने वाली चीजों के नमूने लाने का इशारा किया। पहला नमूना रद्दी रूई में से बने हुए कम्बल का था। उसे लेकर उन्होंने कहा–"देखिए, यह माल हमने नया बनाया है। इसकी अच्छी खपत है। रद्दी से बना है, इसलिए सस्ता तो पड़ता ही है। इस माल को हम ठेठ उत्तर तक पहुंचाते हैं। हमारे एजेंट चारों ओर फैले हुए हैं, इसलिए आप देख लें कि हमें आप–जैसे एजेंटों की जरूरत नहीं रहती। सच तो यह है कि जहां आप जैसों की आवाज तक नहीं पहुंचती, वहां हमारा माल और हमारे एजेंट पहुंचते हैं। फिर आपको जानना चाहिए कि हिन्दुस्तान को जितना माल चाहिए उतना माल हम पैदा करते भी नहीं। इस कारण स्वदेशी का सवाल खासतौर से उत्पादन का है। जब हम अपनी जरूरत–भर का कपड़ा बनाने लगेंगे और जब अच्छा मेल बनाने लगेंगे तब विदेशी कपड़े की आमद अपने आप बंद हो जाएगी। इससे मेरी सलाह तो आपको यह है कि आप अपना स्वदेशी आन्दोलन जिस तरह से चला रहे हैं उस तरह न चलाएं और नई मिलें खोलने की तरफ ध्यान दें। अपने यहां स्वदेशी माल खपाने के आन्दोलन की जरूरत नहीं है, बल्कि पैदा करने की है।"

मैंने कहा–"तो अगर मैं इसी काम को कर रहा होऊं तो आप मुझे आशीर्वाद देंगे न?"

"यह कैसे? आप अगर मिल खोलने की कोशिश कर रहे हों तो आप धन्यवाद के पात्र हैं।"

"यह तो मैं नहीं कर रहा हूं, पर चरखे के काम में लगा हुआ हूं।"

"यह क्या चीज है?"

मैंने चरखे की बात कह सुनाई और कहा–"आपके विचारों से मैं मिलता जा रहा हूं। मुझे मिलों की एजेंटी नहीं करनी चाहिए। इससे फायदे के बदले नुकसान ही है। मिलों का माल कुछ पड़ा नहीं रहता। मुझे तो पैदा करने में और जो तैयार हो उसे खपाने में लगना चाहिए। इस समय तो मैं पैदा करने में ही लगा हुआ हूं। इस प्रकार की स्वदेशी में मेरी श्रद्धा है, क्योंकि उसके द्वारा हिन्दुस्तान के भूखों भरने वालों, अर्ध–बेकार स्त्रियों को काम दिया जा सकता है। जो वह कातें उस सूत को बुनवाना और वह खादी लोगों को पहनाना यह मेरी भावना है और मेरा आन्दोलन है। चरखे का आन्दोलन कहां तक सफल होगा यह तो मैं नहीं जानता। अभी तो सिर्फ उसका आरम्भकाल है। पर मुझे उसमें पूरा विश्वास है। कुछ भी हो, उसमें नुकसान तो है ही नहीं। हिन्दुस्तान में पैदा होने वाले कपड़े में जितनी वृद्धि इस आन्दोलन से हो उतना फायदा है। अतः इस प्रयत्न में आप तो कहते हैं वह दोष तो नहीं ही है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"जो आप इस रीति से आन्दोलन चलाते हों तो मुझे कुछ कहना नहीं है। इस युग में चरखा चल सकता है या नहीं, यह अलग बात है। मैं तो आपकी सफलता ही मनाता हूं।"

42 : असहयोग का प्रवाह

खादी की तरक्की इसके बाद कैसी हुई, इसका वर्णन इन प्रकरणों में नहीं दिया जा सकता। वे चीजें जनता के सामने कैसे आईं यह बता देने के बाद उनके इतिहास में उतरना इन प्रकरणों का क्षेत्र नहीं है। उतरा जाए तो उन विषयों की अलग पुस्तक बन जाए। सत्य की खोज करते हुए कुछ चीजें मेरे जीवन में एक के बाद एक अपने आप कैसे आती गईं, इतना ही बताना यहां अभीष्ट है।

इसलिए मान सकता हूं कि असहयोग के बारे में थोड़ा कहने का समय आ गया जान पड़ता है। अली भाइयों का खिलाफत के बारे में जबरदस्त आन्दोलन तो चल ही रहा था। स्व. मौलाना अब्दुल बारी आदि उलेमाओं के साथ इस विषय में खूब चर्चा हुई। मुसलमान शांति का, अहिंसा का किस हद तक पालन कर सकते हैं? इस विषय में विवेचनाएं हुईं और अंत में तै पाया कि एक खास हद तक नीति के रूप में इतना पालन करने में रुकावट नहीं है और एक बार अहिंसा की प्रतिज्ञा ली हो तो उसका पालन उनका फर्ज है। अंत में असहयोग का प्रस्ताव खिलाफत-कांफ्रेंस में रखा गया और वह बड़े बहस-मुबाहिसे के बाद पास हुआ। मुझे याद है कि इलाहाबाद में एक बार इसके लिए रातभर सभा चलती रही। हकीम साहब को शांतिमय असहयोग की शक्यता में शंका थी, पर शंका दूर हो जाने के बाद वह उसमें शामिल हुए और उनकी मदद अमूल्य सिद्ध हुई।

उसके बाद गुजरात में प्रांतिक परिषद हुई। उसमें मैंने असहयोग का प्रस्ताव उपस्थित किया। उसका विरोध करने वाले पहली दलील यह देते थे कि जब तक महासभा असहयोग का निश्चय न करे तब तक प्रांतिक परिषदों को प्रस्ताव पास करने का अधिकार नहीं है। मैंने सुझाया कि प्रांतिक परिषदें पीछे कदम नहीं उठा सकतीं। आगे पैर बढ़ाने का सब मातहत संस्थाओं का अधिकार है। यही नहीं, हिम्मत हो तो यह उनका फर्ज है। इससे मुख्य संस्था की शोभा बढ़ती है। प्रस्ताव के गुण-दोष पर भी काफी और मधुर चर्चा हुई। मतों की गिनती हुई और जबरदस्त बहुमत से असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ। इस प्रस्ताव को पास कराने में अब्बास तैयबजी तथा वल्लभभाई का बड़ा हिस्सा था। अब्बास साहब अध्यक्ष थे और उनका झुकाव असहयोग के प्रस्ताव की ओर ही था।

भारतीय कांग्रेस कमेटी ने इस प्रश्न का विचार करने को महासभा की खास बैठक कलकत्ता में 1920 के सितम्बर में करने का निश्चय किया। उसकी तैयारी बहुत बड़े पैमाने पर हुई। लाला लाजपतराय अध्यक्ष चुने गए। 'खिलाफत स्पेशल'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और 'कांग्रेस स्पेशल' बम्बई से छूटी। कलकत्ते में प्रतिनिधियों और दर्शकों का बहुत बड़ा समुदाय इकट्ठा हुआ था।

मौलाना शौकतअली के अनुरोध से मैंने असहयोग के प्रस्ताव का मसविदा रेलगाड़ी में तैयार किया। अब तक मेरे मसविदों में 'शांतिमय' शब्द बहुत करके नहीं आता था। अपने भाषणों में मैं इस शब्द का व्यवहार करता था। केवल मुसलमान भाइयों की सभाओं में 'शांतिमय' शब्द से अपना अभिप्राय मैं समझा नहीं पाता था। इससे मौलाना अबुलकलाम आजाद से मैंने दूसरा शब्द मांगा। उन्होंने 'बाअमन' शब्द बताया और असहयोग के लिए 'तरके मवालात' शब्द दिया।

इस प्रकार अभी गुजराती में, हिन्दी में, हिन्दुस्तानी में असहयोग की भाषा मेरे दिमाग में तैयार हो रही थी कि महासभा के लिए प्रस्ताव बनाने का काम उपर्युक्त रूप से मुझ पर आ पड़ा। उसमें 'शांतिमय' शब्द छूट गया। मैंने प्रस्ताव बनाकर ट्रेन में ही मौलाना शौकतअली को दे दिया। रात को खयाल आया कि मुख्य शब्द 'शांतिमय' तो छूट ही गया है। मैंने महादेव को दौड़ाया और कहलाया कि 'शांतिमय' शब्द छपने में बढ़ा दिया जाए। मुझे ऐसा खयाल है कि यह शब्द बढ़ाने के पहले प्रस्ताव छप चुका था। विषय-समिति की बैठक उसी रात को थी, उसमें वह शब्द बाद को मुझे बढ़वाना पड़ा था। मैंने देखा कि यदि मैंने प्रस्ताव लेकर तैयार न कर दिया होता तो बड़ी कठिनाई पड़ती।

मेरी स्थिति दयनीय थी। कौन विरोध करेगा और कौन प्रस्ताव को पसंद करेगा, इसका मुझे पता नहीं था। लालाजी के झुकाव के बारे में मैं कुछ जानता नहीं था। तपे-तपाये योद्धा कलकत्ते में उपस्थित हुए थे। विदुषी ऐनी बेसेंट, पंडित मालवीयजी, विजय राघवाचार्य, पंडित मोतीलालजी, देशबंधु आदि उनमें थे।

मेरे प्रस्ताव में खिलाफत और पंजाब के अन्याय के लिए ही असहयोग करने की बात थी। श्री विजय राघवाचार्य को यह न रुचा। वह कहते थे-"अगर असहयोग करना ही है तो किसी खास अन्याय के लिए क्यों? स्वराज्य का अभाव बड़े-से-बड़ा अन्याय है और उसके लिए असहयोग करना चाहिए।" मोतीलालजी भी इसे बढ़वाना चाहते थे। मैंने तुरत ही यह सुझाव स्वीकार कर लिया और स्वराज्य की मांग भी प्रस्ताव में शामिल कर ली। विस्तृत, गम्भीर और कुछ तीखी बहस के बाद असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ।

मोतीलालजी उसमें पहले शामिल हुए। मेरे साथ हुई उनकी मीठी बहस मुझे अब भी याद है। कुछ शब्दों के अदल-बदल का उनका सुझाव मैंने स्वीकार कर लिया था। देशबंधु को मनाने का जिम्मा उन्होंने लिया। देशबंधु का हृदय असहयोग की ओर था, पर उनकी बुद्धि यह कहती थी कि असहयोग जनता से चल न सकेगा। देशबंधु और लालाजी असहयोग में पूरी तरह से नागपुर में शामिल हुए। इस विशेष अधिवेशन के समय मुझे लोकमान्य की अनुपस्थिति बहुत खल

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रही थी। मेरा आज भी यह मत है कि वह जीते होते तो कलकत्ते के मौके का स्वागत करते। पर ऐसा न होता और वह विरोध भी करते तो भी वह मुझे पसंद आता। मैं उनसे कुछ सीखता। उनके साथ मेरे मतभेद हमेशा रहते थे, पर वे सब मीठे होते थे। हममें निकट सम्बन्ध था, यह मुझे उन्होंने सदा मानने दिया था। यह लिखते समय उनके अवसान का चित्र मेरी आंखों के सामने आ जाता है। मध्यरात्रि में मुझे उनके अवसान का टेलीफोन मेरे साथी पटवर्धन ने किया था। उसी समय साथियों के सामने मेरे मुंह से यह उद्‌गार निकला था–"मेरे पास बड़ा सहारा था, जो आज टूट गया।" इस समय असहयोग का आन्दोलन जोरों पर चल रहा था। उनसे उत्साह और प्रेरणा पाने की मैं आशा रखता था। अंत में जब असहयोग ने पूरी शक्ल पकड़ी तब उनका रुख क्या होता, यह तो भगवान जाने, पर इतना मैं जानता हूं कि राष्ट्र के इतिहास की इस नाजुक घड़ी में सबको उनका अभाव खल रहा था।

43 : नागपुर में

महासभा में विशेष अधिवेशन में पास हुए असहयोग के प्रस्ताव को नागपुर में होने वाले वार्षिक अधिवेशन में बहाल रखना था। जैसे कलकत्ते में वैसे नागपुर में भी असंख्य मनुष्यं इकट्ठे हुए थे। अभी प्रतिनिधियों की संख्या नियत नहीं हो पाई थी। अतः जहां तक मुझे याद है चौदह हजार प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। लालाजी के आग्रह से विद्यालय-विषयक प्रस्ताव में एक छोटा-सा परिवर्तन मैंने स्वीकार कर लिया था। देशबंधु ने भी थोड़ा-सा फेरफार कराया और अंत में शांतिमय असहयोग का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ।

इसी अधिवेशन में महासभा के विधान का प्रस्ताव पास करना था। यह विधान मैंने विशेष अधिवेशन में पेश तो कर ही दिया था। इससे वह प्रकाशित हो चुका था और उस पर चर्चा भी हो चुकी थी। श्री विजय राघवाचार्य इस अधिवेशन के सभापति थे। विधान में विषय-विचारिणी समिति ने एक ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। मैंने तो प्रतिनिधियों की संख्या 1500 रखी थी। मेरी समझ से यह कार्य अविचारमूलक था। इतने वर्षों के अनुभव के बाद भी मुझे यही जान पड़ता है। अधिक प्रतिनिधियों से अधिक अच्छा काम होता है अथवा लोकतंत्र के तत्त्व का अधिक पालन होता है, इस खयाल को मैं विशुद्ध भ्रम मानता हूं। पंद्रह सौ प्रतिनिधि यदि उदार मन के, जनाधिकार रक्षक और सच्चे हों तो छह हजार स्वयं नियुक्त और निरंकुश प्रतिनिधियों की अपेक्षा लोकतंत्र की अधिक अच्छी रक्षा कर सकते हैं। लोकतंत्र की रक्षा के लिए जनता में स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और ऐक्य की भावना और अच्छे तथा सच्चे ही प्रतिनिधियों को चुनने का आग्रह होना चाहिए। पर संख्या के मोह में पड़ी हुई विषय-विचारिणी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समिति को तो छह हजार से भी अधिक प्रतिनिधि चाहिए थे अतः छह हजार पर किसी तरह समझौता हुआ।

महासभा में स्वराज्य के ध्येय पर बहस हुई थी। विधान की धारा में साम्राज्य के भीतर अथवा बाहर जैसे मिले वैसे स्वराज्य प्राप्त करने की बात थी। महासभा में एक पक्ष ऐसा भी था जो कहता था कि साम्राज्य में रहकर स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए। इस पक्ष का समर्थन पं. मालवीयजी और मि. जिन्ना ने किया। पर उन्हें अधिक मत न मिले। शांति और सत्यरूप साधनों द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करना है, यह विधान की धारा थी। इस शर्त का भी विरोध किया गया। पर महासभा ने उसे न माना और सारा विधान महासभा में सुंदर बहस होने के बाद पास हुआ। मेरा मत है कि इस विधान पर सच्चाई से और उत्साह से लोगों ने अमल किया होता तो उससे जनता को बड़ी शिक्षा मिली होती और उसके आचरण में स्वराज्य की कुंजी थी। पर यह विषय यहां प्रस्तुत नहीं है।

इसी अधिवेशन में हिन्दू-मुस्लिम-एकता अस्पृश्यता और खादी के विषय में भी प्रस्ताव स्वीकृत हुए और तब से अस्पृश्यता दूर करने का भार महासभा के हिन्दू सदस्यों ने उठा रखा है और खादी द्वारा महासभा ने अपना सम्बन्ध हिन्दुस्तान के अस्थिपंजरों के साथ जोड़ा है। खिलाफत के मसले के सिलसिले में असहयोग की घोषणा ही हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य को साधने के लिए महासभा का महान प्रयास था।

44 : पूर्णाहुति

पर अब इन प्रकरणों के समाप्त करने का समय आ गया है।

इसके बाद का मेरा जीवन इतना सार्वजनिक हो गया कि शायद ही कोई चीज ऐसी है जिसे जनता न जानती हो। फिर सन् 1921 में मैं महासभाओं के नेताओं के साथ इतना अधिक घुल-मिल गया हूं कि एक भी प्रसंग का वर्णन नेताओं के सम्बन्ध की चर्चा किए बिना मैं यथार्थ रूप में नहीं कर सकता। यह सम्बन्ध अभी ताजा है। श्रद्धानंदजी, देशबंधु, लालाजी और हकीम साहब आज हमारे बीच नहीं हैं। पर हमारे सौभाग्य से दूसरे नेता अभी विद्यमान हैं। महासभा के परिवर्तन के बाद का इतिहास अभी तैयार हो रहा है। मेरे मुख्य प्रयोग महासभा के द्वारा हुए हैं। अतः उन प्रयोगों के वर्णन में नेताओं के सम्बन्ध की चर्चा अनिवार्य है। शिष्टता के नाते भी फिलहाल तो मैं उसे नहीं ही कर सकता। फिर भी चलने वाले प्रयोगों के विषय में मेरे निर्णय निश्चयात्मक नहीं गिने जा सकते। अतः इन प्रकरणों को तत्काल तो बंद कर देना ही मुझे कर्त्तव्य जान पड़ता है। यह कहूं तो गलत न होगा कि मेरी कलम ही अब आगे बढ़ने से इनकार करती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पाठकों से विदा लेते हुए मुझे क्लेश हो रहा है। मेरे प्रयोगों का मेरे निकट बड़ा मूल्य है। उनका मैं यथार्थ वर्णन कर सका हूं या नहीं यह मैं नहीं जानता। यथार्थ वर्णन में मैंने अपनी ओर से कोई-कसर नहीं रखी है। सत्य को मैंने जैसा देखा है, जिस मार्ग से देखा है, उसे बताने का मैंने सतत प्रयत्न किया है; क्योंकि मैंने यह आशा रखी हैं कि उससे पाठकों के मन में सत्य और अहिंसा के विषय में अधिक आस्था उत्पन्न होगी।

सत्य से भिन्न किसी परमेश्वर के होने का अनुभव मुझे नहीं हुआ है। सत्यमय होने के लिए अहिंसा हीं एकमात्र मार्ग है। यह बात इन प्रकरणों के पन्ने-पन्ने से प्रकट न हुई हो तो इस प्रयत्न को व्यर्थ मानूंगा। प्रयत्न भले ही व्यर्थ हो, पर वचन व्यर्थ नहीं है। मेरी अहिंसा सच्ची होते हुए भी कच्ची है, अपूर्ण है। इससे मेरी सत्य की झांकी हजारों सूर्यों के इकट्ठा करने पर भी जिस सत्यरूपी सूर्य के तेज का पूरा अनुमान नहीं हो सकता, उस सूर्य के एक किरणमात्र का दर्शनरूप ही है। इसका सम्पूर्ण दर्शन अहिंसा के बिना अशक्य है, इतना तो मैं अपने आज तक के प्रयोगों के अंत में अवश्य कह सकता हूं।

ऐसे व्यापक सत्यनारायण के साक्षात्कार के लिए जीवमात्र के प्रति आत्मवत प्रेम होने की परम आवश्यकता है और उसकी इच्छा रखने वाला मनुष्य जीवन के एक भी क्षेत्र के बाहर नहीं रह सकता। इंसी से सत्य की मेरी पूजा मुझे राजनीति में घसीट ले गई है। जो कहता है कि धर्म का राजनीति से सम्बन्ध नहीं है वह धर्म को जानता नहीं है, यह कहने में मुझे संकोच नहीं है। यह कहने में कोई अविनय नहीं करता।

आत्मशुद्धि के बिना जीव-मात्र के साथ एकता नहीं सध सकती। आत्मशुद्धि के लिए अहिंसा धर्म का पालन सर्वथा अशक्य है। अशुद्धात्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ है। अतः जीवन-पथ के सब क्षेत्रों में शुद्धि की आवश्यकता है। यह शुद्धि साध्य है; क्योंकि व्यष्टि और समष्टि के बीच ऐसा निकट सम्बन्ध है कि एक की शुद्धि अनेक की शुद्धि के बराबर हो जाती है और व्यक्तिगत प्रयत्न करने की शक्ति सत्यनारायण ने सबको जन्म से ही दे रखी है।

पर शुद्धि का मार्ग विकट है, इसका मैं तो प्रतिक्षण अनुभव करता हूं। शुद्ध होने के मानी हैं कि मन, वचन और काया से निर्विकार होना, राग-द्वेषादि से रहित होना। इस निर्विकारता को प्राप्त करने का प्रतिक्षण प्रयत्न करते हुए भी मैं उस स्थिति तक अभी पहुंच नहीं सका हूं, इससे लोगों की स्तुति मुझे भुलावे

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में नहीं डाल सकती। यह स्तुति अक्सर मुझे चुभती है। मन के विकारों को जीतना जगत को शस्त्र-युद्ध से जीतने की अपेक्षा भी मुझे कठिन लगता है। हिन्दुस्तान में आने के बाद भी मैंने अपने अंतर में छिपे हुए विकारों को देखा है। देखकर शरमाया हूं, पर हिम्मत नहीं हारी है। सत्य के प्रयोग करने में मैंने रस लूटा है। आज भी लूट रहा हूं। पर मैं जानता हूं कि मुझे अभी विकट रास्ता तै करना है। उसके लिए मुझे शून्यवत बनना है। मनुष्य जब तक स्वेच्छा से अपने को सबसे पीछे न रखे-सबसे छोटा न माने तब तक उसकी मुक्ति नहीं है। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है और इस नम्रता के बिना मुक्ति किसी काल में भी नहीं है, यह अनुभव-सिद्ध बात है। ऐसी नम्रता की प्रार्थना करते हुए, उसमें जगत की सहायता की याचना करते हुए, इस समय तो इन प्रकरणों को समाप्त करता हूं।

●●●

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी साहित्य

मेरे सपनों का भारत

गांधीजी चाहते थे कि भारत कर्म को भूमि बनाकर स्वतंत्र हो और बलवान बने। वे गरीबी, निरक्षरता और अस्पृश्यता से मुक्त भारत का सपना देखते थे। उनकी हार्दिक आकांक्षा थी कि भारत की समृद्धि का लाभ नागरिकों को समान रूप से प्राप्त हो।

मूल्य: 95.00

गीता-माता

गांधीजी ने गीता के दर्शन का अपने जीवन में अक्षरशः पालन किया और माता का उच्च स्थान दिया। उन्होंने ज्ञान, भक्ति और कर्म का अद्‌भुत समन्वय बताते हुए इसके ज्ञानामृत को, जीवन की सभी समस्याओं के समाधान के लिए सर्वोपरि माना।

मूल्य:95.00

अनासक्ति योग (श्रीमद्‌भगवत्‌गीता)

गांधीजी ने अपने अध्ययन और अनुभवों में गीता को सर्वोपरि जाना। 38 वर्ष तक अनासक्ति योग को अपने जीवन की धुरी बनाने के बाद उन्होंने जाना कि मनुष्य किसी भी परिस्थिति में रहकर अपनी आत्मा को विशुद्ध बना सकता है। वह मानव होने के आनंद को महसूस कर सकता है। उन्होंने फुर्सत के क्षणों में अनासक्ति योग की गुजरातों में व्याख्या की और स्पष्ट किया कि इसकी साधना जितनी दुरुह है, उतनी ही सरल भी। अतः एक बार सच्ची चाह जगने पर यह ग्राह्य बन जाता है। मनुष्य साधक बन जाता है और जीवन सब कुछ करते हुए भी एक अनोखी साधना।

मूल्य:75.00

हिन्दू-धर्म

गांधी जी ने हिंदू धर्म को सत्य की अथक खोज का ही दूसरा नाम कहा। अहिंसात्मक साधनों द्वारा सत्य की खोज करने वाला किसी भी देश जाति अथवा धर्म का अनुयायी हिंदू हो सकता है। युगों से मानव सभ्यता के लिए किए गए मानव के प्रयासों के निचोड़ को ही हिंदू धर्म कहा जा सकता है।

डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि.

X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020
फोन नं. 41611861-66, 40712100, फैक्स : (0091)-011-41611866
ईमेल : Sales@dpb.in, Website: www.dpb.in

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Book Mark
159197-111 1SPS
HINDI Rs150/-

गांधी जी ने जीवन पर्यंत सत्य की साधना की। उनके लिए सत्य ही ईश्वर का पर्याय था। इसकी प्राप्ति के लिए किए गए उनके प्रयास ही सत्य के लिए [illegible] प्रयोग हैं। फिर भी उनकी विनती थी कि उनके लेखों को प्रमाणभूत न [illegible] उनके [illegible] को दृष्टांत रूप मानकर सब अपने-अपने प्रयोग यथाशक्ति [illegible] करें। गांधी जी ने कहा था : "मेरा विश्वास है कि मेरी आत्मकथा के [illegible] कुछ मिल सकता है।" यह पुस्तक राष्ट्रपिता की कार्य [illegible] जीवन को समझने में अमूल्य सिद्ध होगी।

The Book Mark
A-2,Ring Road
South Ext.-1
Ph. 24693216, 24644071

डायमंड बुक्स
Shop online at www.dpb.in
ISBN 978-81-288-1245-3
Collection 2 8 8 1 2 4 5 3
Biography, Autobiography/Political Leaders
150